ISSN 2454-2725
Peer Reviewed Journal

105-107
जनवरी-मार्च 2024 (सयुंक्त)

अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका

जनकृति

www.jankriti.com

संपादक: डॉ. कुमार गौरव मिश्रा

Nietjuh IPI Value (2.65)

जनकृति

अंतरानुशासनिक पूर्व- समीक्षित द्विभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका

वर्ष 9, अंक 105-107 **जनवरी-मार्च 2024**

परामर्श मंडल

डॉ. सुधा ओम ढींगरा, प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय, प्रो. रमा, डॉ. हरीश नवल, प्रो. हरीश अरोड़ा, डॉ. प्रेम जन्मेजय, डॉ. कैलाश कुमार मिश्रा, प्रो. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, प्रो. कपिल कुमार, प्रो. जितेंद्र श्रीवास्तव प्रो. रत्नेश विश्वक्सेन

संपादक

डॉ. कुमार गौरव मिश्रा
(सहायक प्रोफ़ेसर, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार)

सहायक संपादक

प्रो. पुनीत बिसारिया
(प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश)

संपादन मण्डल/विशेषज्ञ समिति

डॉ. सदानन्द काशीनाथ भोसले (प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विद्यापीठ , महाराष्ट्र)
डॉ. दीपेन्द्र सिंह जाड़ेजा (प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, महाराजा सयाजीराव बड़ौदा विश्वविद्यालय, वड़ोदरा)
डॉ. नाम देव (प्रोफ़ेसर, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)
डॉ. प्रज्ञा (प्रोफ़ेसर, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)
डॉ. रचना सिंह (एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिन्दू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)
डॉ. रूपा सिंह (एसोसिएट प्रोफ़ेसर, बाबु शोभा राम गोवेरमेंट आर्ट कॉलेज, राजस्थान)
डॉ. पल्लवी (सहायक प्रोफ़ेसर, तेजपूर विश्वविद्यालय, असम)
डॉ. मोहसिन खान (प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, जेएसएम कॉलेज, रायगढ़, महाराष्ट्र)
डॉ. अखिलेश कुमार शर्मा (सहायक प्रोफ़ेसर, मिजोरम विश्वविद्यालय, मिजोरम)
डॉ. प्रवीण कुमार (सहायक प्रोफ़ेसर, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश)
डॉ. मुन्ना कुमार पाण्डेय (एसोसिएट प्रोफ़ेसर, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)
डॉ. चंद्रेश कुमार छतलानी (सहायक प्रोफ़ेसर, जेआरएन राजस्थान विद्यापीठ, राजस्थान)
डॉ. अंबिकेश त्रिपाठी (सहायक प्रोफ़ेसर, गांधी एवं शांति विभाग, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
डॉ. ज्ञान प्रकाश (सहायक प्रोफ़ेसर, बिहार)

संपादन सहयोग

डॉ. चन्दन कुमार (दिल्ली)
डॉ. राकेश कुमार (दिल्ली)

संस्थापक सदस्य

कविता सिंह चौहान (मुंबई)
डॉ. जैनेन्द्र कुमार (बिहार)

अंतरराष्ट्रीय सदस्य

प्रो. अरुण प्रकाश मिश्रा (स्लोवेनिया), डॉ. इंदु चंद्रा (फ़िजी), डॉ. सोनिया तनेजा (स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी), डॉ. अनिता कपूर (अमेरिका), राकेश माथुर (लंदन), रिद्या (श्री लंका), मीना चोपड़ा (कैनेडा), पूजा अनिल (स्पेन)

जनकृति अव्यवसायिक
जनवरी-मार्च 2024 (सयुंक्त अंक) अंक 105-107, वर्ष 9

सहयोग राशि : 60 रुपये (वर्तमान अंक)
150 रुपये (संस्थागत)

व्यक्तिगत सदस्यता : 800 रुपये (वार्षिक)
3000 रुपये (पंचवर्षीय)
5000 रुपये (आजीवन)

संस्थागत सदस्यता : 1200 रुपये (वार्षिक)
6000 रुपये (पंचवर्षीय)
10000 रुपये (आजीवन)

(डिजिटल प्रति सदस्यता)

बैंक खाता विवरण : Account holder's name- Kumar Gaurav Mishra
Bank name - Punjab National Bank
Account type – saving account
Account no. 7277000400001574
IFSC code- PUNB0727700

पत्र व्यवहार : फ्लैट- 401, वृंदावन अपार्टमेंट
फजलगंज, मंगलम होटल, ओल्ड जीटी रोड़, सासाराम, रोहतास, बिहार
पिन कोड: 821115, संपर्क- +918805408656

नोट : प्रकाशित रचनाओं से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है।
सम्पादन पूर्णतः अवैतनिक है।

ध्यानार्थ : अकादमिक क्षेत्र में शोध की गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप जनकृति में शोध आलेख प्रकाशित किए जाते हैं। शोध आलेखों का चयन विभिन्न क्षेत्रों के विषय विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है, जो विषय की नवीनता, मौलिकता, तथ्य इत्यादि के आधार पर चयन करते हैं। इसके अतिरिक्त पत्रिका में साहित्यिक रचनाएँ, वैचारिक लेख, साक्षात्कार एवं पुस्तक समीक्षा भी प्रकाशित होती है। जनकृति के माध्यम से हम सृजनात्मक, वैचारिक वातावरण के निर्माण हेतु प्रतिबद्ध है।

JANKRITI
Interdisciplinary Peer-Reviewed Bilingual International Monthly Magazine
Editor: Dr. Kumar Gaurav Mishra
Language: Bilingual (Hindi & English)
Publisher: JANKRITI
ISSN: 2454-2725

संपादकीय

आप सभी पाठकों के समक्ष जनकृति का जनवरी-मार्च 2024 सयुंक्त अंक प्रस्तुत है। इस अंक में आप साहित्य, कला, इतिहास, दर्शन, धर्म एवं संस्कृति इत्यादि क्षेत्रों के महत्वपूर्ण विषयों पर आधारित शोध आलेख, लेख पढ़ सकते हैं। इसके अतिरिक्त अंक में आप साहित्यिक रचनाएँ भी पढ़ सकते हैं।

जनकृति एक बहु-विषयक अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका है। यह पूर्ण रूप से विमर्श केन्द्रित पत्रिका है, जहां आप विभिन्न अनुशासन के नवीन विषयों को एकसाथ पढ़ सकते हैं। पत्रिका में एक ओर जहां साहित्य की विविध विधाओं में रचनाएँ प्रकाशित की जाती है वहीं नवीन विषयों पर लेख, शोध आलेख प्रकाशित किए जाते हैं। अकादमिक क्षेत्र में शोध की गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप शोध आलेख प्रकाशित किए जाते हैं। शोध आलेखों का चयन विभिन्न क्षेत्रों के विषय विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है, जो विषय की नवीनता, मौलिकता, तथ्य इत्यादि के आधार पर चयन करते हैं। जनकृति के माध्यम से हम सृजनात्मक, वैचारिक वातावरण के निर्माण हेतु प्रतिबद्ध है।

- **डॉ. कुमार गौरव मिश्रा**

जनकृति

अंतरानुशासनिक पूर्व- समीक्षित द्विभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका

वर्ष 9, अंक 105-107 **जनवरी-मार्च 2024**

अनुक्रम

संपादकीय4

कला-विमर्श

Analyzing the Deeper Strands of Indian Modernism and Art: A Study of Contextual Modernism and Modern Indian Theatre / Suchitra Singh 8

काव्य नाटक: मंच प्रस्तुति एवं समस्याएँ / आशा 31

भारतीय लोकनाट्य में बिदेसिया का प्रदेय / डॉ. सतेन्द्र शुक्ल 46

हिन्दी नुक्कड नाटकों का सामाजिक परिदृश्य / डॉ. प्रदीप कुमार 59

भारतीय संगीत में शास्त्रीय और लोक-वाद्यों का विकास / शैलेन्द्र वर्मा, डॉ. रवि कुमार पण्डोले 67

लोकगीतों में स्वांग का महत्व / खुशबू रायकवार, डॉ. नीना श्रीवास्तव 75

दलित एवं आदिवासी -विमर्श

Ethno medicine and Traditional Healing Practices among the Ho of Jharkhand: A Multispecies Inquiry / Neha Kumari 82

बंजारा समाज की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि / डॉ. बसुंधरा उपाध्याय 104

दलित काव्य : दलित चेतना और अनुभूति का यथार्थ / डॉ. सुमित कुमार 114

स्त्री-विमर्श

निर्मला पुतुल और उनकी स्त्री चेतना / कालू तामांग 122

ममता कालिया के उपन्यासों में नारी जीवन का चित्रण / वैशाली 133

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री जीवन के चित्र / डॉ. सारिका देवी 140

किन्नर-विमर्श

उच्च शिक्षा में ट्रांसजेंडर विद्यार्थियों के अधिकारियों की रक्षा के लिए नीति-2021 :दिल्ली विश्वविद्यालय के संदर्भ में / विशाल कुमार गुप्ता, प्रो. राजेश 148

मीडिया-विमर्श

Communication for Women's Empowerment and Community Radio / Umesh Sharma 164

डिजिटल युग में पत्रकारिता की चुनौतियां / अमित दत्ता 186

भारत के जनसंचार में कार्टूनों की परम्परा और गाँधी / संगीता केशरी 198

सोशल मीडिया के युग में हिन्दी पत्रकारिता / डॉ. कुमार कौस्तुभ 212

ETHICAL CHALLENGES IN NEW MEDIA IN INDIA: AN ANALYTICAL STUDY / Dr. Sankershan Paripurnan 223

शिक्षा-विमर्श

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: अध्यापक शिक्षा में बहुभाषिकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन / श्री आनंद दास 231

नई शिक्षा नीति में शिक्षण के नए आयाम एवम शिक्षक कुशलता / उज्ज्वला भोसले, डॉ. संतोष कुमार शर्मा, डॉ.एन. पापा राव 242

भाषिक-विमर्श

स्वाधीन भारत में हिंदी का विस्तार/ श्रीमती श्वेता सिंघल 256

देवनागरी लिपि एवं फ़ॉन्ट / डॉ.के. पद्मा रानी 291

अल्पसंख्यक-विमर्श

विभाजन की त्रासदी और अल्पसंख्यक वर्ग ('ज़िंदा मुहावरे' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)/ चंचल कौशिक 299

दर्शन

सामाजिक जीवन में दर्शन की महत्ता / भुमिका मनसुख सोलंकी 307

समसामयिक-विमर्श

कृषि तकनीकी परिवर्तन का अर्थ, महत्व एवं उपयोगिता का एक अध्ययन / पूनम यादव, डॉ. सलिक सिंह 313

साहित्यिक-विमर्श

सन्त काव्यान्दोलन का उदय और आवश्यकता / डॉ. शीला आर्या 325

कश्मीर में संत परम्परा : एक विवेचन / प्रो. रूबी जुत्शी 345

हिंदी कहानियों में मानसिक दिव्यांग चेतना का अन्वेषण / वैशाली सिंघल 357

विकलांग विमर्श की हिन्दी कहानियाँ और गुलकी बन्नो / किसान गिरजाशंकर कुशवाहा, दीपक नामदेव 365

निलज वनिता का सांस्कृतिक भौतिकवाद / अमर सिंह 373

यथार्थ की भोथरी जमीन और तेजेन्द्र शर्मा की कहानियाँ / डॉ . अंजु 391

मेटाफिक्शन और उदयप्रकाश की कहानियाँ / डॉ. मीनू गेरा 402

हरिशंकर परसाई की कहानियों के जानवर पात्र / चन्द्रशेखर कुशवाहा 410

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियों में मानवतावादी चेतना / डॉ. पुरुषोत्तम पाटील 422

समकालीन हिंदी कविता में वर्तमान गीत-ग़ज़ल की अहमियत / डॉ॰ सोमाभाई पटेल 428

हरिशंकर परसाई का व्यंग्य साहित्य / एम एस सरस्वती दुबे 444

मजदूरों की 'तालाबंदी' / मनोजकुमार सुभाष शर्मा 457

बंजारा स्त्री अलंकार / डॉ. कुशावती आमनर 473

पूस की रात : स्त्री किसान की कथा / डॉ. उमा मीणा 481
'डार्क हॉर्स' : सिविल सर्विस की एक अनकही दास्तान.. / डॉ. प्रियंका 493
उदय प्रकाश की कहानियों में उत्तर-आधुनिकतावाद / कोमल कुमारी 502
संस्कृति एवं साहित्य / डॉ. सजीथा, डॉ. रेखा आर. एस. 509
ग्रामीण संस्कृति के आईने में विवेकी राय की कहानियाँ / हर्ष सिंह 515

धर्म एवं संस्कृति
भारतीय समाज के जीवन में श्रीराम / प्रियंका सौरभ 526

साहित्यिक रचनाएँ
कविता
सैयद दाऊद रिज़वी 533

कहानी
धार्मिकता की शिकार / रामेश्वर महादेव वाढेकर 535

लघुकथा
पीपल की पुकार / विकास बिश्नोई 545

पुस्तक समीक्षा
कविता संग्रह 'तुम तब आना- राकेश कबीर / समीक्षक: विरेश 'श्रीराजे' 546

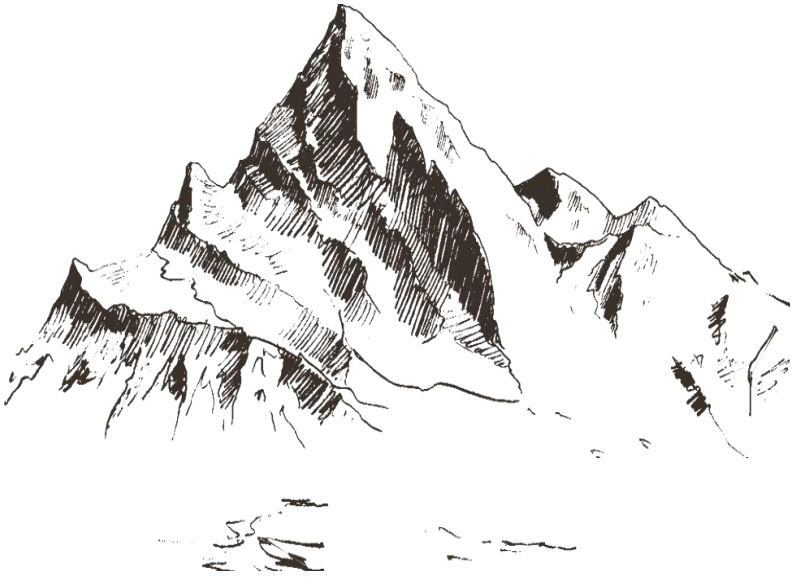

Analyzing the Deeper Strands of Indian Modernism and Art: A Study of Contextual Modernism and Modern Indian Theatre

Suchitra Singh
Independent Researcher
University of Delhi
suchitrasingh1995@gmail.com
Phone No. 8130950201

Abstract

Modernism as Habermas notes in his Essay 'Modernity- An Incomplete Project' in association with its etymological roots in Latin with term "Moderns" was used to establish a new Europe (Christian) away from its "Roman, Pagan Past". At the beginning of twentieth century, it emerged to be a literary and art movement dissociating from the obsolete past of realism and central position of Enlightenment in European culture. Modernism in art and literature are rooted in the vision of Europe in the wake of two World Wars and sees art to be an autonomous entity having its definition and identity contained in its form, colors and fragmentations and the boundaries of frame. The advent of various art movements such as Dadaism, Surrealism, Expressionism, Cubism etc. were established on the universal autonomous character of art and its self-sufficing characteristics.

In the wake of nationalistic reformulation and modernization of Indian society, the artists (Sculptures, painters, Poets) and writers took upon themselves to imitate the West. India being in its nascent stage of reconstruction could not possibly dissociate itself from its cultural, religious, socio-economical contexts. During the times when internationalization of art and modernity took place, few artists in India emerged who created an efficient mixture of regional complexity, cultural ambiguity and socio-economic challenges faced by Indian society. These artists are namely Abanindranath Tagore, Binod Behari Mukherjee, Ramkinker Baij and Nandlal Bose; all the artists are coming from

the Santiniketan and established a new movement called "Contextual Modernity" which also became the precursor for modern Indian Theatre and Progressive Movements in Literature. The aim of this paper is to locate the idea and treatment of modernity in India and its complex, argumentative dialogue with the European Modernism which was based on the ideas of loss, fragmentations and lamentation in art.

Keywords: *Modernist, Art, Contextual, Modernism*

Research Article

What is Modern? Any change taking place whether in culture, society, technology, vision/perspective is considered to be modern in its own historical context which showcase a point of departure from the prior practices and engagements. It is the characteristic quality, the prima donna of the movement called 'Modernism' and signifies the disjunction in the art and literature against the earlier practiced structure and aesthetics of human life and its representations. . Virginia Woolf marks December, 1910 as the year which brought the change in human character and this change has been arbitrary in its nature making it difficult to situate the moment of rupture in European culture. The movement has been significantly indulged in exploring individual self; its 'uncertainty and confusion' and Rudolph Eucken does not limits this confusion and exploratory quest in literature but also charts out its expression in the arts and other social fields in his study Main Currents of Modern Thought: A Study of Spiritual and Intellectual movements of present day (1912). These changes are apparently located within a period of sixty years ranging from 1880 to 1940 and positioning 'Modernism' herein; these years encompass the nature of shift by the advent of Technology, Wars and Mechanization, its impact into the innermost lives and questions of self, showcasing a sense of loss, a fragmentation into the conscious and subconscious happenings. Train and Big Ben, the larger-than-life matrices of time, consciousness, social relationships and prior held ideas of concrete reality have been explored by Virginia Woolf in her notable works like Mrs. Dalloway, Waves etc. Kafka notes down

the modern technology as a microcosm of fragmented self and alienated modernity very succinctly in his text The Passenger and his protagonist muses:

I am standing on the platform of the tram and am entirely uncertain as to my place in this world, this town, in my family. Not even approximately could I state what claims I might justifiably advance in any direction. [...] Not that anyone asks me to, but that is immaterial (27). (Taken from Murray, Alex and Tew Philip. The Modernism Handbook. 2009).

The modernism's only community of belonging is that of ambivalence, dislocation and the enquiry of older materials with new insights of subversion, violence and loss replicating the impacts of World War1 and its looming shadows. The life during the age of 'modernism' is mechanized, rootless and losing itself into an abyss of Freudian 'Thanatos'; death appeared not to be of older and arrival of the new one rather it brought forth the fate and nature of human's constant, inherent move towards disintegration of the self. And this disintegration of individual self, the concreteness, faith, loss of certainty and a linear progression towards the future has been often lamented and mourned upon by writers such as Eliot, Woolf, W.B Yeats, Ezra Pound, Faulkner, Hemingway, Fitzgerald etc. Myriad of writers have tended the themes of this loss, melancholy in various ways and primary space of modernity that is of city and its lives in the texts like Ulysses, Dubliners, Howard's End, The Great Gatsby, J. Alfred Prufrock, The Waste Land etc.

City, Modernity, Aesthetics, Art and Artist have been in close and intricate relation and important participants in the formulation of the dramatic rupture and movement of Modernism. Modernism is just not limited to the effects of War, impacts of technological advancement and mechanized lives and continuously interrogating selves but also an aesthetic, novel movement of moving away, discarding the earlier held beliefs,

ideals, forms, structure and other forms of control while asserting self - determination in creating new meanings. The modernist aesthetics of experimenting newer forms, the failure of language and coherence, the ordered meanings of color, shapes and images losing their certainty and permanence of effects over the mind and sensibility of spectator, listener and art lover had moved beyond the literary texts and were also reflected through the various Art Movements (Cubism, Dadaism, Post-Impressionism, Fauvism etc.) and painters like Picasso, Filippo Tomas Marinetti, Matisse, Van Gogh, Gauguin etc. The paintings coming from everyday modern lives, stills and abstract emotions as opposed to the mythical, religious paintings and sculptors were the taste curated by the modernist painters. De-contextualization, uprooting the history and rejecting earlier values associated with usage of colors and their meanings, an abstract aesthetic was associated in the modernist paintings with an added emphasis over the techniques, materials, processes and political messages or say intent were the inherent aspects of modern paintings. The paintings coming from everyday modern lives, stills and abstract emotions as opposed to the mythical, religious paintings and sculptors were the taste curated by the modernist painters. For example Paul Gauguin's Harvest: Le Pouldu (1890) in which he used simplified colors and definitive forms moving beyond the direct perceptive experiences of village life.

Harvest: Le Pouldu (1890); Paul Gauguin.

Paul Cezzane's Pyramid of Skulls (1901) Iis an oil painting which has inspired multitudes of other modern painters such as Picasso, Andy Warhol etc. This painting is painted in pale light and colours against the dark background holds the subjective expression of the painter in the last decade of his life. Historian Francois Cachin states that "these ebony visages(are) all but assault the viewer, displaying an assertiveness very much at odds with the usual reserve of domestic still-life tableaux."

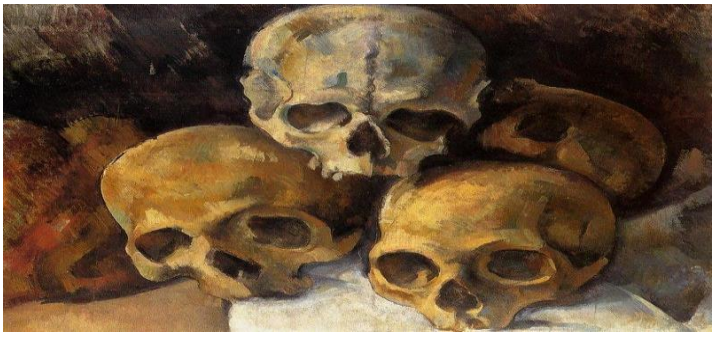

Pyramid of Skulls (1901); Paul Cezzane

Another Painting of Cezzane is The Bathers (1898-1905). This painting is monumental in its influence over the future modernist artists to break away from traditional perceptions, subject of Art and the interpretations of paintings.

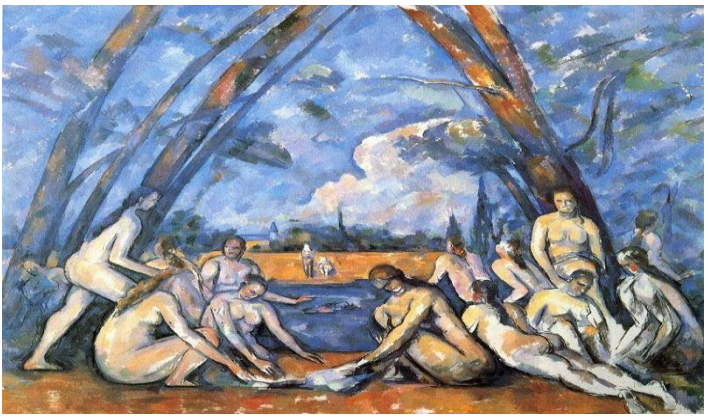

The Bathers (1898-1905); Paul Cezzane

Amongst the most celebrated painters of Modernism is Pablo Picasso who has worked in almost all the genres of Modernist Art movements and his career is divided into periods such as Blue Period (1901-1904), Rose period (1904-1906), African Art and Primitivism (1907- 1909), Analytic Cubism (1909-1912), Synthetic Cubism (1912-1919) and Neoclassicism and Surrealism (1919-1929). During his African Art Primitivism Period he has been highly influenced by the art of African Masques, Iberian Sculpture, Art of ancient Egypt and Iberian schematic style and have been extensively used. Few examples of his African Art influenced period are Les Demoiselles d'Avignon (The Young Ladies of Avignon), Three Women, Head of a sleeping Women.

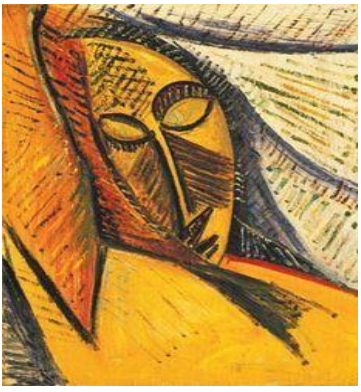

Les Demoiselles d'Avignon and Head of A Sleeping Woman (1907-1909);

Picasso Art being non-literary form of perceiving reality and interpreting society, life, culture has passed through three stages in order to establish its aesthetic discourse and as a field of study relegated to few images, objects, practices of expression. Pithamber R. Polsani states in his essay Shadows without Bodies: How was Modernism in Indian Art? That art and the aesthetics

of Art has passed three stages which are De-Contextualisation of the objects and images, interpretation and devising, situating the interpretation as the master narrative of the devised interpretive technique and the last but not least the idea of the autonomy of Art. De- Contextualization of Art meant removing the designated art objects from their tangible spaces historical, cultural and semantic locations and associations. For example, Artistic objects such as paintings and sculptures of warriors, kings, gods, mythologies had been removed from the Palaces, Mansions, Churches and replaced into the Halls of Art Galleries and brought the objects of private interpretation and meanings into the public avenue exposing it to the multitude of visions and interpretations. As Polsani explains the de-contextualization and interpretation of the designated art objects and its treatment: It's not the context and conditions of its creation and existence that accord the meaning to the work, but the meaning that was already written into the forms and colors traced on the surface of the canvas, or shaped from a block of stone. Purposeful objects were turned into purposeless art. (Ibid).

The autonomous character accredited to the object of Art is the most significant stage and in modernist times it has proven to be non-negotiable aspect. Autonomy of an Art object is important as the modernist impulse is of self - definition, interrogation, exclusiveness, that is of not to be controlled by other perception or impulses rather it emerges out of the subjective impression and as subjective expression to be viewed by the public to take away subjective interpretations of the canvas and images, colors, form and structures. Modernism has always been treated as a Western Movement of redefinitions and constant move towards the rejection of older believes through various methods and techniques employed to older subjects. Art historians in the modernist times have come across the plethora of artistic motivations and influences borrowed from the colonized nations and Middle Eastern civilizations by the artists of West; has been

infused with subjective styles and presented them to the World as new.

Eurocentric Modernism established the universal character of Art, its standards, parameters as literary canon has also been a Eurocentric construction and under whose spectrum the productions of civilizations at the periphery have been judged for their artistic, literary value and finesse. The universalization of the character of Art by the European Artistic impulse has brought all the modes of expression whether "sculpture, painting, illustration, installation, Greek, Roman, Italian, Persian, Egyptian, Indian, Western, non-western, are not simply names of different arts, but "a system of presentation of art's visibility" (Rancière Aesthetics and Its Discontents 23.)" (Ibid). This "system of presentation of Art's visibility" once established by any particular Centre of power annihilates any discussion or debate over the inferiority/superiority, plausibility of reason associated for the inclusion/exclusion of any art object. Alongside the Universalization of the Art and its aesthetics, Modernist artists have borrowed ample techniques and motivations as mentioned earlier but a new thing happened was the assignment of colonized nation's art object as primitive, barbaric, not yet developed to be rendered as Art on the par with the artistic standards of Western Civilization.

Modernism being the Western character of moving forwards, beyond the past, held cultural beliefs and structures has been a complex phenomenon for the non-western countries. Hence, becoming modern or adopting modernity is inadvertently comprised of an imitation of West, its culture, beliefs, expressions, its sense of loss, fragmentation, subjective identities, exclusive nature by following similar path of socio-cultural, political and economic mutation. Thus, the Colonized Nations and Non-European countries being in contact with European Modernism have entered peripheral state of modernity wherein

they have curated newer versions of modernity which is regional modernity or alternative modernity and this new state of modernity varies as per the socio cultural, political and economic atmosphere of particular society. The regional modernity adopted by such countries have been recognized namely as Indian Modernism, African Modernism, Mexican Modernism etc. But interestingly, Indian Modernist Art has not copied the Western Modernist expression in its entirety as it has been going through Nationalist fervour of Independence, struggling to create a balanced socio- economic structure and maintain cultural harmony in such a heterogeneous country. Though, it borrowed the Western structures in various fields such as administration, education, most importantly the constitution, architecture. But, the artistic field of Painting and Sculpture fused the internal regional artistic impulses, with social and cultural realities without breaking away from the traditional expressions while a simultaneous usage of innovative techniques, strokes, geometric angles, experiments in canvas etc. 'Contextual Modernism' is the art movement in the early twentieth century, which fused the modernist art with the cultural, traditional and social instead of the European fragmentation of newer techniques and sensibilities from the past or the mechanized production of a sense of loss and ambiguity. Rather It encapsulated the newer meanings and the impulses of continuity with the contemporaneous times of Independence struggle, turbulent economic state while also not following the concrete route of the nationalism and reverence towards the traditional paintings of mythical and religious character.

Contextual Modernism is the term given by Historian and critic R. Siva Kumar, he curated an Art exhibition named Santiniketan: The Making of a Contextual Modernism. This Exhibition was held at National Gallery of Modern Art in year 1997. The key figures of Contextual Modernism were Rabindranath Tagore, Ramkinker Baij, Nandlal Bose and Benode Behari Mukherji. All the artists have been part of Santiniketan school of Arts and

active during 1930s ,40s and 50s according to Kumar "The Santiniketan artists were one of the first who consciously challenged this idea of modernism by opting out of both internationalist modernism and historicist indigenousness and tried to create a context sensitive modernism."1 The Modernist art and its internationalism did not lie in the universal experiences of artist mirrored by other cultures and artists rather it was a representational political formulation by the Western artists who were grappling with the crises of industrialization, existential threats of cold war and disillusionment after two world wars. They located the solution for the problems of pictorial representation in the space, form and composition in the arts and techniques of less known art forms and techniques in their circle borrowed from non-western and colonized countries. For example, "the solution that Picasso found, for his deeply troubling questions, in African artefacts—dislocated and decontextualized from their place and origin to the space of Muséed' Ethnographie du Trocadéro—reinforces the fact that neither art nor representation were problems for the Africans who made those masks, images and statues".

The artist of 'Contextual Modernism' have created a rich oeuvre of sculptors and painting having negotiated the age of nationalism, modernist techniques and forms such as cubism, post-impressionism while rejecting the oil paintings, moving towards adoption of wash colours and subject located within the cultural, ethnographic milieu of changing social situations and work life aided with the cultural historicity. Satyajit Chaudhary notes down that a close scrutiny of the works done in this period suggests an Indian modernism in art and experiments in relation to that of western modernist art. Notably Ramkinker's work explore 'the world of a rustic man in the most modern language" through his sculptors such as 'Mill Call'(1956) and 'Santhal Family'(1938) and the nude painting of Radha Rani (1980s); he

is the man who brought the perfect semblance called ‘Primitivist Modernism’ in Indian sphere.

Ramkinkar Baij, Mill Call and Santha Family c. 1938, sand and pebble cast sculpture, Kala Bhavan, Santiniketan. (Partha Mitter. The Triumph of Modernism)

Ramkinkar Baij, Radha Rani, 1980s?, pen and ink on paper.(Ibid.)

The work technique and artistic insight of Ramkinker marks the modernist ethos and methods employed in his range of work and

his fascination with the Santhals and the representation of them in the natural, brusque, coarse which was suitable for their 'Heroic lives' and presence. He used unconventional methods and materials such as rubble, cement, concrete at the cost of harming his own hands while capturing the ruggedness of their lives and surrounding in all its entirety. As recorded by Partha Mitter, he has treated this roughness not as a mere technique of his work but rather an essential part of his expression. In both the sculpture Santhal Family and Mill Call artist has incorporated his own mediations regarding the subject of art and the contemporary modern ethos of continuity. The textures of movement showcased by the flares of saree, fast gaiety of the two women, one looking forwards and one looking backward posing the relationship between future and preserving the past through a last glance. It also implicate the duality of movement and counter movement, the case of the desires and motivations of Santhal Community and other subalterns. Santosh S. puts light upon this correlative representation of a society carrying its cultural ethos alongside the tide of modernism and re-creative journey by saying "This indeterminate space of movement and counter-movement is central to Ramkinker's composition." The whole sculpture is a matrix of the relation between tradition and modernity, movement and counter movement, the impossible location of 'modernity' to reach which has been fabricated by the elite class, upper class for the santhals and tribes. Contrarily, Mitter has celebrated the primitivist modernism infused in the works of Ramkinker by alluding towards his work as the semblance of modern techniques used to capture the primitive lives of tribe in their absolute innocence and says that Ramkinker's art focusing and inspired from the Santhals has positioned their myths of being Happy, Innocent and Sensuous at its pinnacle. But, it is crucial to observe his work with a vision of locating his representational and satirical intent against the imperialist versions of International Modernism, a homogenizing wave of nationalism which drew Santhals into the revolutions,

and upper caste and Hinduist discourse of cultural assimilation of further marginalized community by subsiding their subjectivity.

Thus, the politicization, engagement with the representational politics, activation through the art against the contemporaneous socio-cultural and political current infused with the traditional and cultural subjects of art as well as the primitivist approach inhabited in the nature, surrounding and atmosphere were the constituent aspects of the 'Contextual Modernism' of Santiniketan. The other stalwart of this movement is Binode Bihari Mukherjee and Nand Lal Bose have been called torch bearers of socio-political art in India by S. K Panikkar for their criticism of the idealist vision of Indian artists and culture. Both the artists have been engaged with the Mural painting from different ends. Nand Lal Bose has consistently maintained two dimensionality in his murals which could not be achieved by early orientalist as noted by Mitter. While, Mukherjee drew techniques and innovations from diverse traditions such as Japanese scrolls and created a 'Multiple focus' approach and a calligraphic style which helped him in painting the human figures in minute details in the murals of saint in humble, rustic social cultural environment of weavers and singers. Geeta Kapur crisply puts the socialist activist intent of Mukherjee "In his mural based on the lives of saints (who were peasants and artisans) Mukherjee works out a rhythmic structure to comprehend the dynamic Indian life . . . between community and dissent. A radical consciousness of traditional India is visualized.

(Taken from Mitter, Partha. The Triumph of Modernism). His painting subjects have also been moved away from the features used by the earlier painters like Raja Ravi Verma and other contemporaries of Bengal school. His Mural paintings were imbibing subaltern characters of elongated faces with thick lips and big noses instead of round, delicate oval faced, nubile faces and reserved expressions of men and women

Benodebehari Mukhopadhyaya, Saints, 1947, fresco buono, Hindi Bhavan, south central portion. (Ibid.).

Beyond the Artists of 'Contextual Modernist Movement' few modernist painters who have created a rich legacy after before and after 1950s are Amrita Shergil, F.N souza, M.F Hussain, Jamini Roy who have taken their subjective understanding and suggestions from Modernist Art in Europe and created their own range of work by experimenting in Indian themes and challenges. More or less Indian artists have situated modern sensibilities from West into Indian socio-cultural paradigm while answering the political and cultural challenges of ever evolving India, its urban spaces and working class. In their endeavor of creating modernist Indian Art they have moved beyond the internationalization posed upon by hegemonic West and brought in the regional, primitive, cultural intricacies to challenge the same. Gita Kapur opines that if Modernism is seen to culminate in an international style, turning on an art for art's sake logic, then the terms of discussion in India are quite different.

She further suggests that India has a modernism without an avant-garde. In India there has been a double discourse of Nationalism and Modernism which is not positioned in opposition to each other rather, nationalism and creation of new

identity came to be a modernist logic with a twist of employing the past and drawing it through varied mediums and art forms.

One of the evolving art form which has a history of development over a period of thousand years and reaching its prime during 1960s and 70s is theatre. Indian Theatre has a significant legacy of rich theatre productions and playwritings which is called Modern Indian Theatre. Modern Indian Theatre is a mature offspring of Indian People's Theatre Association (IPTA) which was formed in 1943 and took recourse to folk theatre towards its end. Notable playwrights of Modern Indian Theatre were Habib Tanvir previous member of IPTA , Badal Sircar, Girish Karnad, Mohan Rakesh and Vijay Tendulkar. All these playwrights have portrayed the changing paradigms of Indian society, modernity in Indian milieu, complexities of Urban lives through plays like Charandas Chor, Adhe Adhurey, Pagala Ghoda, Vultures, Hayavadna, Shantata! Court Chalu Ahe etc. Modern Indian Playwrights have experimented very skilfully with the Modernist approach, Brechtian Theatre without losing the sight of Indian folk Theatre, cultural and political sphere. 1960s and 70s were the years when India was going through extensive urbanization and modernization in the households, public spaces, private lives etc. While experiencing the disillusionment, psychological, emotional, economic and social crises of a highly evolving space the individuals were grappling within themselves to achieve unification of mind and emotions and come to terms with new realities of mechanizing India having box like houses instead of the homes as succinctly projected in Adhey Adhurey by Mohan Rakesh, Hayavadna by Girish Karnad and Vultures by Vijay Tendulkar. The theatre of this age saw an influence of Psychoanalysis, Symbolism, Marxism and Surrealism on the themes taken by dramatist in different Indian languages. Though the major stake holders of Modern Indian Theatre were coming from different languages such as Karnad was primarily a dramatist in Kannad, Vijay Tendulkar a Marathi Playwright and Mohan Rakesh the first Modern Hindi Novelist and playwright,

there was an inherent agreement amongst the theatre fraternity to bring theatre to the masses in the Hindi and the particular language of the particular region. Hence, even if we read plays in English they were produced in Hindi or the language of the cultural region, which brings us in agreement with Vasudha Dalmia that hindi of theatre was not the 'Sanskritized', 'Elite' Hindi, the imposed one but the "heteroglot, hybrid language which has absorbed the semantic resources of many traditions". The challenge to the Modernist Playwrights have been manifold as they were dealing with a post independent Indian Society in contact with Western Modernism, the need of tracing its past and mythologies in modern idioms and creation of balance between Desi and Margi has been few of them. Thus, many mythical play and themes have been explored in modern times through various structural and formalistic innovations in scripting, stage and design as well as well as regional form of play that is Nautanki has also been experimented with its form and content by Habib Tanvir who had successfully created a parallel between Brechtian Theatre, local art forms, musicality and colloquial languages in order to make theatre a public asset.

Indian Modern Theatre is heavily indebted to Ebrahim Alkazi as he has been an audience and participant of Pre-Independence Parsi Theatre, Productions of Uttpal Dutt, Bombay Progressive Artist's Group and eventually the director of National School of Drama in Delhi during 1962-1977. Being trained in Hindi, English, Arabic he had a vision of Europen Theatre, Hindi audience and the paradoxical needs of Indian audiences. He can be very justifiably understood as the pioneer of modernist realist idiom into the Hindi Theatre which outlined a prolific stage for the generation of Tendulkar, Rakesh, Dharamvir Bharati and such. He brought Mohan Rakesh to the canon of Modern Indian drama by staging his play Ashadh ka Ek Din on an open air stage in year 1962. Mohan Rakesh belonging to Hindi pantheon of story and plays had negotiated the literary theoretical paradigms of realism, psychoanalysis, conflict and struggle within the

character and around while staying away from dealing with classical Indian and Aesthetic Theory while Contempo arising the past. Dalmia poses light upon the craft of Rakesh by saying that "though his plays were set in the past, he endeavoured to endow these well-known figures with flesh and blood and to bring to life for viewers today". He pitted the inability of modern audience to come with the terms of the failure, disappointment, reality and conflicts in the mythical characters and stalwarts of Indian aesthetics who had created a practice of elevating the generic symbols and themes to superhuman levels.

Ashadh ka Ek Din is plotted around Kalidasa the Sanskrit dramatist-poet and his beloved Mallika who has been left in the village in order to his posting as Royal poet in a faraway kingdom. In the end, upon his arrival back to Mallika, the interplay of time and its demand against her poverty, idealism, isolation, desires and conflict is the major theme of realist take on a literary past. There is a journey from Romantic idea of individuation to the realist one that is of relative dependence of both Mallika and Kalidasa who have in earlier stage attempted to defy the social and moral code in favour of the nurture of vyaktitva (personality) and moved nearer to nature. Mallika in her idealist endeavour to develop and achieve a completion of personality, accords Kalidasa's position to his talent while sacrificing her own happiness and needs. While seeking an individuality of choices and growth she has compromised herself and finds herself also empty when years after Kalidasa returns divested of his creativity and inspiration. Kalidasa saw the conflict of schism in his desire and personality with the time instead of Mallika's but he is mistaken by his lack of understanding towards Mallika's desires and conflicts of personality and compromises. Though towards the end he reaches a realisation of this lack and conflict: "So that I would be able to convince you of the conflict within me…. I did not stop to think that conflict is restricted to one person alone".

Mohan's earlier plays Ashadh ka Ek Din and Lahron ke Rajhans has been en route towards his most mature play Adhe-Adhure for encapsulating the Modernist idiom incompleteness, fragmentation and an existential crisis of the struggle. The theme of mutual alienation in the characters in Adhe Adhurey runs constant throughout the plot whether it is of Savitri and her Husband or the conflict of identity, peace and struggle for job in her two children. Savitri herself clarifies this crisis in her own words to the fourth man: "There is a human being. He sets up a house. Why does he set up house? To fulfil a need. What sort of need? To a fill a something - call it an incompleteness - to fill that. In this way, he has to be whole for himself, within himself". (Rakesh1969:100. Taken From Dalmia, Vasudha. Neither Half Nor Whole. Poetics. Plays and Performances).

Along with the individual crises of personality human needs and economic struggle of evolving society of 60s and 70s Rakesh visualises the intricacies of modern life and subjectivities through his stage scripting for example one single actor for all the five male characters who were not part of the family but become medium to present voices for Savitri, the minimal furniture and lack of uniformity in the expression and chaotic house etc. Rakesh employs great deal of personal understanding towards the urban environment, mental struggle, and the inherent gentleness of human nature without losing the hope and thus he saw urban reality as providing the prime locus of his work.

The conflict of the forces [influencing life] can be experienced anywhere--- though much more sharply in urban life, since it is towns which are the chief centres of conflict, and of these again, more so the bigger cities. If our works do not reflect the accurate pulsation of this conflict, they do not represent reality. (Mohan Rakesh. 1975:35. Ibid).

Mohan Rakesh paid close attention to his struggle to portray the inability of man's emotional and metaphysical isolation, the

absurdist stance and Sysiphian cycle of an unreachable wholeness and emptiness and his inability to express. In doing so he ended up experimenting with the Dramatic form itself and can be found in posthumous publication as he posits:

- Character having no definite contours, its complexity of emotion and thoughts can only be presented through fragmentation of language. “Discovering the language of being and finding dramatic arrangements for it. Can the image of a fragmented society be cast through a ‘whole’ language?”
- The absurdities that are inherent in life, reality and fragmented incompetence of language in the struggle of being understood are the ‘seed plays’ of life. (Chap 5). Ibid.
- Within the conventional framework of theatre, there is an impossibility of coherent dialogue and attempt of conversation as mutual perception itself is fragmented. And hence “ play may bid farewell to literature” as theatre direction uses words through a medium of sound thrown at audience and inhibits the multidirectional possibilities of the coherent incoherences and meaningful meaninglessness of the fragment the human reality is.

This farewell to literature may put play into the command of theatricality in Rakesh’s sense putting all the fragmentations in one single place for the audience as has been noted in Beckett’s plays like Waiting for Godot, and Endgame. Though Rakesh work sphere of Avant Garde experiments revolves around the private subjectivity quite intensely. In conclusion to Rakesh’s work one can see a strict circle of urban chaotic reality in a sembelance with internal chaos and quest for understanding and a paradoxical dialogue between the public and private selves.

Another tangent of Indian modernist theatre is the theatre of masses which took upon modern experimentation of form, Indian culture, regional culture of art and expression with lives of Bazar

and folks while politicising the theatre as well as the psyche. This experimentation within the modernist theatre demanded a turn to 'folk' theatrical art and mythologies which have been used to find out a way slightly different from the version of Western Modernist Idiom which was based on a break away from traditional technique of drama. In the wake of two world wars and ongoing cold war Absurd Theatre of Beckett and Marxist-Socialist theatre of Brecht came into picture. Though both the theatre techniques were varied in their nature, approach and concerns have been immensely influential to Indian Theatre. Theatre of Sircar, Mohan Rakesh fall into the category of Beckett while the theatre style of Tendulkar, Habib Tanvir and Karnad fell into category of Brecht who brought the folk art and mythical narratives into close association with the modernist art and closer to the folk art. There have been various adaptations and productions made of Brecht's Good Woman of Szechwan, Mother Courage and her Children, Three Penny Opera and Caucasian Chalk Circle by Ebrahim Alkazi, Tanvir, M.K Raina and others. The best known example of perfect semblance of classical and modern are Dharamvir Bharati's Andhayug, Tendulkar's Ghasiram Kotwal and Karnad's Hayavadnam while Tanvir's production of Shudraka's Mrichhkattikam as The Little Clay Cart, Charandas Chor, Agra Bazaar and Moteram ka Satyagrah.

Habib Tanvir developed his own counter theatre use of traditional form and Chhatisgarhi Folk art, a punctuation by witty comments, folk songs and attraction of asceticism while delivering the complexities of subjective individuals. The Little Clay Cart (1958) was produced on the lines of Brechtian narrative interpretation carried out by folk artists from Chhatisgarh to play 'have not' characters of 'gambler' and 'thief'. His protagonist Sharvalika was a good for nothing rogue like Azdak in Caucasian Chalk Circle who was schemingly agitated for an improved world. He adapted The Good Woman of Schezuan in 1978 in

Chhatisgarh and found its theme to be specifically applicable to Indian situation. And he says:

"One of the themes of the play is poverty and poverty is a theme they know very well.[…] The three gods– we know gods very well, they are also human beings, they have all the imperfection of human beings , their weaknesses. There is singing and dancing and the troupe are natural singers and dancers".

There was no deliberate attempt to create 'alienation' effect rather it was something experienced by the villagers and actors. In Habib's words, players played it there way and there cannot be an imitation of Brecht's model. For him "Brecht looked at Orient as one of his inspirers for the kind of theatre which he used– The narrator, song and dance".

In his views, our Folk theatre has a lot in common with our classical Theatre. He attempted to blend Brechtian theatre with the Sanskrit play which was later also taken upon by revivalists in 1970s. But he did not take it as just a formulaic attempt. Instead, he saw it as a political attempt which asked for reflection and social choices. (Dalmia). He stayed away from the revivalists' trend of seeing Folk as an outcome of Classical while suggesting they have always interacted with each other as he stated clearly in 1970s:

"They do not realize that the folk tradition are not just progenitors of the ultimate classical structure but also the carriers of classical traditions when the latter came to a dead end in their own habitat."

The key aspect of Tanvir is not in producing a mixture of classical and folk rather it lies in his non-attempt to uproot his actors, their referential awareness and interaction with the reality functioning around them.

Conclusively, modern art in India has taken its own route and interferences have been made in the Internationalist, Universal idiom of Western Modernism. It has nonetheless came into contact with the Western modernism in both Painting and Theatre but hasn't strictly followed the voices of lament and disjunction. Rather it has created its own narrative history which has been deeply rooted in the Nationalist-Modernist experience, Colonial and Post- colonial struggle of self-definition and socio-economic turbulences of ever evolving and every day modernizing India.

Works Cited

1. Bhatia, Nandi. Modern Indian Theatre: A Reader. OUP.2009.
2. Dalmia, Vasudha. Poetics, Plays and Performances; The Politics of Modern Indian Theatre. OUP.
3. 2006.
4. Murray, Alex and Philip Tew. The Modernism Handbook. Continuum. 2009.
5. Mitter, Partha. The Triumph of Modernism: India's Artists and Avant Garde. 1922-1947. Reaktion Books Ltd. 2007.
6. Nicholls, Peter. Modernisms. Palgrave Macmillan. 1995.
7. Parimoo, Ratan and Indramohan Sharma. Creative Arts Modern India: Essays in Comparative Criticism. Books & Books. Vol 1. 1995.
8. Parimoo, Ratan and Indramohan Sharma. Creative Arts Modern India: Essays in Comparative Criticism. Books & Books. Vol 2. 1995.
9. Polsani, R. Pithamber. Shadows Without Bodies: How was Modernism in Indian Art. Indian Cultural
10. Forum. 21 Nov, 2017, //indianculturalforum.in/2017/11/21/shadows-without-bodies-how-
11. was-modernism-in-indian-art/. 30, Aug. 2019
12. Santhosh, S. What was Modernism (in Indian Art). Social Scientist, Vol.40, No.5/6(May-June 2012)

13. pp. 59-75). JSTOR,
14. www.jstor.org/stable/41633810?seq=1#metadata_info_tab_contents, 30,Aug. 2019
15. '10 Most Famous Painting by Paul Cezzane." www.learnodo-newtonic.com/paul-cezanne-famous
16. paintings. 20, Sep.2019.
17. "Picasso African Influence: The Gle Masks." Citaliarestauro.com, Entidade Formadora Ertificada.
18. //citaliarestauro.com/en/picasso-african-influence/ 20, Sep.2019.
19. "Modernism". Tate. //www.tate.org.uk/art/art-terms/m/modernism. 20, Sep.2019.
20. "Head of a sleeping Woman (Study for Nude with drapery)", The Athenaeum. https://www.the-
21. athenaeum.org/art/detail.php?ID=221044, 20,Sep.2019.
22. "Pyramid of Skulls, Painting by Paul Cezzane (1901), Paul Cezzane: Painting, Biography and Quotes. https://www.paulcezanne.org/pyramid-of-skulls.jsp. 20, Sep. 2019.

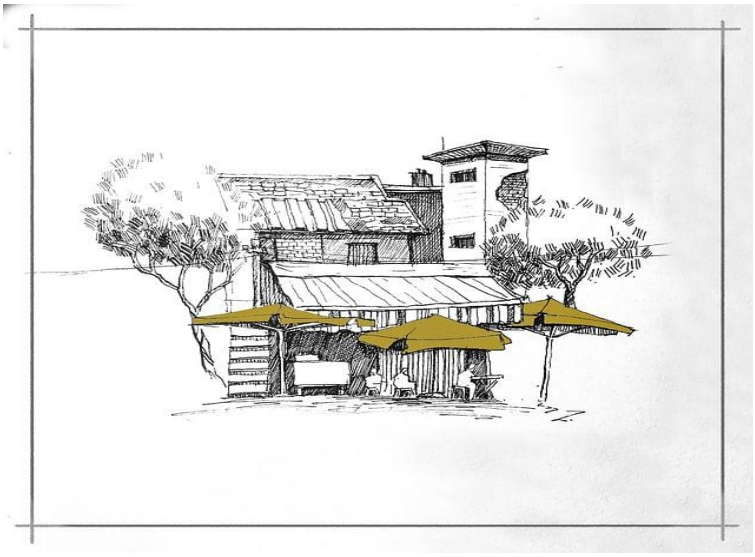

काव्य नाटक: मंच प्रस्तुति एवं समस्याएँ

आशा
पीएच॰डी॰ शोधार्थी
म॰गां॰अ॰हीं॰वि॰वि॰ वर्धा, महाराष्ट्र
ईमेल: ashakardam.kardam@gmail.com

सारांश

इसके नामकारण को लेकर विद्वान एकमत नहीं हैं। गीति नाट्य, काव्य नाट्य, पद्य नाट्य और भाव नाट्य आदि यह सभी अपनी रचना प्रक्रिया में एक ही है लेकिन अलग-अलग शब्दों का प्रयोग भ्रम पैदा करता हैं। 'काव्य नाटक' एक ऐसी विधा है जिसमें 'काव्य' और 'नाटक' दोनों के तत्वों का समन्वय हो। यह बाह्य संघर्षों की अपेक्षा अंत संघर्षों को प्रस्तुत करता हैं। 'काव्य' का तत्त्व उनकी आत्मा का निर्माण करता है तो 'नाटक' का तत्त्व, उसके बाह्य रूप को आकार प्रदान करता है। काव्य नाटक अन्य नामों को अपने में समाहित करता हुआ उसे विस्तार देता है। जिस कारण काव्य नाटक नाम ज्यादा उचित प्रतीत होता है। नामकरण से इतर उसकी मंच प्रस्तुति भी एक समस्या है। काव्य नाटक मंच पर कम ही प्रस्तुत किए गए है। कुछ काव्य नाटकों को छोड़ दिया जाए तो अधिकतर काव्य नाटकों की मंच प्रस्तुति बहुत सफल नहीं रही। उनकी प्रस्तुति में उनके संवाद, भाषा, दृश्य, अभिनय, वातावरण आदि समस्या बनते हैं।

बीज शब्द: *नाट्य, भाव, पद्य, काव्य, नाटक, मंच प्रस्तुति, समस्याएँ*

शोध आलेख

सृजन एक कला है और सम्पूर्ण साहित्य मानव जीवन की विशेष प्रस्तुति। साहित्यकार बाह्य भौतिक जगत में वस्तुओं, घटनाओं, स्थितियों या विचारों को जिस रूप में देखता व पाता हैं, वह साहित्य में साक्षात उसी रूप में अभिव्यक्त नहीं होती। साहित्यकार बाह्य अनुभव के साथ कल्पना का मिश्रण कर; उन्हें अपने अनुभवों के अनुरूप काट-छांट कर, अपनी रचना में प्रस्तुत करता है।

साहित्य में भावात्मक अर्थ का संबंध मानव के भाव व संवेदना इत्यादि से होता है। जिस कारण कोई रचना; जब रचनाकार द्वारा अभिव्यक्ति पाती है तो उस स्थिति में, वह सर्वप्रथम रचनाकार की अनुभूति का हिस्सा बनती है। उसके बाद अभिव्यक्त होती है।

नरनारायण राय के अनुसार, 'कोई भी रचना, रचना के क्षणों में मात्र अनुभूति हुआ करती है नाटक प्रयोग के लिए तैयार किए जाने वाले आलेख का प्रथम अनुभव और आलेखगत योजनाएं काव्यात्मक ही होती है। नाटक भी पहले काव्य ही होता है और तब काव्य का वह विशिष्ट प्रकार जिसमें दृश्यत्व की संभावना हो।'1 कोई रचना नाटक इसलिए होती है क्योंकि उसके कथानक में; जिन स्थितियों या घटनाओं का वर्णन मिलता हैं, उसमें दृश्य बनने की संभावना निहित होती है। उसकी इस दृश्य क्षमता की प्रस्तुति रंगमंच द्वारा संभव होती है।

किसी भी भाव, विचार और कल्पना को प्रस्तुत करने का वह तरीका जिसे हम शैली कहते है। यह सब किसी भी साहित्यिक रचना के मूल में होते है। अभिव्यक्ति की कई शैली उपलब्ध होने के कारण, इन मूल तत्त्वों के अतिरिक, प्रत्येक साहित्यिक विधा के अपने कुछ मूल तत्त्व भी होते हैं। जो उसके रूप निर्माण में सहायक होने के साथ-साथ, अन्य विधा से उसका अंतर करने में भी सहायक होते है।

यदि किसी कृति में अनुभूति की अभिव्यक्ति भाव, विचार, बिंब, प्रतीक, लय, तुक, छंद, संगीत और अलंकार आदि सभी तत्त्वों के साथ या किसी तत्त्व के अनुपस्थित होने पर, जब रचना की जाती है तो ऐसी रचना काव्य की श्रेणी में रखी जाती है।

इंद्रिय बोध के आधार पर काव्य की दो विधाएँ मानी गई है। 'दृश्य काव्य' और 'श्रव्य काव्य'। दृश्य-काव्य को ही नाटक कहते है। नाटक रंगमंच की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यह अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। नाटक,

दृश्य-श्रव्य माध्यम होने के कारण जनमानस को प्रभावित करने में अधिक सक्षम व सफल होता है। यह वह विधा है जिसकी सार्थकता दृश्य-रूप (प्रस्तुत) में है। यह बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि किसी नाट्य-रचना का सफल मंचन, उसके महत्त्व में वृद्धि ही करता है।

नाटक मानव की संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए एक बहुत ही सशक्त माध्यम है। नाटक के माध्यम से जहां संवेदनाओं को अभिव्यक्ति मिलती हैं वहीं रंगमंच, उन संवेदनाओं को प्रेक्षक तक पहुँचाने का एक सशक्त माध्यम बनता है। नाटक साहित्य की एक ऐसी विधा है जिसका परीक्षण स्थल रंगमंच है।

भारतीय साहित्य की सबसे प्राचीन विधा यदि कोई है तो वह है नाटक। नाटक की शुरुआत संस्कृत नाटकों से मानी जाती हैं। संस्कृत साहित्य में नाट्य रचना और रंगमंचीय प्रदर्शनों का एक लंबा इतिहास रहा हैं। भास, भवभूति और कालिदास आदि के नाटकों से यह परंपरा निरंतर प्रवाह मान हैं। यूनानी त्रासदी आधुनिक नाटकों का प्राचीनतम रूप हैं। नाटक के बारे में एक तरफ 'प्लेटो' और 'अरस्तू' जैसे पाश्चात्य विद्वानों के विचार मौजूद हैं, तो वही दूसरी ओर 'भरतमुनी' कृत प्राचीनतम ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' उपलब्ध होता है।

नाटक का उद्भव देव-पूजन के लिए आयोजित किए जाने वाले धार्मिक अनुष्ठानों से माना जाता है। ऋतु–परिवर्तन, धार्मिक अनुष्ठान, आदि के साथ नाटक का आदिम संबंध है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी नाटक का उद्भव वेदों से मानते हुए इस संदर्भ में, अपना मत कुछ इस तरह रखते है कि, 'यज्ञ-संवाद अभिनीत किए जाते थे। प्राचीन यज्ञ-संवाद में पद्य केवल उन स्थलों पर व्यवहृत होते थे जहाँ वक्ता का भावावेश तीव्र होता था। संस्कृत नाटकों में पात्र गद्य बोलते-बोलते जब भावावेश की स्थिति में आता है तब पद्य बोलने लगता है।'2

विभिन्न तरह के अनुष्ठानों के अवसर पर पुरोहित तथा याज्ञिक इनका वाचन या उच्चारण करते थे। संभवत: अलग-अलग पात्रों के वक्तव्यों का

उच्चारण अलग-अलग याज्ञिक करते थे। इस आधार पर इसमें अभिनय के शुरुआती रूप की कल्पना की जा सकती है।

नाटक में कथानक, पात्र, चरित्र-चित्रण, देशकल, वातावरण, संवाद, शैली, उद्देश्य, अभिनय आदि तत्त्वों के अतिरिक्त दर्शक भी जुड़ता है। जिस कारण नाटक अन्य कथा साहित्य उपन्यास और कहानी से अलग हो जाता है। जिसे हम कृष्ण सिंहल के मतानुसार कुछ इस तरह भी समझ सकते है। कि, 'नाटक जीवन का प्रतिनिधित्व (रिप्रेजेंटेशन) करता है और कथा साहित्य जीवन की आलोचना।'3

प्राचीन नाटक काव्य प्रधान ही थे। इनके रचनाकरों को कवि कहा गया। प्राचीन नाटकों के काव्य प्रधान होने के कारण, उनके लिए किसी अलग शब्द की आवश्यकता न थीं। काव्यमय होना उनका स्वभाव था। आधुनिक काल में जब नाटक पूरी तरह गद्य प्रधान हो गए तो ऐसी स्थिति में, कुछ रचनाकारों द्वारा नाटक में काव्य को पुन: प्रतिष्ठित करने के लिए जो प्रयास किए गए, काव्य नाटक शब्द उसी की देन है।

ऐसी रचनाएं, जिसका माध्यम पद्य और विधि नाटकीय हो, उन रचनाओं को क्या नाम दिया जाए? इस विषय में विद्वान एक मत नहीं है। अंग्रेजी में नाटक तत्त्व और काव्य तत्त्व के समन्वय से निर्मित कृतियों को 'लिरिकल ड्रामा' और 'ड्रैमेटिक लिरिक' के नाम से जाना जाता है। हिन्दी में ऐसी रचनाओं के लिए विद्वानों द्वारा अनेक शब्दों का प्रयोग किया गया हैं। ऐसी रचनाओं के लिए हिन्दी में काव्य नाटक, गीति नाट्य, भाव नाट्य, नाट्य काव्य आदि विविध नाम प्रयोग किए गए हैं।

गीति नाट्य के संबंध में हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार, "इसमें सारी कथा गीतों के माध्यम से प्रस्तुत की जाती हैं।"4

डॉ॰ नगेन्द्र ने गीति नाट्य के तत्त्व और उसके स्वरूप पर विचार रखते हुए अपनी पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी नाटक' में लिखा है कि, "गीति नाट्य रूपक का ही एक भेद है, जिसका प्राण तत्त्व है भावना अथवा मन का संघर्ष और माध्यम है कविता।"5

पद्य नाटक के लिए 'गीति नाट्य' शब्द की जगह 'भाव नाट्य' शब्द का भी बहुत प्रयोग किया जाता है। स्वयं भट्ट जी ने अपने 'राधा' नाट्य को "भाव नाट्य"6 कहा है। वहीं डॉ॰ नगेन्द्र उसकी को "गीति नाट्य"7 कहते है।

गीति नाट्य और भाव-नाट्य पर प्रकाश डालते हुए आचार्य विनयमोहन शर्मा के अनुसार, "गीति नाट्य में गीतात्मकता के अतिरिक्त नारी के बाहुल्य का गुण होना चाहिए, इसमें नायिका नारी एवं रस शृंगार होता है। रचना तंत्र की दृष्टि से यही भाव नाट्य कहलाता है।"8 इनके मतानुसार गीति नाट्य और भाव नाट्य दोनों एक ही हो जाते हैं।

'भाव नाट्य' शब्द के प्रयोग पर अगर विचार किया भी जाए तो यह शब्द; न तो रचना की शैली का बोध कराने में सक्षम है और न ही, रचना के काव्यात्मक स्वरूप की कोई स्पष्ट जानकारी देता है।

एक अन्य शब्द जो प्रयोग किया जाता है वह है 'पद्य नाट्य' जिसका समर्थन डॉ॰ सिद्धनाथ कुमार करते है। इसके साथ ही उनका मानना है कि इसके लिए 'काव्य नाटक' शब्द का प्रयोग भी किया जा सकता है।

एक ही विधा रूप के इतने सारे नाम न सिर्फ पाठकों के लिए, अपितु स्वयं साहित्यकारों के लिए भी समस्या खड़ी करते हैं। नामकरण की ऐसी समस्याओं के कारण ही, धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' को दृश्य काव्य, गीति नाट्य और लंबा नाटक कहा गया। यह स्थिति केवल एक रचना या रचनाकार की ही नहीं है। ठीक इसी तरह उदयशंकर भट्ट ने अपने 'अशोक वन-वंदिनी' को

पद्य नाटक, 'संत तुलसीदास' को पद्य रूपक तो वही अपनी अन्य रचना 'राधा', 'विश्वामित्र', और 'मत्स्यगंधा' को भाव नाट्य कहा।

पद्यबद्ध होने मात्र से किसी नाटक को 'काव्य नाटक' या 'गीति नाट्य' की संज्ञा नहीं दी जा सकती। काव्य नाटक एक ऐसी विधा है जिसमें काव्य के तत्त्व होने के साथ-साथ भावना कि प्रमुखता होती है। इसमें नाटक के कार्य-व्यापार और घटनाओं की तुलना में भावना प्रधान होती है।

भावना की प्रधानता का मुख्य कारण यह है कि काव्य नाटक बाह्य संघर्षों कि अपेक्षा अंत: संघर्षों को गहराई से प्रस्तुत करता है। इस दृष्टि से काव्य नाटक, नाटक से भिन्न होता है। उसके नाट्य गुण को लक्षित करने के लिए काव्य नाटक शब्द ज्यादा सटीक ठहरता है।

'काव्य नाटक' शब्द निश्चित रूप से हर तरह से अन्य शब्दों की तुलना में, अधिक विस्तार को अपने में समाहित करता है। काव्य नाटक जैसाकि इसके नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह एक ऐसी विधा है, जिसमें 'काव्य' और 'नाटक' दोनों विधाओं के तत्त्व निहित हो। धनंजय वर्मा के अनुसार, "काव्य नाटक न तो केवल ऐसा नाटक है जिसका माध्यम काव्य है और न ही केवल ऐसा काव्य है जिसकी विधा नाटक है। वह एक साथ ही एक ऐसी नाट्य कृति है जिसका धरातल और स्तर काव्यात्मक है और ऐसा काव्य जिसकी अनिवार्यता नाटक।"9 काव्य नाटक में काव्य, का तत्त्व जहां उसकी आत्मा का निर्माण करता है वहीं नाटक, का तत्त्व उसके बाह्य रूप को आकार प्रदान करता है।

यह जरूरी नहीं की काव्य नाटकों में सभी स्थलों पर कविता हो। कविता केवल उन जगहों पर होती है, जहां भावतिरेक के कारण कविता स्वाभाविक रूप से प्रकट होती है। बच्चन सिंह के अनुसार, "काव्य नाटक में काव्य तत्त्वों को इस दृष्टि से देखना पड़ता है कि उसमें नाटक की सुसम्बद्धता है या नहीं।"10

'काव्य नाटक' की रचना में जहां तक संभव हो, गद्य और पद्य के एक साथ प्रयोग से बचना चाहिए। यदि फिर भी, यदि जरुरत पढ़ती है तो काव्य नाटक में गद्य को इस प्रकार से जोड़ा जाना चाहिए, जिससे वह कहीं कोई अवरोध उत्पन्न न करता हो। नाटक और कविता के तत्त्वों का संतुलित समन्वय जिस बिंदु पर हो जाता है, ठीक वहीं से काव्य नाटक का सृजन प्रारंभ होता है। समन्वय की ऐसी स्थिति में ही अनेक सफल काव्य रूप प्राप्त हुए हैं। जिसके कुछ सशक्त उदाहरण अंधायुग, अंधेर नगरी आदि जैसी रचनाएँ है।

आधुनिक नाटककार भी जब संस्कृत आचार्यों की परंपरा में, नाटक को दृश्य काव्य मानते है तो इस स्थिति में, यह 'काव्य नाटक' नाम अन्य नामों कि तुलना में अधिक सटीक व अन्य की जगह आधिक व्यापक भी ही जान पड़ता है। इलियट ने भी काव्य और नाटक के समन्वय से निर्मित ऐसी कृतियों को 'लिरिकल ड्रामा' (काव्य नाटक) ही कहा है। इस अर्थ में 'काव्य नाटक' 'लिरिकल ड्रामा' का सही हिन्दी अनुवाद भी है और भारतीय संदर्भ में हिन्दी का अपना भी। नाटकीय शिल्प और काव्य तत्त्व की समन्वित स्थिति से बनी कृति, काव्य नाटक नामकरण के ज्यादा नजदीक भी है।

काव्य नाटकों में बाहरी क्रियाशीलता और संघर्ष के स्थान पर मानसिक द्वंद्व को प्रस्तुत किया जाता है। ऐसे नाटकों में बाहरी परिवेश, आंतरिक संघर्ष को दिखाने का माध्यम बनता है। काव्य नाटकों का कथानक गेय होता है और अभिनेय या रंगमंच प्रस्तुति संगीतात्मक होती है। अनुभूति और अभिव्यक्ति को सृजनात्मक स्तर प्रदान करने के लिए, मानसिक तनाव रचनाकार की कसौटी होता है।

काव्य नाटक में रचनाकार को पात्र की मानसिक स्थिति के अनुरूप ही वातावरण की निर्मिति करनी पड़ती है। यदि रचनाकार रचना में शृंगारिक वातावरण को प्रस्तुत करना चाहता है तो उसे, प्रकृति को उसी रूप में प्रस्तुत करना होगा। जिसके सुंदर उदाहरण उदयशंकर भट्ट के विश्वामित्र, मत्स्यगंधा और

धर्मवीर भारती का अंधायुग में प्रस्तुत किए गए हैं। सामान्य नाटक में वातावरण का चित्रण काव्य नाटक की तुलना में कम होता है। नाटक का कथानक सामान्य गति से ही आगे बढ़ जाता है।

रंगमंच की दृष्टि से हिंदी नाटकों का पर्याप्त अध्ययन हुआ है। काव्य नाटक की बात करें तो उसकी मंच प्रस्तुति की ओर कम ध्यान दिया गया है। काव्य-नाटक, गद्य-नाटक की अपेक्षा आंतरिक व बाह्य संघर्षों को अधिक भावात्मकता से प्रस्तुत करता है। अमूर्त भावनाओं को सजीव रूप प्रदान करना एक कठिन कार्य है। ऐसा कदापि नहीं कि गद्य-नाटकों में भावात्मकता नहीं होती लेकिन वह कुछ अभ्यास के बाद अभिनय में, सफलता से प्रकट की जा सकती है। वहीं दूसरी और काव्य नाटकों में काव्यात्मकता, भावात्मकता, लयात्मकता, अमूर्त प्रस्तुतीकरण गद्य की तुलना में अधिक होता है। जिस कारण इसके भावुक अंशो के अभिनय के लिए, किसी भी अभिनयकर्ता को अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

किसी नाट्य रचना का पाठ्य और मंचन दोनों अलग-अलग होते है। यह जरूरी नहीं की कोई रचना यदि अपने पठनीय रूप में सफल है तो वह मंच प्रस्तुति में भी उतनी ही प्रभावपूर्ण हो। काव्य नाटक में नाटक शब्द जुड़ते ही वह केवल पाठक नहीं बल्कि प्रेक्षक की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। 'नाटक' शब्द आते ही उसके साथ स्वत: रंगमंच जुड़ जाता है। विद्वानों के मध्य यह विवाद रहा है कि रंगमंच नाटक के लिए होता है न की नाटक रंगमंच के लिए। यह बात काफी हद तक सही ठहरती है कि नाटक की प्रस्तुति के लिए रंगमंच है। इन सब बातों के बावजूद किसी नाटक का सफल मंचन उसके प्रभाव में वृद्धि ही करता है। साथ ही पाठक वर्ग के साथ-साथ प्रेक्षक तक अपनी पहुँच स्थापित करने में भी सफल होता है।

किसी भी नाट्य रचना के मंचित हुए बिना उसकी भाव संपदा का मूल्यांकन करना कठिन कार्य है। नाटक को मंच पर तभी प्रस्तुत किया जा सकता

है जब उसमें अभिनय गुण हो। यह जरूरी नहीं की कोई रचनाकार, मंच के अनुरूप रचना करें तभी वह रचना मंच पर प्रस्तुत करने योग्य हो। इसके बावजूद भी अगर नाट्य-रचनाकार, रंगमंच को दृष्टि में रखकर रचना करता है तो संभवत: वह मंचीय प्रस्तुति में कुछ सरल व उसकी सफलता में सहायक अवश्य हो सकती है।

धर्मवीर भारती 'अंधायुग' के निर्देश में यह स्पष्ट करते है कि,

"अंधा युग की रचना रंगमंच को ध्यान में रखकर की गई थी।"11

काव्य नाटक होते हुए भी अंधायुग के मंच प्रदर्शन काफी सफल रहे है। वह न केवल पाठक के लिए बल्कि प्रेक्षक के लिए भी एक प्रभावपूर्ण सफल रचना है। जिसमें दृश्य परिवर्तन के समय; कथा गायन की लोक शैली के माध्यम से पूर्व और आगामी, घटनाओं को जोड़कर प्रस्तुत किया गया हैं।

रंगमंच प्रस्तुति दृश्य-काव्य की एक महत्त्वपूर्ण चुनौती है। जिसके केंद्र में दर्शक होता है। संभवत: यह आवश्यक नहीं की रंगकर्मी की तरह दर्शक भी प्रशिक्षित हो। प्रेक्षक और अभिनेता के बीच सादृश्यता स्थापित करना ही रंगमंच का मूल धर्म है। जिसमें निर्देशक की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है।

कुछ दृश्य ऐसे भी होते है जिन्हें मंच पर प्रस्तुत करना संभव नहीं होता और यदि मंचन किया भी जाता है तो वह उतना प्रभावित नहीं करते। जिस कारण उसकी रसात्मकता में कमी आती है। मंचीय प्रस्तुति में दृश्य परिवर्तन भी एक बड़ी समस्या है। कई बार दृश्य-परिवर्तन बहुत ही जल्दी-जल्दी होता है जिसके कारण अभिनय में बाधा उत्पन्न होती है।

भाषाई किलिष्ठता जनसमान्य के लिए कठिनाई पैदा करती है। जिसे मंच पर प्रस्तुत करने से लेकर, प्रेक्षक तक संप्रेषित करने में, काफी कठिनाई आती है। जैसे उर्वशी की भाषा बहुत-सी जगह पर बहुत ही जटिल हो गई है। काव्य नाटक के मंचन में एक अन्य बड़ी समस्या उसका संवाद है। भावावेश के कारण कहीं-

कहीं संवाद काफी लंबे हो जाते हैं। यह भावों की अभिव्यक्ति के लिए शायद जरूरी हो लेकिन प्रेक्षक के लिए अरुचि उत्पन्न करते हैं। संवादों का विस्तार और भाषाई कठिनाई के कारण मंच प्रस्तुति में संवाद को समझना, आम प्रेक्षक के लिए थोड़ा कठिना होता है।

लंबे संवाद को अभिनय में प्रस्तुत करना अभिनेता के लिए भी कठिन कार्य होता है। चूंकि नाटक में कोई एडिटिंग नहीं होती । मंच प्रस्तुति से दर्शक सीधे जुड़ता है। काफी बार यह भी देखा गया है कि लंबे संवाद प्राय: पात्र (अभिनेता) भूल जाते हैं। अगर वह पूरा संवाद बोलता भी है तो वह मंच पर स्थिरता, नीरसता और ऊब पैदा करता है। लंबे संवाद से पात्र में भी स्थिरता आती है अर्थात मंच पर कोई गतिशीलता नहीं रहती और मंचीय प्रस्तुति उबाऊ बन जाती है।

मंच प्रस्तुति में आवाज और बलाघात का विशेष महत्त्व होता है। आवाज का उतार-चढ़ाव आंतरिक द्वंद को अभिव्यक्त करने में सहायक होता है। अभिनय में संवादों की अभिव्यक्ति से यह प्रतीत न हो, की वह केवल संवादों की उल्टी कर रहा है और ऐसा भी न लगे की वह काव्य पाठ कर रहा है। ऐसे संवादों के संप्रेक्षण को प्रभावशाली बनाना, अभिनय में चुनौतीपूर्ण होता है। इस समस्या को धर्मवीर भारती ने स्वयं महसूस किया वह लिखते है कि, "अभिनेता के साथ एक कठिनाई दीख पड़ी है। वे संवादों को या तो बिलकुल कविता की तरह लय के आघात दे-देकर पढ़ते है, या बिलकुल गद्य की तरह। स्थिति इन दोनों के बीच की होनी चाहिए।"12

काव्य नाटक के संवाद काव्यात्मक होने के कारण, अभिनय के लिए चुनौतीपूर्ण होते हैं। कई बार भावावेश से भरे मन की स्थिति की अभिव्यक्ति के लिए स्वगत कथनों का आश्रय लिया जाता है। लेखक की थोड़ी सी असावधानी में लिखे गए लंबे एकालाप, मंच पर नीरसता उत्पन्न करते है। संप्रेक्षण साधना संवाद नहीं बल्कि अपने भाव को संवाद में प्रेषित करना संवाद है।

मंच की भी अपनी कुछ सीमाएं होती है। संवाद चरित्रों को उभार कर कथानक को गति प्रदान करते है। संवाद न केवल छोटे हो बल्कि बोलचाल की सामान्य भाषा के निकट और साहित्यिक होते हुए भी, सरल होने चाहिए। जो उसे सजीव, मर्मस्पर्शी व कलात्मकता प्रदान करें।

काव्य नाटक के मंच प्रस्तुतीकरण में प्रकाश व ध्वनि का भी अपना विशेष महत्त्व होता है। जिसकी सहायता से काव्य-वस्तु की माँग के अनुरूप, उसकी मंचीय प्रस्तुति को, न केवल प्रभावशाली बनाया जा सकता है बल्कि इसके द्वारा चरित्रों को भी उभारा जाता है। ऐसे नाटकों में ध्वनि-यंत्रों का प्रयोग कर विशेष प्रभाव पैदा किया जाता है। काव्य नाटक में ध्वनियों की रोमांचक विविधता देखने को मिलती है।

काव्य नाटक में संगीत का विशेष महत्त्व होता है। निर्देशक के द्वारा संगीत का सही प्रयोग किया जाए तो प्रस्तुति अधिक प्रभावशाली बनती है। जो प्रेक्षक के मन पर विशेष मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने के साथ प्रस्तुति को अधिक रसात्मक बनाती है।

काव्य नाटक में बाह्य वातावरण का भी अपना महत्त्व होता है क्योंकि वह व्यक्ति के आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति में सहायक बनता है। बाह्य वातावरण किसी भी प्रस्तुति के प्रभाव को बढ़ाने में सहायक होता है और इसी के साथ संवाद का दृश्य के साथ साम्य स्थापित करता है। दृश्य के अनुरूप वातावरण, प्रस्तुति को अधिक रसात्मकता एव जीवंत बना देता है। काव्य नाटकों में कुछ दृश्य ऐसे होते हैं जिनका बाह्य वातावरण मंच की अपेक्षा, रेडियो पर ज्यादा प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत किया जा सकता है।

काव्य नाटक में छंद परिवर्तन कर प्रेक्षक को एकरसता से बचाया जा सकता है। आज का रंगमंच अधिक सक्रिय, काव्यात्मक, कल्पना-प्रधान, प्रतीकात्मक और सांकेतिक बनता जा रहा है। जिसका प्रभाव काव्य नाटकों की रंगमचीय व्यवस्था पर भी देखा जा सकता है।

ऐसे नाटकों की भाषा का एक निश्चित स्तर बनाए रखना आवश्यक है। वर्तमान रंगमंच के अनुरूप, भाषा सरल और स्पष्ट होनी चाहिए। काव्य नाटक की प्रस्तुति के लिए अधिकतर खुला रंगमंच ही उपयुक्त माना गया है। काव्य नाटकों की पहुँच एक विशेष वर्ग तक सीमित है। सामान्य जन तक वह नहीं पहुँच सका। जिसके कई कारण हो सकते हैं जैसे उसकी भाषा, मंचन में समस्या, संवाद, आदि। काव्य नाटक की मंच प्रस्तुति न केवल निर्देशक के लिए चुनौती है बल्कि अभिनेता के लिए भी कठिनाई उत्पन्न करती है।

किसी भी रचना के काव्य रूप पर, रचनाकार का अधिकार होता है और जब वह रचना मंच पर पहुँचती है तो उस पर, निर्देशक का अधिकार होता है। वह निर्देशक के अनुरूप आवश्यक काट-छांट के बाद ही मंच पर उपस्थित होती है। नाटक के मंच पर सफल प्रस्तुतीकरण से निर्देशक और रचनाकार की साधना सफल होती है।

प्रत्येक रचना की मंच प्रस्तुति के लिए, निर्देशक को अपनी प्रतिभा और कल्पना के द्वारा, प्रस्तुतीकरण की शैली के अनुरूप दृश्य एवं प्रकाश व्यवस्था, ध्वनि-संयोजन, वस्त्र एवं रूप-विन्यास, और मंचीय-स्थल पुन: नियोजित करना पड़ता है। नाट्य लेखन में रचनाकार स्वतंत्र होता है तो प्रस्तुति के समय, नाटक को प्रेषक तक पहुँचाने की ज़िम्मेदारी निर्देशक की होती है।

वर्तमान में उपलब्ध रंगमंच किसी भी नाट्य प्रस्तुति को अधिक प्रभावशाली बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके बाद भी यदि कुछ काव्य नाटकों को छोड़ दिया जाए, तो अधिकतर काव्य नाटकों की मंच प्रस्तुति, अधिक लोकप्रिय व सराहनीय नहीं कही जा सकती। जिसमें प्रमुख बाधा है उसकी भाषा और कथानक में उचित कसाव न होना। जो प्रेक्षक को मंचीय प्रस्तुति से बांधकर रखने में बाधा बनता है।

रचनाकार द्वारा दिए गए रंग निर्देश, नाटक की मंच-प्रस्तुति में सहायक होने के साथ-साथ, उसके प्रभाव में वृद्धि करते हैं। जिसकी सहायता से पात्रों की

भाव-भंगिमा को समझने में सहायता मिलती हैं। किन्तु वर्तमान समय में हिन्दी रंगमंच निर्देशक का रंगमंच है। निर्देशक, रचनाकार द्वारा मंच प्रस्तुति के लिए दिए गए, रंग-निर्देश या उसके किसी भी तरह के हस्तक्षेप को पसंद नहीं करता। जिसके पीछे कई कारण हो सकते हैं लेकिन इसका एक प्रमुख कारण मंच प्रस्तुति की अपनी सीमा। वर्तमान में निर्देशक, रचनाकार से मंच पर प्रस्तुति के लिए केवल कोई उदात्त विचार, आकर्षक एवं उदात्त चरित्र और नाटकीय स्थिति चाहता है। वह नाटक की मंच प्रस्तुति में रचनाकार की दखल नहीं चाहता। नाटक की प्रस्तुति वह अपने उद्देश्य के अनुरूप करता है।

निष्कर्ष

काव्य नाटक के अन्य नामों की अपेक्षा यह नाम अधिक न्याय संगत है। एक ऐसी विधा जिसमें काव्य और नाटक दोनों के तत्त्व निहित है। जिसका माध्यम काव्य है और दृश्यांकन आवश्यकता। नाटक को दृश्य-काव्य कहा जाता है तो काव्य और नाटक के समन्वय से निर्मित विधा को 'काव्य नाट्य' कहना उचित ही जान पड़ता है। मंचन की दृष्टि से काव्य नाटक प्राय: खर्चीली होते है क्योंकि उसमें व्यक्ति के अंतर्द्वंद और बाह्य द्वंद को वाणी प्रदान करने के लिए, विशेष प्रकार के वाद्य यंत्रों, प्रकाश-व्यवस्था तथा मंच-सामग्री आदि की आवश्यकता होती है। मंचीय बाधाओं के अतिरिक्त वर्तमान समय में, हिंदी रंगमंच के सामने काफी चुनौतियाँ हैं क्योंकि अब उसका सामना, एक ही स्क्रीन कम्पुटर व टीवी पर उपलब्ध होने वाले अंगिनत, रुचिपुर्ण व आकर्षक नाटक और फिल्म जैसे लोकप्रिय एवं शक्तिशाली अभिव्यक्ति माध्यमों से हैं। आज इंटरनेट के इतने विस्तार और ओ.टी.टी. जैसे प्लैटफ़ार्म उपलब्ध होने के कारण, एक ही स्पेस में केवल देश ही नहीं बल्कि विदेशों के लोकप्रिय नाटक और फिल्म आसानी से देखें जा सकते हैं। यह नाटक की मंच प्रस्तुति के लिए नयी-नयी चुनौतियाँ खड़ी कर रहें हैं।

संदर्भ सूची: आधार ग्रंथ

1. राय, नरनारायण. नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल की नाट्य साधना. पृष्ठ सं 45-46
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद एवं द्विवेदी, पृथ्वीनाथ. नाट्यशास्त्र की भारतीय परंपरा और दशरूपक, पृष्ठ सं 55-60
3. सिंहल, कृष्ण. हिंदी गीति नाट्य. पृष्ठ सं 20
4. वर्मा, डॉ॰ धीरेन्द्र. हिंदी साहित्य कोश. पृष्ठ सं 294
5. डॉ॰ नगेन्द्र. आधुनिक हिंदी नाटक. पृष्ठ सं 103
6. भट्ट, उदयशंकर. राधा. (भूमिका से) पृष्ठ सं 1
7. डॉ॰ नगेन्द्र. आधुनिक हिंदी नाटक. पृष्ठ सं 120
8. महेंद्र, डॉ॰ रामचरण. हिंदी नाटक के सिद्धांत और नाटककार. पृष्ठ संख्या 78
9. डॉ॰ अमरनाथ. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली. पृष्ठ संख्या 124
10. सिंह, डॉ॰ बच्चन. हिंदी नाटक. पृष्ठ सं 162
11. भारती, धर्मवीर. अंधायुग. (निर्देश से) पृष्ठ सं 11
12. भारती, धर्मवीर. अंधायुग. (निर्देश से) पृष्ठ सं 11

सहायक ग्रंथ

1. राय, नरनारायण. (1979). नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल की नाट्य साधना. दिल्ली: सन्नमार्ग प्रकाशन.
2. डॉ॰ नगेन्द्र. (2004 संवत्सर). आधुनिक हिन्दी नाटक. आगरा: साहित्य प्रेस.
3. भट्ट, उदय शंकर. राधा. आगरा: साहित्य रत्न भंडार.
4. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, द्विवेदी पृथ्वीनाथ. (2019). नाट्य शस्त्र की भारतीय परंपरा और दशरूपक. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
5. सिंह, बच्चन. (1958). हिंदी नाटक. इलाहाबाद: हिंदी साहित्य प्रेस.

6. शर्मा, श्रीपति. हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव. आगरा: विनोद पुस्तक मंदिर.
7. सिंह, डॉ॰ सुशील. (1998). हिंदी के काव्य नाटक. मध्यप्रदेश: आदित्य पब्लिशर्स.
8. वर्मा, डॉ. धीरेन्द्र. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1. द्वितीय संस्करण.
9. महेंद्र, डॉ. रामचरण. (संवत 2012). हिन्दी नाटक के सिद्धांत और नाटककार. आगरा: फुलचंद गुप्त सरस्वती पुस्तक सदन. प्रथम संस्करण.
10. डॉ. अमरनाथ. (2013). हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली. दिल्ली: राजकमल.
11. भारती, धर्मवीर. (2022). अंधायुग. दिल्ली: किताब महल.
12. कुमार, अशोक. (2009). स्वातंत्र्योत्तर काव्य नाटक. दिल्ली: संजय प्रकाशन.
13. ओझा, डॉ॰ दशरथ. (2018). हिंदी नाटक उद्भव और विकास. दिल्ली: राजपाल एंड संस.
14. संदेश, विजय कुमार. (2010). उत्तरशती के हिंदी काव्य नाटक. दिल्ली: क्लासिक पब्लिशिंग कंपनी.
15. दुबे, डॉ॰ नीलिमा. (2018). रंगमंचीयता के परिप्रेक्ष्य में हिंदी काव्य नाटक. कानपुर: विनय प्रकाशन.

भारतीय लोकनाट्य में बिदेसिया का प्रदेय

डॉ. सतेन्द्र शुक्ल
सहायक प्राध्यापक
रामजस महाविद्यालय
ई-मेल- satendrashukla@ramjas.du.ac.in

सारांश

प्रस्तुत शोध आलेख "भारतीय लोकनाट्य में बिदेसिया का प्रदेय" में बिदेसिया नाटक से सम्बंधित विभिन्न आयामों जैसे बिदेसिया की उत्पत्ति, पलायन, रोजगार, और रंगमंच पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। जब हम बिदेसिया नाटक पर गौर करते हैं तो हम यह देखते हैं कि लोक जनमानस में प्रेम का इजहार एवं विरह की शिकायत कहीं मिलती है तो वह बिदेसिया में ही मिलती है। बिदेसिया सिर्फ एक नाटक न होकर एक लोकगीत है जो आम जनमानस को स्वयं में पिरोए हुए है और जिसे आम जनमानस स्वयं में पिरोए हुए हैं। बिदेसिया और आम जनमानस को लेकर हम निश्चित रूप में यह कह सकते हैं कि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

बीज शब्द: *बिदेसिया, लोकनाट्य, लोकजीवन, सामाजिक, सांस्कृतिक, गाँव*
शोध प्रविधि: *प्रस्तुत आलेख में विभिन्न द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है। जिनमें विभिन्न पुस्तकें , अखबार, व पत्रिकाएँ शामिल हैं।*

शोध आलेख

जब भी बात बिदेसिया की होती है तो हमारे मन मस्तिष्क में एक छायाचित्र कौंध उठता है और वह छायाचित्र होता है बिदेस (प्रदेश ,अपने मूल निवास से कहीं सुदूर जाकर अस्थायी रूप से बसने वाला स्थान) का। भारतीय लोकनाट्य में भिखारी ठाकुर ने अपनी रचना बिदेसिया के माध्यम से जो कौतुहल पैदा किया है वह अद्वितीय है। इसमें सबसे मूल बात यह है कि यह नाटक भोजपुरी भाषा में लिखा गया। जिससे एक भाषा को सम्मान पूर्वक आगे बढ़ने और प्रतिष्ठित होने का अवसर मिला। बिदेसिया नाटक हमें यह बताता है कि कैसे पति के बिदेस

(प्रदेश) चले जाने पर उसकी पत्नी विरह में व्याकुल रहती है और उसे यह आशंका होती है कि उसके पति किसी रण्डी (अन्य स्त्री) के रूप माया जाल में फँस गए हैं तथा अपने गाँव वापस नहीं आ रहे हैं। अपनी इस व्यथा को वह अपनी सखी से विभिन्न लोकगीतों के माध्यम से कहती है। भिखारी ठाकुर का बिदेसिया इसी कथा के इर्द गिर्द घूमता रहता है।

लोकजीवन से संबंधित सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताओं तथा प्रवृत्ति का निरूपण लोकनाट्यों में होता है। विशेष बात यह रहती है कि लोकनाट्य में संवाद तत्त्व की प्रधानता रहती है और चरित्र चित्रण को अपेक्षाकृत गौण स्थान प्रदान किया जाता है। लोकनाट्य में नृत्य और संगीत के साथ-साथ शारीरिक हाव-भाव एवं भंगिमाओं पर ध्यान दिया जाता है। यह भी देखा जाता है कि संवाद अधिकांशतः काव्यात्मक हो। लोक संगीत तथा विविध वाद्ययंत्रों जैसे हारमोनियम, ढोलक, नगाड़ा, सारंगी, बासुरी आदि की सहायता से संवादों को अधिक प्रभावशाली बनाने का प्रयत्न किया जाता है।

लोकनाट्यों को प्रभावशाली और मनोरंजक बनाने के लिए विदूषक की व्यवस्था की जाती है, जो प्राय: पेटू व्यक्ति होता है अथवा जिसकी शारीरिक बनावट कुछ विचित्र की होती है। उसकी वेशभूषा चाल-ढाल आदि इस प्रकार की रखी जाती है कि दर्शक को हँसने के लिए विवश होना पड़ता है। विदूषक से कई के मानक में घुली-मिली प्रमुख समस्या को प्रस्तुत करने में सहायक का काम भी लिया जाता है। यह मुख्य पात्र अथवा नायक के आस-पास रह कर उसके घर को समझने में सहायता तो करता ही है, लोकनाट्य द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले के विविध स्तरों को सामने लाता है। उसके अपने चरित्र में हास्य और व्यंग्य का विलक्षण समावेश होता है।

'बिदेसिया' बिहार का सर्वाधिक लोकप्रिय लोकनाट्य है। इसके रचयिता भोजपुरी लोकनाट्य परम्परा के महानायक "भिखारी ठाकुर" हैं। "बिदेसिया' लोकनाट्य की रचना सन् 1914 में हुई। लोक- चितेरे भिखारी ठाकुर

की बिदेसिया भोजपुरी समाज व संस्कृति का जीवन प्रतीक है। इसकी भाषा शुद्ध भोजपुरी है और शैली की दृष्टि से यह गीति काव्य है। भिखारी ठाकुर कृत बिदेसिया पर गोस्वामी तुलसीदास की रामचरितमानस का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। 'बिदेसिया' लोकनाटक में तत्कालीन समाज की विशेषताओं को रेखांकित करने के साथ ही वहाँ के ज्वलंत समस्याओं को नाट्य रूप में अद्भुत किया गया है। नवविवाहिता पत्नी को छोड़ कर पति के 'पलायन' एवं उससे आने वाली एकाकीपन का दंश बिदेसिया की केन्द्रीय समस्या है। इसके साथ ही भिखारी ठाकुर ने इस लोकनाटक में लोक पक्ष को प्रतीकात्मक शैली में 'जीव,ब्रह्म,गुरु और माया' के स्वरूप में प्रस्तुत करते हैं।

बिदेसिया में मुख्य चार पात्र है- विदेशी, प्यारी सुंदरी, बटोही और रखेलिन(रंडी)। यहाँ विदेशी जीव का प्रतीक है, प्यारी सुन्दरी ब्रह्म का ,बटोही गुरु का एवं रखेलिन माया का प्रतीक है। विदेशी एक पुरुष पात्र है, जो अपनी नवविवाहितता प्यारी सुन्दरी के न चाहते हुए भी उसे बहला कर छुप-छुपाकर धनोपार्जन के निर्मित कलकत्ता चला जाता है। बिदेसिया जिस समय की रचना है उस समय कृषि कार्य के अभाव में गाँव के बेरोजगार युवक घर की आर्थिक स्थिति को देखते हुए रोटी रोजगार के लिए कलकत्ता, असम आदि राज्यों में पलायन करते थे। आज भी पलायन की यह समस्या क्षेत्रीय एवं वैश्विक स्तर पर व्यापक है। इस संदर्भ में बिदेशिया लोकनाटक अत्यंत प्रासंगिक है। कहा जाता है कि बिदेसिया की उत्पत्ति उत्तर प्रदेश के कुतुबपुर गाँव से हुई थी। जो लोग गाँव छोड़कर शहर जाते थे, उन्हें बिदेसिया के नाम से जाना जाता था। ऐसे ही एक व्यक्ति थे, भिखारी ठाकुर। वह एक प्रसिद्ध लोक कलाकार और नाटककार थे। ठाकुर अनपढ़ थे फिर भी उन्होंने खुद से तुलसीदास द्वारा लिखित रामचरितमानस को पढ़ना और याद करना सीखा, इसलिए वह उन्हें अपना साहित्यिक गुरु मानते थे। उन्हें भोजपुरी का शेक्सपियर कहा जाता था। ठाकुर ने बिदेसिया सहित बारह नाटक और बहुत सारे गीत लिखे हैं। ठाकुर ने अपने नाटकों और गीतों में महिलाओं, निम्न जाति के लोगों और गाँवों में रहने वाले

गरीब लोगों से संबंधित सामाजिक मुद्दों को उठाया। उन्होंने अपने नाटकों में भी अभिनय किया और अपने समय की विभिन्न प्रस्तुतियों का निर्देशन किया था। बिदेसिया की यह कला शैली हिंदू जाति प्रथा की तथाकथित निचली जाति से संबंधित था। इस कला शैली का सार समाज की बुराइयों पर प्रकाश डालना है और इसलिए इसमें पोशाक को कम महत्व दिया जाता है। प्रदर्शन में सबसे महत्वपूर्ण भूमिकाएँ सूत्रधार (कथावाचक) और समाजी (संगीतकारों) की होती है। बिदेसिया एक प्रसिद्ध नाटक है जो देशपरिवर्तन की समस्या और पीछे रह गई महिलाओं पर इसके प्रभाव की ओर ध्यान आकर्षित करता है।

भोजपुरी भाषा के शेक्सपियर के रूप में पहचान रखने वाले, लोक नाट्यकार भिखारी ठाकुर एक विशिष्ट रंगकर्मी होने के साथ-साथ स्त्री-विमर्श एवं दलित-विमर्श के रचनाकर और एक संवेदनशील कलाकार के रूप में भी प्रतिष्ठित नाम हैं। भिखारी ठाकुर का जन्म 18 दिसंबर को बिहार के गंगा तथा सोन नदी के संगम पर बसे कुतुबपुर दियारा गांव में हुआ। इस क्षेत्र के लोग न केवल देश के विभिन्न राज्यों बल्कि गिरमिटिया मजदूर के रूप में मॉरिशस, सूरीनाम, फीजी, गुयाना, हॉलैंड आदि देशों में ले जाये गए। यद्यपि भिखारी ठाकुर का पालन-पोषण एक निम्नवर्गीय परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम दल सिंगार ठाकुर और माता का नाम शिवकली देवी था। बचपन में कुछ समय तक स्कूल जाने के बाद उन्होंने स्कूल जाना छोड़ दिया। गाँव के दूसरे चरवाहों के साथ गाय घराने जाने लगे। जहाँ अपने घरवाह मित्रों के साथ लोकगीत गाते, नकल उतारते और शाम तक घर वापस आ जाते भिखारी ठाकुर जैसे-जैसे बड़े हुए, उन्होंने पढ़ना लिखना सीखा और अक्षर जोड़कर, शब्दों को बैठाकर कविता आदि करने लगे। परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, गांव में रहकर धन कमाने का ऐसा कुछ साधन भी नहीं था, इसलिए वे घर को छोड़कर खड़कपुर चले गए। जहाँ उन्होंने धन कमाना शुरू किया, वहीं पर उन्होंने रामलीला, रासलीला, जात्रा जैसे लोक नटरंग देखने शुरू किए। एक बार घूमने के इरादे से भिखारी ठाकुर जगन्नाथ पुरी की यात्रा को निकले, यहाँ स्नान कर भगवान

जगन्नाथ के दर्शन प्राप्त किए। इस घटना ने उनके जीवन को बदल दिया। उसके बाद खड़कपुर छोड़कर वापस अपने गांव कुतुबपुर आ गए और साधु संतों की संगत में बैठकर रामचरितमानस का पाठ, भजन कीर्तन सीखने लगे। धीरे-धीरे उन्हें इस कार्य में महारत हासिल हो गई, उन्हें लगभग पूरी रामचरितमानस कंठस्थ हो गई। इसके साथ ही कुछ गीत और काव्य आदि की रचना भी करने लगे। उन्होंने गाँव के युवाओं को जोड़कर रामलीला का मंचन प्रारंभ किया, उनके गीत और कविताएँ ऐसी सरल भाषा और लोकरंग लिए होती थी कि दूर-दूर से लोग उनकी ओर से खिंचे चले आते थे। उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैलने लगी। अब वे रामलीला के प्रदर्शन के लिए गांव के बाहर भी जाने लगे। तैयब हुसैन ने इस बारे में लिखा है। आम के आम और गुठलियों के दाम' की तरह उन्हें नाम और दाम दोनों मिलें नाम इस रूप में कि उनके गीत, नृत्य और नाटक लोक परम्पराओं से जुड़े थे जो जल्दी ही लोकप्रिय हो गए क्योंकि उनमें लोगों को अपनी छवि दिखाई देती थी, अपना सुख-दुःख अपनी कहानी इससे उनकी आत्मीयता स्वाभाविक थी। भिखारी के भीतर के कलाकार को संतोष मिला और प्रोत्साहन भी। फलतः उनका विकास होने लगा। फिर ऐसा दिन भी आया जब भिखारी का नाच 'बिदेसिया' नाम से शादी-ब्याह, पर्व-त्योहार और दूसरे उत्सव में मनोरंजन के साथ सामाजिक प्रतिष्ठा से भी जुड़ गया। वास्तव में उनके रचनाकार व्यक्तित्व ने अपने क्षेत्र की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों को बहुत ही करीब से देखा था। वे अपने समाज की परंपराओं और स्त्रियों की दशा से भी भलीभाँति परिचित थे।

बिदेसिया लोकनाट्य में तत्कालीन समाज की प्रमुख समस्याओं को स्थान मिला है। भिखारी ठाकुर के अपने लोक से गहराई से जुड़े थे। अत: समाज में व्याप्त बुराइयों एवं समस्याओं को सामुहिक रूप से विचार-विमर्श का मुद्दा बनाने के लिए एवं उसके समाधान के लिए लोगों को प्रेरित करने के लिए, सामाजिक मनोरंजन के सर्वाधिक उत्तम साधन-'लोकनाट्य' के माध्यम से समस्या आदि के रूप में चयनित करते हैं। हैरत की बात तो यह है कि तत्कालीन

समाज की समस्या आज भी समाज में देशी एवं वैश्विक स्तर पर मुंह खोले खड़ी है। स्वाधीनता के आन्दोलन से गति पाई 'पलायन की समस्या' सात दशकों से निरन्तर बनी हुई है।

'बिदेसिया नाटक में पलायन की समस्या 'पलायन से उपजी स्त्रियों की विरह-पीड़ा एवं एकाकीपन, वेश्यावृत्ति की समस्या एवं पूँजीबाद या औद्योगिकीकरण की समस्या पर सूक्ष्म दृष्टिपात किया गया है। कहीं-न-कहीं इन सभी के मूल में पलायन की समस्या व्याप्त है। यह समस्या आज देशी और वैश्विक दोनों स्तर पर फैली हुई है।

पलायन के कारणों की पड़ताल से पहले पलायन क्या है यह जान लेना आवश्यक है। पलायन एक स्थान से दूसरे स्थान तक लोगों की आवाजाही है। यह एक छोटी या लंबी दूरी के लिए अल्पकालिक या स्थायी स्वैच्छिक या विवशता के कारण, अन्तर्देशीय या अन्तर्राष्ट्रीय हो सकता है। बिहार एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश में पलायन किए हुए व्यक्ति को उसके मूल स्थान पर बिदेसी संबोधित करते है। वह व्यक्ति जो अपना मूल स्थान छोड़कर अन्यत्र गमन कर चुका है 'बिदेसी' कहलाता है। बेरोजगारी , शैक्षिक सुविधा का अभाव, बदतर जीवन शैली, राजनीतिक, धार्मिक एवं भाषिक सहभागिता का अभाव, प्राकृतिक आपदा, आदि पलायन का मजबूत कारण बने।

भिखारी ठाकुर ने जितनी भी मौलिक रचनाएँ की वे सभी अपने क्षेत्र की समस्याओं का प्रतिनिधित्व करती है। बिदेसिया नाटक के माध्यम से उन्होंने स्त्री की विरह वेदना को प्रस्तुत किया है, जो उस समय की सबसे विकट समस्या थी। गाँव के पुरुष जीविकोपार्जन के लिए अन्य प्रदेशों में जाते थे और उनके पीछे उसकी पत्नी और परिवार वाले संतप्त रहते थे। 'भाई विरोध' नाटक में संयुक्त परिवार के विघटन की कथा है। 'विधवा विलाप' में विधवा स्त्री के प्रति होने वाला सामाजिक अत्याचार प्रस्तुत हुआ है। 'गंगा असमान' नाटक में धार्मिक आडम्बर किस तरह समाज को खोखला कर रहे हैं, जबकि 'पुत्र वध' नाटक में

नारी चरित्र का विचलन प्रस्तुत हुआ है। 'गंबर थियोर' नाटक में जीते जागते इंसान को वस्तु समझने की मानसिकता दर्शाई गई है। 'ननद भउजाई' नाटक में बाल विवाह की समस्या तथा कलयुग प्रेम' में समाज में बढ़ रही नशाखोरी की समस्या का चित्रण हुआ है। जबकि 'बेटी वियोग' नाटक के माध्यम से उन्होंने बेटी बेचने की प्रथा पर कुठाराघात किया है। इस प्रकार इन नाटकों के माध्यम से उन्होंने ऐसे कथानकों को पुना, जो समाज में ही चारों और व्याप्त थे, जिनके सुधार पर कोई ध्यान नहीं दे रहा था उन्होंने इन समस्याओं को उठाकर जहाँ धर्म के ठेकेदारों को, धार्मिक आडंबरों के लिए खबरदार किया, वहीं समाज को भी अपनी रूढिगत परंपराओं को छोड़ने के लिए प्रेरित किया।

भिखारी ठाकुर का समय भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का युग था। उस समय समाज सुधार एवं स्वतंत्रता आंदोलनों का प्रचार-प्रसार पूरे देश भर में चल रहा था। भिखारी ठाकुर नामक सोनोग्राफ में तैयब हुसैन पीड़ित लिखते हैं "भिखारी का काल अंग्रेजी राज के कारण गाँव में उथल-पुथल का काल था। पहली बार भारत की सामंती संस्कृति में पूंजीवादी संस्कृति हस्तक्षेप कर रही थी। वर्ण-व्यवस्था रखने की कोशिश जारी थी। गृह उद्योग नष्ट हो रहे थे। लकदक करती विदेशी चीजें शहर से मुंबई हाट में प्रवेश करने लगी थीं। टैक्स के लिए अंग्रेजों का जमीदारों पर और जमींदारों का रैयतों पर दबाव बढ़ रहा था। नवजवान ग्रामीणों का शहर की ओर रुख स्वाभाविक हो गया था। ऐसे में उनका शहर चालू औरतों के शिकंजों में फँसना अथवा उनकी ब्याहता घरवाली पर गैर मर्द का घेरा पड़ना उनकी नियति बन रही थी। भिखारी ठाकुर जी की सबसे बड़ी युगीन समस्या थी पलायन वृत्ति। गांव का युवा रोजगार की तलाश एवं धन कमाने की चाह में अपने घर-गाँव को छोड़कर सुदूर प्रदेश में जाकर बस रहा था। पलायन की यह समस्या उन्होंने स्वयं भोगी थी। उन्होंने अपने नाटकों में सामाजिक सरोकारों से जुड़े पक्षों को ऐसा बाँधा कि अभिव्यक्ति की एक शैली भिखारी शैली के नाम से जानी जाती है। आज भी सामाजिक कुरीतियों की यह गूंज क्षेत्र विशेष में सुनाई पड़ती है। भिखारी ठाकुर ने समाज सुधार हेतु लोकधमी

शैली का चयन किया। बिहार के प्रसिद्ध लोक-पारंपरिक नाथ लोरिक नाच के माध्यम से अपने समाज की तत्कालीन समस्याओं को स्वर दिया, साथ ही लोगों में चेतना जागृत करने का प्रयास किया। ये लोक धर्मी रचनाकार ही नहीं थे, बल्कि सामाजिक कुरीतियों से लगातार लड़ने और जुड़ने वाले कटिबद्ध कलाकार थे। उन्होंने बिहार क्षेत्र की लोक शैली लोरिक नाथ प्रतिष्ठित किया था। भिखारी ठाकुर का सबसे ज्यादा ध्यान पलायन वृत्ति को रोकना था, इसके लिए उन्होंने बिदेशिया नामक शैली को पुनर्जीवित किया। यह लौरिक नाच का ही एक रूप था, जिसमें एक स्त्री अपने पति के विदेश चले जाने पर परदेस जाने वाले बटोही को रोककर अपनी व्यथा सुनाती है। परदेश गये अपने पति को शीघ्र घर वापस आने का संदेश भिजवाती है। बटोही भी परदेस में रहने वाले उस परदेसी को ढूंढकर उसे घर वापस भेजने का भरसक प्रयास करता है। यह लोक शैली बिदेसिया के नाम से ही जग प्रसिद्ध हो गई।

बिदेसिया नाटक में स्त्री की प्रभावमयी भूमिका को हम संक्षेप में इस प्रकार देख सकते हैं - बिदेसी (पति) गौना के बाद विदा कराके अपनी पत्नी प्यारी सुन्दरी को घर लाता है। पति-पत्नी अभी दोनों ही गौना के शुभ और रंगीन वस्त्र में हैं। उनके पैर का महावर अभी छूटा भी नहीं है। तभी अचानक बिदेसी को कलकत्ता जाने की धुन सवार हो गई। नई ब्याहता पत्नी के लाख मनुहार करने पर भी बिदेसी पत्नी को तरह-तरह के प्रलोभन देकर गाँव-घर और बिसूरती ब्याहता को छोड़ कर कमाने के लिए शहर चला गया। कलकत्ता में जाकर कुछ रूपया कमाने के बाद बिदेसी शहर के चमक-दमक में अपना घर, अपनी पत्नी सबकुछ भूलकर वहीं का होकर रह गया। बिदेसी वहाँ एक अन्य स्त्री के साथ गृहस्थी बसा लेता है। दूसरी औरत से उसके दो बच्चे भी हैं।

गाँव में प्यारी सुन्दरी पति की प्रतीक्षा में रो-रोकर बेहाल है। एक दिन एक बुजुर्ग बटोही को देख कर प्यारी सुन्दरी उनके गन्तव्य स्थान के विषय में पूछती है। बटोही के द्वारा यह बताने पर कि वह कलकत्ता जा रहे हैं, प्यारी सुन्दरी उनसे अपना सारा दुःख सुनाती है और अपने स्वामी का रूप-रंग बताते हुए

बटोही से उनको ढूँढ़ लाने की प्रार्थना करती है। बटोही कलकत्ता जा कर बिदेसी को ढूँढ़ लेते हैं। वे बिदेसी को समझा-बुझाकर घर लौटने के लिए राजी कर देते हैं। बिदेसी दूसरी स्त्री को छोड़ कर अपने घर-गाँव लौट आता है। बिदेसी के गाँव लौटने के पश्चात दूसरी स्त्री भी अपने दोनों बच्चों के साथ बिदेसी के घर का पता पूछते-पूछते पहुँच जाती है। प्यारी सुन्दरी पति को पाकर धन्य हो गई और उपहार-स्वरूप सौत तथा दो बच्चे भी उसकी झोली में डाल दिए गए। इस प्रकार अन्त में पूरा परिवार मिल जाता है। प्रकट में ऐसा प्रतीत होता है कि नाटक सुखान्त है। किन्तु, नाटक पढ़ने के बाद उसके अलिखित और अघोषित प्रश्न मस्तिष्क को मथने लगते हैं। इस पुरूष-प्रधन समाज में क्यों, क्या और कब तक सारी मर्यादा के निर्वाह की जिम्मेदारी स्त्री पर थोपी जाती रहेगी? स्त्री को ही कब तक हर बार त्याग की मूर्ति बनना पड़ेगा? स्त्री-पुरूष सम्बन्ध में स्त्री चाहे पत्नी के रूप में हो अथवा प्रेयसी के रूप में , कब तक छली जाती रहेगी? इस विषय में सबसे पीड़ादायक पहलू है – पुरूष द्वारा छली गई स्त्री को अन्त में समाज द्वारा अपशब्दों से नवाज़ा जाता है (रचनाकार ने दूसरी स्त्री के लिए जो शब्द प्रयुक्त किया है, सभ्य और शिष्ट समाज में वह एक भद्दी गाली है)।

बिदेसी के परदेस चले जाने पर प्यारी सुन्दरी कहती है –
तूरि दिहलन पति-पत्नी नतवा ए सजनी।
हमरा घोटात नइखे कनवाँ भर अनवाँ ए सजनी।
चाभत होइहे मगही पानवाँ ए सजनी।

पत्नी प्यारी सुन्दरी जो कुछ ही दिन पूर्व ब्याह कर ससुराल आई है, अभी गाँव-घर के कोनों से भी परिचित नहीं हो पाई, पति-पत्नी के रिश्ते की गरिमा और मर्यादा को समझ रही है। बिदेसी के परदेस-गमन के पश्चात वह अकेली ही ससुराल के चौखट के भीतर रहकर अपना दायित्व निभा रही है। बिदेसी पति-पत्नी के पवित्रा बन्धन को तोड़कर अपने तन-मन के सुख में डूबा हुआ है। विरहणी पत्नी दुःख में अन्न का एक कण भी कंठ से नीचे नहीं उतार पा रही है।

पियऊ का बियोग में प्रान छुटि जाई,
हमरे सिरवे बीतत बा, ना दोसरा का बुझाई।

पति के वियोग में पत्नी प्यारी सुन्दरी के प्राण निकलना चाहते हैं। प्यारी सुन्दरी कहती है कि पति-वियोग का यह दुःख जो मेरे ऊपर बीत रहा है उसे कोई दूसरा महसूस नहीं कर सकता। विरह की जिस ज्वाला में प्यारी सुन्दरी जल रही है, उसकी आँच बिदेसी को क्यों नहीं लगती? इतना ही नहीं गाँव के मनचलों से वह अपने सतीत्व को भी बचाती है। गाँव का कथित देवर भाँति-भाँति के प्रलोभनों के द्वारा प्यारी सुन्दरी को रिझाने का प्रयास करता है –
भउजी काहे रोवत बाड़ू चुप रह भइया परदेस गइलन,
तू हमरा से रूपया, गहना, कपड़ा जे कुछ खोज हम देब।

यहाँ गाँव के मनचले देवर के रूप में पुरूष की यौवन-लोलुप-दृष्टि दिखाई देती है। इस बहाने से रचनाकार ने सती के सतीत्व को भी परखा है। प्यारी सुन्दरी अपने चारित्रिक दृढ़ता का परिचय देती हुई देवर को दो टूक जवाब देती है –
प्यारी के मन लागल बाटे जहंवा बाड़न राम।
माड़ो में सत बंध्न भइल बा कहत भिखारी हजाम।।

हिन्दू विवाह की रस्म में विवाह-मण्डप में दुल्हा-दुल्हन अग्नि को साक्षी मानकर सात फेरे लेते हैं। ये सात फेरे सात जन्मों के बंधन हैं। लेकिन इस सातबंधन में क्या दुल्हन ही बांधी जाती है? दुल्हा सभी बंधनों से मुक्त रखा जाता है? प्यारी सुन्दरी को इस सातबंधन की सुदृढ़ता और पवित्रता का अहसास है। पति की लंबी अनुपस्थिति में भी वह विवाह-मण्डप में लिए गए सात फेरे की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती है। जो बंधन प्यारी सुन्दरी को बांधे रखता है, वही बंधन बिदेसी के लिए अर्थहीन क्यों हो गया?

बटोही के समझाने पर बिदेसी अपने गाँव प्यारी सुन्दरी के पास लौटने के लिए आतुर हो जाता है। दूसरी स्त्री बिदेसी को जाने नहीं देना चाहती क्योंकि अब बिदेसी से ही उसका भी घर-संसार है, दो बच्चे भी हैं। वह बिदेसी से कहती है –

पिया पिरतिया लगाई के, दूर देस मत जाहू।
कहे भिखारी भीख मांगि के लाइब, तुम खाहू।

किन्तु, बिदेसी को इस स्त्री का प्रेम और उससे पैदा हुए दो बच्चे भी रोक नहीं पाए। बिदेसी स्वार्थी पति, धूर्त प्रेमी तथा गैर-जिम्मेदार पिता साबित होता है। विवाहित बिदेसी परदेस जाकर, कुछ रूपया-पैसा कमाने के पश्चात अपने इन्द्रिय सुख के लिए दूसरी स्त्री के साथ घर बसा लेता है। रचनाकार जो कि समाज के विचार का प्रतिनिधित्व करता है, पुरूष के उच्छृंखलता को नजरअंदाज करता है और दूसरी स्त्री को बड़ी सहजता से पूरे नाटक में जिस शब्द द्वारा सम्बोधित करता है, वह किसी भी स्त्री के लिए अपमानजनक है। मनचले देवर के माध्यम से प्यारी सुन्दरी के सतीत्व की भी परीक्षा ली गई है अर्थात्, पति की अनुपस्थिति में पत्नी को भी शक के दायरे में रखा गया है। अकेली स्त्री के चरित्र की ठेकेदारी समाज अपने ऊपर ले लेता है। पति (बिदेसी) के घर लौटने पर पत्नी (प्यारी सुंदरी) पति के साथ ही उसकी प्रेयसी और उसके दो बच्चों को सहने के लिए बाध्य है।

भिखारी ठाकुर ने 'बिदेसिया' में ऐसी स्त्रियों के पुनर्संयोजन के लिए मार्ग प्रशस्त किया है, जिन्हें समाज घृणित दृष्टि से देखता है। किन्तु यहाँ प्रश्न दूसरे तरह का है। एक ही घर में दो स्त्रियां, एक पुरूष के साथ साँझा करने के लिए लाचार हैं। ऐसी स्थिति में दोनों ही स्त्रियां क्या संतुष्ट और खुश रही होंगी? दोनों स्त्रियों की बेचैनी का अंदाज रचनाकार अथवा समाज को क्यों नहीं है? दो स्त्रियों के बीच पुरूष बेदाग और सभी आरोपों से मुक्त है। उसके जीवन में पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्री का होना सहज तथा परिस्थितिजन्य है। 'बिदेसिया' में रचनाकार ने समाज के पुरूष-प्रधान विकृत मानसिकता को स्थापित किया है।

'बिदेसिया मूलतः गीतात्मक नाट्य शैली है, जिसमें गीत और संगीत का विशेष महत्व है। गायन ऊँचे स्वर में किया जाता था। गीत में साथ देने के लिए कोरस भी होता था, जिन्हें समाजी' नाम की संज्ञा दी जाती थी। ये समाजी मंच पर ही उपस्थित रहते हैं। कभी-कभी 'ए' या 'हो' आदि बोलकर ताल देने का कार्य करते हैं। बीच में छोटा-मोटा अभिनय भी कर लेते हैं। गायन करने, वाद्य यंत्रों के वादन और भीड़ आदि के संवाद बोलने की भूमिका अदा करते हैं। बिदेसिया में गीतों के साथ नृत्य का भी संयोजन होता है, पर नृत्य, गीत आरोपित ना होकर पटना की माँग होते हैं। बिदेसिया शैली के नृत्य में स्वाभाविकता अधिक होती है, नृत्य में कमर की गति और उछल-कूद पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है बिदेसिया को किसी विशिष्ट रंगमंच की आवश्यकता नहीं थी। चार-पांच लगती को जोड़कर भी संघ बना लिया जाता था। जिसके एक तरफ समाजी, अभिनेता और बाकी तीन तरफ दर्शक बूँद बैठा करते थे ना कोई पर्दा होता, ना दृश्यबन्ध की आवश्यकता होती थी। बिदेसिया शैली में पारसी संघ का ज्यादा महत्व नहीं होता, कलाकार रूप सज्जा के लिए पाउडर, काजल, बिंदी, बाली आदि केवल यही प्रयोग करते हैं। वेशभूषा में साधारण धोती, मिरजई और स्त्री पात्र साड़ी और ब्लाउज पहनते थे अभिनय की दृष्टि से पारसी रंगमंच की तरह वि

बिदेसिया नाट्य किसी तरह का भ्रम नहीं पैदा करते थे। इसमें पात्र और चरित्र का अस्तित्व मंच पर बराबर रखा जाता था। इसमे अतिरंजना का प्रयोग ना करके सहजता एवं स्वाभाविकता बनाए रखने का प्रयास रहता था। स्त्री पात्रों की भूमिका में पुरुष कलाकार ही निभाते थे। इन विशेषताओं के फलस्वरूप आज बिदेसिया को राष्ट्रीय स्तर पर विशेष पहचान मिल चुकी है। इस कृति के माध्यम से भिखारी ठाकुर का सांस्कृतिक योद्धा और समाज चितक का रूप मुख्यतः उभरा है। वास्तव में वे अपने जीवन काल में ही लीजेंड बन चुके थे।

निष्कर्षत: हम यह कह सकते हैं कि लोकनाट्य एवं रंगमंचीय शैली में अनेक नवीन प्रयोग होत रहते हैं और हम निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि भारतीय लोकनाट्य में बिदेसिया का प्रदेय अद्वितीय एवं अतुलनीय हैं।

सन्दर्भ सूची -

1. फिजी में हिन्दी : विविध प्रसंग , सं. डॉ. राजेश कुमार "माँझी" सर्व भाषा ट्रस्ट , जे - 49 गली नं. 38 राजापुरी मेन रोड नई दिल्ली 110059
2. बिदेसिया- भिखारी ठाकुर , हिन्दी समय डॉट काम
3. बिदेसिया की स्त्री, अर्चना उपाध्याय, सहचर त्रैमासिक ई पत्रिका ,7 मई 2017
4. लोकनाट्य परम्परा और प्रवृत्तियाँ - महेन्द्र भाणावत, बाफना प्रकाशन , जयपुर

हिन्दी नुक्कड नाटकों का सामाजिक परिदृश्य

डॉ. प्रदीप कुमार
प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग
लॉर्ड्स विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान
मोबाईल-9460142690
मेल-pradeepbas@gmail.com

सारांश

नुक्कड़ नाटक सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना का एक सशक्त माध्यम है। साथ ही आज नुक्कड नाटक पर्यावरण, साक्षरता, परिवार नियोजन, मद्य-निषेध जैसे तमाम विषयों पर जन-चेतना बढ़ाने का कार्य कर रहा है। नुक्कड़ नाटक को कुछ राजनीतिक या सामाजिक प्रश्नों पर जनता से सीधे संवाद का माध्यम भी कहा जा सकता है। चारों तरफ दर्शकों से घिरे, खुले आसमान के नीचे, चलती सड़क पर वाहनों के शोर के बीच दर्शकों तक अपनी बात सम्प्रेषित करना सरल काम नहीं है। लेकिन यह कठिन कार्य नुक्कड नाटक करता है। अतः नुक्कड नाटक एक सषक्त और विविधतापूर्ण विधा है।

बीज शब्द- *नुक्कड़, नाटक, प्रभाव, परिवार, भारतीय, समाज*

शोध आलेख

समय-समय पर समाज की अच्छाई तथा बुराई को साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। साहित्य समाज को प्रतिबिंबित करता है। प्राचीन समय से लेकर आधुनिक साहित्य तक यह प्रतिबिंब दिखाई देता है। इस प्रक्रिया में हिंदी नुक्कड़ नाटक भी पीछे नहीं रहें। हिंदी नुक्कड़ नाटकों के माध्यम से नाटककारों ने सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक आदि विविध विषयों का सूक्ष्म विवेचन किया है। इन नाटककारों ने मात्र नाटक नहीं लिखे; बल्कि उन्हें समाज के सामने प्रस्तुत भी किया है। लोगों तथा विविध समुदायों को अपने अधिकार तथा न्याय के प्रति जागृत तथा प्रेरित किया। समाज में घटनेवाली उन

विभिन्न समस्याओं से आम लोगों को परिचित कराया जो उनके जीवन को प्रभावित करती है।

समाज संरचना में परिवार का स्थान विशिष्ट है। परिवार ही समाज का आधार होता है। परिवार के सदस्यों में समन्वय, प्रेम, सहयोग, सकारात्मकता होगी तो परिवार खुशहाल रहता है। परिवार के सदस्य प्रेमभाव तथा स्नेह से एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं तो वह एक आदर्श और अच्छा परिवार कहलाता है। लेकिन प्रेम का स्थान अनादर, घृणा, तिरस्कार लेता है, तब पारिवारिक संबंधों में विघटन और बिखराव पैदा होता है। आज पारिवारिक संबंधों में बिखराव आ रहा है। परिवारों का विघटन हो रहा है। यह परिवार तथा समाज दोनों की दृष्टि से उचित नहीं है। डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल ने अपने नुक्कड़ नाटक 'ये सपनों के मारे लोग' में रायबहादुर नायक के साथ घटित घटना को अभिव्यक्त किया है। इसमें रायबहादुर के बच्चे पढ़-लिखकर विदेश में जा बसते हैं। जहाँ माँ-बाप अपने बच्चों को बुढ़ापे का आधार समझते थे लेकिन अब वह स्वार्थ ने जगह ले ली है। जमूरा रायबहादुर की स्थिति का वर्णन करते हुए कहता है-''रायबहादुर ने सोचा था कि बेटे बुढ़ापे में इनकी सेवा करेंगे, पर एक बेटा अमेरीका जा बैठा और दूसरा ब्रिटेन। पहले चिट्ठी तो आ जाती थी, अब चिट्ठी भी नहीं आती। रायसाहब नौलक्खी नहीं रहे तो मक्खी भी नहीं भिनभिनाती है अब इनके कान में। धन होता हो सपने खरीद नहीं सकते। अब न पेट में आँत है, न मुँह में दाँत है। शांत नहीं हैं, अशांत हैं।''1

आज स्थिति यह हो गई है कि परिवार में स्नेह तथा संबंधों की जगह पैसा और नौकरी अधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं। पैसों के सामने परिवार को नगण्य मान लिया है। धन-दौलत ही सबसे महत्वपूर्ण है। बच्चे पढ लिख कर अपनी नौकरी करते हैं। नौकरी के लिए अन्य शहर या विदेश तक जाते हैं। वहां जाकर उनके लिए अपनी नौकरी और अपना परिवार यही जरूरी हो जाता है। अपना परिवार से तात्पर्य उनकी पत्नी, बच्चे और वे स्वयं। इस परिवार में माता-पिता, दादा-दादी का कोई स्थान नहीं है। इस तरह से नौकरी और पैसा परिवार के विघटन का

मुख्य कारण बन जाता है। इसीलिए बहुत सारे वृध्दाश्रम खुले हुए हैं। यहां नाटककार पैसे और नौकरी की वजह से बिखरते परिवार की समस्या को इंगित कर रहे हैं।

परिवार में केवल अपने बेटे ही माँ-बाप को त्यागते हैं, ऐसा नहीं हैं बल्कि घर में आनेवाली बहू द्वारा भी अपने सास-ससूर को त्याग दिया जाता है। या ऐसी स्थितियां पैदा की जाती हैं कि बेटा अपनी पत्नी के कहने पर अपने मां बाप को त्याग देता है। उसकी वजह भी धन, मनमर्जी, एकांत, कार्य आदि होती हैं। डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल ने 'यह दुनिया और दिखावा' नुक्कड़ नाटक में बेटे और बहू के दुराचार को अभिव्यक्त किया है। बहू अपनी सास से धन लेने के लालच में उनकी सेवा करती है। जब तक उसे धन नहीं मिल जाता वह अपनी सास की हर बात मानती है और उनकी खूब सेवा करती है। लेकिन उसके मन में कुछ ओर ही चल रहा होता है। साधना के संवादों से वह स्पष्ट होता है। वह कहती है-

''साधना-माँ के कारण नहीं बच्चू जी, माँ की गड्डी के कारण उनकी सेवा होती है। कितना कुछ लिए बैठी है बुढ़िया, पर जीने की कुछ हद भी हो, मैं तो सेवा करते-करते थक मरी पर ये पता नहीं कब मरेगी।''2 माँ अपने बेटे और बहू पर पूर्ण विश्वास करती है। लेकिन बहू और बेटे के दिमाग में और ही खिचडी पकती रहती है। वे चाहते हैं मां के हिस्से की जायदाद तुरंत हम अपने बेटे के नाम करवा लें। अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि मां अपनी जायदाद अपने भाई यानी मामा के नाम करवा दें। इस भय से वे हमेशा चिंतित रहते हैं। इसी लालच में मां की सेवा बहू द्वारा की जाती है। यहां स्पष्ट हो रहा है कि नाटककार बदलते इन रिश्तों पर कटाक्ष कर रहे हैं।

जनम ने 'ये हम क्यूं सहे' नुक्कड़ नाटक में भाई-भाई के संघर्ष और विघटन को दर्शाया है। दोनों भाई एक ही कंपनी में काम करते थे। एक दिन कंपनी में कई सारे मजदूरों की मौत हो जाती है। उसमें उस व्यक्ति का भी भाई मारा जाता है, लेकिन अपनी नौकरी बचाने के लिए अपने भाई को पहचानने से इंकार कर देता है।

‘‘व्यक्ति एक-एक लाश। एक अधजली-सी लाश। उसको लेकर हम मोहन नगर गए। वहीं एक आदमी बैठा था, रो रहा था। उसी कंपनी में काम करता था। हमने पूछा-(मजदूर से) ‘भैया, क्यों रो रहे हो? कौन मर गया तुम्हारा? तो वह चुप हो गया। आंसू भी बंद हो गए। तब बगल में खडे उसके दोस्त ने डांटकर कहा सच-सच बता कौन मरा है तेरा ? ये सीटू वाले हैं। अच्छे लोग हैं। बता दे।

अभिनेता-हां, मेरा भाई मरा है।

व्यक्ति दो-मतलब भाईसाहब अपने रोजगार को बचाने के लिए अपने भाई को भी पहचानने से इंकार कर रहा था वो।’’3 इस प्रकार परिवार के विघटन के लिए तथा आपसी संबंधो में झगड़े की वजह पैसा बना है। रिश्तों में कडवाहट बन जाती है। इस यथार्थ को नुक्कड़ नाटककारों ने अपने नाटकों में सामाजिक यथार्थ द्वारा अभिव्यक्त किया है। अर्थात आज सामाजिक जीवन में निर्वाह के लिए नौकरी महत्वपूर्ण बन गई है। नौकरी को लेकर केवल पूरी दुनिया में ही प्रतियोगिता नहीं है बल्कि परिवार में भी नौकरी के लिए भाई-भाई संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं। यही समाज का वास्तविक रूप है। जिसे नुक्कड़ नाटककारों ने दिखाया है। नुक्कड़ नाटककारों ने परिवार में होने वाले इन विघटनों को उजागर किया है।

परिवार की नींव स्त्री-पुरुष के गहरे प्रेम संबंध पर निर्भर है। सदाचार और समन्वय के भाव से ही परिवार की जड़े मजबूत होती हैं। पति-पत्नी का प्रेम जितना अधिक गहरा होता है उतने अच्छे संस्कार और आदर्श वे अपने परिवार को देते हैं। परंतु स्त्री-पुरूष के संबंधों में अलगाव हो तो परिवार के साथ सामाजिक दृष्टि से भी दुष्परिणाम होते हैं। पति-पत्नी या अन्य व्यक्तियों से भी उचित सम्मान प्राप्त नहीं होता है। स्त्री-पुरूष संबंधों में मूल्यहीनता सामाजिक समस्या है। इस नैतिक जिम्मेदारी को किस प्रकार निभाया जाता है, इसके अनेक संदर्भ हिंदी नुक्कड़ नाटकों के माध्यम से व्यक्त किए गए हैं। अनैतिक संबंधों के कारण प्रेम किस प्रकार से बदनाम होता है। रिश्तों में किस प्रकार कडवाहट पैदा होती है। सिर्फ

अपने लिए सोचने की प्रवृत्ति विवाद पैदा करती है। इन बातों को नुक्कड नाटकों में उजागर किया गया है।

विवाह हो जाने पर पति-पत्नी में जो पवित्र रिश्ते का निर्माण होता है, उसे पति कई बार पैसों पर तौलता है। संयोगवश किसी पुरूष की शादी गरीब परिवार में हो जाए तो वह व्यक्ति हमेशा अपनी पत्नी को कोसता रहता है। इस यथार्थ को नुक्कड़ नाटकों में प्रस्तुत किया है। राजेश कुमार अपने नुक्कड नाटक भ्रष्टाचार के आचार में कहते हैं-''आखिरी बता, क्या मिला मुझे इस शादी से? मैं तो पहले ही उस लड़की से शादी नहीं करना चाहता था। आप लोगों के कहने में मैंने अपनी जिंदगी नरक कर। डाली एक किरानी की बेटी से शादी करा दी। अपने रमेश को देखिए। शादी के बाद अपने ससुर की ठेकेदारी चला रहा हैं। क्या ठाठ हैं!''4 अर्थात अकर्मण्य व्यक्ति हमेशा परावलंबी रहकर जीना चाहता है। वह स्वयं मेहनत नहीं करना चाहता बल्कि दूसरी की मेहनत पर ऐश करना चाहता है। इस तरह से की स्थिति में स्त्री पुरुष के संबंधों में तनाव पैदा होते हैं और परिवार का बिखराव होता है। माता-पिता ने शादी का निर्णय लिया हो और बेटा अपनी शादी से खुश नहीं है, तो वह अपने ही माता-पिता को कोसने लग जाता है। आज के युग में शादी को अलग अर्थ में भी लिया जा रहा है। केवल दो मनों का मिलन ही पर्याप्त नहीं रहा है। अब तो उत्पादन का माध्यम, व्यापार के लिए पैसों की धन राशि और अमीरी के अर्थ में भी शादी को समझा जा रहा है। शादी के कारण किसी को ठेकेदारी, नौकरी, व्यापार, कार, अकूत धन प्राप्त हो रहा है। इसी तरह की अभिलाषा अधिकतर युवाओं की बन रही है। समाज का यह नया अजीब प्रचलन सामने आया है। लेकिन ऐसी शादियाँ, रिश्तेदारी अधिक दिनों तक नहीं चलती। पुरूष या स्त्री सच्चे प्रेम के लिए बने हैं। उनका संबंध प्रेम पर ही रहना चाहिए किसी वस्तु पर नहीं। लेकिन प्रेम के लिए किसी दूसरे व्यक्ति की खोज करते हुए नजर आते हैं तो संबंधों में दरारा पडती है। कई औरतें अपने पति के साथ तो रहती हैं लेकिन प्रेम किसी और से करती हैं। परिवार में केवल वह

पत्नी बनने का नाटक करती रहती हैं। डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल ने 'यह दुनिया और दिखावा' नुक्कड़ नाटक के माध्यम से इसे उजागर किया है।

''गोपालदास-ठीक है दीदी, पर रात-दिन मेरी सेवा करने, मुझसे लगाव दिखाने का नाटक क्यों किया उसने?

सावित्री-ताकि तुम उस पर संदेह न करो और यह भी हो सकता है गोपा कि वह ऐसा करते हुए अपने प्यार को भुलाने की कोशिश कर रही हो, पर वह इसमें सफल नहीं हो सकी।''5 यहां नुक्कड नाटककार पति-पत्नि के रिष्तों के मध्य आने वाले विघटन को उजागर कर रहे हैं। इससे स्पष्ट है, पति-पत्नी के प्रेम में जो पवित्रता होती है, वह खत्म हो रही है। एक तरह से प्रेम खत्म हो रहा है और दिखावा तथा नफरत बढ़ रही है। नाटक में उस स्त्री के प्रेम को भूल मानने का प्रयास किया गया है तथा ऐसे प्रेम को अधिक महत्व देने की जरूरत नहीं मानी जा रही है। लेकिन जब पति को अपनी पत्नी के बाह्य संबंधों की जानकारी मिलती है तब समस्या गंभीर रूप धारण कर लेती है। इस तरह के संबंध को स्त्री हो या पुरुष कोई भी सहन नहीं कर पाते हैं। इस तरह की स्थिति के कारण पारिवारिक तनाव बढ जाता है। अनेक समस्याएँ सामने आती हैं। नुक्कड़ नाटककारों ने इस पारिवारिक मूल्यहीनता के संबंधों को अभिव्यक्ति दी है। परिवार में ही ऐसी घटनाएँ घटित नहीं होती। अर्थात उसका प्रभाव समाज पर बाहर भी दिखाई देता है। अन्य लड़कियों के बारे में भी इस प्रकार की घटनाएँ घटित होती हैं। वे अपने प्रेमियों के साथ भाग जाती हैं। नए जीवन के स्वप्न देखती हैं। लेकिन उन लडकियों ने जिनसे प्रेम किया था, वह लड़के केवल धन के लालच में ही उनसे प्रेम करते हुए दिखाई देते हैं। इससे उन लडकियों को, परिवार को जीवन संकटमय हो जाता है। ऐसी स्थिति में लडकियों को बाद में पछताना पड़ता या आत्महत्या करनी पड़ती है। नुक्कड़ नाटक में इस यथार्थ को व्यक्त किया गया है-

‘‘जमूरा-टाल नहीं रहा हूँ, मदारी। शांतिदेवी अपने प्रेमी के साथ भागकर दिल्ली के एक होटल में ठहरी। प्रेमी ने पूछा, बोल! मेरी जान क्या-क्या लाई है घर से। शांति ने अपने साथ लाई हुई पोटली खोल दी।

मदारी-पोटली में से क्या निकला जमूरे?

जमूरा-पोटली खुली तो उसमें दो जोडी पुराने कपड़े, कंघा, नेल पॉलिश, पाउडर और हेयर आयल की छोटी शीशी थी।

जमूरा-फिर क्या होना था, मदारी? आधी रात को शांतिदेवी जब गहरी नींद सो रही थी, तो उसका प्रेमी होटल से फरार हो गया और यह बेचारी सपने देखती रह गई।’’6 इस प्रकार कई प्रेमी केवल धन के लालच में ही लड़कियों को फाँसते हैं। नुक्कड नाटककार कहना चाहते हैं कि प्रेम करने से पूर्व अपने विवेक से यह जांचना परखना चाहिए कि सामने वाले की वास्तविक इच्छा क्या है। वह आपसे प्रेम कर रहा है या प्रेम करने का नाटक कर रहा है। वह वास्तव में आपसे प्रेम करता है या आपकी वस्तु से या सिर्फ षारीरिक भूख शांत करने का नाटक है यह सब। क्योंकि उम्र के प्रभाव में प्रेमी और प्रेम के अलावा कुछ भी सच नहीं लगता है। इसलिए बाकि को झूठ और इसे सच मानकर लडके-लडकियां फंस जाते हैं। इसमें लडकियां अधिक फंसती हैं। क्योंकि प्रेमी लडके के द्वारा प्रेम के नाटक में धन न मिलने पर उन्हें छोड़ दिया जाता है। कभी-कभी ऐसी लड़कियों से उनके प्रेमी बलात्कार भी करते हैं। उस समय इन लड़कियों की जो स्थिति हो जाती है; उसे व्यक्त करना कठिन है। ‘आर्तनाद’ नुक्कड़ नाटक में इस पर प्रकाश डाला गया है। जिसमें सत्यप्रकाश नामक व्यक्ति बेबस औरत पर आरोप लगाता है। वह केवल समाज के उन लोगों का भी प्रतिनिधित्व करता है, जो बिना कुछ सोचे-समझे दूसरों पर लांछन लगाने का कार्य करते हैं। सत्यप्रकाश कहता है- ‘‘मैं आपको ट्यूशन कांड का दूसरा एपिसोड सुनाता हूँ। वो है न पूरनचंद, पूरनचंद की बीवी है बेलादेवी, बेलादेवी का किसी के साथ चक्कर है, जिसके साथ चक्कर है उस चक्कर का पवन कुमार को पता चल जाता है, पवन कुमार

करता है बेलादेवी को ब्लैकमेल, बेलादेवी पवन से बदला लेने के लिए अपनी बेटी प्रीति से कहती है कि तू कह दियो कि पवन कुमार ने तेरे साथ बलात्कार किया है।''7 किसी भी व्यक्ति को एक दिन, एक पल या एक साल में नहीं जाना सकता। उसकी वास्तविक इच्छा क्या है यह जब तक समझ में आता है तब तक वह धौखा दे चुका होता है। इसलिए आज की षड्.यत्रकारी फरेबी दुनिया में बहुत सोच समझ के कदम उठाने की जरूरत है।

निष्कर्ष

नुक्कड नाटककार इसी ओर सबका ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। अर्थात समाज के सभी व्यक्तियों का बर्ताव एक जैसा नहीं होता है। उनकी सोच, रहन-सहन तथा नैतिक-अनैतिक अंतर को देखा जाता है। स्त्री-पुरुषों द्वारा समाज बना है, परंतु जब इन दोनों के संबंधों में मूल्य को महत्व नहीं रहता, तब समाज भी बिखर जाता है। समाज की स्थापना तथा मजबूती के लिए स्त्री-पुरूष के संबंधों में उच्च मूल्यों की धारणा आवश्यक है। वैसे देखा जाए तो आज भी भारतीय समाज में पुरूषों से अधिक स्त्री उपेक्षित रही है। उसकी स्वतंत्रता पर कई सारे बंधन समाज ने थोप दिए हैं। उस स्त्री का शोषण या उत्पीड़न आज भी किया जा रहा है। स्त्री अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही है। इस संघर्ष को हिंदी नुक्कड़ नाटककारों ने जनता के सामने रखा है।

संदर्भ सूची

1. अग्रवाल, डॉ. गिरिराजशरण, ग्यारह नुक्कड़ नाटक, पृ.-112
2. अग्रवाल, डॉ. गिरिराजशरण, ग्यारह नुक्कड़ नाटक, पृ.-96
3. जनम, सरकश अफसाने, जनम के चुनींदा नुक्कड़ नाटक, पृ.-292-293
4. कुमार, राजेश, भ्रष्टाचार का आचार, पृ.-61
5. अग्रवाल, डॉ. गिरिराजशरण, ग्यारह नुक्कड़ नाटक, पृ.-90
6. अग्रवाल, डॉ. गिरिराजशरण, ग्यारह नुक्कड़ नाटक, पृ.-92
7. जनम, सरकश अफसाने, जनम के चुनींदा नुक्कड़ नाटक, पृ.-161

भारतीय संगीत में शास्त्रीय और लोक-वाद्यों का विकास

शैलेन्द्र वर्मा
शोधार्थी, संगीत विभाग
शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
डॉ. रवि कुमार पण्डोले
सह-प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष
संगीत विभाग, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

सारांश

मानव ने प्राचीनकाल से ही अभिव्यक्ति के लिए संगीत का प्रयोग किया हैं। आदिम सभ्यता के समय मानव द्वारा जिन वाद्ययंत्रों का प्रयोग किया गया, वे अविकसित अवस्था में थे। आज के समय में जो वाद्य दिखाई देते हैं। वहाँ तक पहुँचने में वाद्यों का एक श्रृंखलाबद्ध इतिहास हैं। प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक काल के वाद्यों के अध्ययन से पता चलता हैं कि प्राचीनकाल के वाद्य पहले बहुत ही साधारण थे। समय के साथ उनमें क्लिष्टता तथा बजाने में कुशलता आई। प्रारम्भिक वाद्यों में सौन्दर्यात्मकता का अभाव था। उन वाद्यों की ध्वनियाँ तेज नादयुक्त तथा तीखी थी, परन्तु धीरे-धीरे मानव ने अपनी बुद्धि के विकास के साथ वाद्यों की सामग्री बनाने के ढंग व बजाने के प्रयोग में परिवर्तन किया। भारतीय संगीत गायन, वादन एवं नृत्य का सम्मिश्रण है। सामान्यतः वाद्य से आशय बजाने योग्य अथवा वादनीय यन्त्र से है। प्राचीनकाल से ही मानव द्वारा वाद्ययंत्रों का प्रयोग किया जा रहा है। इन वाद्ययंत्रों को तत् वाद्य, घन वाद्य, सुषिर वाद्य एवं अवनद्ध वाद्य के रूप में विभाजित किया गया हैं। जिनका भारतीय संगीत में शास्त्रीय और लोकवाद्यों का विकास हुआ हैं। जिनका प्रयोग संगीत में किया जाता हैं।

बीज शब्द: *लोकवाद्य, लोकसंस्कृति, वाद्ययंत्र, गायन, वादन, नृत्य, वीणा*

शोध आलेख

मानव ने प्राचीनकाल से ही अभिव्यक्ति के लिए संगीत का प्रयोग किया हैं। आदिम सभ्यता के समय मानव द्वारा जिन वाद्ययंत्रों का प्रयोग किया गया, वे अविकसित अवस्था में थे। आज के समय में जो वाद्य दिखाई देते हैं। वहाँ तक पहुँचने में वाद्यों का एक श्रृंखलाबद्ध इतिहास हैं। प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक काल के वाद्यों के अध्ययन से पता चलता हैं कि प्राचीनकाल के वाद्य पहले बहुत ही साधारण थे। समय के साथ उनमें क्लिष्टता तथा बजाने में कुशलता आई। प्रारम्भिक वाद्यों में सौन्दर्यात्मकता का अभाव था। उन वाद्यों की ध्वनियाँ तेज नादयुक्त तथा तीखी थी, परन्तु धीरे-धीरे मानव ने अपनी बुद्धि के विकास के साथ वाद्यों की सामग्री बनाने के ढंग व बजाने के प्रयोग में परिवर्तन किया। भारतीय संगीत गायन, वादन एवं नृत्य का सम्मिश्रण है। सामान्यतः वाद्य से आशय बजाने योग्य अथवा वादनीय यन्त्र से है। प्राचीनकाल से ही मानव द्वारा वाद्ययंत्रों का प्रयोग किया जा रहा है। इन वाद्ययंत्रों को तत् वाद्य, घन वाद्य, सुषिर वाद्य एवं अवनद्ध वाद्य के रूप में विभाजित किया गया हैं। जिनका भारतीय संगीत में शास्त्रीय और लोकवाद्यों का विकास हुआ हैं। जिनका प्रयोग संगीत में किया जाता हैं।

संस्कृति शब्द की परिभाषा के सम्बध में अनेकों विद्वानों और मनीषियों के अपने-अपने मत और तर्क हैं। किसी भी देश या स्थान की संस्कृति वहाँ कि रहन-सहन, धर्म, रीति-रिवाज, खान-पान एवं वेशभूषा लोकरंजन के सम्मिश्रण में परिलक्षित होती हैं। लेकिन हिन्दी विषय के मूर्धन्य साहित्यकार हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के मतानुसार ईश्वर एवं प्रकृति प्रदत्त संसाधनों के अतिरिक्त मनुष्य ने अपने ज्ञान, बल और सद्विवेक के माध्यम से जो भी संसाधन एकत्र किये हैं। वो सब संस्कृति कहलाते हैं। बाद में संस्कृति अपना विकास करते हुए आँचलिक क्षेत्रिय और राष्ट्रीय संस्कृति के रूप में परिलक्षित होती हैं।

समय वातावरण और मौसम के अनुसार संस्कृतियों ने अपना विकास विभिन्न क्षेत्रों में किया हैं। अनादिकाल से लोकरंजन के क्षेत्र में संगीत को लेकर संस्कृति

ने लोक वाद्य और शास्त्रीय वाद्यों के क्रमिक विकास सोपान और आयाम तय किये हैं।

प्राचीनकाल से मनुष्य भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये गीत, संगीत, नृत्य और वाद्यों को माध्यम बनाता आ रहा हैं। और वैसे भी संगीत में वाद्यों का अपना अलग ही महत्व हैं। इसके बिना गायन, वादन, और नृत्य का सौन्दर्य अधखिली कली के समान होता हैं। जिस प्रकार अधखिली कली खिलने पर पुष्प का रूप धारण कर लेती हैं, उसी प्रकार संगीत के सभी विभाग यानी के गायन, वादन और नृत्य भी वाद्यों की संगति पाकर पूर्ण विकसित सुमन की भाँति खिल उठते हैं। केवल गायन, वादन और नृत्य में ही नहीं वरन् नाटकों में भी वाद्यों का विशेष महत्व होता हैं। सर्वप्रथम भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र में संगीत वाद्यों के वर्गीकरण का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता हैं।

भरतमुनि ने संगीत वाद्यों का उसके स्वरूप के आधार पर निम्नानुसार चार वर्गों में विभाजित किया हैं-

1) तत् अर्थात् तंत्री युक्त वाद्य
2) अवनद्ध अर्थात् चर्मावध वाद्य जैसे की पुष्कर आदि।
3) घनवाद्य अर्थात् कास्य वाले वाद्य
4) सुषिर अर्थात् वंशादि वाद्य

लोक वाद्य और उनके विकास के सम्बन्ध में यदि हम विचार करें तो पायेगें कि लोक वाद्यों का सम्बन्ध सम्पूर्ण रूप से हमारे लोक जीवन से जुड़ा हैं। लोक संगीत जन-जीवन में हर्ष-उल्लास और उसकी भावनाओं का प्रतीक होता हैं। लोकगीत मानव हृदय के सरल भाव है। जिन्हें वह शब्दों और सुरों के माध्यम से व्यक्त करता हैं। गीतों में लय की प्रमुखता होती हो। जिसके लिये वाद्यों की आवश्यकता हुई। फलस्वरूप लोकगीतों में वाद्यों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। पौराणिक गाथाओं में भी हम वाद्यों को किसी न किसी रूप में पाते हैं। जैसे कि

शिव का डमरू, कृष्ण की बंशी, विष्णु का शंख। लोकजीवन में आनन्द और उत्साह बढ़ाने में वाद्यों का प्रयोग सदैव ही होता आया हैं। गीत और नृत्य दोनों ही वाद्यों पर आधारित होते हैं। अब लोकजीवन में इन कलाओं को सुरक्षित रखने में वाद्यों ने समुचित योगदान दिया हैं। विभिन्न वाद्यों ने हमारे लोकजीवन में साधन और भक्ति पक्ष को सदैव बल दिया हैं। लोकगीतों में प्रयुक्त लोक वाद्य हमारे वर्तमान जीवन में भी हैं। लोक-जीवन में जितना महत्व लोकगीतों का हैं उतना ही महत्व लोकवाद्य और लोक नृत्यों का भी हैं।

लोकगीतों में प्रयुक्त वाद्य और नृत्य एक दूसरे के सहभागी हैं। भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न अभिव्यक्तियों के लिये लोकगीतों में अनगिनत वाद्य प्रयुक्त होते हैं। जैसा कि पहले हम बहुत से वाद्यों के नामों का उल्लेख कर चुके हैं। मगर लोकगीतों में कुछ विशेष वाद्य यंत्रों का प्रयोग होता हैं। जिनका विकास और प्रसार लोक संस्कृति से सम्बन्धित होता हैं। क्योंकि लोकसंगीत में लोक वाद्यों का प्रमुख स्थान होता हैं। उसी प्रकार लोक वाद्यों का लोकसंगीत से गहरा नाता हैं। अतः हम कह सकते हैं कि दोनों ही विधायें लोकसंगीत और लोकवाद्य एक दूसरे के पूरक प्रतीत होती हैं।

अब जैसे तत् वाद्यों के विकास की बात करें तो तंत्री वाद्य सारंगी एक तार पर बजती हैं, तीन तारों पर बजती हैं और पन्द्रह तारों से सज्जित होकर भी बजती हैं। व्यावहारिक ज्ञान के साथ-साथ वाद्यंत्रों के तार आकृति और वादन तकनीक का विकास भी स्वयं होता जाता हैं। इसीलिये नाट्य शास्त्र के रचयिता महर्षि भरत ने कहां हैं, कि जो कुछ भी शास्त्र में निहित हैं, सब लोक से लिया गया हैं। लोकसंगीत की सहजता और उसका सौन्दर्य किसी से छुपा नहीं हैं। भिन्न अवसरों पर, भिन्न-भिन्न अभिव्यक्यिं के लिये लोक और लोकसंगीत में अनगिनत वाद्य पाये जाते हैं। रामलीला के एक दुर्लभ पद में अनेक वाद्य यंत्रों के नाम गिनाये गये हैं। जैसे कि डोरू, डफ, ढ़ोल, लड़ंकार, खंजरी, नगाज, झांझ, मंजीरा, झंकार, बिगुल, बनबीन, ताम्बूर, तोरही, तरंग, नसतरंग, जलतरंग, बीन, रसबीन, फूँकबीन, प्यान, पखावज, मृदंग, मुँहबीन, मुरलि,ताल, करताल, तबल,

तबला, तोंदी, तपूस, शहनाई, सितार, सुरबहार, सुरसिंगार, सीठी, सरोद, सारंगी, सरंदा, सदाफरियाद, चंग, मुरचंग, चिकार, घणोंच, घुँघरू, नफीरी, घंण्ट, विजयघंण्ट, घरियाल, कानूनदार सितार, शंख, शंखबीन, भेरी, दुँदभी, आदि। इन्हीं वाद्यों को कलाकार अपनी कला निपुणता या वाद्य वादन की कुशलता के साथ विभिन्न प्रयोग भी करते रहते हैं। जैसे कि विभिन्न तबलों को राग के क्रमानुसार स्वरों में मिलाकर उन पर राग वादन किया जाता हैं। जिसे तबला तरंग कहा जाता हैं। इसी प्रकार से उत्तराधकाल में सितार वाद्य का आविस्कार हुआ और इन वाद्यों पर बजाय जाने वाले बोलो और स्वरों का स्थिरीकरण हुआ। इसके द्वारा दो प्रकार की रचना विद्वानों द्वारा की गयी हैं।

1) मसीतखानी गत
2) रजाखानी गत
इस प्रकार से प्रमुख शास्त्रीय वाद्य सितार का स्वतंत्र वादन आरम्भ हुआ था।

वाद्यों के प्रकार

सभी वाद्यों को उनकी बनावट तथा वादन विधि के आधार पर निम्नलिखित पाँच भागों में बाँटा गया हैं।

1) **तत् वाद्य**- ''तत्'' वाद्य उन वाद्यों को कहते हैं। जो ऊँगली अथवा जवा, अथवा मिजराव आदि के आधात द्वारा बजाये जाते हैं। जैसे- तानपूरा, सितार, सरोद, बैन्जों, स्वरमण्डल आदि। इस प्रकार के वाद्य राग के गायन अथवा वादन के समय बजाये जाते हैं।
2) **वितत् वाद्य**- इस प्रकार के वाद्यों को गज के घर्षण से बजाया जाता है। इस वर्ग के वाद्यों में सारंगी, इसराज, दिलरूबा आदि आते हैं। इस वर्ग के वाद्यों पर राग वादन होता हैं।
3) **घन वाद्य**- इस प्रकार के वाद्यों में झांझ, करताल, मंजीरा, जलतरंग आदि है। ये वाद्य ताल वादन और राग वादन इन दोनों के लिये उपयुक्त हैं। झाँझ, करताल, मंजीरा आदि पर ताल वादन तथा जलतरंग पर राग वादन होता हैं।

4) **सुषिर वाद्य**- इस प्रकार के वाद्य हवा के द्वारा बजाये जाते हैं। जैसे- बाँसुरी, शहनाई, क्लारोनेट, बीन, हारमोनियम आदि। इन वाद्यों पर भी राग वादन ही होता हैं।

5) **अवनद्ध वाद्य**- जो वाद्य चमड़े अथवा खाल के द्वारा मढ़े होते हैं। अवनद्ध वाद्य कहलाते हैं। जैसे- तबला, पखावज, मृदंग, ढोल, डफ, आदि इस प्ररकार के वाद्यों पर ताल वादन होता हैं। किन्तु आजकल रागवादन भी होने लगा हैं।

विभिन्न तबलों को राग के क्रमानुसार स्वरों में मिलाकर उन पर राग वादन किया जाता है। इसे ‘‘ तबला तरंग‘‘ कहते हैं।

वेदों में भी विभिन्न ताल वाद्यों का उल्लेख है। जैसे- वानस्पति, दुन्दुभी, भेरी आदि। इसके अलावा अन्य वाद्यों का उल्लेख भी वेदों में मिलता है। जैसे- शततंत्री वीणा, कारण्ड वीणा, तूणव वीणा, काकुर वीणा। भारतीय संगीत का इतिहास वैदिक काल से लेकर, आज तक के मध्य आये संगीत संबंधी क्रमिक परिवर्तनों से निर्मित हुआ हैं, इस सम्पूर्ण अनधिकों को चार कालों में विभाजित किया है। जो निम्नलिखित है।

1) अति प्राचीन काल
2) प्राचीन काल
3) मध्यकाल
4) आधुनिक काल।

प्राचीनकाल को दो भाँगों में बाँट दिया गया।

अ) पूर्वाध प्राचीन काल
ब) उत्तरार्ध प्राचीन काल

उत्तरार्धकाल में, सितार, तबला, आदि विभिन्न वाद्यों का अविष्कार हुआ, और इन पर बजाये जाने वाले बोलों का स्थिरीकारण हुआ। तबले के लिये विभिन्न प्रकार के ताल और बोलो की रचना हुई। इसी प्रकार सितार के बोलों का भी

स्थिरीकरण हुआ। इसके लिये दो प्रकार की गतों की रचना हुई। 1) मसीतखानी गत 2) रजा खानी गत। इस प्रकार सितार का स्वतन्त्र वादन होना प्रारम्भ हुआ।

दक्षिण शैली के वाद्य जैसे मृदंगम, घटम, मौरचंग, तुरही आदि।

निष्कर्षतः हम की सकते हैं। कि भारतीय आध्यात्मिक सांस्कृतिक, सामाजिक विकास की ही तरह समय परिस्थिति और आवश्यकता के अनुरूप भारतीय सांस्कृतिक और सांगीतिक कला यात्रा ने भी अपने आयाम तय किये हैं। आवश्यकता पड़ने पर प्रयोगात्मक रूप से तबला ताल वाद्य होने पर भी कही स्वर वाद्य के रूप में भी प्रयुक्त किया जा सकता हैं। या किया गया है। जैसे- रागों के स्वरों के क्रमानुसार अलग-अलग तबलों को अलग-अलग स्वरों में मिलाकर राग स्वर या कोई भी बंदिश बजाने के प्रयोग भी किये गये हैं। और प्रयोग या प्रस्तुति को तबला तरंग का नाम दिया गया हैं। तो यह भी एक तरह से तबला की मूल संरचना और संकल्पना से अलग और अनूठा प्रयोगात्मक विकास की कहलायेगा। लोकवाद्य राजस्थानी रावणहत्था, चिकाड़ा, इकतारा जैसे तार वाद्य जहाँ एक दो या तीन तारों से स्वरों को प्रस्तुत करते हैं, तो सितार, वायलिन, सारंगी आदि पन्द्रह से बीस तारों का समन्वय स्थापित कर स्वरों का स्वरूप प्रदान करते हैं। ये अलग बात हैं। कि उन्हें बजाने के लिये मिज़राब, गज आदि का माध्यम बनाया जाता हैं।

उपरोक्त सभी के आधार पर कहा जा सकता हैं। कि वर्तमान दृष्ट्रिगोचर समस्त वाद्य चाहे वो शास्त्रीय वाद्य हो या लोकवाद्य हो, अपनी कृमिक विकास यात्रा के पश्चात् ही आज हमारे सम्मुख अपने वर्तमान परिष्कृत और सुसंगठित स्वरूप में संगीत के माध्यम से लोकरंजन का एक अति महत्वपूर्ण साधन बने हुए हैं। आवश्यकता हैं उनके समुचित उद्देश्य और सार्थक प्रयोग की जिससे कि लोकरंजन के क्षेत्र में अपनी भूमिका का महत्वपूर्ण निर्वहन कर सकें।

संदर्भ सूची

1. 'गर्ग' डॉ. लक्ष्मीनारायण(सम्पादक), वसंत(लेखक), उन्तीसवाँ संस्करण, (2015), संगीत विशरद, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ.प्र.)
2. शर्मा,' डॉ. कीर्ति, संगीत, प्रवलिका पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।
3. 'मिस्त्री', डॉ. आबान ई. (2000), पखावज और तबला के घराने एवं परम्पराएं, स्वर साधना समिति, मुम्बई।
4. मदान, के.वी.एस, पाँचवां संस्करण, संगीत, अरिहन्त पब्लिकेशन्स, (इण्डिया) लिमिटेड।

लोकगीतों में स्वांग का महत्व

खुशबू रायकवार
शोधार्थी
संगीत विभाग, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
ईमेल: raikwarkhushboo@gmail.com
डॉ. नीना श्रीवास्तव
शोध निर्देशक
प्रध्यापक, संगीत विभाग
शासकीय सरोजिनी नायडू स्वशासी, कन्या महाविद्यालय भोपाल, (म.प्र.)

सारांश

यदि निष्पक्ष रूप से विचार किया जाये तो संसार के सभी कार्यों में अनुकरण या नाट्य अथवा स्वांग मिला हुआ होता है। मनुष्य बाल्यावस्था से ही अनुकरण से सीखना प्रारंभ करता है। मनुष्य समस्त ज्ञान पढ़कर प्राप्त नहीं करता और न ही कर सकता है। समाज में बड़े-बूड़ों के क्रिया कलापों को देखकर, कुछ अभिनय को अवलोकित करके कुछ रंग मंच पर लीलायें व पत्रों के अभिनय को अवलोकित करके ही सीखता है और अपने जीवनोपयोगी क्रियाओं को सम्पन्न करता है। इन समस्त सामाजिक क्रियाओं को बुन्देली लोकगीतों में चित्रित किया गया है। बच्चों के पुतरापुतरियों के खेल, उनका व्याह रचाना, गीतों को गाने का अभिनय करना तथा उनको वास्तविकता जीवन में देखना। इन सबका चित्रण प्रौढ़ावस्था से वृद्धावस्था तक देखता है और उनकी झॉकी लोकगीतों में उसने समय समय पर देखी है उसने धार्मिक, ऐतिहासिक व सामाजिक विषयों के मर्म स्पर्शी नाट्य या स्वांग देखे हैं जो लोक संगीत व लोक गीतों में चित्रित है इस प्रकार निःसंदेह रूप से यह कहा जा सकता है स्वांगों के लोकगीत मानव के भावी जीवन के लिये तैयार कर देते हैं जिससे उसे बहुमुखी लाभ प्राप्ति होती है।

बीज शब्द : *स्वांग, अभिनय, लोकजीवन, महत्व, प्रभाव, समाज, कला*

शोध आलेख

यदि निष्पक्ष रूप से विचार किया जाये तो संसार के सभी कार्यों में अनुकरण या नाट्य अथवा स्वांग मिला हुआ होता है। मनुष्य बाल्यावस्था से ही अनुकरण से सीखना प्रारंभ करता है। मनुष्य समस्त ज्ञान पढ़कर प्राप्त नहीं करता और न ही कर सकता है। समाज में बड़े-बूड़ों के क्रिया कलापों को देखकर, कुछ अभिनय को अवलोकित करके कुछ रंग मंच पर लीलायें व पत्रों के अभिनय को अवलोकित करके ही सीखता है और अपने जीवनोपयोगी क्रियाओं को सम्पन्न करता है। इन समस्त सामाजिक क्रियाओं को बुन्देली लोकगीतों में चित्रित किया गया है। बच्चों के पुतरापुतरियों के खेल, उनका व्याह रचाना, गीतों को गाने का अभिनय करना तथा उनको वास्तविकता जीवन में देखना। इन सबका चित्रण प्रौढ़ावस्था से वृद्धावस्था तक देखता है और उनकी झॉकी लोकगीतों में उसने समय समय पर देखी है उसने धार्मिक, ऐतिहासिक व सामाजिक विषयों के मर्म स्पर्शी नाट्य या स्वांग देखे हैं जो लोक संगीत व लोक गीतों में चित्रित है इस प्रकार निःसंदेह रूप से यह कहा जा सकता है स्वांगों के लोकगीत मानव के भावी जीवन के लिये तैयार कर देते हैं जिससे उसे बहुमुखी लाभ प्राप्ति होती है।

यदि यथार्थ मे देखा जाये तो लोक गीत ही लोक संस्कृति की रक्षा करने वाले सच्चे पहरेदार हैं। लोक जीवन की वास्वविकता झॉकी का यदि दिग्दर्शन करना है तो वहॉ के लोकगीतों पर विहंगम दृष्टिपात करने से सब बिन्दुओं का स्वतः ज्ञान हो जाएगा। लोकगीतों के अनेक बिन्दु है तथा विविध प्रकार के लोकगीत हैं। लोक जीवन के वाल्यकाल से लोकगीत प्रारंभ हो जाते हैं। वाल्यकाल में बालक बालिकायें परम्परागत लोक गीतों को परस्पर गाते हैं व आनंदित होते हैं वे उत्तरप्रतियुत्तर करते हैं और उन्हीं में अभिनय भी करते हैं। यही अभिनय नाट्य, नौटंकी, नाटक या स्वांग कहा जा सकता है। बालक आपस में चोर चोर खेलते हैं उनमें कोई दरोगा भी बन जाता है और चोर पकड़ता है।

उदाहरणार्थ :-

ईंक सींक सिक्का ए
चिलाम तमाखू हुक्का ए
साहब, चोर, उच्चका ए

यह कहकर जिस पर साहब की उंगली पड़ती है वह, साहब चोर पर उंगली पड़े तो वह चोर तथा अंतिम बालक पर उच्चक्का की उंगली रख कर खेलते हैं। यह चोर साहब का अभिनय ही स्वांग है जो बाल्यकाल से ही लोकजीवन में अंकुरित होने लगता है। बुन्देली संस्कृति के लोकजीवन में बालिकायें-पुतरा-पुतरियां खेलती हैं। उनका व्याह रचाती हैं, श्रंगार करती हैं, विदा का स्वांग करती हैं, कभी पुतरिया की बीमारी का इलाज कराने का अभिनय भी करती हैं- यह सब उनके मन-मानस में बालकपन से ही जुड़ जाता है। यह अभिनय (स्वांग) लोक जीवन में अत्याधिक महत्व रखता है तथा यह स्वांग कई प्रकार का होता है जिसका उल्लेख व उसकी उपादेयता अग्रांकित है।

स्वांगों से स्वास्थ्य मनोंरंजन होता हैः- जो भी पार्टी स्वांग का कार्यक्रम प्रस्तुत करती हैं, उसके मनोरंजन के साथ सैकड़ों, हजारों दर्शकों का स्वास्थ्य मनोरंजन होता है। जीवन में मनोरंजन के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। इससे शरीर और मन प्रसन्न होता है तो कोई भी काम वह सुगमता से कम समय में तथा उत्कृष्ता से सम्पन्न कर लेता है मनोरंजन यदि जीवन में न हो तो वह जीवन सुखमय नहीं रह सकता। अतः समय समय पर हास परिहास करना जरूरी होता है। स्वांग (नाटक) करने से ऊर्जा प्राप्त होती है और लोकजीवन की दिनचर्या सुंदर बनती है।

संस्कृति व सभ्यता सजीव रहती हैः- स्वांग के अनेक विषय व अनेक बिन्दु होते हैं। हमारा स्वांग ऐतिहासिक है या सामाजिक है, या चारित्रिक है या धार्मिक है या राजनीतिक है आदि के अनुसार समाज में कोई न कोई शिक्षा जरूर देता है। इनके अभिनय से हमारी परम्परायें, संस्कृति सजीव रहती हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी यह स्वांगों की परम्परा अपने आप हस्तांतरित होकर चली आती है। कुछ स्वांग रीति रिवाज परक कुछ चरित्र प्रधान कुछ सामाजिक अतः विषयानुसार स्वांग

अपनी छाप समाज पर छोड़ने में साक्ष होते हैं। यथा हरिशचंद्र तारामती के स्वांग से सत्यनिष्ठा की शिक्षा प्राप्त होगी तो भक्त पूरन मल के स्वांग से अपने चित्त को विचलित कर चरित्र रक्षा की प्रेरणा व सत्यवान सावित्री के स्वांग से पतिव्रत धर्म की शिक्षा स्वमेव प्राप्त होती है जिसे समाज में अच्छा संदेश जाता है। अतः लोकगीत हमारी सभ्यता संस्कृति को संजीवनी प्रदान करते हैं। स्वागों के माध्यम से गाना बजाना करके, मधुर संवादों का प्रभाव समाज पर पड़ता है और इनकी उपादेयता बढ़ जाती है।

स्वांग ज्ञान वर्द्धन करते हैः- लोक जीवन में स्वांग अपना निराला व महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। शहरी जीवन में लोगों के लिए चलचित्र व स्तरीय नाट्य मण्डल रहे हैं परंतु लोक मानस अपने ज्ञान का संरक्षण व सम्वर्द्धन अपनी स्वांग-कला के माध्यम से करता रहता है। यहां की अधिकांश जनता कम पढ़ी लिखी या अनपढ़ होती है अतः बुन्देली सरल भाषा के संवाद, लोकगीत, गाना इत्यादि जो सब लोग समझ ले ऐसी भाषा में स्वांग प्रस्तुत करते हैं। अनेक मर्मभेदी स्वांगों स लोकमानस पर सीधा प्रभाव पड़ता है और शनैः शनैः ज्ञान की वृद्धि होती है। अतः स्वागों की उपादेयता स्वयं सिद्ध है।

सामाजिक व ऐतिहासिक संस्कारों का चित्रणः- स्वांग एक प्ररकार से सामाजिक व ऐतिहासिक संस्कारों को सीधे जनता के ऊपर अपनी छाप छोड़ने में सक्षम होते है। वर्तमान सामाजिक वातावरण में टी. वी. व मोबाइल में भी विभिन्न प्रकार के लोक नाट्य (स्वांग) दर्शाये जाते हैं। जिनसे जन मानस के ऊपर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। श्रवण कुमार, पहलाद मचा, गणेश, ध्रुव आदि के स्वांग प्रदर्शन से बालकों के मन मानसिकता पर सीधा प्रभाव पड़ता है और कुछ न कुछ संस्कारित भी होता है तथा अपना चारित्रिक उभनयन भी होता है। जिस प्रकार का स्वांग होगा तत्सम्बधी प्रभाव समाज पर पड़े बिना नहीं रहता। हम समाज में किस प्रकार के व्यवहार करते हैं कैसे रीति रिवाजों पर चलना कैसा शिष्टाचार अपनाया है आदि समस्त प्रकार की शिक्षा स्वांगो से प्राप्त की जा सकती है रामलीला, नौटंकी, फिल्मों, धारावाहिक, नाटक आदि सब स्तरीय

स्वांग है। राम के स्वांग से आदर्श चरित्र तथा रावण के स्वांग में राक्षसी चरित्र का प्रदर्शन होने से समाज अच्छाइयां व बुराईयों का बोध कर लेता है और जिस पर अच्छे विचारों का प्रभाव पड़ जाता है वह अच्छे संस्कारों से युक्त होने लगता है तथा कुप्रवृत्ति वाला कुसंस्कारों से युक्त होता रहता है। परंतु स्वांग प्रभाव अवश्य छोड़ते हैं। रूचि रूझान के अनुसार लोक मान गृहण करता हैं। शादी विवाह में बाबा का महत्व :- बुन्देलखण्ड के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में लड़के के विवाह में बाबा (जुगिया) का स्वांग होता है। इसकी एक कथा है। एक रक्षस था जो कन्या को मण्ड़प के नीचे से अपहरण कर ले जाता था और अपने घर विवाह कर लेता था। इसलिये जो औरतें लड़के वाले के यहाँ रहती हैं। वे बाबा को कहती हैं कि हम तुम्हारी शादी करवा रहे है। और बाबा की शादी सम्पन्न कराती है। टींका से

लेकर विदा तक सभी कार्यक्रम होते हैं। एक दुल्हन बनती है। बाबा की टीका परिक्रमा दान दहेज सब नेग दस्तूर होते हैं। बाबा की शादी होती है। वहाँ वह कन्या के अपहरण को नहीं जा पाता और शादी सम्पन्न हो जाती है। इस कारण से बाबा (जुगिया) का स्वांग बुन्देलखण्ड के ग्रामों में किया जाता है। औरतों को अपने इस बाबा के स्वांग में पूर्ण स्वतंत्रता जैसा महौल मिल जाता है। परंतु हास परिहास गाना बजाना में समय व्यतीत हो जाता है।

व्यस्तता व आपसी प्रेम सद्भाव में वृद्वि :- लोकजीवन में स्वांग के कलाकार समाज में अत्याधिक व्यस्त रहते है और कहा जाता है कि ‘‘खाली दिमाग शैतान का घर’’ वाली बाते उत्पन्न होती है। कला की व्यस्तता के कारण समाज में आपसी में सद्भाव की वृद्वि होती है। और उनका मन रचनात्मक कार्यो में लगा रहता है। प्रेम और सद्भावना की वृद्वि होती है। अतः स्वांग का मानव जीवन में बड़ा महत्व है।

कला का संरक्षण करनाः- अभिनय एक कला है। इसमें पात्र अपनी सम्पूर्ण भावना, किया, कलाप, वेशभूषा, वाणी आदि से वास्तविकाता या यथार्थता का

चित्रण करता है। राम का पात्र राम के आदर्श का, दशरथ का पात्र दशरथ के चरित्र का चित्रण उनके हावभाव मनोरथ, संकेत, क्रियायें आदि सब राजा की भाँति ही प्रस्तुतीकरण करता है। इस प्रकार स्वागों से अभिनय की कला जीवंत रखने में बड़ी सहायता मिलती है। अभिनय करना साधरण कार्य नहीं है। इससे एक असाधारण कला की रक्षा होती है और समाज को प्रभावित करने के लिए स्वांग आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।

स्वांग चतुर्मुखी विकास में सहायक है :- स्वांग में अभिनय करने वाले पात्र का सर्वांगीण विकास होता है। उसमें बोलने की कला संवेगों का प्रदर्शन की कला, हावभाव, सुख का प्रदर्शन करना, हास परिहास करना, विदूषक का कार्य करना आदि सभी के लाभ करने से पात्र था प्रतिभागी व्यक्ति का चतुमुखी विकास होता है। जो जीवनोयोगी होता है। समाज के सम्पर्क कलाकार रहता है। तो झेंप झिझक अजानता आदि का समूल नाश हो जाता है। और व्यक्ति अपने जीवन को सफलता पूर्वक विताने में सुखानुभूति करता है।

बहरूपिया और एकल स्वांग :- समाज में यत्र तत्र बहुरूपिया भी कभी-कभी दिखाई देते है। यह भी उत्तम प्रकार के स्वांगों के कलाकार होतें है। कोई दरोगा बना घूमता है। तो कोई सेठ, तो कोई अफसर और उस स्वांग की कला से वे समाज का स्वास्थ्य मनोरंजन भी करते जाते हैं। बहुरूपिया के स्वांग की कला में स्वाभाविता होने से ही वह प्रभावशाली बनती है। कभी कभी एक व्यक्ति ही अनेक प्रकार के पात्रों की वेशभूषा बन कर अनेक प्रकार से समाज में अपने को प्रस्तुत करना है और द्वपार युग की ग्वालिनें (दही बेचने वाली) स्वाग ही तो करती हैं। देश के अनेक भागों से कार्तिक मास में मथुरा में कार्तिक स्नान हेतु महिलायें जाती है। और ग्वालिनों की प्रतिमूर्ति बनकर माधुर्य भाव से श्री कृष्ण की भक्ति में तल्लीन रहती हैं। कृष्ण दान मागते है दही दे दो ग्वालवाल कृष्ण के सखा उनका सहयोग करते है। प्रेम की लड़ाई

पराकष्ठा पर पहुँचती है। मटकी लुटती है, फूटती भी है, चीन हरण व वाग्युद्व आदि सब माधुर्य भाव की भक्ति का स्वांग ही तो है जो द्वापर युग से अद्यतन चला आ रहा है।

अतः यह कहा जा सकता है कि स्वाग मानव जीवन का अभिन्न अंग है। स्वांग या अभिनय के बिना हम अपनी संस्कृति व धर्म की झाँकी का प्रस्तुतीकरण नहीं कर सकते है। सम्पूर्ण रामानण, महाभारत, कृष्ण चरित्र रास व रहस लीला, दान लीला आदि सब हिन्दू धर्म के प्राण हैं यह स्वांगों से प्रकट किये जाते है। नाट्य कला ही स्वांग है। यह ग्रामीण क्षेत्रों में स्वांग कहा जाता है। परंतु महत्व इतना अधिक है कि अभिनय या स्वांग के बिना कोई कभी विकास की डगर पकड़ ही नहीं सकता।

संदर्भ सूची

1. लेखक प्रो. नर्मदा प्रसाद गुप्त, पुस्तक- बुन्देली संस्कृति और साहित्य, प्रकाशक - मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद, भोपाल (म.प्र.) प्रकाशन वर्ष- 2001 प्रथम संस्करण।
2. लेखक- शरीफ मोहम्मद पुस्तक- मध्यप्रदेश का लोकसंगीत प्रकाशक - मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल (म.प्र.)
3. प्रकाशन वर्ष- 1999 प्रथम संस्करण।
4. लेखक- अग्रवाल कैलाश चन्द्र, पुस्तक- लोक साहित्य विधायें एवं दिशायें, प्रकाशक - चिन्मय प्रकाशन 16/36 डी, मोतीलाल नेहरू रोड आगर 1986।
5. लेखक- चोरसिया मोतीलाल, पुस्तक- बुंदेली लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, प्रकाशक - क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी नई दिल्ली, 1989।

Ethno medicine and Traditional Healing Practices among the Ho of Jharkhand: A Multispecies Inquiry

Neha Kumari
Research Scholar
Department of Anthropology and Tribal Studies
Central University of Jharkhand
Email: kneha6170@gmail.com

Abstract

Humans have utilise ethno medicine, a collection of local ideas and practices, for a long time. Traditional plants are utilise in plant-based ethno medicine, with forests being the primary source of material for practitioners. The Ho Janjati of Jharkhand are also engaged in using these types of medicinal practices. This study aims to explore the medicinal practices of the Ho Janjati of Jharkhand. Plant-based medicines, including leaves, fruits, flowers, seeds, and roots, are commonly used to treat diseases, ensuring they do not increase in specific areas. Addressing diseases should not be limited to a specific area of concern, as their impact affects individuals globally. The disease should be consider in various aspects while addressing this issue. Tribal communities are currently grappling with various ailments, despite the varying severity and location of sickness. Poor sanitation and hygiene, as well as limited access to health treatment, are the primary causes of these illnesses. Tribal peoples may have unique perspectives on certain issues, influenced by their knowledge and experiences, but their healing practices may also vary. Ethno medicinal practices are not new in Jharkhand, but due to the spread of diseases, discussions are taking place in various communities regarding these practices. The current method of treating diseases remains in practice. This paper delves into the traditional knowledge of medicine within the Ho communities. Individuals for the treatment of various illnesses currently utilise the substance. The study also encompasses the beliefs and cause of diseases among

individuals. The Ho Janjati, along with many other tribes in Jharkhand, is heavily involved in ethno medicinal practices.
Key Words – *Ho of Jharkhand, Ethno-medicine, Disease*

Introduction

Indigenous people face poor health, higher disease incidence, and limited access to basic services, sanitation, and preventative measures, including clean water, soap, and disinfectants. Globally, diseases have significantly affected both tribal and non-tribal populations. UNESCO defines "local and indigenous knowledge" as the perceptions, abilities, and worldviews derived from communities with a long history of interacting with nature. Indigenous people with extensive resource utilization traditions often possess a profound understanding of the intricate dynamics of natural systems within their own communities. Knowledge has been acquire through generations of observations passed down through generations (Gadgil, 1993). Ethno medicine is the study of diverse communities' perceptions of health and sickness, focusing on their thoughts and actions towards well-being and healing. Ethno-medicine, along with language, music, and politics, is a localized subset of culture (Quinlan, 2011). The methods of using plants to treat specific illnesses vary among different ethnic groups and healers. Documenting and investigating indigenous knowledge on medicinal plants of different ethnic groups is crucial due to potential loss due to population loss, biodiversity loss, and socioeconomic changes (Miya, Chhetri, & Timilsina , 2020). Folk medicine and modern medicine both have unique methods for diagnosing and treating diseases, with remedies closely tied to the cause of the disease. They are deeply connect to magic, religion, and traditional social norms, serving various cognitive purposes (Pandey, 2010). They prioritize their ancient medicine methods over contemporary ones, allowing them to be well informed about the positive and negative aspects of plants (Shikha & Kumar, 2021). Indigenous people maintain a balanced physical and mental condition without harming biodiversity due to their mutually beneficial relationship with trees (Dhoni Bushi, Bam, & Mahato, 2021).

Tribal people often attribute life's ills to spirits and use magical practices, religious rites, or sacrifices to treat them, but they also recognize the healing powers of plants' natural products like fruits, flowers, barks, leaves, and roots (Oraon & Dhan, 2020). Ethno medicine is a traditional medical system used by tribal tribes to treat various diseases using medicinal plants and animals. Ethno medicine is a form of medicine that is more rooted in ethnicity, mystical beliefs, and less scientific approach. This field of study focuses on the analysis of cultural healing practices and individual experiences with disease and illness. Ethno medicine utilizes therapeutic plant and animal products, as well as magical practices, to treat illnesses (Tripathi, 2019). Native people possess a comprehensive understanding of traditional medical practices. Jharkhand is a predominantly forested region renowned for its diverse array of ethno-medical plants and forest products because Jharkhand lies in the agro-climatic zone; it is most suited for the growing of ethno-medical plants. Ethno medicine, a practiced by humans since ancient times, is gaining popularity due to the negative effects of pharmaceutical drugs and the variety of medicinal plants in the state. More than 1500 plants used in traditional medicine may found in Jharkhand (Barla, 2015). Jharkhand's tribal communities have distinct social and cultural ties, and possess a deep understanding of traditional medical therapy, a practice that has been practices since ancient times. Traditional medical knowledge is deeply utilize in modern times, with common diseases like fever, cough, and stomach being common. However, some diseases, or what people consider diseases, vary depending on time and place. The study examined the Ho Janjati of Jharkhand and their response to the pandemic. Tribes face significant challenges, but they strive to handle and conquer these problems and issues that concern them. Ethno medical studies in Jharkhand are not a new concept, but numerous studies have been conduct in this field, which often overlaps with studies on specific diseases. (Jain, Sharma, & Chaudhary, 2017).

The Ho

The 2011 census record shows a total population of Ho is 9,28,289. They are primarily employed in agriculture, food gathering too, with some of them also working as workers (Dubey & Soy, 2021). The Ho, a branch of the Mundas, an Austro-Asiatic tribe from Chotanagpur district, are part of the Kolarian tribes of Jharkhand, derived from the Ho language word "horo," meaning "man." They are the Munda family's offspring (Ota, Mohanty, & Kodamasingh, 2013). The Ho people of Jharkhand have a panchayat-based government system, with the Munda-Manki, the chief of the panchayat, making decisions on behalf of the entire community (Kashyap, 2003).

Ethnographic Methodology

The study focused on Ho Janjati in Barandia's village in Jharkhand's West Singbhum district This village is part of Panchayat Simbia, and Thana Mufasil, the blocks Sadar Chaibasa with Latar Sai, Durma Sai, and Chitan Sai as tolas of this village. The population of the area is 739, consisting of 349 females and 390 males, residing in 150 houses and 178 families. The majority of the inhabitants are Ho tribal tribes, with five households belonging to the Gope caste. The village is located near the forest, and their primary income sources are agriculture and gathering. The community contains an elementary school, "Prathmik Vidyala Barandia," that teaches sections one through fifth standard. Most students attend the nearest school and then attend a higher secondary school in the nearby villages of Guira and Lupung Gutu. There is no formal health clinic centre, but all health-related activities are conduct in village Aganbadi.

Objectives

The study aims to identify prevalent diseases among Ho people, their use of traditional ethno medicine for disease treatment, In addition, their perception of illnesses and the challenges they face in implementing these medicinal practices.

Methodology

The ethno-medical study centred on the Ho Janjati in the West Singbhum district of Jharkhand's region. The study utilised fieldwork methods, including interviews, observation, structured questionnaires to gather data. Field investigations were conduct in March and April 2023. The elderly, including men and women who have been using forests for centuries, have shared their knowledge of plants used for various ailments. They also include village tribal shaman, medicine men (dewa) and tribal community members who are knowledgeable about local plants, their parts, herbal medicine preparation, and mode of treatment, doses, and uses.

Ho concepts of diseases

Tribal sickness definitions may differ from those of non-tribal societies. Different diseases are determine by the conditions in their distinct geographical regions. The Ho Janjati are share their perspective on health issues as *Hasu*. They frequently experience common illnesses such as colds, coughs, fevers, and stomach discomfort, which are prevalent worldwide and even when the type of therapy used varies. It is true that some physical conditions are consider serious diseases in Ho's lives, even though the means of therapy differ. There are certain physical issues in people's lives that are regard as significant diseases. In addition to common diseases, the people of this region are more affect by special diseases such as malnutrition, deafness, ear abscesses, urinary disorders, snakebite, pimples, tuberculosis, pregnancy prevention, epilepsy, paralysis, piles, dwarfism, itching, stomach worms, and swollen feet, which are classified as diseases. Animals also suffer from various illnesses, leading to anxiety among the Ho. Pox, a disease affecting chickens and goats, and ox's inability to stand are two health issues affecting animals, highlighting the need for improved animal health. As per the villagers, these are some common diseases among people

that seen in both humans and animals, but they are not able to identify the cause. The disease, believe to be caused by evil spirits like *Bagiya*, *Dari*, or *Dayan Bonga*, is believed to be present in both animals and humans. People believe that those who know the medicine for small-scale diseases use it for treatment. When the disease worsens, local shamans (dewa) offer prayers for treatment. If the disease becomes more severe, people perform deity worship to cure it.

Ho's use of Ethno-Medicine

Ho are utilising wild plants for various purposes, such food, medicine, insecticides, etc. Ho people have a rich history of traditional medicine, which they still utilize today for various treatments. For a long time, people have been using wild fruits, flowers, roots, leaves, seeds, twigs, and other plants as medicine in addition to animal-based medicine too. The Ho people use a common term "red" in their traditional medicine, which refers to the treatment of diseases or illnesses and the root of an herb used in medicine, as well as its use in treating ailments.

Table: 1 Medicinal Plant use in West Singbhum district of Jharkhand

Sl. No	Botanical Name	Family	English Name	Local Name	Part Used	Diseases
1.	Moringa oleifera	Moringaceae	Mringa	Mulga	Leaves	Cold and cough
2.	Amorphophallus paeoniifolius	Araceae	Jimikand	Yam, Ole	Fruits	Cold and cough

3.	*Semecarpus anacardium*	Anacardiaceae	Bhelwa	Soso	Seeds	Cold and cough
4.	Nyctanthes arbor tristis	Oleaceae	Parijat	Har Singhar	Leaves	Fever
5.	Nelumbo nucifera	Nelumbonaceae	Lotus	Komol	Stem	Fever
6.	Psidium guajava	Myrtle family	Guava	Amabarot	Fruits	Stomach pain
7.	Punica granatum	Punicaceae	Pomegranate	Anaar	Fruits	Stomach pain
8.	Shorea robusta	Dipterocarpaceae	Sal	Sarjom	Peel	Stomach pain
9.	*Semecarpus anacardium*	Anacardiaceae	Bhelwa	Soso	Seed	Stomach worm
10.	Butea monosperma	Legumes	Palash	Mur	Fruits	Stomach worm
11.	Shorea robusta	Dipterocarpaceae	Sal	Sarjom	Seed	Diarrhea
12.	Spondias pinnata	Anacardiaceae	Amra	Abda	Peel of root	Headache
13.	Citrus limon	Rutaceae	Lemon	Limbu	Leaves	Headache
14.	Millettia pinnata	Fabaceae	Karanj	Karanjo	Seed oil	Itching
15.	Acanthaceae	Ruellia Tuberosa	Minnie root/	Rolla	Fruits	Burn

			fever root			
16.	Phyllanthus emblica	Phyllanthaceae	Amla	Merel	Roots	Pimple on face
17.	Tinospora cordifolia	Menispermaceae	Amrit plant	Ambari	Insect	Epilepsy
18.	Vitex negundo	Mints	Nirgundi plant	Begna	Leaves	Paralysis
19.	Datura stramonium	Nightshade	Thornapples	Palati/Dhatura	Root	Paralysis
20.	Vachellia nilotica	Fabaceae	Babool	Babur	Fruits	Piles
21.	Mimosa pudica	Fabaceae Mimosoideae	Lajwanti	Japir Singh	Leaves	Colic
22.	Fabaceae or Leguminosae	Fabaceae or Leguminosae	Bean	Sim	Fruits	Malnutrition
23.	Allium cepa	Amaryllidaceae	Onion	Payaji	Fruits	To increase the child's height
24.	Crocus sativus	Iridaceae	Kumkum	Kumkum	Fruits	Prevent pregnancy
25.	Ficus carica	Mulberry family	Fig tree	Lovasoom	Twinges	lactation

		(Moraceae)				insufficiency
26.	Coccinia grandis	Cucurbitaceae	Kundri	Kundri	Leaves	Deafness
27.	Shorea robusta	Dipterocarpaceae	wild Sal	Bonga Sarjom	Bark	Small abscess in the ear
28.	Coccinia grandis	Cucurbitaceae	Kundri	Kundri	Root	Poisoned
29.	Alangium Salvifolium	*Alangiacea*	Ankol	Ankul	Peel	Poisoned
30.	*Plumeria rubra*	Apocynaceae	Gulachi	Gulanchi	Rind	Poisoned
31.	Cucurbita pepo	Cucurbitaceae	Pumpkin	Kohda /Karur	Seed	Snakebite
32.	Moringa oleifera	Moringaceae	Mulga	Coral	Root	Snakebite
33.	Succulent Coleus	mint	Vicks	Godh	Leaves	Snakebite
34.	Artabotrys hexapetalus	Annonaceae	Hari	Hari	Peel	Snakebite
35.	Carica papaya	Caricaceae	Papaya	Bindi	Fruits	Snakebite
36.	Artocarpus altilis	Moraceae (fig)	Breadfruits Plant	Uru	Seed	While ploughing, the

						bull takes a spot on the ground
37.	Nelumbo nucifera	Nelumbonaceae	Lotus	Komol	Flower	Pox in Animals
38	Azadirachta indica	Mahogany	Neem	Leem	Leaves	Body itching

The process of using the ethno medicine-by-medicine man (Dewa)

The Ho people are famous for their traditional medical knowledge, exorcism, and animal sacrifice. The village priest (Deori) often performs this ritual during festivals. Whereas for exorcism and medicines, it is both the medicine man and the shaman for this work. People call both the medicine man and the shaman *Dewa*. Surja Deogam and Sarjom Khandait are the prominent shamans of this village; their work is exorcism and Gopi Khandait, Boti Deogam, Dubraj Deogam do the work of giving the same medicine, these are the medicine man. Birshi Khandaith is working on both therapies.These people are knowledgeable and practical. Villager's experiences are important in understanding these practices, as they provide valuable insights into people's beliefs and practices.

Cold and cough (Manda Ku u)

One of the most prevalent medical concerns is a cold or cough. The juice of Mrigna (mulga) leaves is used for treating various health issues, including colds and coughs. The leaves of the plant are boil thoroughly, and the remaining water given to a sick

person on an empty stomach in the morning. The cold cough is treat by repeating this process until it completely cured. People with frequent coughs often consume a piece of Jimikand (Yam, Ole) to alleviate their symptoms. This Jimikand is also use by grinding it and mixing it with tamarind, chilli, and ginger. Another method is that grinding and eating old jaggery, ginger, and the resinous roots of the forest tree can be a potential treatment for dry cough. One more treatment for cough is the roasted seeds of Bhelwa (Soso) that are grind with rice and then consumed by the sick person.

Fever (Hasu)

The Parijat tree's leaves, commonly known as Har Singhar, are utilize in treating fever. The leaves of the plant are boil, and the remaining liquid is mix with tea and water. A common fever cure involves grinding the stem of a lotus flower and applying it to the entire body. This medication is use twice daily, resulting in a reduction in fever within two to three days.

Stomach pain (Layai Hasu)

The Ho Janjati employs various treatments for stomach issues. This drink is make by crushing raw guava and pomegranate to alleviate stomach pain. This treatment is suitable for both children and adults. Sal fruit peel can be used as a remedy for stomach-aches by resembling a grain when removed. The grain boil and ground, then given to a sick person on an empty stomach in the morning. Ho believes that consuming this liquid with rice beer (diyang) will enhance its effectiveness. *Diyang*, a traditional drink consumed by Ho daily, is believe to prevent stomach-related issues, as it is considered one of the main traditional drinks. Rasi, a thinner liquid in the drink, is more effective than *diyang*, and apart from this, it can be used to alleviate stomach pain by grinding old jaggery with a small green chilli.

Stomach worm (Bachra)

Stomach worms are a common intestinal issue that frequently affects newborn infants. The bhelwa's (soso) seed, which is crushed with a stone and consumed regularly, is cure and recovers quickly. In the absence of *soso* seeds, the fruits of plash are crush and consume to treat stomach worms.

Diarrhea (Jada Hasu)

Sal seeds are primarily used to treat diarrhoea by crushing them and consuming their juice for its potential to alleviate the condition.

Headache (Bo Hasu)

Ho uses two remedies for headaches: grinding the Amra tree (Abda Daru) root peel and applying its paste to the forehead, and second grinding lemon leaves. Both methods work, But what Ho primarily uses is to grind lemon leaves; they grind seven leaves to create a paste for headaches, and the paste will be applied to the head. The paste can be dangerous if left to dry for extended periods, not for more than half an hour. It can also be dangerous if it is allowed to dry for an extended period. Furthermore, many believe that this leaf is neither more nor less than seven leaves; if they do not apply the seven leaf paste, it will not be effective for them, and these seven leaves are also considered not to have to be plucked from one place of the Lamon tree; they use these leaves that are plucked from different places.

Itching (Kasra)

People use neem (leem) leaves to treat body itching by grinding it, applying it to the affected area, and after boiling leaves, they drink the remaining water.

Burn (Loh Anah)

Minnie root/ fever root (Rolla) fruits are utilize for treating burns by crushing it and applying their juice to the burning place for a cure.

Pustules or pimple (*Tupud Riya Red*)

Amla root (Merel), mixed with arva rice, and that paste use to treat face pimples by applying a paste to the affected area at night.

Tuberculosis / T. B (Cup Rog)

Tuberculosis is treat using mallard duck eggshells, which are only use once the duckling is born. Duck eggshells are ground and cooked in mustard oil, then mixed with jaggery and served both morning and night. In addition to jaggery, it is also mix with honey. People also People believe that consuming the meat of a black bull can help heal tuberculosis

Epilepsy (Ambri bako)

Epilepsy is treat with a Miridae bug found in the Amrit plant (Ambari daru). After being prepare in mustard oil, the bug is dry in the sunlight for two or three days. The bug is dried and grind, then mixed with Mahua drink (Arki) to treat epilepsy.

Urinary Disorder (Jenga ge pesab sena tan re)

Ho frequently suffers from urinary issues mainly including difficulties urinating. The people cure it with *Lupu Dumbu Riya Red*. *Lupu Dumbu Riya Red* means as *Lupu Dumbu* is a kind of grass, and the root is crush with sugar and formed into tablets. The problem can be resolved by taking the tablet on a daily basis. While ripe tamarind seeds can consume for continuous relief.

Paralysis (Baat)

To treat paralysis, six to seven nirgundi (Benga) leaves, black papers, silkworm, and Thornapples (palati) root must cook in mustered oil or karanj (koranj) oil, followed by daily massage

using this oil. This treatment option is suitable for their type of paralysis.

Piles (Babashir Hasu)

Babool (baboor) fruits use to cure piles of fruits when milk is not produce from *baboor* fruit. The tree's fruit is dried and ground, then consumed with sugar in water every morning to alleviate piling issues. Another treatment for piles is the consumption of grind peel of *Room Sakam* tree.

Colic / Medicine of small children crying (Baley hon ko ra:a hapan teya red)

People often view a child's excessive weeping, as an illness. The typical therapy for this condition involves crushing Lajwanti (japir Singh) leaves and placing the juice in a child's ear for few days continuously. People adopt this treatment when a child cries excessive; they considered that child are suffering from an ear-related issue.

Malnutrition (Balye hon agar huding rege puniya kana)

Malnourished children are treat with beans, dry vermillion, and honey, cooked over a fire, and applied to their mother's breast. Its believe that it helps reduce the problem of malnutrition in children.

Dwarfism / To increase the child's height (Hon ko hrao toya red)

White onions, ground into old jiggery, give to young children for drink it as a remedy to help their height growth.

To prevent pregnancy (Banji red/ Banjhi ko teya red)

A woman uses grinding raw turmeric and drinking it mixed with water to prevent pregnancy. Apart from this, the fruit of the

Kumkum tree (Kumkum daru) cook by wrapping it in a leaf, and that cooked fruit fed to the woman to prevent pregnancy.

Lactation insufficiency (Towa kaii Sanhotan re)

Lactation insufficiency can be effectively treat by grinding the soom of the Lova plant or Daru (Loya Soom) and drink the juice. The term "soom" refers to the plant where the creeper of other plants spread, also known as the soom of that particular tree. In addition, raw papaya also eaten by the mother for treating the lactation insufficiency.

Deafness (Lutur Kala)

Deafness treatment typically involves two methods: heating the *Yeteke* plant peel, the first of which is commonly used. After allowing it to cool, it should use twice daily, preferably by placing it in the ear. The second remedy for deafness is a little vermilion and some Kundri (*kundri)* leaves. Grind the leaves together and filter their juice, and that two-drop juice put in the ear on daily basis.

Small abscess in the ear (Lutur Mana Riya Red)

The bark of the wild Sal tree (Bonga Sarjom) should be boiled or roasted thoroughly on the fire, extracting its juice and adding it to the boiling water. The process of crushing and applying neem (leem) leaves to the skin can effectively recover it.

On being poisoned by a person (Najom Bishi)

The Kundari tree root is crushed and mixed with rice beer to induce vomiting, thereby releasing the poison. The second method is to grind the ranu (ingredient use in rice beer) with the bark of the Ankola (Ankol) tree; it assume that the tree of *Ankol* is used in this remedy is placed on a single tree, not in a group. The paste should be transformed into a tablet and give it to sick person. The poisoned person should give the rind of the plumeria (Gulachi) flower tree mixed with the seeds of prawns (juni).

Snakebite (Bin Hua Riya Red)

The Ho people, who reside near forests and face high snakebite risks, are taking various measures to treat this issue.

- The seeds of tamarind (jojo) use it by grinding seeds in place of snakebite.
- Grind pumkin seed (Karur Jang) and apply it to the bitten area.
- The coral (Mulga) tree root is ground and applied to the place of a snakebite.
- Ho are planting the Vicks (godh) plant around their houses to prevent snakes from smelling it and grind its leaves for snakebite.
- The *tiki* worm observes the snake's poison by placing it in the bitten area.
- Apply the Hari Plant's (Hari Daru) peel to the area where the snakebite has occurred.
- The grind of raw papaya is also utilised to apply to the bitten area.

While ploughing, the bull takes a spot on the ground (Landiya uri ko sene teya)

People keep the ox under illness by sitting it down while walking, and it is treated with breadfruits (Uru Jo) wrapped in a leaf and fed to the ox as part of its therapy.

Hen and goat Pox Disease (Sim rogo, merom rogo)

Khur, a local disease similar to pox, is a common issue in chickens and goats. It starts spreading rapidly in December and January, causing significant health issues, and chickens and goats start dyeing due to this rapid occurrence of the disease. Traditional remedies for their treatment include grinding lotus fruit with lime, heating it, mixing it with rice, and eating chicken and goat. The animals that are less affected are able to survive

this process. The plants of thorny fruit are crushed, made into their meal, and given to the hens as a remedy.

The traditional healing practice of village shaman (dewa)

Fever (Hasu)

If the fever persists even after treatment, a shaman (dewa) is consult for further treatment. In such a scenario, it believe that an outbreak of malign spirits, such as *Bagiya*, *Dayand*, and *Dari* Bonga, is present and cannot be cured without worshiping these spirits. Dewa practices in the method of worship to get rid of fever, *dewa* first grinds mango leaves and their branches thoroughly and mixes them in water. The sick person treat with wood ash and Sal's leaf grass in front of them. The *dewa* is applied grass and grind mango leaves into the ashes, causing the diseased person to move from the bottom to the top and remove their evil eyes. The process perform three times a day, and it believe that if repeated more than three times, the sick person will become more ill. *Dewa* also uses yellow mustard (Mani Jang) wrapped in a white cloth and tied to a sick person's hand to remove these spirits.

Stomach pain (Layai Hasu)

Village dewa are also profound to have some connection to stomach pain. Dewa grinded Ochen Daka root, poured water into a sal's bowl, and heated a small iron to place the root in the water. Then this water gives to the sick person to drink. Have to keep drinking it until it will not cure.

Treatment for swollen feet (Kata Mo)

The village dewa offer therapy for swelling feet using Sagah Red (root)and Onol Sakam Red (roots), knotted together in five knots,

and praying to the Supreme Deity (Singbonga) with one tied to the hand and the other to the swelling feet.

He expressed his prayers for *Singbonga*. - *"Aam red ranu, jono kenam ne re, tege rabang asu buginooka."*

Dewa praying to *Sinbonga* "you have given birth to these children and that the medicine is also made by you, you protect them".

The process of tying the medicine or root in hand and, which called *Hotong Tua*, which is traditionally done early in the morning.

Colic (Balye hon ko ra:a hapan teya red)

The local shaman (dewa), who uses a fresh jackfruit leaf to tie to a child's hand or wrist, treats colic. The leaf place in the left hand of a girl, and in the right hand of a boy. It is connected to another colic treatment is to combine five knots with the roots of *Onol Sakam Riya Red*, *Uruva Red*, and *Sitirkad Red*. After praying to *Singbonga*, the *dewa* wears it around his neck.

The *dewa* prays to *Singbonga*, saying, *"Aam red ranu, jono kenam ne re, tege rabang asu buginooka."*

Dewa praying to *Sinbonga* that "you have given birth to these children and that the medicine is also made by you, you protect them", and they are tied by saying that this root. They believe the root and leafs will cure the disease.

Malnutrition (Balye hon agar huding rege puniya kana)

The village *dewa* creates Bangles (punai) from *Jan singh* plant branches and wears them on a malnourished child's feet.

A village shaman (Dewa) performs a cock sacrifice as a worship act to dispel the spirit and cure common diseases.

When a disease persists for a long time or sometimes goes undiagnosed both in human and animals, the cause is attributed to a *baigya, dayan* or *dari bonga*. Which is consider an evil spirit. In such a situation, the *dewa* performs worship in a sick person's house, requiring a cock sacrifice as per their demand. He primarily requests three distinct colors cock: red, black, and white. The *dewa*, along with three cocks, requires various items such as a broom (harjanu), mirror (arshi), straw ash (hangar), vermilion (sindoori), and brick powder. The *dewa* prepares a vedi of rice flour in the house courtyard before the sacrificial process. The rice grains are place on the front of *vedi* and fed to the cock. The cock's refusal to eat rice is believe to indicate the presence of *bagiya*, *dari*, or *dayan bonga*, and people wait for it to eat. The sacrifice process will complete when the cocks consume the rice grain. The black cock is primarily sacrifice for evil spirits in Hos, a popular practice among the people. Sacrifices to the Supreme Deity (Singboga) and the Village Deity (Deswali) are mandatory before offering to any spirit. The *dayan*, or *dari bonga* has a black cock, a red cock for *Deswali*, and a white cock for *Singbonga*. The main thing here is that it is never worship without *Sing Bonga* and *Deshwali Bonga*. The sacrifice placed vermilion on the *vedi*, and then sacrificed a white cock, then a red cock, and lastly a black cock, pouring their blood into the *vedi*. This process is typically conduct in the home of a sick person, sometimes in the west side field of the house. The *dewa* takes away the cock after the sacrifice. It is said that only after the process of sacrifice, the problem of the sick person gets cured on the same day; if it does not happen, then *dewa* comes and worships and sacrificing process again.

Future Challenges and Limitation of Ethno medicine

The ethno medicine practitioners in Ho village face numerous challenges and difficulties. Deforestation is a significant challenge, causing the loss of plant and animal species, impacting food, medicine, culture, and economics in forests. The second issue for them is that their relationship with plant and animal

species diminishes because of their displacement of the tribal community. When we talk about the limitation of ethno, medicine has its own limits in that it is only useful for a few diseases. Individuals treating them similarly to other similar ailments use traditional medicine for various unknown problems, similar to other diseases. Sometimes, this type of medicinal treatment can lead to their death. Ethno medicine knowledge, often passed down verbally rather than documented in writing, can lead to the loss of ancient expertise in treating diseases and potentially causing death in future generations, highlighting the importance of oral transmission in healthcare. Ethno medicine is a challenging field due to its focus on treating minor illnesses. Many individuals are unaware of serious illnesses. If we take the example of a snake bite often lead to people being unaware of the poison, leading to unsuccessful remedies and even death.The limited application of medical knowledge to areas with diseases. It is effective in treating common colds, digestive or liver issues, and joint discomfort. The indigenous knowledge is under severe threat due to these flaws and restrictions. Sucheta Tripathi's research on ethno medicine highlights its limitations and ineffectiveness in treating life-threatening conditions like cancer, diabetes, and high blood pressure. If you have a life-threatening illness like diabetes or high blood pressure, it may not function properly (Tripathi, 2019).

Conclusion

The above discussion demonstrates Ho people's medicinal knowledge. From this, it can said that the knowledge of ethno medicine can see as a kind of intellectual knowledge and property of these Janjati. Traditional knowledge used to treat various diseases, but each treatment has its own specific area of application. They have strong beliefs about diseases and offer various sacrifices through shaman for healing. The matter of concern extends to humans and domestic animals, with various spirits being consider the cause of various diseases. Knowledge of medicines is crucial for its treatment, despite potential negative

effects of these thoughts and beliefs in the past. It is being transfer orally from one generation to another. Hence, the need of the hour is to preserve this knowledge for coming generations. This traditional knowledge can be conserved by reducing the exploitation of natural resources, documenting them to make them widely accessible, making people aware of their benefits, and choosing them in order to advance this knowledge, the participation of the youth of today has to be increased.

References

1. Barla, S. J. (2015). Ethno-Medicinal Beliefs and Practices among Tribal of Jharkhand. *ayk.gov.tr*, 221-240.
2. Dhoni Bushi, Bam, K., & Mahato, R. (2021). Ethnomedicinal plants used the indigenous tribal comunities of Arunachal Pradesh, India: a review. *A Journal of Plants, People, and Applied Research*.
3. Dubey, R., & Soy, S. (2021). 'Ho' Tribe of west Singbhum Jharkhand. *Voice of Research*, 44-47.
4. Gadgil, M. (1993). Indigenous Knowledge for Biodiversity Conservation. *AMBIO A Journal of the Human Environment*, 151- 156.
5. Jain, P., Sharma, H., & Chaudhary, S. (2017). Ethno - Medicinal Plants used by Tribal Communities. *International Journal of Agriculture Innovations and Research*, 2319-1473.
6. Kashyap, S. (2003). Tribes of Jharkhand. *Bihar Naman Publishing House New Delhi- 110084.*
7. Miya, M. S., Chhetri, A., & Timilsina , S. (2020). Ethnomedicinal uses of plants by major ethnic groups of

Hilly Districts in Nepal: A review. *Journal of Medicinal Botany*, 24-37.

8. Oraon, B. C., & Dhan, K. (2020). Native Medicinal Plants Used by Tribal of Jharkhand. *International Journal of Current Microbiology and Applied Sciences*, 3979-3988.
9. Ota, A., Mohanty, S., & Kodamasingh, A. (2013). Ho. *The Scheduled Castes and Scheduled Tribes Research and Training Institute*.
10. Pandey, K. (2010). Indigenous medicines of Raji tribes of Uttarakhand. *Indian Journal of Traditional Knowledge*, 131-133.
11. Quinlan, M. B. (2011). Etnomedicine, in A Companion to Medical Anthropology . In M. S. Erickson, *A Companion to Medical Anthropology* (pp. 381-403). Chichester, W Sussex, UK; Malden: Wiley - Blackwell Publication.
12. Shikha, S., & Kumar, A. (2021). Ethnomedicinal climbers found in Jharkhand and their uses among the local tribes: A review. *International Journal of Herbal Medicine*, 28-33.
13. Tripathi, S. (2019). Ethnomedicine and Future Challenges. *Global Journal of Archaeology & Anthropology*, 88- 90.

बंजारा समाज की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

डॉ. बसुंधरा उपाध्याय
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
एल.एस.एम.राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय पिथौरागढ़ उत्तराखंड
ईमेल: basu1577@gmail.com

सारांश

बंजारा समाज देश के हर क्षेत्र में फैला हुआ है। बंजारा समाज प्राचीन काल से ही घुमंतू रहा है और व्यापर के सिलसिले में हर क्षेत्र में उनका आना जाना रहा है। यही कारण है कि बंजारा समाज देश के हर क्षेत्र में दिखाई देता है। बंजारा समाज के व्यवसाय के बारे में आगे विस्तृत रूप से चर्चा की जाएगी। भारतीय समाज में बंजारा समाज की विशिष्ट पहचान है। बंजारा समाज की संख्या देश में लगभग 12 करोड़ है। यह हर राज्य में अलग-अलग नामों से पहचानी जाती हैं। यह जनजातियाँ हमारे समाज की महत्वपूर्ण कारक हैं। में तो बस यही कहूंगी कि वास्तव में इन्हें समझने के लिये इनके पास रहना बहुत आवश्यक है।इनका जीवन मे बहुत रंग हैं उन रंगों को अगर देखना है तो इनमें शामिल होकर ही देखना होगा।

बीज शब्द: *बंजारा, समाज, देश, व्यवसाय, जनजाति*

शोध आलेख

भारत एक विशाल महासागर की तरह है जो कि अनेक प्रकार के जीव जन्तुओं को सागर अपने भीतर समेटे हुए रखता है ठीक उसी तरह भारतीय समाज भी अनेक प्रकार के लोग, संस्कृति, संस्कार, रीति-रिवाज आदि से बना हुआ है। भारतीय समाज में अनेक जाति-जनजातियाँ निवास करती है। हर जाति की अपनी संस्कृति और अपनी अपनी विशेषताएँ होती हैं। उनमें से एक ऐसी ही जाति या समाज है बंजारा समाज जो कि पूरे भारत में अपनी एक अलग सी पहचान बनाया हुआ है। बंजारा समाज की संस्कृति, रीति-रिवाज, रहन सहन, बोली के कारण भारतीय समाज में बंजारा समाज अपनी अलग पहचान रखता

है।आज हम जिन्हें जनजातीय कहते हैं उन्हें ट्राइबल भी कहा जाता है। भारतवर्ष में जनजाति कुल आवादी का महत्वपूर्ण अंग है। यह हमारे सभ्य समाज से हटकर है। आज जो हम अपनी सभ्यता संस्कृति को देख रहे हैं वह सब इन्हीं के कारण दिख रही है।भारत की जनजातीय संस्कृति, उनकी परम्पराएं और प्रथाएँ भारतीय संस्कृति और सभ्यता के लगभग सभी पहलुओं में शामिल है।अधिकांश जनजातियां एक बेल्ट में पाई जाती हैं जो पश्चिम में महाराष्ट्र और राजस्थान से लेकर पूर्व में उत्तर -पूर्वी राज्यों तक मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा,बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल और असम से होकर जाती है ।

बंजारा समाज देश के हर क्षेत्र में फैला हुआ है। बंजारा समाज प्राचीन काल से ही घुमंतू रहा है और व्यापर के सिलसिले में हर क्षेत्र में उनका आना जाना रहा है। यही कारण है कि बंजारा समाज देश के हर क्षेत्र में दिखाई देता है। बंजारा समाज के व्यवसाय के बारे में आगे विस्तृत रूप से चर्चा की जाएगी। भारतीय समाज में बंजारा समाज की विशिष्ट पहचान है। बंजारा समाज की संख्या देश में लगभग 12 करोड़ है। यह हर राज्य में अलग-अलग नामों से पहचानी जाती हैं। यह जनजातियाँ हमारे समाज की महत्वपूर्ण कारक हैं। में तो बस यही कहूंगी कि वास्तव में इन्हें समझने के लिये इनके पास रहना बहुत आवश्यक है।इनका जीवन मे बहुत रंग हैं उन रंगों को अगर देखना है तो इनमें शामिल होकर ही देखना होगा। बंजारा के विषय मे एक छंद लोक में बहुत प्रचलित है-

बंजारा वन में फिर लिए लकड़ियां हाथ।
टांडा वहाँ लड़ गया कोई संगी न साथ।।1 (बंजारा लोक साहित्य डॉ केशव फालके पृष्ठ-22)

भारत के सभी क्षेत्रों में बंजारा जनजाति के लोग दिखाई देते हैं। इनकी बोली-भाषा, वेशभूषा, संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान, त्यौहार, धार्मिक विधियाँ हर-एक क्षेत्रों में एक जैसी ही होती हैं। यह जनजाति आज भी अपनी लोक संस्कृति के अनुरूप ही व्यवहार करती हैं। इस जनजाति की नारियाँ अपनी विशेष वेशभूषा से ही पहचानी जाती है। बंजारन रंग-बिरंगे कपड़े पहने, हाथों में कंगण, कानों में

बाली, नाक में भूरियाँ, गले में हार, काँच लगी हुई ओढ़णी तथा घागरा पहनती है। सभ्य समाज से अलग इनकी अपनी एक विशेष वेशभूषा, भाषा, रीति-रिवाज, परंपराएँ देखने को मिलती हैं। बंजारा जनजाति एक घुमन्तू जाति है, जो पहले व्यापार, लदेणी का काम करती आयी है। यह जनजाति बन, जंगल, पहाड़-पर्वतों तथा नदियों के आस-पास अपनी झोपड़ियाँ बनाकर रहा करते हैं। ये लोग स्वभाव से फक्कड़, मस्तमौला जीवन बीताते हैं। रंग-बिरंगे कपडे पहनना और लोकगीत गाना इस जनजाति की खास विशेषता देखी जा सकती है।

बंजारा जनजाति भारत की घुमन्तू जनजातियों में प्रमुख स्थान रखती है। भारत में सभ्य लोग जिस समाज को बंजारा कहते है, उसी समाज को बनजारा, बंजारे, बंजारी, ब्रिंजारी, लभान, लमाणी, लंभाडी, लंभाड, बलदियाँ, लदेनियाँ, सुगळी, गंवारियाँ, गँवार, गवालियाँ, कंगी, कनाडा, सरकीबंद आदि अनेक नामों से पहचाना जाता है। बंजारा को उत्तर भारत में चारण, महाराष्ट्र में लमाणी, बंजारा, आंध्र प्रदेश में सुगळी, कर्नाटक में लंबाड़ा तथा अन्य क्षेत्रों में यह जनजाति अलग-अलग नामों से पहचानी जाती है। सभी क्षेत्र के बंजारे स्वयं को 'गोर' तथा 'गोरमाटी' ही समझते हैं।

'गोरमाटी' शब्द का अर्थ है गाय-बैल की रक्षा करनेवाला व्यक्ति ही गोर कहलाता है। 'गोर' याने गाय की रक्षा करनेवाला समाज गोर बंजारा कहलाता है। गाय-बैल के पीठ पर कुछ सामान लादकर बेचने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान जानेवाला समाज ही गोर बंजारा समाज कहलाता है। बंजारा जनजातियों में आज भी गाय-बैल की पूजा की जाती है। दिवाली के दिन गाय बैल की पूजा करते हुए यह लोकगीत गाते हैं -

वरसे दाडेर कोट दवाळी,
दवाळी तोन मेरा वरसे दाडेर कोट दवाळी,
याडी तोन मेरा, वरसे दाडेर कोट दवाळी,
सरज्या तोन मेरा वरसे दाडेर कोट दवाळी,
सुकऱ्या तोन मेरा, वरसे दाडेर कोट दवाळी,

हुनकी तोन मेरा वरसे दाडेर कोट दवाळी,
सामकी तोन मेरा " 2(गीत क्र. 01)

बंजारा जनजाति हर क्षेत्र में अलग-अलग नामों से पहचानी जाती है। कई विद्वान इस जनजाति को 'वाणिज्यकार' के नामों से पहचानते है क्योंकि इस जनजाति के लोग व्यापार करते थे। वाणिज्य शब्द संस्कृत का है 'वाणिज्य' शब्द को हिंदी में 'बनज' कहा जाता है। अर्थात 'बनज' शब्द से ही 'बंजारा' शब्द की व्युत्पत्ति हुई होगी। प्राचीन काल में यह जनजाति व्यापार करने के लिए दूसरे देश तक जाते थे । अफगानिस्तान,भूटान वर्मा,यूरोप आदि देशों में व्यापार के लिये जाते थे ।यूरोप में बंजारों को जिप्सी के नाम से जाना जाता है। बंजारा विश्व मे कहीं भी रहता हो वह अपनी संस्कृति, लोकगीत,लोकनृत्य त्यौहार, रहन-सहन बोली आदि से दूसरे समाज से भिन्न दिखता है अर्थात अपनी अस्मिता को बनाये रखता है। ऐसे संदर्भ देखने को मिलते हैं। बंजारा शब्द भी इस आशय से मेल खाता है, इसलिए इस जनजाति की व्युत्पत्ति 'बनज' से मानी जाती है।

'बनज' शब्द के संदर्भ में डॉ. ग्रियर्सन ने लिखा है- "संस्कृत के 'वाणिज्य' शब्द के साथ बनजारा शब्द का संबंध स्थापित किया है वाणिज्य वाणिज्यकार बनिज्जारों > बनजारा इस तरह कहा जा सकता है कि बनजारा शब्द जातिसूचक नहीं, व्यवसायसूचक है।"3 बंजारा शब्द आज व्यवसाय सूचन न होकर, जातिसूचक बन गया है। समाजशास्त्री रसेल और हिरालाल ने बंजारा शब्द की व्युत्पत्ति, 'गोर तथा चारण से मानते है क्योंकि मध्यकाल में गोर या चारण को बनजारा नाम से पुकारा जाता था'। डॉ. मोतिचंद ने बंजारा शब्द की व्युत्पत्ति के संदर्भ में कहा है कि "उन व्यापारियों को बनजारा कहा जाता है, जो बाहरी मंडियों के साथ व्यापार करने के लिए एक साथ टांड़ा लादकर चलते थे।"4 इसी प्रकार से बंजारा शब्द का विश्वकोश में अर्थ व्यापार करनेवाला, बैलों के पीठ पर अनाज लादकर बेचने के लिए ले जानेवाला अर्थ दिया है। नागरी प्रचारिनी सभा काशी द्वारा संपादित संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर में बंजारा शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार से कही गयी है कि- "बनजारा वह व्यक्ति है जो बैलों पर

अनाज लादकर एक देश से दूसरे देश को ले जाता है अनाज बेचने के साथ-साथ बनजारे अन्य वस्तुओं का भी व्यापार किया करते थे। नमक के अलावा ये बंजारे चॉवल, हलदी जैसी चीजें बेचते। एक जगह से दूसरी जगह माल ले जानेवाले पेशे में ये लोग कई सदियों से लगे हुए थे।"5 प्राचीन काल मे बंजारा जनजाति व्यापार करनेवाली जनजाति के रूप में चित्रण हुआ है, परंतु आज यह जनजाति दीन-हीन, अभाव-ग्रस्त जीवन-यापन करती है। बंजारा शब्द की व्युत्पत्ति बंजर जमीन से भी मानी जाती है क्योंकि बंजारा जनजाति बंजर जमीन पर रहकर जीवन यापन करती है, इसलिए यह जनजाति बंजर से बंजारा जनजाति के नाम से पहचानी जाने लगी होगी।

बंजारा जनजाति को 'लमाणी' भी कहा जाता है। 'लमाणी' शब्द की व्युत्पत्ति के संदर्भ में भी अनेक मत देखे जा सकते हैं। 'लमाणी' शब्द की व्युत्पत्ति 'लवण' शब्द से हुई होगी। 'लवण' का अर्थ है नमक, अर्थात लवण (नमक) का व्यापार करनेवाला 'लमाणी' कहलाता है। कई लोग 'लमाणी' को 'नमानी' कहते है। न माननेवाली जनजाति लमाणी कहलाती है।

बंजारा शब्द के अर्थ के संदर्भ में डा. शैलजा माहेश्वरी ने लिखा है - "भारतीय लोकगीत और लोककथाओं में वर्णित बनजारा वह समाज है, जो अपने उदर निर्वाह के लिए बैलों पर सामान लादकर वणिक-वृति करता है। इसलिए बनजारा शब्द का अर्थ ही व्यापारी (घुमन्तू) है। बणिया > बणज शब्द व्यापार को ही सुचित करता है।"6 मध्यकाल में बंजारा जनजाति की आर्थिक स्थिति अच्छि थी, इसलिए व्यापार किया करते थे। मध्यकाल में ये लोग एक स्थान स्थायी न रहते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान संगठित होकर व्यापार किया करते थे। व्यापार में ज्यादात्तर अन्न-धान्य ही रहा करता था।

सभ्यता की मुख्यधारा से अलग घुमन्तू बंजारा जनजाति की अपनी एक लोकसंस्कृति. वेशभूषा, बोलीभाषा संस्कार, त्योहार है। इस जनजाति को हर-एक विधियाँ लोकगीत गाकर ही पूर्ण की जाती है। लोकगीत इस जनजाति

का प्रधान अंग माना जाता है। इस जनजाति में जन्म से लेकर मृत्यु तक की विधियों में लोकगीत मिलते हैं। इन विधियों में सभी स्त्री-पुरूष मिलकर सम्पन्न करते हैं।बंजारों जे लोकगीत के विषय मे डॉ गणपत राठौर लिखते हैं कि"जाति के विभिन्न संस्कारों, उत्सवों के अवसरों पर गीत गाये जाते है, जैसे विविध सामाजिक प्रसंगों के अनुसार विवाह संस्कार, धार्मिक विधियाँ आदि विविध उत्सवों एवं जन जागृति के अवसरों पर लोकगीत गाये जाते है।" इनके लोकगीतों के द्वारा इनकी लोकसंस्कृति का चित्र सामने आता है। इनके लोकगीत खेत-खलिहान, परिवार, उत्सव, त्यौहार, विविध वृत्त, संस्कार, वेशभूषा, भाषा, अलंकार, जीवनशैली, धार्मिक विधियाँ, खान-पान, तथा अन्य प्रकार के लोकगीत बंजारे गाते हुए दिखाई देते हैं। इनकी लोकसंस्कृति का प्रतिबिंब इनके लोकगीतों में झलकता है।

भारत के हर क्षेत्र में बंजारा जनजाति निवास करती है। इस जनजाति के लोग एक गाँव से दूसरे गाँव भटकते रहने के कारण इनको 'घुमन्तू' जनजाति में गीना जाता है। ये लोग जंगल, पहाड़, पर्वतों के आस-पास छोटी-छोटी झोपड़ियाँ बनाकर निवास करते रहते हैं। इनकी बस्तियों को 'तांड़ा' कहा जाता है। टांड़े का प्रमुख 'नायक' होता है। नायक के साथ कारभारी, हसाबी, नसाबी, डायेसाळे तथा अन्य लोग रहते हैं। बंजारों के टांड़े घुमन्तू की अवस्था में एक स्थान से दूसरे स्थान जीवन यापन करते हुए पेट भरा करते हैं। घुमन्तू जनजातियों आज कहीं-कहीं पर गाँव के आस-पास पंचायतों की सरकारी जमिन पर अपनी झोपड़ियों बनाकर रहने लगी है किंतु कई गाँवों में घुमन्तू की अवस्था में भटकनेवाली जनजाति को सभ्य समाज अपने गाँवों में रहने के लिए जगह नहीं देते. इसका उदाहरण परभणी जिले के एक गाँव में देखा गया। परभणी जिले के बलसा नामक गाँव में रहने वालेघुमन्तू लोग जिला अधिकारी को निवेदन करते है कि, "बलसा परिसरातील सिकलकरी, वड़ार, लमाणी आदि समाजातील लोकांनी 11 नोव्हेंबर 2011 रोजी जिल्हाधिकाऱ्यांना निवेदन दिले असुन आमची आर्थिक परिस्थिती बीकट असल्यामुळे आम्हाला येथून उठवू नये

अशी विनंती केली आहे. आम्ही 15 वर्षांपासून येथे राहत असून जिल्हा प्रशासनाला कुठलाही त्रास नाही. मात्र गावातील मंडळी आम्हाला धमक्या देत आहेत. जागा सोडून दूसरीकडे जा, असे सांगत आहे. आम्ही बेघर असल्यामुळे व परिस्थिती बीकट असल्यामुळे जागा विकत घेवून शकत नाही. याचा विचार करून आम्हाला त्या जागेवरून उठवू नये. अशी विनंती केली आहे." 7

मराठवाड़ा क्षेत्र में रहनेवाली बंजारा जनजाति घुमन्तू जनजाति कहलायी जाती है। इस जनजाति को इस क्षेत्र में लमाणी, लमाण तथा बंजारा नाम से पहचाना जाता है। बंजारों का लोकसाहित्य ज्यादातर मौखिक स्वरूप का है। इन मौखिक लोकसाहित्य में इनके आवास- निवास, रहन-सहन, खान-पान, आभूषण, बोलीभाषा, संस्कार, त्यौहार, धार्मिक विधियाँ तथा अन्य तत्वों को लोकगीतों के द्वारा विवेचित करने का प्रयास किया गया है। इसका विस्तार से अध्ययन आगे देखा गया है। बंजारा की परिभाषा सबने अलग अलग की है। प्रसिद्द उर्दू गजलकार नाजिर अकबराबादी ने बंजारों के व्यापार जे संदर्भ में लिखा है -

"सब थाट पड़ा रह जायेगा, जब लाद चलेगा बंजारा।
छोड पसारा दुनिया का, वह लाद चला है बंजारा । ।।
तू हे लख्खी बंजारा,
तांडा तेरा भारी है।
गाफिल दिल में मत रहेना तू,
बहुत बड़ा बेपारी है। 2।
नमक, मिश्री, कंदगिरी,
फौजी सामान रखूँता है।
शमशेर बहादुर बंजारा, गनिम तुझे घबराता है। 8

बंजारा शब्द की उत्तपत्ति के विषय मे अनेक विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कुछ विद्वान का मानना है कि

1. अरबी फारसी भाषा मे गीतप्रिय घुम्मकड़ तथा गाता हुआ घूमने वाला व्यक्ति बंजारा कहलाता है।
2. हिंदी विश्वकोश में बनजारा शब्द का अर्थ है व्यापार करनेवाला अर्थात व्यापार के ऊपर जीविका चलानेवाला जनसमुदाय ।
3. अरबी फारसी भाषा में 'गुलाम' को 'बंदा' कहा जाता है। जब गुलाम अपने राजा के घर काम करके अपने घर जाता है तभी राजा उन्हें कहता है कि, बंदा जा रहा > बंद जारा > बनजारा इस प्रकार इस शब्द की व्युत्पत्ति हुई होगी।
4. हिंदु-मुस्लिम शासकों ने इस जाति को दी हुई गाली याने बंजारा। द्वेष भाव से व्यक्त किया हुआ शब्द याने बंजारा। बंजारा का अर्थ है- जंगली।
5. बन + जारा = बंजारा अर्थात बन, जंगलों में घुमन्तू की अवस्था में भटकनेवाली जनजाति बंजारा कहलाती है।
6. बंजर जमीन पर कुछ दिनों के लिए बस्तियाँ बनाकर रहने वाली जनजाति बंजारा कहलाती है। आज यही जनजाति अपना 'टेंट' बनाकर रहने लगी है।
7. बनों में, जंगलों में, पहाड़ों के आस पास रहकर जंगली, पशु-पक्षियों की शिकार करके जीवन-यापन करने वाली जनजाति बंजारा कहलाती है।
8. गेहूँ, चाँवल, ज्वार, नमक, मसालों का व्यापार अपने बेलों के पीठ पर लादकर बेचनेवाली जनजाति बंजारा कहलाती है। बंजारों को लमान लमानी, गोर बंजारा, गोरमाटी भी कहा जाता है।

बंजारा जनजाति भारत की प्रमुख घुमन्तू जनजाति में रही है। इस जनजाति के लोग हर-क्षेत्र में निवास करते हैं। इस जनजाति को अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग नामों से उल्लेखित किया जाता है। कई लोग इस जनजाति को बनजारा, बंजारा, चारण बंजारा, ब्रिजारी, गोर बंजारा, लमाणी, लमाण, लंबाड़ा, लभाणा, लभाणी, लदेळियाँ, मुकरी, गुजरियाँ, मथुरियाँ, मथुरालमाणी,

धाड़ी, ढाड़ीबंजारा, न्हावी बंजारा, दालियाँ आदि अनेक नामों से यह जनजाति पहचानी जाती है। हर क्षेत्र के बंजारा लोग स्वयं को 'गोर' तथा 'गोरमाटी' कहते हैं। महाराष्ट्र में बंजारा जनजाति को बंजारा, लमाणी नाम से संबोधित किया जाता है। इस जनजाति का मूल स्थान राजस्थान माना जाता है। राजस्थान में कई सदियों तक इस जनजाति के लोग रहने के पश्चात् इनमें से कई लोग अन्य क्षेत्रों में पेट भरने के लिए निकल पड़े। इसी क्षेत्र में वे आज अस्थायी रूप में रहने लगे हैं।

बंजारा जनजाति की व्युत्पत्ति के संदर्भ में अनेक विद्वानों के मत मतांतर दिखाई द्वैते है। बंजारा शब्द का अर्थ 'वाणिज्य' माना जाता है, अर्थात यह जनजाति व्यापार करनेवाली जनजाति के रूप में लिया जाता है। प्राचीन काल में यह जनजाति अपने बेलों के पीठ पर सामान लादकर व्यापार करती थी ऐसे अनेक चित्रण देखने को मिलते हैं। 'बंजारा' यह शब्द व्यवसाय सचक होते हुए भी अब जाति सूचक बन गया है। इस जनजाति का चित्रण हमेंप्राचीन साहित्य में भी दिखाई देता है। यह जनजाति अलग-अलग नामों, अलग-अलग कुलगोतों में बाँटी गयी है। यह जनजाति प्राचीन होते हुए भी आधुनिकता के दौर में अपनी अलग सी पहचान बना ली है। इस जनजाति की एक खास विशेषता यह दिखाई देती है कि- हर एक विधियों में ये लोग लोकगीत गाते हैं। लोकगीतों के बिना कोई भी विधि, संस्कार, त्यौहार संपन्न नहीं होता।

अतः यह जनजाति सभ्य लोगों से कोसो दूर रही है। आज कल इस जनजाति के रहन- सहन, खान-पान, त्यौहार, धार्मिक विधि, संस्कार तथा अन्य विधियों में थोड़ा बहुत परिवर्तन होता हुआ दिखाई देता हैं। आज इस जनजाति के कई लोग स्थायी रूप में घर बनाकर, खेती, उद्योग, नौकरी तथा शिक्षा ले रहे है, तो कई लोग आज भी दुर्गम घाटियों में अपना 'टांडा' बसायें प्राचीन रूढ़ी परंपरा के अनुसार जीवन-यापन करते हुए दिखाई देते हैं। इन लोगों को आज के परिवेश में लाना अवश्यक है। आज मानव वैश्वीकरण के दौर में आगे बढ़ रहा

है, परंतु इस जनजाति को वैश्विकरण का पता ही नहीं मालुम, इनको इस प्रवाह में आने के लिए कितने साल लगेंगे यह पता नहीं चल पाता।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ गणपत राठौर बंजारा लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ -13
2. दैनिक लोकमत,परभणी विशेष-समाचार पत्र-पत्रिका,पृष्ठ 1
3. डॉ यशवंत जादव,बंजारा जाती समाज और संस्कृति, पृष्ठ -2
4. वही
5. प्रो. मोतीराज राठौड़ गोर बंजारा जनजाति का इतिहास पृष्ठ- 32
6. प्रो. मोतीराज राठौड़ पाल निवासी भटक्या जमाति, पृष्ठ -110
7. सुरेश गौतम,भारतीय लोकसाहित्य कोष खण्ड-06पृष्ठ-2687
8. डॉ रूखमणी पवार, बंजारा लोकजीवन पद्वति पृष्ठ-41

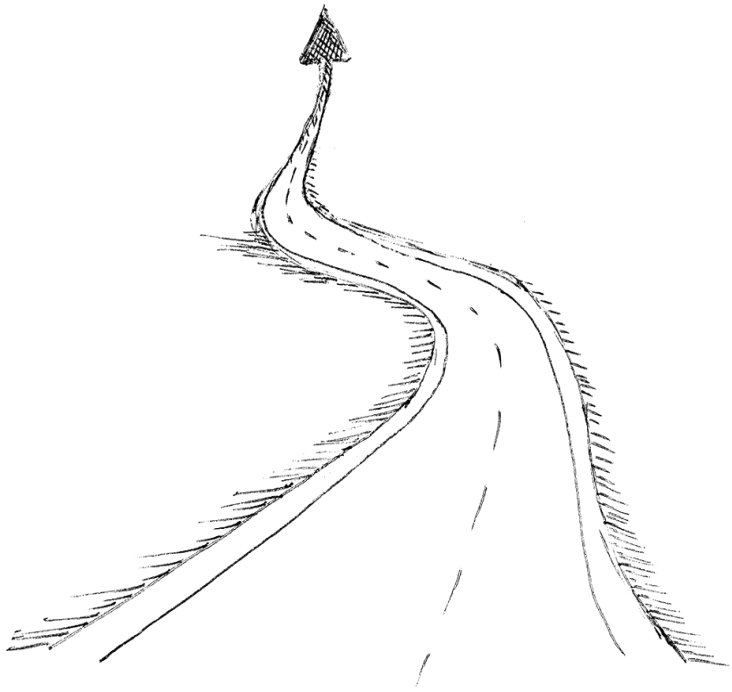

दलित काव्य : दलित चेतना और अनुभूति का यथार्थ

डॉ. सुमित कुमार
सहायक आचार्य, हिन्दी
महामाया राजकीय महाविद्यालय
शेरकोट, बिजनौर (उत्तर प्रदेश)
ईमेल: sumitlamba828@gmail.com

सारांश

हिन्दी दलित कविता ने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में उन विषयों को उजागर किया है जिन पर तथाकथित मुख्य धारा के साहित्य का ध्यान कभी नहीं गया। सदियों से हर तरह के शोषण और दमन के शिकार दलितों की चीत्कार के साथ ही व्यवस्था को बदलने की हुंकार का स्वर इन दलित कविताओं में खुलकर सामने आया है। ये कविताएँ एक तरफ तथाकथित मुख्यधारा के साहित्य को आईना दिखाती है तो दूसरी तरफ जाति के कारण लगातार दमन की चक्की में पिसते रहे दलितों में स्वाभिमान और संघर्ष की चेतना भरने का काम भी करती हैं। मनुष्य के जन्म पर उसका अधिकार नहीं होता। लेकिन क्या उसके कर्म पर भी उसका अधिकार नहीं होता? क्या भाग्य मनुष्य के श्रम से बड़ा है? क्या सौन्दर्य के प्रतिमान इतने ऊपरी हो सकते हैं कि उन्हें मेहनतकशों के पसीने से भीगे शरीर में कोई सौन्दर्य न दिखाई पड़े? ऐसे ही अनेक प्रश्न दलित कविता उठाती भी है और उनके उत्तर भी देती है।

बीज शब्द: *दलित, शोषण, संघर्ष, स्वाभिमान, चेतना, स्वानुभूति*

शोध आलेख

" मैं लिखना नहीं जानता, अलंकार के भेद,
मैं वह लिखता हूँ जिसे लिख नहीं पाए वेद।
मेरी कविता में मेरा अनुभव होगा-
वही लिखा जो जीवन में झेला या भोगा होगा"।

दलित कविता और दलित साहित्य का केन्द्रीय स्वर यही स्वानुभूति की अभिव्यक्ति है। दलित कविता काव्यशास्त्रीय उपादानों के मोहपाश में बँधी मीठी चाशनी नहीं है जिसमें डूबकर पाठक जीवन के सुरम्य क्षणों का आनंद ले बल्कि यह कुनैन की गोली की तरह है जो सुनने में कड़वी जरूर लगती है लेकिन सारी गंदगी को साफ करने का माद्दा रखती है। वैसे ये कविताएँ कड़वी भी संभवतः उन्हीं को लगती हैं जो व्यवस्था का आनंद उठा रहे हैं और उठाते रहना चाहते हैं। व्यवस्था द्वारा सताए हुए और उनके प्रति सहानुभूति रखने वालों के लिए तो ये कविताएँ ज़ख्म पर ठंडे लेप का काम करती हैं। दलित कविता पर एकांगी होने के आरोप लगते रहे हैं और एक लंबे समय तक इन कविताओं को साहित्य की कसौटी से नकारा जाता रहा। लेकिन ये कविताएँ अपनी संवेदना और शिल्प में इतनी उम्दा हैं कि मुख्यधारा की कविताओं से कहीं भी कमतर दिखाई नहीं देतीं।

दलित कविताओं का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष वह है जिसमें वे समाज में दलितों के तिरस्कृत जीवन को पूरे यथार्थ के साथ सामने रखती हैं। दलित साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति कविताएँ भी व्यक्तिगत नहीं हैं बल्कि पूरे समाज का सच कहती हैं। 'ओमप्रकाश वाल्मीकि' अपनी कविता 'हथेलियों में थमा सिर' में दलितों की सामाजिक स्थिति का जीवंत चित्र प्रस्तुत करते हैं-

" घुटनों पर टिकीं कुहनियाँ,
और हथेलियों में थमा सिर
बेबस है वक़्त के इस पड़ाव पर
जहाँ शब्द और भाषा अपनी पहचान खो चुके हैं" ।

हमारे देश में आर्थिक असमानता, जातिगत भेदभाव और अभिजात्यता के कारण पिछड़ी और दलित जातियों का जैसा भीषण शोषण हुआ है वैसा संभवतः संसार के किसी हिस्से में नहीं हुआ। असमानता के झगड़े विश्व भर में रहे हैं लेकिन वर्ण और जाति की जड़ हो चुकी व्यवस्था के कारण मानव का ऐसा भयंकर शोषण कहीं और हुआ हो ऐसा दिखाई नहीं पड़ता। यह ऐसी संस्कृति है जिसमें असमानता और भेदभाव सिर्फ तथाकथित उच्च और निम्न

जातियों के बीच ही नहीं है बल्कि निम्न कही जाने वाली जातियाँ भी स्वयं को श्रेष्ठ दिखाने के लिए आपस में प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्या रखती हैं। हजारों सालों की गुलामी और मानसिक, शारीरिक तथा आर्थिक शोषण ने उन्हें इसका अभ्यस्त बना दिया है। दलित कविता समाज और दलित जीवन के भीतर व्याप्त संस्कृति के इस वीभत्स रूप को उजागर करती है-

"यहाँ साँस लेती है वह कुत्ता संस्कृति,
जो आदमी को आदमी से काटती-बाँटती है-
धन-धरती और रिश्तों को-
गैर बराबरी के साथ।
भौंकती है अपनी ही नस्ल पर
और दूसरों की नस्लों के तलुए चाटती है"।

जिस संस्कृति को आधार बनाकर दलित जातियों का शोषण किया गया और तरह-तरह के आडंबरों के माध्यम से उनमें डर पैदा किया गया, दलित कविता उसे संपूर्णता में नकारती है। यहाँ देवी-देवता, वेद, पुराण, ईश्वर सभी पर प्रश्न उठाए गए हैं। तथाकथित मुख्यधारा की बहुत सी कविताओं में जिन्हें महिममंडित किया जाता रहा, दलित कविता उन्हें कठघरे में खड़ा करती है। दलित कविता एकलव्य के कटे अंगूठे का हिसाब माँगती है, शंबूक वध के लिए राम से सवाल करती है और उन सबसे प्रश्न पूछती है जो व्यवस्था के नियामक बनकर दलितों का शोषण करते रहे-

" ऋषयों के रक्षक,
यह तुमने क्या किया- ऋषि को,
तीर से मार दिया।
पूर्वाग्रहों से सधा
निशाना अचूक था
तपस्वी शायद
शूद्र 'शंबूक' था"।

डॉ. भीमराव अंबेडकर कहा करते थे कि "मैं दलित समाज की प्रगति का मापन इस बात से करता हूँ कि दलित नारी ने कितनी प्रगति की है"। दलित कविताओं में नारी अस्मिता के प्रश्न को खोजने पर थोड़ी निराशा होती है क्योंकि कुछ को छोड़कर ज्यादातर पुरुष कवियों ने नारी प्रश्नों को छुआ तक नहीं। बाद में जब दलित स्त्रियाँ स्वयं कविता लेखन के क्षेत्र में आयीं तो उन्होंने जोरदार तरीके से दलित स्त्री के तिहरे शोषण के खिलाफ आवाज़ बुलंद की। हालाँकि ओमप्रकाश वाल्मीकि जैसे कुछ कवियों ने दलित स्त्री के मेहनती स्वरूप को रेखांकित करते हुए उसके जीवन की पीड़ा की रेखाओं को भी बरीकी से उकेरा।

"सुबह पाँच बजे
हाथ में थामे झाड़ू
घर से निकल पड़ती है
'रमेसरी'
****
धूल जो सैंकड़ों
वर्षों से
जम रही है पर्त-दर-पर्त
फेफड़ों में रमेसरी के,
रंग रही है श्वास नली को,
चिमनी सा"।

यह उस दलित स्त्री के जीवन का मूल्य है जो अपना पूरा जीवन दूसरों के लिए सफाई करने में गवाँ देती है लेकिन स्वयं अपना अस्तित्व नहीं बना पाती। दलित कविताएँ इसी बिन्दु पर आकर और भी अधिक जीवंत, भावनात्मक तथा वास्तविक हो जाती हैं क्योंकि वे हाशिए की उस आवाज़ को उठाती हैं जो हमेशा अनसुनी कर दी गईं। यह सहज विचारणीय है कि यदि ये दलित कविताएँ न होतीं तो क्या सुंदर नायिकाओं के नख-शिख वर्णन और बारहमासा में डूबा रहने वाला साहित्य कभी 'रमेसरी' को उसकी झाड़ू समेत साहित्य के केंद्र में लाता?

दलित कविताओं में अभिव्यक्त आर्थिक जीवन छायावादी किस्म का नहीं है जिसमें 'सुंदर ग्राम्य जीवन' के मनमोहक चित्र दिखलाई पड़े। दलित कवि अर्थ तंत्र की चक्की में पिसते दलितों की दुर्दशा को नग्नता में उघाड़कर रख देते हैं। मूल पर सूद और फिर सूद का सूद देते देते किस प्रकार दलितों का जीवन समाप्त हो जाता है यह भी दलित कविता का केन्द्रीय स्वर बनकर उभरा है।

"शोषण की अमर बेल, दमन की महागाथा,
यातना के पिरामिड, उत्पीड़न की गंगोत्री ,
ऋणों के पहाड़, ब्याज के सागर ,
निरक्षरों के मस्तिष्क, महाजनों की बही,
रुक्कों पर अंगूठों की छाप, ऊत पटांग,
जोड़- घटा, गुणा-भाग, देना, सब एक" ।

सम्पूर्ण दलित साहित्य का जो मूल स्वर है, वह है विद्रोह की चेतना। दलित कवि सामाजिक यथास्तिथि से कोई समझौता नहीं करना चाहते है। उनका उद्देश्य व्यवस्था का सम्पूर्ण परिवर्तन करना है। वर्ण भेद, जाति भेद, धार्मिक असमानता और असंख्य प्रकार के भेदभावों को सदियों से अपने कंधे पर ढो रहा दलित समाज और नहीं सहना चाहता। वे कहते हैं कि 'बस बहुत हो चुका', 'सदियों का संताप' 'अब और नहीं' झेलेंगे। महात्मा ज्योतिबा फुले से चलकर बाबा साहब भीमराव अंबेडकर तक पहुँचा सामाजिक समानता का आंदोलन ही दलित कविता का आदर्श है। जब एक दलित बच्चे को पहली बार एहसास होता है कि वास्तविकता क्या है तो उसे कुछ भी संतोषजनक दिखाई नहीं देता। उसका अस्तित्व उसे झकझोरता रहता है और जब उसे कविता में अभिव्यक्ति मिलती है तो वह लिखता है-

"जब से होश संभाला
पाया मैंने अपने भीतर
जलता, दहकता, तड़फड़ाता एक सूरज।
वे दिन जो जल रहे हैं निरंतर,

असंख्य सीनों में, हजारों साल से
यहाँ गूँजता है आर्तनाद, लुटे-पिटे आदमी का।
अरे तुम क्या जानों
विश्वास में छले जाने की पीड़ा क्या होती है" ?

दलित कविता भारतीय प्रगतिशील बुद्धिजीवियों पर भी प्रश्नचिह्न लगाती है जो दुनिया भर के लोगों के ऊपर हो रहे जुल्मों के खिलाफ़ बोलते हैं लेकिन अपने ही देश में दलितों के साथ हो रहे अमानवीय व्यवहार को देखकर चुप हो जाते हैं। इसी तरह भारतीय राजनीति के दोहरे चरित्र और मानदंडों का पर्दाफाश भी दलित कविता करती है।

" लोग मिले उजले कपड़ों में-
मन के काले लोग मिले।
मरज मुफलिसी का फैलाते-
पैसे वाले लोग मिले" ।

दलित कविताओं की संवेदना का अध्ययन करते हुए यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि दलित कविता केवल दलित जीवन की त्रासदी और उससे उबरने की चेतना का ही दस्तावेज नहीं है बल्कि यह ऐसे मूल्यों और समस्याओं को भी उठाती है जो केवल दलित समाज के न होकर सम्पूर्ण समाज को ग्रसित कर रहे हैं। बेटियों के विवाह में दहेज की समस्या एक ऐसा ही प्रसंग है-

" कभी व्रत कभी जाप, करवाते हैं माँ-बाप।
पर दहेज अभिशाप का शिकार हुई लड़की" ।।

दलित कविताएँ सदियों से दबे आक्रोश की कविताएँ जरूर हैं लेकिन प्रतिशोध की कविताएँ नहीं हैं। ये कविताएँ सीधे तौर पर तीखे सवाल खड़े करती हैं। व्यवस्था के नियामकों से पूछती हैं कि

" यदि वेदों में लिखा होता, ब्राह्मण, ब्रह्मा के पैर से हुए
हैं पैदा।
उन्हें उपनयन का अधिकार नहीं, तब, तुम्हारी निष्ठा क्या
होती" ?

दलित कविता शोषक समाज को स्पष्ट चुनौती देती हैं कि यदि अभी भी व्यवस्था में परिवर्तन करके समतामूलक समाज की स्थापना नहीं की गयी तो इस भेदभावमूलक समाज द्वारा बनाए गए नियम ही उसके ताबूत में कील ठोकेंगे। ये कविताएँ संवेदना का मर्मस्पर्शी चित्र खींचती है। दरअसल इन कविताओं में वह कथारस उपलब्ध नहीं होता जिसकी तलाश साहित्य के परंपरागत पाठक को होती है। लेकिन जब एक बार पाठक इन कविताओं की गहराई में डूब जाता है तो उसकी संवेदना के तन्तु इतनी गहराई तक झंकृत हो जाते हैं कि वह स्वयं को दलित कविता के वातावरण से अलग नहीं कर पाता। परत-दर-परत उसका सामना जीवन की वास्तविकताओं से होता जाता है और आडंबरो एवं थोथी नैतिकता की धूल साफ होती जाती है।

ये दलित कविताएँ कई प्रश्न उठाती हैं और बहुत से उत्तर देती हैं लेकिन फिर भी पाठक के समक्ष एक बड़ा सा सवाल छोड़ जाती हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि भी ऐसा ही प्रश्न उठाते हुए पूछते हैं-

" चूहड़े या डोम की आत्मा,
ब्रह्म का अंश क्यों नहीं है?
मैं नहीं जानता,
शायद आप जानते हों" ।

इस प्रकार दलित कविता का फलक बहुत विस्तृत है। इसकी संवेदना का निर्माण स्वानुभूति के कच्चे माल से हुआ है और उसे अनुभव और ज्ञान की आँच पर पकाकर यह स्वरूप दिया गया है। यही कारण है कि ये कविताएँ सीधे हृदय में उतर जाती हैं और पाठक को भी संवेदना के स्तर पर ला खड़ा करती हैं। निःसंदेह इन कविताओं का योगदान दलित चेतना के विकास में अद्वितीय है और आशा की जा सकती है कि भविष्य में भी दलित कविता नित विकास करती हुई परिमार्जन के उस स्तर पर पहुँच जाएगी जहाँ तथाकथित मुख्यधारा की कविता को उसे स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं होगा और ये कविताएँ 'सृजन के मानवोन्मुख' एहसास को साहित्य के केंद्र में लाती रहेंगी।

संदर्भ सूची

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि/सदियों का संताप/ फिलहाल प्रकाशन, देहरादून/ संस्करण-1989/पृष्ठ-18
2. डॉ. सुखबीर सिंह/ बयान बहार/ जयश्री प्रकाशन,दिल्ली/ संस्करण-1985/पृष्ठ-21
3. डॉ. श्याम सिंह 'शशि'/एकलव्य और अन्य कविताएँ/पृष्ठ-54
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि/सदियों का संताप/ फिलहाल प्रकाशन, देहरादून/ संस्करण-1989/पृष्ठ-17
5. डॉ. धर्मवीर/ हीरामन/ शेष साहित्य प्रकाशन,दिल्ली/ संसकर्ण-1989/ पृष्ठ-51
6. दलित प्रक्रिया(अप्रैल 1995)/ ओमप्रकाश वाल्मीकि/ दलित प्रक्रिया(अप्रैल 1995)
7. श्योराज सिंह बेचैन/ नई फसल/ मानसी प्रेस मुरादाबाद (उ.प्र.)/ प्रकाशन-1989/ पृष्ठ-58
8. श्योराज सिंह बेचैन/ नई फसल/ मानसी प्रेस मुरादाबाद (उ.प्र.)/ प्रकाशन-1989/ पृष्ठ-8
9. कँवल भारती/ दलित निर्वाचित कविताएँ/ इतिहास बोध प्रकाशन/संस्करण-2006/ पृष्ठ-215
10. ओमप्रकाश वाल्मीकि/ दलित निर्वाचित कविताएँ,संपादक-कँवल भारती/ इतिहास बोध प्रकाशन/संस्करण-2006/पृष्ठ-63

निर्मला पुतुल और उनकी स्त्री चेतना

कालू तामांग
पीएचडी शोधार्थी
प्रेसिडेंसी विश्वविद्यालय, कोलकाता
मो. 7384334318
ईमेल: catchmekaran92@gmail.com

सारांश

अस्मिता की लड़ाई के इस दौर में कवयित्री निर्मला पुतुल को हम एक वीरांगना के रूप में देख सकते हैं जो अपनी कलम रूपी तलवार से स्त्री के ऊपर हो रहे प्रहारों से लोहा ले रही हैं। उनकी कविताएं न सिर्फ स्त्री की अस्तित्व की वकालत करती हैं बल्कि उससे कहीं आगे जाकर उनकी अभिव्यक्ति, समान अवसर, चुनाव आदि की आजादी के पक्ष में खड़ी होती हैं। पुतुल इस बात से भलीभांति परिचित हैं कि स्त्री को पुरुष के समतुल्य होने के लिए समान शिक्षा के साथ ही समान अवसर, समान अभिव्यक्ति की आवश्यकता है। स्वतंत्र अभिव्यक्ति, समान अवसर, चुनाव का अधिकार आदि कुछ ऐसी बुनियादी चीजें हैं जो उनकी प्रगति के लिए रोड रोलर की तरह काम करेंगी।

ऐसा नहीं है कि स्त्री मुक्ति के रास्ते पर वे सिर्फ पुरुष और पुरुषसत्ता को ही दोषी मानती हैं बल्कि वे उन स्त्रियों को भी प्रश्न के घेरे पर खड़ी करती हैं जो स्त्री मुक्ति के नाम पर बहस करती हैं, प्रश्न उठाती हैं लेकिन जैसे सांझ को पंक्षी अपने घोंसले पर वापस जाति है ठीक उसी तरह वे स्त्रियां अपने पति और बच्चे के घर लौटने की फिक्र में घर को लौट जाती हैं। हमें यहां यह समझने की आवश्यकता है कि आदिकाल से जकड़ी इन बेड़ियों को तोड़ना इतना आसान नहीं है। जहां धन की देवी लक्ष्मी विष्णु के चरण में अपना स्थान पाती हैं तो फिर सामान्य स्त्री की बिसात ही क्या?

बीज शब्द : *स्त्री, पुरुष, अस्मिता, बेड़ियां, मानसिकता, वेश्यावृति, बलात्कार*

शोध आलेख

'क्या तुम जानते हो' जैसे प्रश्नवाचक शैली में कविता लिखने वाली कवयित्री निर्मला पुतुल का जन्म भारत के झारखण्ड राज्य के दुमका जिले के दुधानी कुरुवा नामक गांव में एक संथाल परिवार में 6 मार्च सन् 1972 ई. को हुआ।[1] इनकी माता श्रीमती कांदनी हांसदा और पिता स्वर्गीय सिरील मुर्मू हैं। इन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा अपने गांव से तथा उच्च शिक्षा दुमका से ही प्राप्त किया। राजनीतिक शास्त्र में आनर्स के साथ ही आजीविका के लिए नर्सिंग में डिप्लोमा भी हासिल किया। ये अपनी मातृभाषा संथाली और हिंदी में समान रूप से लेखन कार्य करती हैं। वर्तमान में निर्मला पुतुल संथाली और हिंदी साहित्य ही नहीं बल्कि भारतीय साहित्य के लिए भी एक बहु चर्चित नाम है। जो अपनी लेखनी द्वार स्त्री और आदिवासी अस्मिता के प्रश्नों के साथ ही विविध मुद्दों पर अपनी कलम से वाणी देती हैं। निर्मला पुतुल की अब तक प्रकाशित हिन्दी कविता संग्रह हैं 'अपने घर की तलाश में' (2004), 'नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द' (2005) और 'बेघर सपने' (2009)।[2]

आज हम आधुनिक ही नहीं बल्कि उत्तर आधुनिक युग में प्रवेश कर चुके हैं लेकिन फिर भी स्थिति कुछ खास बदली नहीं है। व्यवस्था के कायदों और कुर्सी पर बैठने वाले के चेहरों में तो बदलाव आया है लेकिन जमीनी हकीकत अभी भी डामाडोल है। हमारे समाज में आज भी स्त्रियों की स्थिति लगभग वैसी ही शोषित और पीड़ित हैं जैसा पहले हुआ करती थीं। हालांकि समय के बदलते परिदृश्य के साथ कई क्षेत्र में परिवर्तन आया है। लेकिन फिर भी बलात्कार और उसके बाद उसकी हत्या और फिर सबूत मिटाने के लिए सबूत से छेड़छाड़ जैसी घटनाओं से राष्ट्र भलीभांति परिचित है।[3] यह तो संज्ञान में आने वाली घटनाएं

[1] टेटे वंदना, देशज साहित्य में देशज महिलाएं, पृ. 48, नोशन प्रेस डॉट कॉम, 2nd एडिशन, 2021

[2] वहीं, पृ. 48

[3] https://www.bhaskar.com/local/uttar-pradesh/hathras/news/all-four-accused-can-be-convicted-the-girl-died-after-rape-3-years-ago-130991330.html

हैं जबकि ऐसी अनेक घटनाएं हैं जिनसे हम परिचित ही नहीं हो पाते हैं। जिसकी हमें भनक तक नहीं लगती है। ऐसी ही परिस्थितियों से रूबरू कराता है निर्मला पुतुल द्वारा रचित कविता संग्रह 'नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द'। पुतुल द्वारा रचित यह एक ऐसा कविता संग्रह है जो प्रत्यक्ष रूप से स्त्री अस्मिता के प्रश्नों को लेकर हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। यह कविता संग्रह स्त्री अस्मिता पर प्रश्न चिन्ह खड़ा करने वाले असामाजिक तत्वों के विरोध में खड़ा एक दहकता दस्तावेज है।

पुतुल इस संग्रह की पहली कविता में ही एक बहुत बड़ा प्रश्न लेकर प्रस्तुत होती हैं। उनका प्रश्न है 'क्या तुम जानते हो?' यह कोई सामान्य प्रश्न नहीं है बल्कि इसमें अनंत काल से चला आ रहा जीवन संघर्ष और जीजीविषा संलिप्त है जो इस प्रश्न को करने के लिए कवयित्री को विवश किए हुआ है। प्रश्न जब पुतुल के अंतर्मन में उठता है तो प्रश्न हमारे अंतर्मन में उठना भी लाजमी है कि सच में 'हम क्या जानते हैं? क्या जानते हैं हम एक स्त्री के बारे में? हमें क्या पता है एक स्त्री होने का अर्थ? क्या हम उसी पारंपरिक छवि को लेकर अग्रसर नहीं हो रहे हैं जो हमारे पूर्वजों द्वारा हमें विरासत के रूप में मिला है या फिर इसके इतर भी हम कुछ सोचते हैं एक स्त्री के विषय में। क्या हम इस विषय पर बौद्धिक चिंतन करते हैं या फिर सामान्य विषय के रूप से देखते हुए आगे बढ़ जाते हैं? प्रश्न यहां है। और शायद इसका उत्तर है नहीं, नहीं हम उस रूप में नहीं सोचते जिस रूप में इसे सोचने की जरूरत है।

सदियों से यही धारणा चली आ रही है कि स्त्री देवी है, लक्ष्मी है, दुर्गा है, काली है, सरस्वती है। स्त्री के होने से ही घर मंदिर बनता है वरना घर वीरान हो जाता है। हालांकि कुछ ही साल पहले तक जेंडर टेस्टिंग[1] के द्वारा हजारों लाखों बच्चियों को गर्भ में ही भ्रूण हत्या द्वारा मारा जाता रहा। और तो और हास्यास्पद विषय यह है कि देश के किसी-किसी क्षेत्र में ऐसी अफवाहें हैं कि स्त्री द्वारा स्त्री

[1] https://www.deshbandhu.co.in/vichar/law-on-female-feticide-76826-2

भ्रूण ग्रहण करना पुरुष के पुरुषपन में कमजोरी की निशानी है। यह कैसी मानसिकता है, यह कैसी सोच है। अब और अधिक क्या ही कहा जाए जब शब्दकोश में ही स्त्री के विषय में लिखा गया हो कि 'मनुष्य जाति के जीवों के भेदों में से एक जो अपनी सुन्दरता, कोमलता आदि के लिए प्रसिद्ध है और जिसका काम गर्भ धारण करके संतान उत्पन्न करना है।'[1] तभी तो निर्मला पुतुल इस समाज में स्थापित उस पुरुषसत्ता से सवाल करती हैं, वह पूछती हैं कि -

'क्या तुम जानते हो
पुरुष से भिन्न
एक स्त्री का एकांत?
घर प्रेम और जाति से अलग
एक स्त्री को उसकी अपनी जमीन
के बारे में बता सकते हो तुम?[2]

यह बिल्कुल ज्वलंत विषय है कि आखिर स्त्री का अपना घर, उसकी अपनी जमीन कहां है जिसे वह ताल ठोककर अपना कह सके कि यह मेरा अपना है। यह घर मेरा है, यह जमीन मेरी है। इससे मुझे कोई निष्कासित नहीं कर सकता। क्या ऐसा कोई स्थान है एक स्त्री के लिए? उसका मायका या फिर ससुराल? ससुराल से कभी भी निकाली जा सकती है और मायका में अभिभावक के न रहने पर अपने प्रियजन शायद उसे चैन की सांस लेने न दें। अगर वह स्वतंत्र भी रहना चाहेगी तो असामाजिक तत्व और हमारा सामाजिक संरचना उसके लिए परेशानियां खड़ी करेंगी। ऐसे में प्रश्न का उठना तो लाजमी है कि स्त्री की जमीन, उसका घर कहां है।

[1] बृहत प्रमाणिक हिंदी कोश, मूल स. आचार्य रामचंद्र वर्मा संशोधित. डॉ. बद्रीनाथ कपूर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 1018, सं. 2012

[2] पुतुल, निर्मला, नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, तीसरा संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2012, पृ 7

आदिकाल से ही पुरुषों ने स्त्री को एक भोग्य वस्तु के रूप में देखा है। स्त्री की आवश्यकता केवल इसलिए थी कि वह पुरुष के दैहिक इच्छा की पूर्ति करने का एक साधन बनें और उसके लिए गर्भ धारण करें। स्त्री के गर्भ धारण करने के दौरान वह भोग्य नहीं रह जाती है अतः इसी कारण पुरुष ने दूसरा मार्ग अपनाया वह था बहु- विवाह अथवा वेश्यावृति। बलात्कार, वेश्यावृति तथा बहु विवाह जैसी घृणित कृत्य आज से नहीं बल्कि सृष्टि निर्माण के समय से ही व्यवहार में है। यहां तक कि ब्रह्मा[1], विष्णु, इंद्र जैसे शक्तिशाली देवता भी इससे नहीं बच पाए। ऐसी स्थिति में पुतुल का पूछना सार्थक लगता है –

तन के भूगोल से परे
एक स्त्री के
मन की गांठें खोलकर
कभी पढ़ा है तुमने
उसके भीतर का खौलता इतिहास?
...
उसके अंदर वंशबीज बोते
क्या तुमने कभी महसूसा है
उसकी फैलती जड़ों को अपने भीतर?
...
अगर नहीं !
तो फिर जानते क्या हो तुम
रसोई और बिस्तर के गणित से परे
एक स्त्री के बारे में...?[2]

[1] https://youtu.be/fq0xWRg0XpM

[2] पुतुल, निर्मला, नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, तीसरा संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2012, पृ. 8

अंत में उनका प्रश्नचिन्ह से कविता की समाप्ति करना समाज पर, शासन पर, व्यवस्था पर एक प्रश्न करना है कि क्या यह समाज कभी स्त्री को समझ पाने में सफल होगा?

इस संग्रह की इनकी परवर्ती कविताएं इसी कविता का वृहद और विस्तृत रूप नजर आती हैं। 'अपनी जमीन तलाशती बेचैन स्त्री', 'क्या हूं मैं तुम्हारे लिए', 'अपने घर की तलाश में', 'मां के लिए ससुराल जाने से पहले','मैं वो नहीं जो तुम समझते हो', 'एक बार फिर' जैसी कविताएं सदियों से तड़पती, छटपटाती एक बेचैन स्त्री की अभिव्यक्ति है।

एक स्त्री चाहे वह कामकाजी हो या फिर गृहिणी जब भी अकेली होती है तो स्वयं का अवलोकन करती है। अपना वजूद तलाशती है कि आखिर इस इतनी बड़ी भीड़ में वह है कौन? उसका अस्तित्व क्या है? तभी उसके अंतर्मन में प्रश्न उठता है कि 'क्या हूं मैं तुम्हारे लिए?'। यह प्रश्न उन तमाम स्त्रियों का है जो अपने पति के व्यवहार से विक्षिप्त हैं और यह प्रश्न करने के लिए बाध्य है कि उसका अपने पति के जीवन में क्या अस्तित्व है। क्या वह कोई तकिया है, कोई खूँटी है, कोई डायरी है, कोई गेंद है या फिर कोई चादर।

क्या हूं मैं तुम्हारे लिए
एक तकिया
कि कहीं से थका – माँदा आया
और सिर टिका दिया
कोई खूँटी
कि ऊब उदासी थकान से भरी
कमीज उतारकर टांग दी...
कोई गेंद
कि जब तब
जैसे चाहा उछाल दी
या कोई चादर

कि जब जहां जैसे – तैसे
ओढ़ – बिछा ली? [1]

बेहद मार्मिक और संवेदनशील प्रश्न उठाया गया है कवयित्री पुतुल द्वारा कि आखिर एक स्त्री है क्या! जिसका उत्तर देना एक पुरुष के लिए संभव नहीं है। क्योंकि वह यह मानकर चलता है कि यह सब करना एक के लिए सामान्य बात है। और उससे भी बड़ी बात पुरुष का यह सोचना कि पुरुष और परिवार के लिए स्त्री जो भी करती है वह उसका दायित्व है। पुरुष को हर संभव खुश रखना ही स्त्री का परम धर्म है उसका कर्तव्य है।

एक छोटी बच्ची जब जवान हो जाती है तो उसके न चाहते हुए भी उसे विवाह जैसी सामाजिक बंधन में बंधना पड़ता है। उसे अपना वह घर जहां उसके जन्मदाता रहते हैं छोड़कर जाना पड़ता है। जिसे अब तक वह अपना मानती आई है, कहती आई है अब वह घर उसके लिए पराया हो जाता है। वह भी एक ऐसे घर में जाने के लिए जो उसका नितांत पराया है। उस समय उसपर क्या गुजरती है, वह अपनी मां और पिता से क्या कहना चाहती है इसको हम 'मां के लिए, ससुराल जाने से पहले' और 'उतनी दूर मत ब्याहना बाबा!' नमक कविता के माध्यम से समझ सकते हैं।

जैसे इंसान अपने अंत समय में सोचता है कि अब मेरे बाद मेरे परिजनों का क्या होगा वही प्रश्न एक स्त्री का होता है जब वह शादी करके जाने वाली होती है। वह यह सोचती है कि –

मां !
चली जाऊंगी एक दिन छोड़कर
तुम्हारा घर आंगन...
सोचती हूं,
कौन दबाएगा अब तुम्हारे पांव?

[1] वहीं, पृ. 28-29

थके – मांदे वापस लौटे बापू को
कौन देगा अगुवाकर लोटा भर पानी?...
बापू भी चला जायेगा खेत
तुम रह जाओगी निपट अकेली घर में
चटाइयां बुनती
और ऐसे में जब लगेगी प्यास
उठना चाहकर उठ नहीं पाओगी
बार – बार निहारोगी घड़े
झांकोगी इधर – उधर
तब क्या याद नहीं आएगी मेरी
कहो न मां,
याद नहीं आएगी मेरी??[1]

ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो हर लड़की अपनी मां से करना चाहती है। प्रश्न सामान्य हैं लेकिन मर्म प्रशांत महासागर से भी गहरे।

हम इस बात को बिल्कुल नकार नहीं सकते हैं कि 19वीं या 20वीं सदी की तुलना में 21वीं सदी स्त्रियों के लिए काफी कुछ परिवर्तन लेकर आया है। जहां 19वीं सदी में सती प्रथा को कानूनन बंद कर दिया गया वहीं आज साहित्यिक, सामाजिक, प्रशासनिक, राजनीतिक, आर्थिक हर क्षेत्र में स्त्रियां बढ़ चढ़कर हिस्सा ले रही हैं। अपनी इच्छानुसार रहना, खाना, पहनना कर रही हैं। वैसे भी आजकल तो मेट्रोपोलिटन नगरों में लिव -इन -रिलेशन का जमाना है जहां स्त्री अपने मनपसंद पुरुष साथी के साथ विवाह जैसे सामाजिक परिधान को नकारते हुए अथवा उस बंधन में बंधे बिना ही बेहिचक रूप से दांपत्य जीवन जीती हैं। इस संबंध में वह सब कुछ होता है जो एक दांपत्य जीवन में होता है। हां, अगर कुछ नहीं होता है तो वह है परिवारबोध।

[1] वहीं, पृ 46, 47,48

वे स्त्रियां जो स्वयं को आधुनिकता की श्रेणी में हमेशा दो कदम आगे रखना चाहती हैं, स्त्री की समस्याओं पर खुलकर मंच पर अपनी बात रखती हैं, विभिन्न कार्यक्रमों में बढ़ - चढ़कर हिस्सा लेती हैं, उनकी वास्तविकता क्या है इसको उजागर करती हुई पुतुल अपनी कविता 'एक बार फिर' में कहती हैं जो कि अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस समारोह का आमंत्रण पत्र पाकर लिखा गया था।

एक बार फिर
बहस की तेज आंच पर पकेंगे नपुंसक विचार
और लिए जाएंगे दहेज – हत्या, बलात्कार,
यौन – उत्पीड़न
वेश्यावृत्ति के विरुद्ध मोर्चाबंदी कर लड़ने के
कई – कई संकल्प
एक बार फिर
अपनी ताकत का सामूहिक प्रदर्शन करते
हम गुजरेंगे शहर की गलियों से
पुरुष – सत्ता के खिलाफ
हवा में मुट्ठी – बंधे हाथ लहराते
.....
धीरे – धीरे ठंडी पड़ जायेगी भीतर की आग
और एक बार फिर
छितरा जाएंगे हम चौराहे से
अपने – अपने पति और बच्चों के
दफ्तर व स्कूल से लौट आने की चिंता में...[1]

अब एक तरफ स्त्री पुरुषों के शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध मोर्चे पर खड़ी है लेकिन वहीं दूसरी ओर उसी पुरुषसत्ता द्वारा व्यवस्थित परिवारबोध के दायित्व के निर्वाहन के लिए उसी व्यवस्था को स्वीकारते हुए घर की ओर अग्रसर है।

[1] वहीं, पृ 61, 62

एक दृष्टि से देखा जाए तो यह लगता है कि कोई भी परिवर्तन एकाएक नहीं होता उसे थोड़ा समय लगता है जिससे वे स्त्रियां परिवार की चिंता लिए घर की ओर रवाना हो रही हैं लेकिन वहीं दूसरी दृष्टि से देखें तो लगता है कि स्त्री के भीतर ही वह विशेष गुण है जिससे वह परिवार और परिवारबोध को बचाए रखने में सक्षम हैं।

अंततः पुतुल द्वारा रचित यह संग्रह स्त्री आलोचक रेखा सेठी द्वारा स्त्री कविता संबंध में कहे वाक्यों की पूर्ति करती हुई नजर आता है जहां वे कहती हैं कि, "इनके लेखन में अपनी निजी और सामाजिक स्थिति का बयान है जहां कोई भी विषय वर्जित नहीं। चाहे वह उसके अपने बंधन और मुक्ति के सवाल हों या देश और विश्व की राजनीति के... प्रेम, कामना और देह के सवालों पर भी वह बिना किसी झिझक अपनी बात रख रही हैं। कविता और भाषा के सवाल भी उनकी वैचारिक परिधि में हैं तो प्रकृति और उसके दमन की चिंताएं भी।"[1]

संदर्भ सूची

1. टेटे वंदना, देशज साहित्य में देशज महिलाएं, पृ. 48, नोशन प्रेस डॉट कॉम, 2nd एडिशन, 2021
2. वहीं, पृ. 48
3. https://www.bhaskar.com/local/uttar-pradesh/hathras/news/all-four-accused-can-be-convicted-the-girl-died-after-rape-3-years-ago-130991330.html
4. https://www.deshbandhu.co.in/vichar/law-on-female-feticide-76826-2

[1] सेठी, रेखा, **स्त्री -कविता** पक्ष और परिप्रेक्ष्य, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2019, पृ. 19-20

5. बृहत प्रमाणिक हिंदी कोश, मूल स. आचार्य रामचंद्र वर्मा संशोधित. डॉ. बद्रीनाथ कपूर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 1018, सं. 2012
6. पुतुल, निर्मला, नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, तीसरा संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2012, पृ 7
7. https://youtu.be/fq0xWRg0XpM
8. पुतुल, निर्मला, नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द, तीसरा संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2012, पृ. 8
9. वहीं, पृ. 28-29
10. वहीं, पृ 46, 47,48
11. वहीं, पृ 61, 62
12. सेठी, रेखा, स्त्री -कविता पक्ष और परिप्रेक्ष्य, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2019, पृ. 19-20

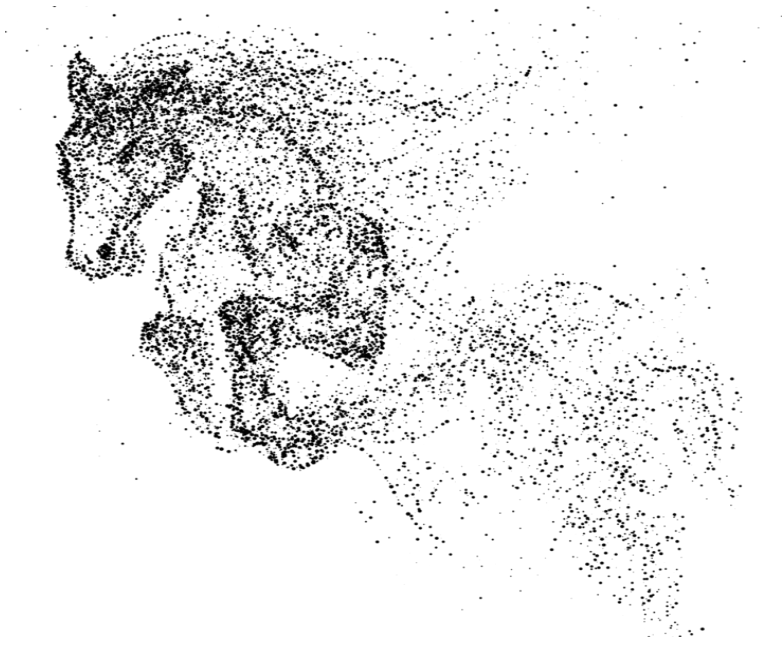

ममता कालिया के उपन्यासों में नारी जीवन का चित्रण

वैशाली
हिन्दी विभाग, हिमालच केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हिमालच प्रदेश
मोबाईल नम्बर-9667515304
ईमेल-vaishali.kondal1992@gmail.com

सारांश

महिला लेखन में स्त्री वर्ग की शिकायतों, उसके प्रकट और अप्रकट क्रोध, छुपे हुए आक्रोश तथा जीवन के प्रति उसके विशिष्ट दृष्टिकोण को ज्यादा शिद्दत से अभिव्यक्ति मिल सकती है। रोजमर्रा की जिंदगी में निजी घटनाओं का जितना सटीक वर्णन एक स्त्री कर सकती हैं, उतना पुरुष नहीं कर सकता। इस प्रकार स्त्री - लेखन (ममता कालिया) के द्वारा उनके निजी अनुभवों की अभिव्यक्ति उसके भोगे हुए यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति है जिसे कोई पुरुष अपनी संवेदनशीलता उस रूप से व्यक्त नहीं कर सकता जिस रूप से महिला व्यक्त कर सकती है। ''स्त्री साहित्य वस्तुतः स्त्री की अनुभूति का साहित्य है। यह ऐसी अनुभूतियाँ हैं जो अभी तक दबी हुई थी, दमित थीं, उत्पीड़ित थी।"1 आधुनिक हिंदी साहित्य में अपनी लेखनी में सामर्थ्य रखने वाली ममता कालिया अपने उपन्यासों के जरिए हिंदी साहित्य के क्षेत्र में विशेष प्रतिष्ठित हुई। इनके उपन्यासों की नारी सदियों से चली आ रही दासता का मुखर विरोध करके अपने अस्तित्व के प्रति सजग और सचेत हो उठी हैं वह पुरुषों की बराबरी का सम्मान तथा समानाधिकार चाहती है। कुछ नारियाँ बढ़ते सामाजिक तथा पारिवारिक अन्याय, अत्याचारों से विवाह से विमुख होकर स्वतंत्र जीवन जीने के पक्ष में है। ममता कालिया के उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ, स्त्री-पुरुष संबंध और परिवर्तन शील मान्यताऐं इनके उपन्यासों में अभिव्यक्त है।

बीज शब्द- *परंपरागत, लेखन, हिंदी, उपन्यास, स्त्री, जीवन*

शोध आलेख

नारी अस्मिता का अभिप्राय नारी के सामाजिक व आर्थिक अधिकारों की प्राप्ति से है। वर्तमान समय में नारी ऐसे समय से गुजर रही हैं जहाँ पर उसका एक पांव घर के बाहर है और दूसरा रसोई के चौखट के अंदर हैं समय की माँग अनुसार नारी जीवन संबंधी समस्याओं को उभारा गया है, और नारी अस्मिता की तलाश की ओर अग्रसर करने का बीड़ा उठाया गया है। ममता कालिया के उपन्यासों में भोगे हुए जीवन का यथार्थ है। इनके उपन्यासों के द्वारा नारी अस्मिता की तलाश कर रही है। इन्होंने नारी की समस्याओं को बड़ी गहनता के साथ प्रस्तुत किया है। ममता कालिया का लेखन विशेष रूप से भारतीय नारी के परिवेश के इर्द-गिर्द घूमता है। बेघर (1971) उपन्यास की 'संजीवनी' की आर्थिक स्थिति वैसे भी डांवाडोल ही थी। घर की आर्थिक स्थिति को उबारने के उद्देश्य लेकर ही बैंक ऑफ बड़ौदा में छोटी, कच्ची सी नौकरी पकड़ लेती है। ऐसा करते हुए वह अपने मनोरंजन के लिए भी समय नहीं निकाल पाती हैं उसे अपनी आर्थिक हानि की ही चिंता रहती है। "अचानक कांशस होकर संजीवनी बोली, "ओह ढाई बज गये, अगर अब नहीं पहुँची तो आधी कैजुअल लग जाएगी।"2 इस प्रकार वह अपने आर्थिक स्तर को सुधारने का प्रत्यन्त करती है। साथ ही कामकाजा नारियों की मानसिक पीड़ा को दर्शाया है। मनुष्य जितना अधिक आधुनिक होता गया नारी के प्रति उतना ही क्रूर होता गया। नारी के जीवन में ऊपरी तौर पर परिवर्तन तो आया उसकी विवशता, शोषण का अंत नहीं हुआ। ममता कालिया का विचार है कि हमारे समाज में पारिवारिक परिवेश कीसंरचना कुछ इस प्रकार की है कि उसमें नारी का अध्ययन और शिक्षा आदि के लिए हतोत्साहित तो किया जाता है लेकिन उसके साथ ही नारी पर काम का दबाव भी अधिक पड़ता है और इसलिए उनकी शिक्षा अधूरी रह जाती है। वह अपनी पढ़ाई तो जारी नहीं रख पाती बेघर उपन्यास में परमजीत की बहन बिम्बा घरेलू कामकाज की अधिकता के कारण स्वयं की व्यक्तिगत सफाई का ध्यान नहीं रख पाती! ऐसे में वह शारीरिक रूप से पीड़ित नज़र आती है। अतः "उसका सिर जुओं से भरा रहता है और उसके हाथ से हर समय मसालों की गंध आती है। माँ मातृत्व का

बोझ झेलती है और वह अपने से छोटे भाइयों के पालन-पोषण में माँ का हाथ बटाती है। यही कारण है कि उसका स्कूल जाना अक्सर किसी कारणवश रुक जाता है।"3 बेघर उपन्यास में नायक परमजीत हैं। जब उसकी प्रेमिका संजीवनी उसके सामने आत्मसर्पण करती है और परमजीत को पता चलता है कि वह उसके जीवन का पहला पुरुष नहीं हैं। स्त्री के जीवन में पुरुष पहला होने की धारणा से इतना आक्रांत है कि कई बार पूरे जीवन में यह आशंका सताती है कि कहीं पत्नी या प्रेमिका पहले भी तो किसी से संबंध स्थापित तो नहीं कर चुकी हैं। "विवाह पूर्व देह संबंधों के बारे में अनेक शोध अनुभव बताते हैं कि पुरुष कुँवारी लड़कियों से विवाह करना ही बेहतर समझते हैं। हमारे यहाँ अब तक अधिकांश फिल्में, कहानियाँ, नाटक, उपन्यास सबके द्वारा स्त्री को यही शिक्षा दी जाती हैं कि यदि अपने पति के लिए तुम 'कुँवारी' नहीं हो तो इस जीवन से तो मर जाना ही बेहतर। दरअसल स्त्री का 'कुंवारापन' ही वह हथियार है जिससे उसे पूरे जीवन लहूलुहान किया जा सकता हैं।"4 इस उपन्यास में मध्यवर्गीय समाज के मानसिक संस्कारों में शिक्षित पुरुषों की परंपरागत सोच समझ को स्पष्ट किया गया है। यहीं लोग स्त्रियों के प्रति भोगवादी, सामंती और अमानवीय व्यवहार रखते हैं ।नरक-दर-नरक में लेखिका ने यह दर्शाने की कोशिश की है कि किस तरह एक पति-पत्नी अपना गृहस्थ जीवन जीने के लिए समाज में व्याप्त बेकारी, क्षोम और कुंठा का सामना करते हैं। जगन और ऊषा प्रेम विवाह करते हैं। विवाह के बाद दोनों बंबई की व्यस्त जिदंगी में जीवन की मूलभूत जरूरतों से वंचित रहते हैं। जगन अच्छी नौकरी की तलाश में भटकता रहता है और उषा घर के कार्यों में व्यस्त रहती हैं स्त्री की स्वतंत्रता की चाहत और विवशता भी अभिव्यक्त हुई है। आज पूरी दुनिया का संचालन अर्थ से होता है। घन के अभाव के कारण दाम्पत्य जीवन में परेशानियाँ खड़ी हो जाती हैं। क्योंकि धन की कमी से व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता। इसका चित्रण ममता कालिया द्वारा उपन्यास में किया गया हैं। आर्थिक तंगी के कारण ही जगत और उषा में मनमुटाव रहने लगता है। जगन को जब भी कोई परेशानी होती या कोई दुख होता तो उषा हमेशा उसके दुःख में शामिल होती हैं परंतु जगन कोई न कोई

बात पिन की तरह उसे चुभो देता है जगन कहने लगताअब तो घर भी कॉलेज होता जा रहा है। शुक्र है तुम्हारे लिये अभी कॉलेज ही बना है मेरे लिए तो यह बामशक्कत सी क्लास कैद है ।"5 उषा अपने वैवाहिक जीवन की दिनचर्या से बहुत परेशान है इस दिनचर्या से उसका जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है।

एक पत्नी के नोट्स (1997) 'एक जीनियस की प्रेम कथा' तथा मनोविज्ञान नामक कहानियों का संकलित विस्तार है। उपन्यास का नायक संदीप साहित्य प्रेमी और प्रशासनिक अफसर हैं वह मध्यवर्गीय परिवार से संबंधित कविता से प्रेम विवाह करता हैं संदीप को अपने पद और अपनी बुद्धि पर इतना अहंकार है कि वह अपने से उच्च किसी को भी देखना पसंद नहीं करता। यहाँ तक कि अपनी पत्नी को भी नहीं। उपन्यास में पुरुष मानसिकता को विश्लेषित करने की कोशिश करता है। पति से अधिक बुद्धिमान स्त्री को पति बर्दाश्त नहीं कर सकता। वह पुरुष प्रधान संस्कृति का प्रतीक होने के कारण वह चाहता है कि उसकी पत्नी उसके साथ कंधे से कंधा मिलाकर न चले बल्कि दो कदम उस से पीछे ही चले। वास्तव में अगर स्त्री किसी भी क्षेत्र का स्वयं चुनाव करे तो यह बात भाई, पिता और पति को स्वीकार नहीं होती । नारी के देह और मन पर पुरुष का अबाध अधिकार रहा है, वह अपनी इच्छानुसार उस पर नियंत्रण करना चाहता है। वस्तुतः हमारे समाज का मूल ढांचा ही इस प्रकार का है कि नारी का शोषण हर जगह होता है। उपन्यास में कविता हर तालिका के व्रत में विश्वास नहीं करती है। तो संदीप कविता से कहता है- "तुम इतनी परंपरा शून्य क्यों हो ? हिन्दुस्तान की सारी औरत आज पति की खातिर निर्जल निम्न पड़ी है और तुम प्रेत की तरह मेरे पीछे लग गई ।"6 सीमोन द बोउवार ने 'द सेकंड सेक्स' पुस्तक लिखकर इस विचारधारा को क्रांति का नया रूप दिया। उसका मानना था कि धर्म और सामाजिक रूढ़ियों ने नारी को समाज में दोयम दर्जा दिया है। जिसके पीछे पुरुष वर्चस्व की सामंती ठसक दिखाई दे रही है। नारी को अपने अधिकार पाने के लिए इन धार्मिक, सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति पाने के लिए अभी लंबी लड़ाई लड़नी है।

प्रेम कहानी उपन्यास की नायिका जया पढ़ाई में अव्वल स्थान प्राप्त करती है दिल्ली में आंटी के परिवार के अलावा उसका मनोरंजन करने के लिए यशस्विनी भी थी, जो हॉस्टल में रहा करती थी। एक दिन आंटी का पति भरी रात में जया के साथ अनैतिक व्यवहार करने का असफल प्रयास करता है जिससे जया के कोमल हृदय में पुरुषों के बनावटी व्यक्तित्व के प्रति घृणा उत्पन्न होती हैं जया आंटी के पति के शोषण का शिकार नहीं होती। वह हॉस्टल चली जाती है। लड़कियाँ उपन्यास की नायिका और सहनायिका के अविवाहित जीवन के अकेलेपन से प्रारंभ होती हुई उनके असुरक्षित जीवन की विभिन्न चेतनाओं को विस्तार से लिखा गया है। और निर्णयात्मक मोड़ पर समाप्त हो जाती है। विज्ञापन एजेंसी में काम करने वाली अविवाहित नायिका लल्ली आत्मकथात्मक शैली में ही अपने जीवन की विभिन्न विसंगतियों का वर्णन करती हैं रोज़गार के क्षेत्र में अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए सचेत है। वह कहती है- अब मैंने अपने सारे इरादे भुला दिये थे। मेरे व्यक्तित्व का सर्वश्रेष्ठ अंग नौकरी को समर्पित था। मेरी समस्त संवेदना, कल्पनाशीलता और रचनात्मकता जिंगल और स्लोगन में लगी हुई थी।"7 लल्ली किसी की दासी या भोग्या नहीं बनना चाहती इसलिए वह विवाह न करने का निर्णय लेती है। विवाह को वह एक बंधन मानती हैं। वह कहती हैं " औरत पहले एक पुरुष ढूँढ़ती है फिर एक भगवान, धीरे-धीरे उसकी सारी जिंदगी तलाश और सम्रपण बन जाती है। मेरी माँ ने यह गलती की, मेरी मौसी ने की, मैं नहीं करूँगी।"8 लल्ली शादी करके अपनी आजादी समाप्त नहीं करना चाहती! अखबार में नारी पर अत्याचार की खबरें पढ़कर, पड़ोस की नारी उत्पीड़न की कुछ घटनाएँ सुनकर लड़कियाँ विवाह करने के निर्णय से भी डरने लगी है।

दुक्खम सुक्खम उपन्यास में लेखिका ने विद्यापति के माध्यम से यह स्पष्ट किया है - "सीमित शिक्षा के बावजूद उसमें सहज व्यवहारिक ज्ञान था कि स्त्री के लिए घर परिवार एक किस्म का आजीवन कारावास होता है।" आगे विद्यावती कहती है- "मोय नाय मिलौ गांधी बाबा नहीं मैं पूछती च्यों जी तुमने

सिर्फ आदमियों को आजादी दिला दी, लुगाइयों को कब आजाद करोगे वह तो आज भी गुलाम हैं। लल्ला नत्थीमल ने कहा, "क्या गुलामी कर रही हो, जुरा मैं भी सुँनु। घर का काम बहू करै, दुकान में संभारूँ तोपे कौन-सी जिम्मेदारी है ?" अभाल की नहीं मैं तो पिछले सालों की बात करूँ। इत्ती जिंदगानी दु:क्खम सुक्खम कर गई, अपनी राजी से कछु नाये कियै। लाला नत्थीमल कहते हैं'क्या करना चाहती रही तू। कुनबे की चौधराहट तूने संभारी देसी घी के चूरमा, परांठे खाए, देखबे नारी न कोई सास न नंनद और कसर रह गई?" "तुमने बस इत्ता ही जाना। अरे औरत रोटी और पारी के ऊपर भी कछु चाहै की नाय। मर्द की गुलामी से अच्छी तो मौत होवे।"9 भारत के शिक्षित, संघर्षरत और परिवर्तनशील समाज का चित्रण करते हुए ममता कालिया ने शिक्षा की उथल-पुथल और महाविद्यालयों की अध्यापिकाओं, छात्राओं और अन्य कर्मचारियों का चित्रण 'अंधेर में ताला' उपन्यास के माध्यम से किया है। उपन्यास में "अंधेर के अक्स खींचते हुए उजाले के द्वीपों पर भी नज़र"10 देखी जा सकती है। अतः ममता जी ने शिक्षा व्यवस्था का चित्रण एवं उससे जूझने का प्रयास करती नारी पात्रों को उभारा है।

निष्कर्ष

ममता कालिया के उपन्यासों में नारी पात्र आर्थिक स्वतंत्रता को महत्व देकर अपने अस्तित्व, अस्मिता और नारी मुक्ति के लिए इसे आवश्यक मानते हैं। गत कुछ दशकों से अपने अस्तित्व की बदौलत नारी घर की चारदीवारी में से निकलकर सामाजिक राजनीति एवं सरकारी क्षेत्रों में अपनी कई किस्म की सूक्ष्म भूमिका निभा रही है। ममता जी के उपन्यासों की नायिकाएँ अध्यापिका, व्यवसायिका और कामकाजी है। नारी के कदमों के लिए यह ज़मीन, दुनिया नई एवं अजनबी होते हुए भी वह जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष के बराबर अस्तित्व छोड़े जा रही है। आर्थिक स्तर पर स्वतंत्र अस्तित्व के संघर्ष में उसकी संवेदनाएँ उतनी ही तीव्र दिखाई देती है। इन्होंने अपने लेखन में रोजमर्रा के संघर्ष मं युद्धरत स्त्री का व्यक्तित्व उभारा है। अपनी रचनाओं ने केवल महिलाओं से जुड़े सवाल उठाये है, बल्कि उन्होंने उसके उत्तर देने की कोशिश की हैं इनके उपन्यासों में

चित्रित प्रेम विवाह एवं दाम्पत्य जीवन संबंधी सामाजिक परिवर्तन का जिक्र देखने को मिलता है। कहा जा सकता है कि ममता कालिया आधुनिक काल की श्रेष्ठ रचनाकार है | यथार्थ और समयधर्मिता आपकी रचनाओं की विशेषता है।

संदर्भ सूची

1. जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, मेधा पब्लिकेशन हाउस, प्रथम संस्करण - 2018, पृष्ठ 5
2. ममता कालिया, बेघर, साक्षरा प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, 2002, पृष्ठ 48
3. वही, पृष्ठ 10
4. क्षमा शर्मा, स्त्रीत्ववादी विमर्श : समाज और साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
5. ममता कालिया, नरक दर नरक, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ 69
6. ममता कालिया, एक पत्नी के नोट्स, पृष्ठ 31
7. ममता कालिया, तीन लघु उपन्यास, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 79
8. वही, पृष्ठ 99
9. ममता कालिया, दुक्खम सुक्खम, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ 97
10. ममता कालिया, अँधेरे का ताला, हितकारी प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृष्ठ भूमिका से

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री जीवन के चित्र

डॉ. सारिका देवी

हिन्दीए डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालयए अयोध्या उ.प्र.।

सारांश

मैत्रेयी जी ने अपने निजी अनुभवों द्वारा उपन्यास लेखन क्षेत्र में वास्तविकता को स्थापित किया है। मैत्रेयी जी की उपन्यासों में वंचित, पीड़ित, दलित एवं पिछड़ी जाति की स्त्रियों के उत्थान को दिखाया गया है। उनके जीवन से जुड़े तमाम सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पहलुओं पर गंभीरतापूर्वक विचार प्रस्तुत किया गया है। साथ ही स्त्री संघर्ष की गाथा भी प्रस्तुत की गई है। मैत्रेयी जी ने स्त्रियों के अधिकारों के प्रति चेतना जागृत करने का संपूर्ण प्रयास किया है। मैत्रेयी जी अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री समाज में वो क्रांति लाना चाहती है, जिसमें स्त्रियों को पुरुषो के समान अधिकार मिले। वह अपनी निर्णय के लिये स्वतंत्र हो। समाज में स्त्री, पुरुष को समान अधिकार प्राप्त हो।

बीज शब्द: *उपन्यास, लेखन, स्त्री, जीवन, वास्तविक, चित्रण*

शोध आलेख

स्त्री सदैव ही अपनी अस्मिता को लेकर आवाज उठाती रही है। यह बात और है कि इस शोरगुल भरे समाज में उसकी आवाज बहुत मन्द सुनाई देती है। जिसे अधिकतर समाज अनदेखा करता आया है और जिसने भी उसकी आवाज सुनी भी वह बहुत आगे नहीं बढ़ा पाया है। लेकिन प्रयास निरंतर होते रहे हैं और यह प्रयास तब तक जारी रहेगा जब तक स्त्री को उसका संपूर्ण अधिकार न मिल जाये। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक स्त्री के प्रति व्यवहार दोयम दर्जे का ही रहा है। आधुनिक समय में पुरुषवादी सत्ता समाज पर इस तरह हाबी है कि लोग स्त्रियों के बारे में सोचते हैं तो भी पुरुषवादी दृष्टिकोण से जैसे पुरुषों से अलग स्त्रियों का कोई स्वतंत्र अस्तित्व ही न हो। पुरुष और स्त्री का शारीरिक गठन भी कहीं न कहीं स्त्री के उपेक्षित होने का मुख्य कारण रहा है।

साहित्य में रचानकार अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री अस्मिता को विभिन्न प्रकार से चित्रित करते रहे हैं। लेखक और लेखिका स्त्रियों के जीवन से सम्बन्धित विषमताओं को अपने रचनाओं के माध्यम से चित्रित करते रहते हैं। जिनमें मैत्रेयी पुष्पा का नाम अग्रगण्य है। जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री जीवन के विभिन्न विसंगतियों को चित्रित करने का कार्य किया है। मैत्रेयी जी की रचनाओं में मध्यवर्गीय ग्रामीण एवं शहरी महिलाओं के जीवन संघर्ष को बखूबी चित्रित किया गया है। मैत्रेयी जी ने स्त्री जीवन के उन सभी समस्याओं पर प्रकाश डाला है जिसके कारण स्त्रियों का जीवन दुरूह हो गया है।

मैत्रेयी जी ने अपने निजी अनुभवों द्वारा उपन्यास लेखन क्षेत्र में वास्तविकता को स्थापित किया है। मैत्रेयी जी की उपन्यासों में वंचित, पीड़ित, दलित एवं पिछड़ी जाति की स्त्रियों के उत्थान को दिखाया गया है। उनके जीवन से जुड़े तमाम सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पहलुओं पर गंभीरतापूर्वक विचार प्रस्तुत किया गया है। साथ ही स्त्री संघर्ष की गाथा भी प्रस्तुत की गई है। मैत्रेयी जी ने स्त्रियों के अधिकारों के प्रति चेतना जागृत करने का संपूर्ण प्रयास किया है। मैत्रेयी जी अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री समाज में वो क्रांति लाना चाहती है, जिसमें स्त्रियों को पुरुषो के समान अधिकार मिले। वह अपनी निर्णय के लिये स्वतंत्र हो। समाज में स्त्री, पुरुष को समान अधिकार प्राप्त हो।

‘‘किसी कार्य का अनुभव बिना कारण के ही नहीं होता है। साफ-साफ दिख रहा है कि स्त्रियों, आदिवासियों और दलितों के बारे में अब तक जो लिखा गया है वह अनुमान के आधार पर है। जबकि सच्चाई आयेगी अनुभव के आधार पर चित्रित करने से’’।

अपनी रचनाओं में स्त्री को आधार बनाकर लिखने वाली मैत्रेयी पुष्पा कहानी उपन्यास और स्त्री विमर्श के लिए विशेष रूप से जानी जाती है। इन्होंने विभिन्न विधाओं पर अपनी लेखनी की है। मैत्रेयी जी का रचना संसार में प्रमुख

स्थान रहा है जिसका प्रमुख कारण उपन्यास विधा रही है। जिसमें इन्होंने ग्रामीण जीवन की यथार्थ घटना को चित्रित किया है जिसमें स्त्री चरित्र प्रमुख रहा है।

''मैं अपनी बेटी को पढ़ा लिखाकर बड़ा करूँगी कि मेरे, तुम्हारे बाद वह अपने दुश्मनों का मुकाबला करे।''

मैत्रेयी जी ने अपने लेखन का आरम्भ ''स्मृति दंश'' नामक उपन्यास से किया। गाँव की पृष्टिभूमि में रची बसी जीवन के गन्ध को समाज में अपनी भूमिका के रूप में दर्शाने वाली मैत्रेयी जी ने अपने पहले उपन्यास स्मृति दंश में एक असहाय स्त्री के जीवन की गाथा को चित्रित किया है। विंध्य के अंचल में पली-बढ़ी 'भुवन' ससुराल में तरह-तरह की कठिनाइयों का सामना करती है और अन्त में उसे अपने प्राण गंवाने पड़ते है। स्मृति दंश में भुवन का ऐसा अन्त मैत्रेयी जी के मन को उद्वेलित करता है जिसे उन्होंने नये सिरे से ''अगनपाखी'' में प्रस्तुत किया है।

'' 'स्मृति दंश' और 'बेतवा बहती रही' दोनों ही 'कथा' कथा की दृष्टि से बहुत मार्मिक है किसी भावुक पाठक की आंखों को अश्रुपूरित कर देने वाले! दोनों ही उपन्यासों में परम्परागत पुरुष समाज द्वारा स्त्री पर होने वाले अत्याचार का अंकन किया गया है।''

मैत्रेयी जी ने 'इदन्नमम' में विंध्य अंचल में बसे समुदाय की पृष्ठभूमि तैयार की है जिसमें ग्रामीण समाज की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सभी समस्याएं उद्घाटित हुयी हैं। 'इदन्नमम' दलित समाज के पुनर्निर्माण का स्वप्न है जिसे मैत्रेयी जी ने मंदा के जरिये स्त्री मुक्ति को उद्घाटित किया है। इन्हीं नारी पात्रों को देखते हुए डॉ0 प्रभा खेतान लिखती है-

''मानवीय सम्बन्धों के कुछ ऐसे नैसर्गिक शाश्वत मुद्दे हैं जिन पर अब तक स्त्री खामोश रही है। हाँ डरते-डरते ही सही अब उसने बोलना शुरू किया है।'' 'चाक' अर्थात् घूमता हुआ पहिया जिस पर गीली मिट्टी को मनचाहे

आकार में ढ़ाला जाता है। यह उपन्यास बुंदेलखण्ड की धरती पर बसेरा करने वाली साहसी स्त्रियों की गाथा है। जो समाज में एक नयी नैतिकता को जन्म देती है। कथा की मुख्य पात्र 'सारंग' और 'श्रीधर' हैं। सारंग ही है जो चाक पर गीली मिट्टी के ढ़ेले की भाँति संवारी जाती है।

'झूलानट' यह एक छोटे से परिवार की कहानी है। एक जुझारू माँ, दो बेटे और एक उतनी ही जुझारू बहू की। बालकिशन, बालकिशन की माँ और शीलो जो बालकिशन के बड़े भाई सुमेर की पत्नी है। शीलो कहानी की एक ऐसी पात्र है जो संघर्षशील स्त्री है। शीलो के रूप में एक जाट युवती के परम्परागत मूल्यों को चुनौती देने, स्त्री संहिता को नकारने और विद्रोह करने का चित्रण किया गया है।

'अल्मा कबूतरी' बुंदेलखण्ड की विलुप्त जनजाति 'कबूतरा' को लेकर यह उपन्यास रचा गया है। 'अल्मा कबूतरा' समाज के एक मात्र पढ़े-लिखे व्यक्ति रामसिंह की पुत्री है। रामसिंह ने अल्मा को जन्म से ही कबूतरा बस्ती और उसकी सामाजिक बुराइयों से दूर रखा है। कहानी के अन्त में अल्मा ने अपने पिता के मृत्यु का प्रतिशोध लिया साथ ही पूरे कबूतरा समाज में कबूतरा जाति को निश्चित स्थान दिलाने का सम्पूर्ण प्रयास किया।

''मगर अल्मा अपनी बान नहीं छोड़ेगी। मरे या रहे? अल्मा माने आत्मा, बप्पा ने सोच-समझकर नाम रखा था, कहते थे आत्मा नहीं मरती।''

'अगनपाखी' यह उपन्यास समाज को एक नयी दृष्टि प्रदान करती है। इस उपन्यास में छल, छद्म, बैर-प्रीति, घात-प्रतिघात और लोक मान्यताओं का सहज प्रस्तुतीकरण हुआ है। यह उपन्यास रिश्तों की दहलीज पर की गई साजिशों का एक पुलिन्दा है। जिसकी भुग्त भोगी 'भुवन' जो कभी रिश्तों की सामाजिक बुनावट से दरकिनार होती है तो कभी फरेब से।

यह हमारे समाज की वास्तविकता है कि स्त्री न मायके की हकदार रहती है न ससुराल की। वैवाहिक व्यवस्था का ढ़ाँचा स्त्रियों के अस्तित्व को कुचल रहा है। लोभ-प्रलोभन में फांसकर हर जगह उसके साथ छल हो रहा है। तभी तो भुवन कहती है-

''हाँ जाड़े में भी ठण्डे जल से नहाना बताया है, फिर भी भीतर का गुस्सा नहीं सिराता।''

विडम्बनाओं से घिरी हुई 'भुवन' राह तलाशती है। औरत की विषमता को मैत्रेयी जी ने भुवन में कूट-कूटकर भरा है। स्त्री अपनी अस्मिता की तलाश में किस हद से नहीं गुजरती। पारम्परिक रीति-रिवाज एवं आदर्शों पर मैत्रेयी जी ने प्रश्नचिह्न लगा दिया है।

'विजन' महानगरीय जीवन में व्याप्त मध्यवर्गीय परिवारों में बसने वाली सोच और दिखावेपन को इस उपन्यास में रेखांकित किया गया है। डॉक्टरी जीवन में हो रहे भेद-भाव, स्त्री की उपेक्षा एवं नैतिक मूल्यों के स्थान पर पारम्परिक रूढ़ियों को अधिक वर्चस्व सामाजिक न्याय में बांधा डाल रहे हैं। स्त्री भले ही आर्थिक रूप से समर्थ हो जाए लेकिन चलना उसे सामाजिक परम्पराओं पर ही है। इसी द्वंद्व को झेलत हुई डॉक्टर नेहा को विषय का केन्द्र बनाया गया है। मैत्रेयी जी ने नेहा और आभा के जरिये स्त्री के मनोभावों को व्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। स्त्री पुरुष के समान अधिकारों की बात की है। सदियों से चली आ रही रूढ़ि परम्परा को तोड़ना चाहती हैं। साथ ही चिकित्सा के क्षेत्र में हो रहे अनाचार को भी चित्रित किया गया है।

''पति की अनुगामनी बनना ही तो जीवन का ध्येय नहीं। सहगामिनी होती तो बात कुछ और होती। जिन्दगी को मिशन माना था आभा ने। मिशन, जो किसी काज के लिए होता है, महज व्यक्ति के लिए नहीं।'' 'कही ईसुरी फाग' में मैत्रेयी पुष्पा ने ईसुरी और रजऊ की प्रेमकथा के साथ-साथ, ऋतु और माधव, तुलसीराम और माधुरी और सालिगराम कहारे और सावित्री की प्रेमकथा को

वर्णित किया गया है। इस उपन्यास में रज्जो एक असाधारण मानसिकता की उपज है जिसमें स्त्री चेतना अपने उच्च भावभूमि के साथ उभरकर आयी है।

'त्रियाहट' त्रिया हट अर्थात् एक स्त्री की हठ। मैत्रेयी जी ने इस उपन्यास के माध्यम से स्त्री के जीवन से जुड़ी, स्त्री शिक्षा, पंचायत चुनाव में महिला आरक्षण, विधवा विवाह, व्यवसाय एवं स्त्री अस्मिता जैसी समस्याओं पर प्रकाश डाला है, जिसकी मुख्य पात्र है उर्वशी।

'गुनाह-बेगुनाह' उपन्यास महिला कान्स्टेबल 'इला चौधरी' के नौकरी के दौरान आयी उन महिलाओं के दास्तान जिन्हें बेगुनाह साबित करने के लिए इला चौधरी मानसिक एवं सामाजिक द्वंद्व झेलती हैं। उनकी आत्मियता भरी दृष्टि महिला गुनहगारों से एकाकार हो उठती है। इस उपन्यास में दिखाया गया है कि कानून के पद पर बैठे अधिकारी, पुलिसकर्मी, सहकर्मी सभी अपने हित कामनाओं की पूर्ति हेतु मानवीय संवेदनाओं से रिक्त हो चुके हैं। दहेज विरोधी कानून, घरेलू हिंसा, सामूहिक बलात्कारों की असलियत और औरतों द्वारा अंजाम दिये गये हत्या कांडों के कच्चे चिट्ठे खोले गये हैं।

'फरिश्ते निकले' टूटे हुये घरौदों को जोड़ने के खातिर स्त्री किस-किस राह से गुजरती है, संभलती है और नया आशियाना बनाती है। ऐसी ही चरित्र को लेकर 'बेला बहू' को 'फरिश्ते निकले' उपन्यास में चित्रित किया गया है। मैत्रेयी जी ने इस उपन्यास में तत्कालीन ग्रामीण समाज एवं राजनीतिक दलों में फैले अनाचार, अत्याचार को प्रकट किया है। फूलन कहती है-

''बेला अपने समाज को बागी औरतें ही बदल सकती हैं, भली औरतों को तो मर्द गन्ने की तरह पेरते रहते हैं और मूछों पर ताव देते हैं। भली औरते, बेचारी, अपने 'भोलेपन' को ढ़ोती हुई तड़पती रहती हैं।''

मैत्रेयी जी ने इस उपन्यास के माध्यम से स्त्री पर हो रहे अत्याचार एवं बलात्कार का कच्चा चिट्ढ़ा पेश किया है। महिलाओं के बागी रूप का कारण

पुरुषवादी सत्ता हावी होना है। बेला बहू ने बीहड़ो में एक नये समाज का निर्माण किया है। जहां पुरुषों का वर्चस्व न हो शान्ति और प्रेम हो। 'नमस्ते समथर' में साहित्य संस्थाओं में चलनेवाली दांव-पेंच एवं राजनीतिक भ्रष्टाचार का यथार्थ प्रस्तुत किया गया है। यह संस्मरण उपन्यास के रूप में मैत्रेयी जी के अपने जीवन दिल्ली के 'हिन्दी एकादमी' में कार्यरत अनुभव है। जहाँ सम्मान प्राप्त करने की होड़ लगी है। कथा की मुख्य पात्र कुन्तल है जो 'भारतीय साहित्य संस्था' की उपसंयोजिका है।

''मेरे मन में बार-बार ये विचार उठता है कि तुम्हारे साथ मुझे समथर जाना चाहिए। यह आकांक्षा जल्दी ही पूरी होगी मगर किस दिन पूरी होगी यह निश्चित नहीं है। 'समथर' यह शब्द या कस्बा भर नहीं, बहुत कुछ है समझो तो।''

भारतीय संस्कृति में महिलाओं को समाज में ऊँचा दर्जा दिया है परन्तु अनेक कारणों से भारतीय स्त्रियों की स्थिति निरन्तर कमजोर होती गई और उन्हें पुरुषों द्वारा असीमित मर्यादा और अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया गया है। स्त्री परम्परा मूल्यों को नकारते हुए अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा चाहती है। इतिहास, सभ्यता और धर्मशास्त्रों ने स्त्री को बधिया बना दिया है। उसकी सारी सृजनशीलता दमन कर दिया है। स्त्री चेतना से तात्पर्य स्त्री की अस्मिता या विभिन्न स्तरों पर प्राप्त अनुभवों के स्वरूप से है जिसमें नारी आधुनिक समाज में अपना अधिकार प्राप्त कर सके। नारी चेतना वह विचारधारा है जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता की मांग करता है। मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों में नारी चेतना को प्रमुखता से मुखर किया है। उनके उपन्यासों के अधिकतर स्त्री पात्र, ग्रामीण एवं अनपढ़ हैं लेकिन अपने अधिकारों के प्रति सजग हैं।

''स्त्री समानता का संषर्घ सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक इन तीनों ही स्तरों पर एक ही साथ चलना चाहिए।''

संदर्भ सूची

1. 'वागर्थ'- सितम्बर 2017, पृष्ठ-39

2. 'कस्तूरी कुडल बसै'- मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ-29
3. 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास'-डॉ0 गोपाल राय, पृष्ठ- 387
4. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूपों का चित्रण-मो0 अजहर ढेरी वाला, पृष्ठ-99
5. अल्मा कबूतरी-मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ-347
6. अगन पाखी-मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ-96
7. विजन-मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ-120
8. फरिश्ते निकले-मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ-87
9. नमस्ते समथर-मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ-12
10. स्त्री वादी साहित्य विमर्श-जगदीश्वर चतुर्वेदी, पृष्ठ-204

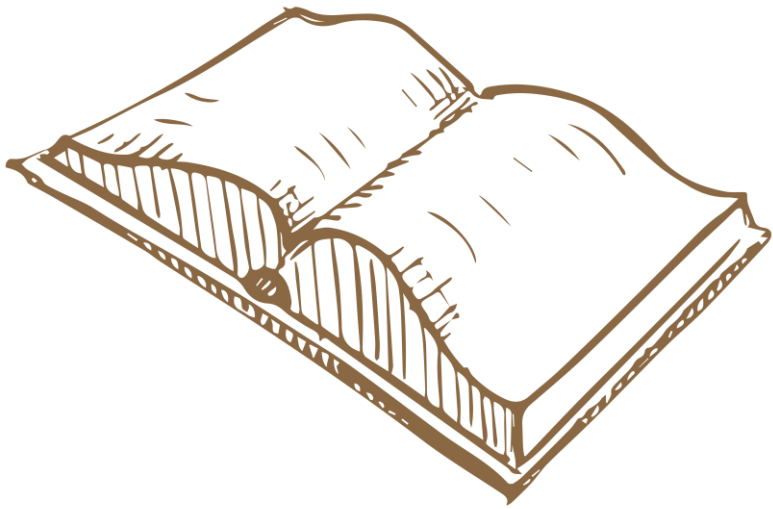

उच्च शिक्षा में ट्रांसजेंडर विद्यार्थियों के अधिकारियों की रक्षा के लिए नीति-2021 :दिल्ली विश्वविद्यालय के संदर्भ में

विशाल कुमार गुप्ता
शोधार्थी, ट्रांसजेंडर रेसोर्स सेंटर
डिपार्टमेन्ट ऑफ एडल्ट कंटीनुइंग एडुकेशन एंड एक्सटेंशन (Department of Adult Continuing Education & Extension)
सामाजिक विज्ञान संकाय
दिल्ली विश्वविद्यालय
ईमेल: vishaldujnu@gmail.com

प्रो. राजेश
विभागाध्यक्ष
डिपार्टमेन्ट ऑफ एडल्ट कंटीनुइंग एडुकेशन एंड एक्सटेंशन (Department of Adult Continuing Education & Extension)
सामाजिक विज्ञान संकाय
दिल्ली विश्वविद्यालय
ईमेल: rajeshkumar@yahoo.co.in

सारांश

ट्रांसजेंडर समुदाय को सशक्त बनाने और सामाजिक समावेशन की कुंजी शिक्षा है। माता-पिता को अपने ट्रांसजेंडर बच्चों के महत्व के बारे में शिक्षित किया जाना चाहिए। शिक्षा के माध्यम से समाज में उनके समावेशन के प्रयासों को सुविधाजनक बनाने के लिए विश्वविद्यालय स्तर पर बहिष्करण प्रथाओं के कारण मौजूदा संरचनात्मक बाधाओं का गहन मूल्यांकन किया जाना चाहिए। सभी स्तरों पर शैक्षिक अवसरों तक पहुंच में सुधार के लिए विश्वविद्यालय में कलंक और भेदभाव को कम करने हेतु अधिक व्यापक और परिणाम आधारित सकारात्मक कार्रवाई की आवश्यकता है। ट्रांसजेंडर विद्यार्थियों को भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

अधिकांश ट्रांसजेंडर विद्यार्थी अपने साथियों, विश्वविद्यालय शिक्षकों द्वारा शारीरिक एवं मौखिक दुर्व्यवहार और उनके स्त्री व्यवहार के कारण उनके घरों में होने वाले अन्य भेदभाव के कारण अपनी शिक्षा बीच में ही बंद कर देते हैं। विश्वविद्यालय में ट्रांसजेंडर विद्यार्थी शिक्षा तक पहुँचन और जारी रखने के लिए कई बाधाओं का सामना करते हैं, वे अपने पसंदीदा नाम और लिंग पहचान के साथ सुरक्षित रूप से विश्वविद्यालय नहीं जा पाते हैं। तीसरे लिंग सहित लिंग विविधता को अभी भी विश्वविद्यालय में वर्जित माना जाता है, जो ट्रांसजेंडर विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को समायोजित करने में उचित रूप से विफल रहता है। ट्रांसजेंडर विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय में रेगिंग, हिंसा, दुर्व्यवहार और बहिष्कार का सामना करना पड़ता है। ट्रांस विद्यार्थियों के लगातार उत्पीड़न के परिणामस्वरूप कक्षा में उनकी अनुपस्थिति, कम या औसत शैक्षणिक प्रदर्शन के साथ-साथ कम शैक्षिक या कैरियर की आकांक्षाएं होती हैं।

उपरोक्त संदर्भ में प्रस्तुत लेख ट्रांसजेंडर्स के सशक्तिकरण के संदर्भ में शिक्षा को एक महत्वपूर्ण घटक मानते हुए दिल्ली विश्वविद्यालय की ऐतिहासिक पहल 'दिल्ली विश्वविद्यालय: ट्रांसजेंडर छात्रों के अधिकारों की रक्षा के लिए नीति -2021 (ड्राफ्ट)' पर विश्लेषणात्मक विवरण प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है।

मुख्य शब्द: *जेंडर, ट्रांसजेंडर, रिसोर्स, सेंटर, नालसा फैसला*

शोध आलेख

समकालीन दौर में ट्रांसजेंडर्स समाज के सबसे हाशियाकृत समूहों में से एक है। इस समुदाय के सशक्तिकरण की अवधारणा शक्ति के विचार से संबंधित है। शक्ति का विचार इसका केंद्रीय बिंदु है। सशक्तिकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है जो वंचितों की क्षमताओं को बढ़ाता है ताकि वे सर्वश्रेष्ठ का चुनाव कर सके एवं ऐसे चुनाव को वांछित कार्यों तथा निष्कर्षों में बदल सके। ट्रांसजेंडर सशक्तिकरण का तात्पर्य है ट्रांसजेंडर्स से छीनी गई अबाध स्वतंत्रता और निर्णय क्षमता लौटना। ट्रांसजेंडर सशक्तिकरण का आशय ट्रांसजेंडर्स को कुछ विशेष कार्य करने हेतु सक्षम बनाने से है। वास्तव में ट्रांसजेंडर सशक्तिकरण की

अवधारणा लिंग समानता पर आधारित है, जो कि एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। इसके अंतर्गत क्षमता एवं दक्षता वृद्धि, आत्मविश्वास संवर्धन एवं निर्णय प्रक्रिया में प्रभावकारी भागीदारी सम्मिलित है।

नालसा जजमेंट ट्रांसजेंडर को थर्ड जेंडर मानने के लिए भारत के सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिया गया ऐतिहासिक फैसला था। यह ट्रांसजेंडर्स को तीसरे लिंग के रूप में मान्यता देने का एक प्रयास था। सुप्रीम कोर्ट के नालसा जजमेंट के बाद, भारत सरकार ने भारत में ट्रांसजेंडर्स की स्थिति और संभावनाओं के संदर्भ में राष्ट्रीय स्तर की परिचर्चा हेतु एक समिति का गठन किया। राष्ट्रीय स्तर की समिति के लिए प्रोफेसर राजेश, दिल्ली विश्वविद्यालय ने सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार को ट्रांसजेंडर्स के लिए शिक्षा और रोजगार के अवसर प्रदान करने के संदर्भ में अपने विचार दिए, जिसे विज्ञान भवन में स्वीकार किया गया और यह राष्ट्रीय स्तर के दस्तावेज़ का हिस्सा बन गया। नालसा जजमेंट के बाद से ही केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा ट्रांसजेंडर सशक्तिकरण के संदर्भ में नीति एवं कार्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया सतत् जारी है। ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) बिल 2019 में पास हुआ एवं ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) नियम भी 2020 में अस्तित्व में आ चुका है।

इन्ही सकारात्मक प्रयासों के संदर्भ में नोएडा मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन (एनएमआरसी) ने 27 अक्टूबर, 2020 मंगलवार को अपने द्वारा संचालित एक्वा लाइन मेट्रो कॉरिडोर के सेक्टर-50 मेट्रो स्टेशन का आधिकारिक नाम 'प्राइड स्टेशन' रखते हुए, इसे ट्रांसजेंडर्स को समर्पित किया।

नोएडा मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन मॉडल

'प्राइड स्टेशन' के उद्घघाटन कार्यक्रम में ट्रांसजेंडर्स के वे छह सदस्य भी उपस्थित थे जिन्हें एनएमआरसी ने मेट्रो स्टेशन पर सेवा के लिए ठेकेदारों के माध्यम से भर्ती किया है।

प्राइड स्टेशन में कार्यरत 6 ट्रांस कर्मियों के साक्षात्कार में कई तथ्य सामने आये है। केस स्टडी-1 (ट्रांस महिला) ने साक्षात्कार में बताया की सामाजिक बहिष्कार के कारण उन्हें अपनी पढ़ाई कक्षा 10 के बाद ही छोड़ दी और एक एनजीओ में काम करना शुरू किया। वर्तमान में वह प्राइड स्टेशन में हाउसकीपिंग के लिए नियुक्त हुई है। उनका का कहना है कि "अभी तक मेरा जीवन कठिनाइयों से भरा रहा है, रास्ता अभी थोड़ा सा मिला है बस आगे निकलना है, रुकना नहीं है। पढ़ाई दुबारा शुरू करके और अच्छे पोजीशन पर मुझे जॉब करनी है।"

केस स्टडी-2 (ट्रांस महिला) प्राइड स्टेशन पर टॉम ऑपरेटर के रूप में कार्य कर रही हैं। उनका कहना है कि "पहले वाले काम में न दिन का पता चलता था, न रात का। अब मैं यहां काम करते हुए आगे पढ़ सकती हूं। मैंने क्लास 12 तक ही पढ़ाई की है। अगर मॉर्निंग वाली शिफ्ट होती है तो मैं 2:00 बजे के बाद कहीं भी कोई कोर्स, क्लासेस कर सकती हूं और इवनिंग वाली शिफ्ट मुझे मिलती है तो मैं 2:00 बजे से पहले कहीं भी क्लासेस और कोर्स ज्वाइन कर सकती हुं। मुझे कॉलेज में काफी परेशानियों का सामना करना पड़ा, जिस कारण

मैंने अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ दी थी, लेकिन अब मैं अपनी पढ़ाई कंटिन्यू करना चाहती हूं। लाइफ में कुछ अच्छा और बड़ा करना चाहती हूं।"

केस स्टडी-3 (ट्रांस महिला) ने भी साक्षात्कार में बताया की वह पिछले सात सालों से ट्रांसजेंडर्स के लिए काम करने वाले एक एनजीओ में कार्यरत थी। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ ओपन लर्निंग से स्नातक (बी.ए.प्रोग्राम) तक की पढ़ाई पूरी की है। उनका का कहना है कि "पैसे की कमी के कारण मैं आगे नहीं पढ़ पाई और मेरी सेक्स रिअसाइनमेंट सर्जरी भी बीच में रुक गई। लेकिन अब जॉब मिलने के बाद अब मैं मास्टर इन सोशल वर्क करने की सोच रही हूं और अपनी सर्जरी भी पूरी करवाऊंगी। आने वाले दिनों में मैं चाहती हूं कि मैं इस स्टेशन में कंट्रोलर, स्टेशन मास्टर बनूं।"

एनएमआरसी में अन्य दो केस स्टडी-4 (ट्रांस-पुरूष) और केस स्टडी-5 (ट्रांस-पुरूष) है। केस स्टडी-4 हाउस कीपिंग और केस स्टडी-5 टॉम ऑपरेटर के पद पर नियुक्त है। स्कूल में भेदभाव के कारण केस स्टडी-4 ने कक्षा 10 के बाद आगे पढाई नहीं की, लेकिन अब वह आगे पढ़ना चाहते है और भविष्य में अच्छे पद पर काम करना चाहते है। केस स्टडी-5 की पढ़ाई स्नातक तक हुई है। वर्तमान में यहां छ: ट्रांस कर्मी कार्यरत है। यह सभी अपने इस नई भूमिका में बहुत खुश एवं उत्साहित है और इनमें से हर कोई अपनी शिक्षा दोबारा शुरू करना चाहता है, आगे पढ़ना चाहता है। भविष्य में और अच्छे पद पर काम करना चाहता है। सभी ट्रांस कर्मचारी अपने समुदाय को मुख्यधारा में लाना चाहते है एवं मुख्यधारा में मिलने वाले रोजगार तक उनकी पहुंच बनाना चाहते है।

इस प्रकार, उपरोक्त तथ्यों और ट्रांस कर्मियों के साक्षात्कार के आधार पर, यह कहा जा सकता है कि एनएमआरसी की यह पहल ट्रांसजेंडर सशक्तिकरण के संदर्भ में एक सराहनीय कदम है। एनएमआरसी की यह पहल ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2019 से प्रेरित है। हमें प्राइड स्टेशन पर एक ट्रांसजेंडर अनुकूल माहौल देखने को मिला, दूसरी ओर इन ट्रांस कर्मियों के

प्रति मौजूद यात्रियों, सुरक्षा व प्रबंधन कर्मियों का व्यवहार सकारात्मक देखने को मिला।

इस प्रकार हम कह सकते है कि पिछले दो दशकों में ट्रांसजेंडर्स के सशक्तिकरण हेतु सरकारी व गैर-सरकारी अनेकों प्रयास किए गए है और कुछ सीमा तक उन्हें वे अधिकार मिलना भी शुरू हो गए है, लेकिन अभी भी इस दिशा में निरंतर प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।

अपने लैंगिक पहचान और आत्मसम्मान के संघर्ष की जीवन यात्रा में आज 30 वर्षीय (जन्म: 5 दिसंबर,1991) आर्यन पाशा का नाम सामाजिक कार्यकर्त्ता एवं सेलिब्रेटी के रूप में प्रसिद्ध है। आर्यन नेशनल कॉउन्सिल फॉर ट्रांसजेंडर पर्सन्स के सदस्य है। आर्यन पाशा के लिए सबसे कठिन समय किशोरावस्था थी। उनके शब्दों में, "मेरे स्कूल का अनुभव बहुत अच्छा था, जब तक किसी को मेरे ट्रांसजेंडर होने के बारे में नहीं पता था। पर जिस दिन से मेरे साथ के बच्चों को पता चला उन सब ने मेरा जीना मुश्किल कर दिया। वह मुझे चिढ़ाते थे। कोई मुझे 'छक्का' कहता, तो कोई मुझे 'गे' कहकर बुलाता था। कुछ साथियों ने मेरे साथ शारीरिक हिंसा भी की थी। इन सभी घटनाओं के कारण मैं बहुत तनाव (अवसाद) में रहने लगा। पढ़ाई में मेरा ध्यान नहीं लग पाता था और मैंने अपना एक साल बर्बाद कर दिया। मैंने अपने 12वीं कक्षा के बोर्ड एग्जाम नहीं दिए। एक साल बाद मैंने 12वीं कक्षा की अपनी परीक्षाएं दी।"

उन्होंने बताया कि स्कूली शिक्षा के पश्चात् वे दिल्ली विश्वविद्यालय से समाजशास्त्र (ऑनर्स) की पढ़ाई करना चाहते थे। उन्होंने एक महिला से ट्रांसमैन के संक्रमण के साथ अपने कानूनी पहचान दस्तावेजों को बदल लिया। 84 प्रतिशत रिजल्ट और राष्ट्रीय स्तर का खिलाडी होने के बावजूद भी सिर्फ लैंगिक पहचान कि वजह से विश्वविद्यालय ने उन्हें नामांकन देने से मना कर दिया गया था।

इस प्रकार हम कह सकते है कि शिक्षा सशक्तिकरण का शक्तिशाली हथियार है और भारत में ट्रांसजेंडर अपनी लैंगिक पहचान के कारण इस हथियार के प्रयोग से वंचित है। निसंदेह भारत में ट्रांसजेंडर्स की स्थिति को असमानता से समानता तक लाने के सकारात्मक और सतत् प्रयास शुरू हो चुके है। वर्तमान समय में कानूनी और संविधानिक रूप से भारत में ट्रांसजेंडर्स को पुरुषों एवं महिलाओं के बराबर समानता का दर्जा प्राप्त है। ट्रांसजेंडर्स किसी भी प्रकार की शिक्षा या प्रशिक्षण, जो उन्हें आजीविका दिला सके, को चुनने के लिए स्वतंत्र है। वे कोई भी विशेष या उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकते है। इस दिशा में ट्रांसजेंडर्स की स्थितियों एवं समाज की मानसिकता में बदलाव होना शुरू हुआ है, लेकिन अभी भी इस दिशा में बहुत कुछ किया जाना शेष है...।

ट्रांसजेंडर्स की आवश्यकता को पूरा करने के लिए उन्हें एक अलग पहचान देना और इस पहचान को मान्यता देना जरूरी है। ट्रांसजेंडर्स की समस्यायों को हल करने की दृष्टि से भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उन्हें अलग पहचान यानी 'थर्ड जेंडर' के रूप में मान्यता देने का निर्णय लिया गया। नालसा जजमेंट समुदाय को समाज की मुख्यधारा में लाने और उन्हें हमारे बीच शामिल करने के लिए एतिहासिक फैसला था। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 15 अप्रैल, 2014 को दिया गए निर्णय ने ट्रांसजेंडर्स को जीवन की एक नई आशा दी।

उपरोक्त संदर्भ में प्रौढ़, सतत् शिक्षा एवं विस्तार विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा उच्च शिक्षा में ट्रांसजेंडर्स को मुख्य धारा में सम्माहित करने के उद्देश्य से मार्च, 2018 में ट्रांसजेंडर रिसोर्स सेंटर की स्थापना की गई है, जिससे वे समाज में बेहतर आजीविका प्राप्त कर अपने जीवन को भी दूसरो के जीवन की तरह सम्मानजनक एवं खुशहाल तरीके से व्यतीत कर सकें। समाज में ट्रांसजेंडर की समस्याओ का अध्ययन एवं उन समस्याओ का समाधान करने के उद्देश्य से ट्रांसजेंडर रिसोर्स सेंटर एवं विभागीय स्तर पर कई शोध कार्य भी चला रहा है। शोधार्थी डॉ. असलम ने हाल ही में अपनी पीएचडी भारत और बांग्लादेश के ट्रांसजेंडर पर तुलनात्मक अध्ययन प्रोफेसर राजेश के मार्गदर्शन में पूरी की है। दो

अन्य शोधार्थी आकांक्षा उच्च शिक्षा में और विशाल कुमार गुप्ता स्कूली शिक्षा में ट्रांसजेंडर के समावेश के प्रति छात्रों एवं प्रबंधन की इस संदर्भ में मान्यता, विश्वास एवं सरकारी प्रयासों तथा इस समुदाय की वर्तमान समय में शैक्षणिक स्थिति पर अध्ययन कर रहे है।

ट्रांसजेंडर रिसोर्स सेंटर का उद्देश्य

- विभिन्न लक्षित आबादी अर्थात् शिक्षक, छात्र, गैर-शिक्षण कर्मचारी और कॉलेज के प्राचार्यों और विश्वविद्यालय के अधिकारियों के लिए संवेदीकरण कार्यक्रम का संचालन करना।
- ट्रांसजेंडर के गुरुओं और विभिन्न ट्रांसजेंडर नेताओं को शिक्षा और सामाजिक समावेश की ओर उन्मुख करना।
- स्नातक छात्रों के लिए कॉलेज परिसर में प्रशिक्षण, संवेदीकरण कार्यक्रम संचालित करना।
- स्कूली बच्चों और शिक्षकों के साथ-साथ गैर-शिक्षण कर्मचारियों के लिए संवेदीकरण कार्यक्रम संचालित करना।
- स्वैच्छिक संगठन के लिए संवेदीकरण कार्यक्रम संचालित करना।
- विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय परिसर में और स्नातक / स्नातकोत्तर प्रवेश पर एवं समुदाय के बीच संवेदीकरण कार्यक्रम का संचालन करना।
- ट्रांसजेंडर्स के कौशल वृद्धि हेतु पाठ्यक्रम निर्माण एवं सर्टिफिकेट कोर्स शुरू करना।
- दिल्ली सरकार, राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन, दिल्ली स्टेट एड्स कंट्रोल सोसाइटी और सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार के मध्य एक ब्रिज के रूप में कार्य करते हुए ट्रांसजेंडर्स के कल्याण कार्यो में प्रोत्साहन एवं योगदान देना।

ट्रांसजेंडर रिसोर्स सेंटर का मानना है कि ट्रांसजेंडर्स भी इस समाज का हिस्सा हैं, इस बात को ध्यान में रखते हुए हमें ऐसे माहौल के निर्माण के लिए कदम उठाने चाहिए जहां ट्रांसजेंडर्स सीख सकें और अपनी क्षमता विकसित कर सकें। सभी शैक्षणिक संस्थान समाज को लिंग भिन्नता वाले लोगों के प्रति संवेदनशील बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं, संस्थानों को एक ऐसा वातावरण बनाने के उपाय भी अपनाने चाहिए जहां ट्रांसजेंडर सहज महसूस कर सकें और बिना किसी भेदभाव के शिक्षा प्राप्त कर सकें। दिल्ली विश्वविद्यालय समाज के सबसे कमजोर वर्ग यानी ट्रांसजेंडर के प्रति अपने कर्तव्य को समझता है, इसलिए विश्वविद्यालय ने विश्वविद्यालय परिसर में ट्रांस छात्रों के अधिकारों की रक्षा के लिए नीतियां बनाई हैं, जो ट्रांस छात्रों को बिना किसी बाधा, कलंक आदि का सामना किए अपनी शिक्षा पूरी करने में मदद करेगी। प्रो. राजेश द्वारा 'दिल्ली विश्वविद्यालय : ट्रांसजेंडर छात्रों के अधिकारों की रक्षा के लिए नीति-2021' प्रारूप पर चर्चा करते हुए इस नीति के उद्देश्य निम्नलिखित क्रम में उल्लेखित किए है।

नीति के उद्देश्य

- दिल्ली विश्वविद्यालय के अंतर्गत आने वाले कॉलेजों में ट्रांसजेंडर छात्रों की पहचान करना।
- ट्रांसजेंडर छात्रों की पहचान और स्वाभिमान की रक्षा करना।
- उनकी शिक्षा और रोजगार के लिए प्रचुर अवसर प्रदान करना।
- ट्रांसजेंडर छात्रों को उचित अनुकूल शैक्षिक वातावरण प्रदान कराना, जिससे उन्हें समाज में आत्म-सम्मान, आत्मविश्वास, स्वीकृति और पहचान हासिल करने में सहायता मिल पाए।
- उन्हें सामाजिक ढांचे की मुख्य धारा में लाने और उनके समावेशी विकास के लिए उपयुक्त मंच प्रदान करने के लिए उन्हें सहयोग व समर्थन सुविधा प्रदान करना।

- ट्रांसजेंडर को दिए गए विशेष अधिकारों के साथ भेदभाव करने, परेशान करने या इन अधिकारों का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों के खिलाफ सख्त कार्रवाई की गारंटी देना।
- ट्रांसजेंडर छात्रों द्वारा सामना किए जाने वाले दुराचार और उत्पीड़न के मुद्दों को दूर करने के लिए उचित तंत्र और इसके प्रभावी अधिनियमन को अपनाना।
- सभी शिक्षण संस्थानों में शिक्षण गैर-शिक्षण कर्मचारियों और छात्र समुदाय को संवेदनशील बनाना ताकि ट्रांसजेंडर छात्रों का किसी भी प्रकार का भेदभाव न हो और ट्रांसजेंडर को सामान्य नागरिक के रूप में पहचान और सम्मान प्राप्त हो।

ट्रांसजेंडर छात्रों की समस्याओं से निपटने के लिए अपनाए जाने वाले उपाय

- ट्रांसजेंडर छात्र की पहचान
- दिल्ली विश्वविद्यालय से संबंधित सभी शैक्षणिक संस्थान अपने संस्थान में ट्रांसजेंडर छात्रों की पहचान करने के लिए कदम उठाएं।
- ट्रांसजेंडर छात्रों को एक हलफनामा/एफिड़ेविड प्रस्तुत करने के लिए कहा जाना चाहिए कि वह एक ट्रांसजेंडर है, साथ ही राज्य सरकार द्वारा सौंपे गए व अधिकृत व्यक्ति द्वारा जारी एक प्रमाण पत्र जिसमे प्रमाणित हो की वह एक ट्रांसजेंडर है।
- ट्रांसजेंडर छात्रों के साथ व्यवहार करते समय संस्थान को उनकी विशेष जरूरतों के प्रबंधन में अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए और उनके लिए अनुकूल शैक्षणिक वातावरण बनाना चाहिए।
- एक संपर्क व्यक्ति को नियुक्त किया जाए, जो ट्रांसजेंडर छात्रों का विवरण गुप्त रूप से रखेगा।

समान अवसर

- आवेदन पत्र और सभी प्रमाणपत्रों में ट्रांसजेंडर शब्द को शामिल करना।
- आरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए और विश्वविद्यालय/महाविद्यालयों के सभी पाठ्यक्रमों में ट्रांसजेंडर छात्रों के लिए विशेष सीटें आरक्षित की जानी चाहिए।
- प्रवेश संबंधी प्रश्नों के संबंध में ट्रांसजेंडर छात्रों की सहायता के लिए एक विशेष टीम नियुक्त की जानी चाहिए।
- विश्वविद्यालय परिसर, पुस्तकालयों में ट्रांसजेंडर्स पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। यदि उन्हें किसी सहयोग की आवश्यकता हो तो विश्वविद्यालय के छात्रों और कर्मचारियों को उनके साथ सहयोग करने के लिए संवेदनशील बनाना चाहिए।
- ट्रांसजेंडर्स को पुस्तकालयों, कैंटीन और वाशरूम में प्रवेश प्रदान किया जाना चाहिए।
- एक सेल होना चाहिए जो उनके अधिकारों की सुरक्षा करे और जहां पर ट्रांस छात्र अपनी शिकायत दर्ज करा सकें।
- उनके लिए गाली-गलौज और अभद्र भाषा का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए यदि कोई कर रहा है तो प्रशासन उनके खिलाफ सख्त कार्रवाई सुनिश्चित करे।

सुरक्षा

- विश्वविद्यालय के हर कॉलेज और विभाग में एंटी रैगिंग सेल बनाना।
- कमजोर समूह को उनकी समस्याओं को दूर करने में मदद करने के लिए परामर्श प्रदान करना।
- विश्वविद्यालय स्तर पर एक विशेष ट्रांसजेंडर रिसोर्स सेंटर को कॉलेज स्तर पर समान अवसर प्रकोष्ठ (Equal Opportunity Cell) और

परामर्श केंद्रों (Counseling Centers) की गतिविधियों का समन्वय और पर्यवेक्षण करना चाहिए।

छात्रवृत्ति

- ट्रांसजेंडर्स को उनकी शिक्षा पूरी करने के लिए विशेष फेलोशिप/छात्रवृति प्रदान की जानी चाहिए क्योंकि वे सबसे कमजोर समुदाय से संबंधित हैं।
- उनके लिए छात्रावास शुल्क और महाविद्यालयों की फीस में रियायतें दी जानी चाहिए।

पाठ्यक्रम

- ट्रांसजेंडर से संबंधित मुद्दों जैसे शारीरिक समस्याओं, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक और संवैधानिक स्थिति इत्यादि से संबंधित विभिन्न आयामों को जानने में छात्रों की मदद करने के लिए डिग्री/पीजी कार्यक्रम के पाठ्यक्रम में ट्रांसजेंडर पर सामग्री शामिल किया जाए।
- अनुसंधान केंद्र ट्रांसजेंडर्स के मुद्दों को उनके अध्ययन और अनुसंधान परियोजनाओं में शामिल करें और ट्रांसजेंडर्स की समस्याओं के बारे में समुदाय को संवेदनशील बनाने के लिए पहल करें।

जागरूकता कार्यक्रम

- विश्वविद्यालय का एक विशेष प्रकोष्ठ जो ट्रांसजेंडर की समस्याओं का समाधान रहा है, कार्यभार संभालता है और विश्वविद्यालय / कॉलेजों के कर्मचारियों और छात्रों को संवेदनशील बनाने के लिए आवश्यक कार्य करता है।
- अधिकारियों को ट्रांस छात्रों की गरिमा की रक्षा के लिए उचित उपाय करने चाहिए।

- विश्वविद्यालय को ट्रांसजेंडर्स के मुद्दों के संबंध में शिक्षण और गैर-शिक्षण समुदाय को दिशा देने की पहल करनी चाहिए।

आधारभूत संरचना

- ट्रांसजेंडर छात्रों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए ट्रांसजेंडर्स के लिए विशेष विश्राम कक्ष बनाए जाने चाहिए। इसके लिए सरकार की ओर से फंड मुहैया कराया जाना चाहिए।
- ट्रांसजेंडर छात्रों को उनके अच्छे स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने के लिए स्वास्थ्य देखभाल सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए। (प्रो. राजेश स्वागत वक्तव्य)

30 जुलाई, 2021 को आयोजित "दिल्ली विश्वविद्यालय : ट्रांसजेंडर छात्रों के अधिकारों की रक्षा के लिए नीति-2021 (प्रारूप)" विषय पर बेविनार में मुख्य अतिथि प्रो. बलराम पाणि (डीन ऑफ कॉलेजेस, दिल्ली विश्वविद्यालय) ने कहा कि ट्रांसजेंडर रिसोर्स सेंटर ट्रांसजेंडर छात्रों के कल्याण के लिए लगातार कई वर्षों से इस क्षेत्र में काफ़ी अच्छा काम कर रहा है। ट्रांसजेंडर रिसोर्स सेंटर द्वारा ट्रांस छात्रों के लिए जो भी सुविधाएं प्रस्तावित की जाएगी उसके ऊपर विश्वविद्यालय गंभीरता से विचार करेगा। हम इस सेंटर के काम से काफी संतुष्ट हैं और इस सेंटर ने अब तक काफी सकारात्मक प्रयास ट्रांसजेंडर छात्रों को विश्वविद्यालय में स्थान और सम्मान दिलाने हेतू किए हैं।"

इस बेबिनार में आयोजित विशिष्ट अतिथि प्रो. उमा शंकर पांडेय (प्रिसिंपल: स्कूल ऑफ ओपन लर्निंग, दिल्ली विश्वविद्यालय) ने बताया कि हम पहले से ही ट्रांसजेंडर छात्रों को कुछ विशेष सुविधाएं देते रहे हैं, जैसे ट्रांसजेंडर छात्रों को छात्रवृत्ति, लाईब्रेरी और बुक बैंक सुविधाएं इत्यादि। हम जानते है कि ट्रांसजेंडर रिसोर्स सेंटर भी कई वर्षों से इस क्षेत्र में लगातार काम कर रहा है। हम ट्रांसजेंडर छात्रों के कल्याण के लिए ट्रांसजेंटर रिसोर्स सेंटर के साथ मिलकर काम करेंगे

और इस सेंटर द्वारा इस संदर्भ में जो भी नीति तैयार कि जाएगी, उसको हम संवेदनशील तरीके से ट्रांसजेंडर छात्रों को उपलब्ध कराने के लिए तैयार है। इस नीति प्रारूप पर अभी तक लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी, आर्यन पाशा, रेशमा प्रसाद, अमृता सरकार इत्यादि ने भी अपने बहुमूल्य विचार और सुझाव दिए है तथा दिल्ली विश्वविद्यालय की इस पहल का स्वागत करते हुए हर संभव सहयता व योगदान देने का वादा भी किया है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते है की शिक्षा ट्रांसजेंडर समुदाय के जीवन स्तर में सुधार, गरीबी उन्मूलन, रोजगार और आर्थिक विकास में तेजी लाने के लिए एक महत्वपूर्ण घटक है। परिवर्तन की परिस्थितियों के निर्माण में शिक्षा की सुपरिभाषित भूमिका है। इसलिए सरकार का मुख्य कर्तव्य है कि वह समाज के कमज़ोर तबकों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करे। शिक्षा देश की प्रगति और सामाजिक परिवर्तन लाने का सबसे शक्तिशाली साधन है। शिक्षा एक व्यक्ति को तर्कसंगत चुनाव करने, उचित निर्णय लेने में मदद करती है और उन्हें शोषण से बचाती है। इस प्रकार, शिक्षा का अधिकार एक अविभाज्य मानव अधिकार है, जो अन्य सभी मानवाधिकारों की रक्षा और सम्मान के लिए एक पूर्व-आवश्यकता है। शिक्षा को प्राथमिकता देना और राष्ट्रीय शिक्षा रणनीतियों में इसका समावेश इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह एक मौलिक अधिकार है जिसका हनन नहीं किया जा सकता है।

उपरोक्त संदर्भ में 'दिल्ली विश्वविद्यालय : ट्रांसजेंडर छात्रों के अधिकारों की रक्षा के लिए नीति-2021' एक ऐतिहासिक कदम है, जो ट्रांसजेंडर छात्रों को शिक्षा में माध्यम से उनके सशक्तिकरण हेतु अति महत्वपूर्ण और अनिवार्य है। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही ट्रांसजेंडर्स की स्थिति सुधारने के लिए कई कार्यक्रम, योजनाएं, नीतियां एवं उपाय अपनाये गए है। भारत में ट्रांसजेंडर्स की स्थिति को असमानता से समानता तक लाने के सकारात्मक और सतत् प्रयास

होते रहे है। वर्तमान समय में कानूनी और संविधानिक रूप से भारत में ट्रांसजेंडर्स को महिलाओं और पुरुषों के बराबर समानता का दर्जा प्राप्त है। ट्रांसजेंडर किसी भी प्रकार की शिक्षा या प्रशिक्षण, जो उन्हें आजीविका दिला सके को चुनने के लिए स्वतंत्र है। वे कोई भी विशेष या उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकते है। बशर्ते की उन्हें उचित और निष्पक्ष अवसर प्राप्त हो। निसंदेह इस संदर्भ में दिल्ली विश्वविद्यालय की प्रस्तुत नीति मील का पत्थर साबित होगी और देश-विदेश के अन्य शैक्षिक संस्थानों के लिए यह एक आदर्श मॉडल बनेगी।

संदर्भ सूची

1. NALSA Judgment (2014). Retrieved Febuary 10, 2021, from https://www.lawyerscollective.org/wp-content/uploads/2014/04/Transgender-judgment.pdf
2. National Education Policy (2020). Retrieved Febuary 10, 2021, from https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
3. Tripathi, Laxmi narayan (2015). Me Hijra, Me Laxmi. Delhi: Oxford University Press.
4. Nanda Serena (1998). Neither man nor woman: the Hijras of India. Canada: Wadsworth Publishing Company.
5. Transgender resource centre (2019). Annual Report (2018-19), DACEE, University of Delhi: New Delhi.
6. Transgender resource centre (2020), Annual Report (2019-20), DACEE, University of Delhi: New Delhi.

7. Transgender resource centre (2021), Delhi University: Transgender Students (Protection of Rights) Policy Draft 2021, DACEE, University of Delhi: New Delhi.
8. Transgender resource centre (2020), Online Transgender Newsletter (May 2020 to July 2020), DACEE, University of Delhi: New Delhi.

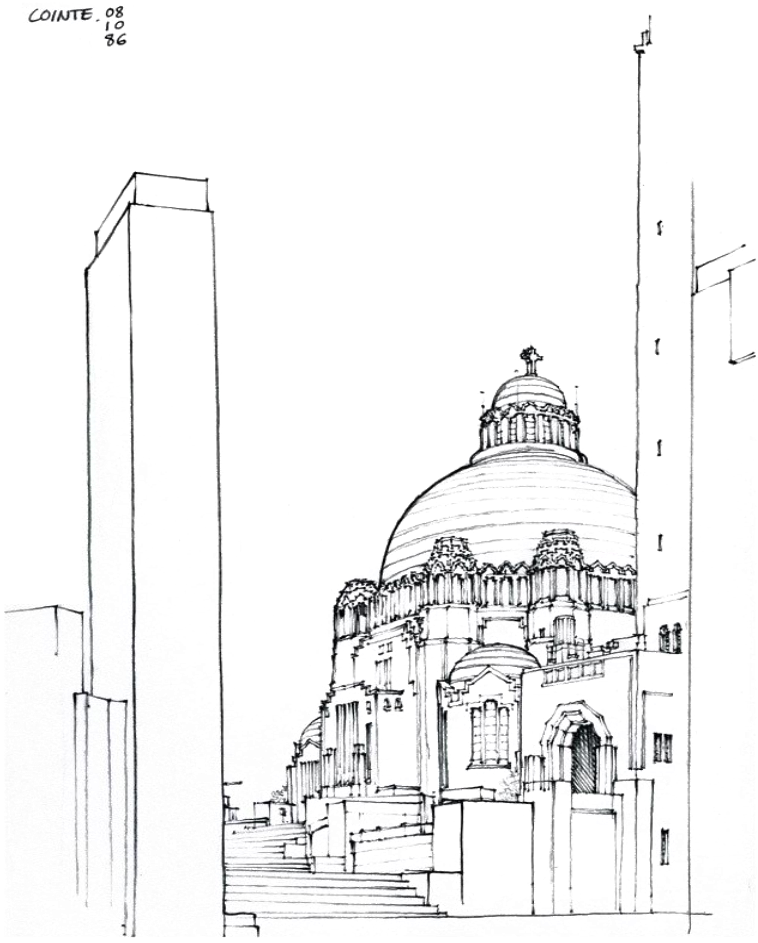

Communication for Women's Empowerment and Community Radio

Umesh Sharma
Research Scholar, Department of Mass Communication,
Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya,
Wardha, Maharashtra (Prayagraj Regional Centre).

Abstract:
The study of women's community radio is part of the broader area of feminist media studies. Empowerment is not a linear process, similar to all women within their families and a direct cause of something. The dominance over communication by a small powerful male- dominated elite which uses existing communication technologies to coordinate and reinforce socio-cultural supremacy is a real threat to women. Due to systematic gender biases in ICTs and their applications, women are far more likely than men to experience discrimination in the information society. Community radio stations provide a supportive production culture to the marginalized sections of society, including women. Despite its importance and potential for bringing social change, community radio faces many challenges that are related to the implementation of a participatory approach, and the very sustainability of the radio stations themselves. Yet, community radio helps marginalized people, including women, to find their voice rather can adapt to one that is given to them.

Keywords: *communication, feminism, women, empowerment, community radio*

Research Article

Representation as a cultural process establishes individual and collective identities. Radio has had a key role in producing symbolic representations and meanings of women's lives through discourses that construct how

women position themselves, and, in particular, how they speak (Mitchell, 2016). Radio is relatively cheap and easy to produce, particularly compared to television, video and film production, and in community radio stations there exists a supportive production culture provided by community stations. 'Giving a voice to the voiceless' via community media is a claim offered up by community media practitioners and theorists alike (Lewis, 2008; Atton, 2015). The study of women's community radio is part of the broader area of feminist media studies (Sow, 2014).

Communication for Empowerment

According to the Centre for Communication Rights of the World Association for Christian Communication, "Communication rights are vital to full participation in society and are, therefore, universal human rights belonging to every man, woman, and child. Communication rights encompass freedom of expression, freedom to seek, receive, and impart information and knowledge. But they add to these freedoms, both for individuals and communities, the concepts of accessibility, participation, and cultural diversity. Communication rights include democratization of the media, protection of traditional means of communication, linguistic rights, and the right to enjoy the fruits of human creativity. These are questions of inclusion and exclusion, mutual respect, and human dignity" (WACC, n.d.).

Extant literature provides a thoughtful account of the approaches and models of communication for development, beginning in the 1950s with the modernization paradigm and evolving to the paradigms of participation and

empowerment (Melkote, 2010; Melkote and Steeves, 2001; Servaes, 2004).

Communication was at the core of the modernization theory (Sow, 2014). Lerner (1958) and Schramm (1979) state that the diffusion of mass media messages at a large scale could influence underdeveloped countries. They made a clear link between media consumption and economic development and provided the theoretical basis of communication for development.

Rogers (1962) further elaborates on the theory and offers a model known as the diffusion of innovations. The diffusion of innovations also had important theoretical links with communication effects: the ability of media messages and opinion leaders to create knowledge of new practices and ideas and to persuade targets to adopt the exogenously introduced innovations. Diffusion of innovations is rooted in the postulated and implicit assumptions of exogenous change theory. The notion of exogenously induced change permeates assumptions of fundamental concepts in diffusion research.

Drawing from Marxist analysis, the proponents of dependency theory explained the persistent poverty of the poorest as a consequence of capitalist exploitation (Ferraro, 2008). Even though dependency theory didn't supersede modernization theory, it succeeded at least in influencing the debate on the New International Economic Order (Melkote & Steeves, 2001) and, to some extent, the debate on the New World Information Communication Order.

The critique of the diffusion model led to the introduction of the paradigm of "participation" and the concept of empowerment in order to connect the communication

process with the economic, cultural, and ideological environment. In effect, it put people at the heart of the process. For proponents of this paradigm, communication for development must be rooted in a participatory approach, as stated by Paulo Freire (1970) in his leading book, Pedagogy of the Oppressed. He argues for people's knowledge, dialogue and participation, and consciousness to act and change unequal and oppressive relations.

For Dagron (2001, pp. 70-71), "Participatory communication is fragile; it is often contradictory—which conspires against the ready-to-replicate model exercises, but in the end is as live as the communities that use it as a means to promote dialogue and networking on issues that are important for the community life: development, yes, but also culture, power and democracy."

According to Servaes (2008, p. 21), the participatory approach model has to have the following characteristics: "It stresses the importance of cultural identity of local communities and of democratization and participation at all levels—international, national, local and individual. It points to a strategy, not merely inclusive of, but largely emanating from, the traditional 'receivers'."

Guy Bessette's (2004, p. 9) work leads to the formulation of the concept of participatory communication for development as "a planned activity, based on the one hand on participatory processes, and on the other hand on media and interpersonal communication, which facilitates a dialogue among different stakeholders, around a common development problem or goal, with the objective of developing and implementing a set of activities to contribute

to its solution, or its realization, and which supports and accompanies this initiative."

The Rockefeller Foundation (CFSC, 2003, p. 2) defines the concept of communication for social change as: "a process of public and private dialogue through which people define who they are, what they want, what they need and how they can act collectively to meet those needs and improve their lives. It supports processes of community-based decision-making and collective action to make communities more effective and it builds more empowering communication environments."

Consequently, participatory communication underscores the need to empower communities through communicative means, which help them gain control over their environment and resources (Servaes & Malikhao, 2005; Melkote & Steeves, 2001; Chitnis, 2005; Bessette,

2004). For Chitnis (2005), participatory communication for development is a shift from the modernization and dependency paradigms with respect to basic assumptions about theory and praxis, a move pioneered by Servaes (1999).

Dagron (2008, p. 70) states, "Communication was until very recently the fifth wheel in the car of development, not even the spare tire, seldom part of the development process; and this maybe because development was not even perceived as a process itself. The lack of communication and its basic principle, dialogue, has prevented many projects from succeeding. That is, if we understand 'success' as people democratically guiding the process of progress for their own community, for the benefit of the majority."

Some key common features, as summarized by Dagron (2001) in the essay, "Making Waves: Stories of Participatory Communication for Social Changes", are presented in opposition to the dominant model:

- "Horizontal vs. Vertical: People as dynamic actors, actively participating in the process of social change and in control of the communication tools and contents; rather than people perceived as passive receivers of information and behavioural instructions, while others make decisions on their lives.
- Process vs. Campaign: People taking in hand their own future through a process of dialogue and democratic participation in planning communication activities; rather than expensive unsustainable top-down campaigns that help to mobilise but not to build a capacity to respond from the community level to the needs of change.
- Collective vs. Individual: Urban or rural communities acting collectively in the interest of the majority, preventing the risk of losing power to a few; rather than people targeted individually, detached from their community and from the communal forms of decision-making.
- Specific vs. Massive: The communication process adapted to each community or social group in terms of content, language, culture and media; rather than the tendency to use the same techniques, the same media and the same messages in
- diverse cultural settings and for different social sectors of society.

- People's needs vs. Donors' musts: Community-based dialogue and communication tools to help identify, define and discriminate between the felt needs and the real needs; rather than donor-driven communication initiatives based on donor needs (family planning, for example).
- Ownership vs. Access: A communication process that is owned by the people to provide equal opportunities to the community; rather than access that is conditioned by social, political or religious factors."

Empowerment as stated by scholars can be seen as a cornerstone of a true participatory communication, not only for individuals, but also for the whole community and organizations

(Melkote, 2010; Parpart, et al., 2002). There is a tendency to refer to communication for development for social change or participatory development communication as empowerment communication to stress the need to consider issues of power and control in the whole process for communication (Sow, 2014).

Empowerment can be defined as a "mechanism by which individuals, organizations, and communities gain control and mastery over social and economic conditions, over political processes, and over their own stories. Empowerment involves not merely increased influence over external, forces (at multiple levels) but also over internal impediments to change" (Melkote & Steeves, 2001, p. 366).

The definition provided by the UNDP (2006, p. 8) is more focused on the mass media: "Communication for

empowerment is an approach that puts the information and communication needs and interests of disempowered and marginalized groups at the centre of media support. The aim of communication for empowerment is to ensure that the media has the capacity and capability to generate and provide the information that marginalized groups want and need and to provide a channel for marginalized groups to discuss and voice their perspectives on the issues that most concern them. Communication for empowerment … is consistent with and rooted in a human rights-based approach to development, which incorporates the core values of equity and empowerment and derives from Article 19 of the Universal Declaration of Human Rights and International Covenant on Civil and Political Rights."

Women and Media

'Symbolic annihilation' is a term first used by George Gerbner (1972) to describe the absence of representation, or underrepresentation, of some group of people in the media (often based on their race, sex, sexual orientation, socio-economic status, etc.), understood in the social sciences to be a means of maintaining social inequality. This term is usually applied to media criticism in the fields of feminism and queer theory to describe the ways in which the media promotes stereotypes and denies specific identities. Gaye Tuchman (1978) divided the concept of symbolic annihilation into three aspects: omission, trivialization and condemnation. This multifaceted approach to coverage not only vilifies communities of identity, but work to make members invisible through the explicit lack of representation in all forms of media ranging from film, song, books, news media and visual art.

Mitchell (2016) emphasises the importance of alternative sites of media practice to promote feminist ideas and counteract what Gerbner and Gross (1976) saw as the 'absence' of gender and what Tuchman (1978) calls the 'symbolic annihilation' of women in media, as well as offering spaces where hegemonic ideas of femininity can be reworked (Andrews, 2012).

Tuchman (2000) surveys the substantive content of the mass media—television, newspapers, magazines—and the advertising they carry to gather support for her argument that, by largely ignoring women or portraying them in stereotypical roles of victim and/or consumer, the mass media symbolically annihilate women. Tuchman (2000) notes that most media portray women, if at all, in traditional roles: homemaker, mother, or, if they are in the paid workforce, clerical and other "pink-collar" jobs. Correspondingly, there are few, if any, depictions of strong female characters in positions of responsibility or authority, even inside the home; similarly, women's magazines focus on the "domestic" pursuits—marriage, child rearing, and the like—while not encouraging education, training, and other choices that tend

to bring individuals into positions of power, authority, and independence. Instead, women generally are shown to be defined in terms of their relationships with men—suggesting that women are, in the end, dependent, incapable of living their own lives without male "guidance" (Tuchman, 2000).

Community Radio for Development

Naming and defining community and alternative media and radio can be a complicated undertaking and throughout the

field the terms used are wide and varied. In 2002 community media was described by Chris Atton as a subset of alternative media (Atton, 2002), but by

2015 community media had been welcomed to the alternative media academic 'club', with the publication of the Routledge Companion to Alternative and Community Media (ed. Atton, 2015).

Community radio stations are considered as local sites of resistance to an ongoing attempt by the mainstream media organizations to homogenize media and culture (Howley, 2010). However, since community radio has been established as a legal sector in most countries and there are increasingly opportunities for using the internet to webcast, resistance needs to be defined more widely as both providing alternatives to mainstream discourses of representation for specific groups and to act as a process for representing diversity within community stations themselves (Mitchell, 2016).

Despite its importance and potential for bringing social change, community radio faces many challenges that are related to two main issues: the implementation of a participatory approach, and the sustainability of the radio stations (Sow, 2014).

Women, Empowerment and Community Radio

In her book, Gender Setting: New Agendas for Media Monitoring and Advocacy, Margaret Gallagher (2001, p. 6) argues that, behind the numbers illustrating the marginalization of women and their misrepresentations, there "lies a power structure – social, political and economic – in which men are considered to be central and

predominant". Studies initiated by UNESCO also added other layers, and altogether there was "a complex analysis of the structure and process of representation, the cultural and economic formations that support these, the social relations that produce gendered discourse, and the nature of gendered identity" (Gallagher, 2001, p. 20). In the 1970s, most of the studies undertaken in the framework of feminist studies was quantitative; from the 1990s onwards, the emphasis was put on issues of representation and media consumption, in relation to the political, economic and social contexts (Gallagher, 2001).

Anita Gurumurthy (2004, pp. 3-4) states, "Mainstream views of technology often take it to be a technical tool that society can use, but not something that in itself is influenced by society. They also ignore the differential influences of technology on the various sections of society. As such, technology is seen to be gender neutral. However, feminist scholarship has pointed to women's exclusion from science and also from the creation, design and use of technology."

The Global Sourcebook on Gender and ICTs for Development (KIT, 2005, p. 13) rightly points out: "Women want information and to engage in communication that will improve their livelihoods and help them to achieve their human rights. This is a formidable challenge

facing all societies in today's world, and especially developing countries. Due to systematic gender biases in ICTs and their applications, women are far more likely than men to experience discrimination in the information society. Women are not given up on ICTs. On the contrary, even resource-poor and non-literate women and their organizations are aware of the power of information

technologies and communication processes, and if given the opportunity to do so, will use them to advance their basic needs and strategic needs."

Diatou Cissé, one of few female directors of a station, based in Casamance, is quoted in an essay on community radio in Senegal asserting: "Radio is a new domain for men and women; we are starting at the same time; it is a sector in which we must refuse to stand behind men. It is neither a question of strength nor tradition; it is simply a matter of training. If we women follow the training well, we will be able to run radio stations as they are around the world. Radio is a real opportunity for women; we cannot leave it to men; and I notice that all of the women at this training feel the same way as I do." (Sarr, n.d., p. 132).

According to Mitchell (2000, p. 95), by "harnessing female flair, creativity, wit, energy and bravado, they [women's community radio] provide a platform for new voices and perspectives and facilitate access to skills, training and airtime so that underrepresented women can, through their own stories, become the subject, not the object of the media".

The dominance over communication by a small powerful male-dominated elite which uses existing communication technologies to coordinate and reinforce socio-cultural supremacy is a real threat to women (UNDP, 2006; Byerly, 2012; Mitchell, 2006). Radloff (n.d., p. 3) states: "Since their inception, women's movements have responded to the patriarchal privileging of male knowledge by developing a rich array of alternative communication strategies. From women's collectives, reading, writing and storytelling circles, feminist presses, radio stations and films, women

speak out, write, and publish, creating new discourses and challenging patriarchal and imperialist legacies that continue to marginalize, erase, and reduce women's contributions to the world, while reinscribing male supremacy by default."

Kabeer (1994, p. 16) indicates, "Modernization theory perceived development as an evolutionary, unilinear process of change which took societies form from their pre-modern status through a series of stages towards the final destination," retracing the historical and ideological evolution of the women in development approach.

The welfare approach assumed that "the benefits of macroeconomic strategies for growth would automatically trickle down to the poor, and that the poor women will benefit as the economic position of their husbands improved" (Momsen, 2010, p. 14).

Steeves (1994, p. 231) defines feminism as a "political movement that includes many forms and levels of oppression, while accounting for differences in collective and individual experiences…".

Chandra Mohanty (1988), in her essay, "Under Western Eyes: Feminist Scholarship and Colonial Discourses" argues against the categorization of Third World women as one uniform group, negating their identity, their history, and their political, cultural, and economic interests.

According to Krolokke and Sorensen (2006, p. 32), in feminist standpoint theory, "marginalized groups are not only forced to develop their own standpoints from a less

privileged position but are also required to understand the standpoint of the more powerful".

If feminism has been about women finding their voices, speaking up, being listened to, and if feminist history has been about telling the stories of the silenced majority, then which spaces of media and forms of communication have women appropriated to express themselves and to make themselves heard – question Lacey and Hilmes (2015).

Rimmer (2019) believes that women's voices have been universally silenced and that 'power and audibility go hand in hand' (Solnit, 2017), making radio a significant metaphor for women's empowerment and suggesting that community radio projects are potential sites of activism for change.

Feminist pedagogy holds empowerment as its primary goal (Webb et al, 2002) and embraces the tenets of social or critical pedagogy. However, it also actively acknowledges the pervasive effect of the patriarchy, even on critical education. It strives to challenge all oppression, but it specifically aims to: 'combat, overcome and replace traditional power relationships' (Webb et al, 2002).

From a societal learning perspective, silence leaves gaps in history. Hooks (2013) focuses on the invisibility of Black people and Rowbotham (1977) on the deficit in women's history. According to Trouillot (1995), silences enter history at four crucial stages: the first stage constitutes the moment of fact creation or the making of sources; in the second stage comes the moment of fact assembly or the making of archives; that is followed by the moment of fact retrieval or the making of narratives; and last but not the least is the moment of retrospective significance or the making of history in the final instance.

Rabivath (2012) concludes that empowerment is not a linear process, similar to all women within their families and a direct cause of something. To simply listening to a radio programme in a family's life does not ensure empowerment of the women, nor have they been empowered in the same way. In spite of the limitations of Rabivath's (2012) study, community radio is found to have empowered the women in some respects. However, aspect of empowerment has not occurred to many women and for some women the change is barely noticeable. Mitchell (2016) concludes that community radio can help people to find their voice rather can adapt to one that is given to them.

References

1. Andrews, M. (2012) Domesticating the Airwaves: Broadcasting, Domesticity and Femininity.
2. Bloomsbury Academic.
3. Atton, C. (2002) Alternative Media. London: Sage.
4. Atton, C., (2015) The Routledge Companion to Alternative and Community Media.
5. Abingdon: Routledge.
6. Bessette, G. (2004). Communication et participation communautaire. Laval: Les Presses de l'Universite Laval. Retrieved from https://www.idrc.ca/sites/default/files/openebooks/171-x/index.html
7. Byerly, C. M. (2012). The Geography of Women and Media Scholarship. (K. Ross, Ed.) The
8. Handbook of Gender, Sex, and Media, First Edition. (pp. 3-19).
9. CFSC. (2003). Communication For Social Change INC. Listening...Learning...Local Voices Leading

Change. New York: CFSC. Retrieved from http://archive.cfsc.org/pdf/english_brochure.pdf
10. Chitnis, K. (2005). The Duality of Development: Recasting Participatory Communication for
11. Development using structuration Theory. Investigacion Y Desarrolo Vol. 13, No 2 ,
12. 228-249.
13. Dagron, G. A. (2001). Making Waves: Stories of Participatory Communication for Social
14. Change. Rockefeller Foundation. New York: Rockefeller Foundation.
15. Dagron, G. A. (2001). Making Waves: Stories of Participatory Communication for Social Change. Rockefeller Foundation. New York: Rockefeller Foundation. Retrieved from https://www.ircwash.org/sites/default/files/Gumucio-2001-Making.pdf
16. Dagron, G. A. (2008). Vertical Minds versus Horizontal Cultures: An Overview of Participatory Process and Experiences. In J. Servaes, Communication for Development and Social Change (pp. 68-81). Oxford: Sages Publications.
17. Ferraro, V. (2008). Dependency theory: An introduction. In S. Giorgio (Ed.), The development economics reader (pp. 58-64). London: Routledge.
18. Freire, P. (1970). Pedagogy of the oppressed. Retrieved from https://envs.ucsc.edu/internships/internship-readings/freire-pedagogy-of-the- oppressed.pdf
19. Gallagher, M. (2001). Gender Setting: New Agendas for Media Monitoring and Advocacy.
20. London, New York: Zed Books & WACC

21. Gerbner, G. (1972). Symbolic functions. Television and social behavior: Media content and control, 1, 28.
https://web.asc.upenn.edu/gerbner/Asset.aspx?assetID=440
22. Gerbner, G., & Gross, L. (1976). Living with television: The violence profile. Journal of
23. Communication, 26, 172-199.
24. Gurumurthy, A. (2004). Gender and ICTs Overview Report. Institute of Development
25. Studies, Bridge development - gender. Institute of Development Studies. Hooks, B. (2013) Teaching Community: a pedagogy of hope, London: Routledge Howley, K. (2010) Understanding Community Media. London: Sage.
26. Kabeer, N. (1994). Reversed Realities: Gender Hierarchies in Development Though. London:
27. Verso.
28. Krolokke, C., & Sorensen, A. S. (2006). Gender Communication, Theories & Analysis: From
29. Silence to Performance. London: Sage Publications.
30. Lacey. K. and Hilmes, M. (2015) Editor's Introduction, Women and Soundwork. Feminist
31. Media Histories Journal, Vol.1, Number 4. University of California Press.
32. Lerner, D. (1958). The Passing of Traditional Society: A Survey.
33. Lewis, P.M. (2008) Finding and funding voices: the London experience. Information, Society and Justice, Volume 2.1, December 2008: 5-20.
34. Melkote, R. S. (2010). Theories of Development Communication. In D. K. Thussu,

35. International Communication (pp. 105-121). London and New York: Routledge.
36. Melkote, S. R., & Steeves, L. (2001). Communication for Development in the Third World.
37. Theory and Practice for Empowerment 2nd edition. Sage.
38. Mitchell, C. (2000). Sisters doing it...From Fem to Viva! A History of Contemporary Women's Radio Stations in the UK. In C. Mitchell, Women and radio Airing differences (pp. 94-115). London: Routledge.
39. Mitchell, C. (2006). Women's (community) radio as a feminist public sphere. The Public
40. (Vol.5,2, pp. 73-85).
41. Mitchell, C. A. (2016). Women and radio: airing differences: on the importance of community radio as a space for women's representation, participation and resistance (Order No. 10594619). Available from ProQuest Dissertations & Theses Global. (1896027339). https://www.proquest.com/dissertations-theses/women-radio- airing-differences-on-importance/docview/1896027339/se-2
42. Mohanty, C. (1988). Under Western Eyes: Feminist Scholarship and Colonial Discourses.
43. Feminist Review, 30(1), 61–88. https://doi.org/10.1057/fr.1988.42
44. Momsen, J. H. (2010). Gender and Development. Routledge.
45. Parpart, J. L., Rai, S. M., & Staudt, K. (2002). Rethinking Empowerment. Gender and

46. Development in a Global / local world. London and New York: Routledge.
47. Rabivath, S. S. (2012). Empowerment of women through mass media: A study on women participants in programmes of Kodai FM. Available from Shodhganga. http://hdl.handle.net/10603/289373
48. Radloff, J. (n.d.). Editorial: Feminist Engagement with 21st-century communications technology. Feminist Africa, 18, (pp. 1-11). http://www.agi.ac.za/sites/default/files/image_tool/images/429/feminist_africa_journals/archive/18/editorial-_feminist_engagements_with_21st-century_communications_technol.pdf
49. Rimmer, A. (2019). Breaking the Silence : Community Radio, Women and Empowerment (Order No. 28689338). Available from ProQuest Dissertations & Theses Global. (2548451975). https://www.proquest.com/dissertations-theses/breaking-silence-community-radio-women/docview/2548451975/se-2
50. Rogers, E. M. (1962). Diffusion of Innovation. Retrieved from https://teddykw2.files.wordpress.com/2012/07/everett-m-rogers-diffusion-of- innovations.pdf
51. Rowbotham, S. (1977) Hidden from history: 300 years of women's oppression and the fight against it, London: Pluto Press.
52. Sarr, A. (n.d). Community Radios: Tools to promote peace, culture, democracy and development in Africa. (A. d. (ALFP), Ed.). Retrieved from https://www.changecommunications.org/web/docs/d

ibengCommunityRadioBookEN GLISHAbdouSarr.pdf
53. Schramm, W. (1979). Mass media and national development. Paris: UNESCO.
54. Servaes, J. (1999). Communication for Development. One World, Multiple Cultures.
55. 10.13140/RG.2.1.2113.7120.
56. Servaes, J. (2004). Multiple Perspectives on Development Communication. In C. C. Okigbo,
57. & F. Eribo, Development and Communication in Africa (pp. 55-64). Oxford: Rowman
58. & Littlefield Publishers, Inc.
59. Servaes, J. (2008). Communication for Development and Social Change. London: Sage
60. Publications.
61. Servaes, J., & Malikhao, P. (2005). Participatory communication: the new paradigm? In O.
62. Hemer, & T. Thomas, Media and Global Change (pp. 91-103). Buenos Aires: Clacso
63. Books.
64. Solnit, R. (2017). The Mother of All Questions, Chicago: Haymarket.
65. Sow, F. (2014). Women's community radio in Africa: The case study of Gindiku FM in Senegal (Order No. 3644462). Available from ProQuest Dissertations & Theses Global. (1625708559). https://www.proquest.com/dissertations-theses/womens- community-radio-africa-case-study-gindiku/docview/1625708559/se-2
66. Steeves, L. H. (1994). Creating Imagined Communities: Development Communication and the Challenge of feminism. In M. R. Levy, & M.

Gurevitch, Defining Media Studies (pp. 226-237). New York, Oxford: Oxford University Press.
67. Trouillot, M.R. (1995) Silencing the past: Power and the production of history, Boston:
68. Beacon Press.
69. Tuchman, G. (1978) Introduction: The symbolic annihilation of women by the mass media.
70. In: Tuchman, G., Daniels, A. K. and Benét, J. (eds), Hearth and home: Images of women in the mass media. New York: Oxford University Press, 3-38.
71. Tuchman, G. (2000). The Symbolic Annihilation of Women by the Mass Media. In: Crothers, L., Lockhart, C. (eds) Culture and Politics. Palgrave Macmillan, New York. https://doi.org/10.1007/978-1-349-62397-6_9
72. UNDP. (2006). Communication for Empowerment: developing media strategies in support of vulnerable groups. United Nations Development Programme. UNDP.
73. UNESCO, N. (n.d.). News. Ranérou CMC makes access to information and freedom of expression a reality. Retrieved from http://portal.unesco.org/ci/en/ev.php-URL_ID=23907&URL_DO=DO_TOPIC&URL_SECTION=201.html
74. WACC. (n.d.). Centre for Communication Rights. Retrieved from http://www.centreforcommunicationrights.org/introduction.html
75. Webb, L.M. Allen, M.W. Walker, K.L. (2002) Feminist Pedagogy: Identifying Basic Principles, in Academic exchange quarterly Vol 6, March Issue 2002 pp. 67-72 https:// www.researchgate.net/

publication/
225274654_Feminist_pedagogy_Identifying
76._basic_principles accessed 22.5.18

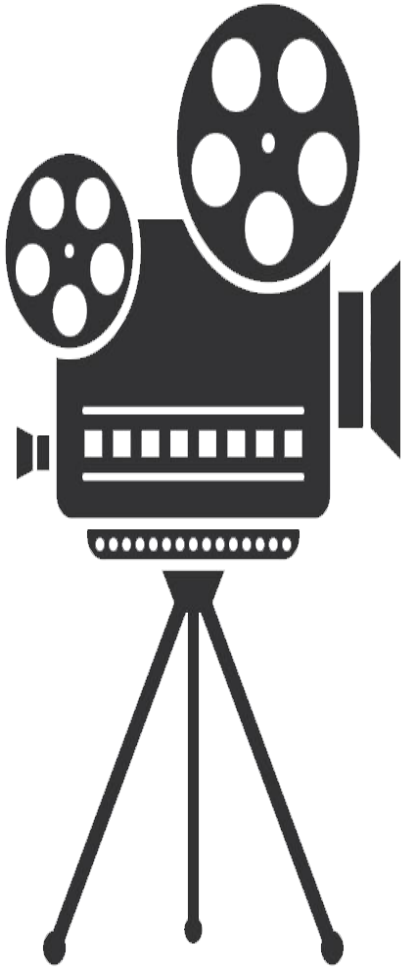

डिजिटल युग में पत्रकारिता की चुनौतियां

अमित दत्ता
एक्सेकुटिव एडिटर
जी बिजनेस (जी मीडिया), मुंबई
मो. 9930881055

सारांश

सूचनाओं का प्रसार सदैव मानव सभ्यता के विकास का महत्वपूर्ण पहलू रहा है। समय के साथ, सूचनाओं के प्रसार के माध्यमों में क्रांतिकारी बदलाव हुए हैं। जहां पहले पारंपरिक मीडिया जैसे कि समाचार-पत्र, पत्रिकाएं और टेलीविजन ही जानकारी का मुख्य स्रोत थे, वहीं आजकल डिजिटल प्लेटफॉर्म सूचनाओं का प्रमुख माध्यम बन गए हैं। डिजिटल युग के आगमन से पत्रकारिता के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन देखे जा रहे हैं। इंटरनेट, स्मार्टफोन और सोशल मीडिया के उदय ने पत्रकारिता को एक नया आयाम दिया है। आज, कोई भी व्यक्ति सूचनाओं का स्रोत और प्रसारक बन सकता है। डिजिटल माध्यमों ने पत्रकारिता को त्वरित, गतिशील और लोकतांत्रिक बनाया है।

डिजिटल युग ने हमारे समाचार और सूचना उपभोग के तरीके में क्रांति ला दी है, जिससे पत्रकारिता के क्षेत्र में अवसर और चुनौतियाँ दोनों सामने आई हैं। प्रौद्योगिकी की तीव्र प्रगति के साथ, पत्रकारिता को अब एक बड़ी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है जहां तथ्य और कल्पना के बीच की रेखाएं अक्सर धुंधली हो जाती हैं।

बीज शब्द: *सूचना, मीडिया, विकास, लोकतन्त्र, डिजिटल*

शोध आलेख

सूचनाओं का प्रसार सदैव मानव सभ्यता के विकास का महत्वपूर्ण पहलू रहा है। समय के साथ, सूचनाओं के प्रसार के माध्यमों में क्रांतिकारी बदलाव हुए हैं। जहां पहले पारंपरिक मीडिया जैसे कि समाचार-पत्र, पत्रिकाएं और टेलीविजन ही जानकारी का मुख्य स्रोत थे, वहीं आजकल डिजिटल प्लेटफॉर्म सूचनाओं

का प्रमुख माध्यम बन गए हैं। डिजिटल युग के आगमन से पत्रकारिता के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन देखे जा रहे हैं। इंटरनेट, स्मार्टफोन और सोशल मीडिया के उदय ने पत्रकारिता को एक नया आयाम दिया है। आज, कोई भी व्यक्ति सूचनाओं का स्रोत और प्रसारक बन सकता है। डिजिटल माध्यमों ने पत्रकारिता को त्वरित, गतिशील और लोकतांत्रिक बनाया है।

डिजिटल युग ने हमारे समाचार और सूचना उपभोग के तरीके में क्रांति ला दी है, जिससे पत्रकारिता के क्षेत्र में अवसर और चुनौतियाँ दोनों सामने आई हैं। प्रौद्योगिकी की तीव्र प्रगति के साथ, पत्रकारिता को अब एक बड़ी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है जहां तथ्य और कल्पना के बीच की रेखाएं अक्सर धुंधली हो जाती हैं।

समाचारों के डिजिटलीकरण ने सूचना के प्रसार को लोकतांत्रिक बना दिया है, जिससे वास्तविक समय पर अपडेट और वैश्विक पहुंच सुलभ हो गई है। हालाँकि, इससे पारंपरिक समाचार संस्थान (आउटलेट्स) में भी गिरावट आई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण पत्रकारिता के लिए चुनौतियाँ पैदा हुई हैं। ऑनलाइन समाचारों की तात्कालिकता ने प्रतिस्पर्धा बढ़ा दी है, जिससे पत्रकारों के लिए अपनी रिपोर्टिंग में सटीकता और नैतिकता को प्राथमिकता देना महत्वपूर्ण हो गया है।

पत्रकारों के लिए नैतिक मानकों को बनाए रखना सर्वोपरि हो जाता है। ऑनलाइन गलत सूचना का प्रसार पारदर्शी और विश्वसनीय रिपोर्टिंग की आवश्यकता पर प्रकाश डालता है। नैतिक सिद्धांतों को कायम रखने से न केवल दर्शकों का विश्वास बरकरार रहता है बल्कि पत्रकारिता जैसे सम्मानित पेशे की प्रतिष्ठा भी सुरक्षित रहती है।

डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म के उदय ने दर्शकों के समाचारों से जुड़ने के तरीके (News Consumption Behaviour) को बदल दिया है। सोशल मीडिया फ़ीड से लेकर वैयक्तिकृत (Personalised) समाचार एग्रीगेटर्स तक, व्यक्तियों के पास

जानकारी भरपूर मात्रा उपलब्ध होती है। पत्रकारों को आकर्षक और प्रासंगिक सामग्री तैयार करके बदलते उपभोग पैटर्न को अपनाना चाहिए जो विविध उपभोक्ताओं की पसंद के साथ मेल खाता हो।

सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म समाचारों के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जिसमें एल्गोरिदम (समाचार चयन की तकनीकी प्रक्रिया) सामग्री दृश्यता (Content Visibility) और उपभोक्ता या पाठकों की सहभागिता के अनुसार तय किये जाते हैं। सोशल मीडिया की वायरल प्रकृति फर्जी खबरों को बढ़ा सकती है, जिससे पत्रकारों के लिए झूठे आख्यानों का मुकाबला करना और पत्रकारिता के मानकों को बनाए रखना अनिवार्य हो गया है।

डिजिटल युग ने पत्रकारिता के लिए कई चुनौतियां भी पेश की हैं। इनमें से कुछ प्रमुख चुनौतियां निम्नलिखित हैं:

1. गलत सूचना का प्रसार

सोशल मीडिया और अन्य डिजिटल प्लेटफॉर्म ने सूचनाओं के प्रसार में क्रांति ला दी है। आज, कोई भी व्यक्ति कुछ ही क्लिक के साथ दुनिया भर के लोगों तक अपनी बात पहुंचा सकता है। हालांकि, यह सुविधा एक गंभीर खतरे के साथ भी आती है - गलत सूचना का प्रसार।

गलत सूचना, झूठी या भ्रामक जानकारी है जिसे जानबूझकर या अनजाने में फैलाया जाता है। यह अक्सर सनसनीखेज, भावनात्मक रूप से उत्तेजक, और साझा करने में आसान होता है। गलत सूचना का समाज पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। यह लोगों को गुमराह कर सकता है, गलत निर्णय लेने के लिए प्रेरित कर सकता है, और सामाजिक अशांति पैदा कर सकता है। कुछ विशिष्ट प्रभावों में शामिल हैं:

- सार्वजनिक स्वास्थ्य: गलत सूचना टीकाकरण, महामारी, और अन्य स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों के बारे में गलत धारणाएं पैदा कर सकती है, जिससे लोगों के स्वास्थ्य को खतरा हो सकता है।
- राजनीति: गलत सूचना चुनावों में हस्तक्षेप कर सकती है, राजनीतिक ध्रुवीकरण को बढ़ा सकती है, और लोकतंत्र को कमजोर कर सकती है।
- सामाजिक संघर्ष: गलत सूचना सामाजिक समूहों के बीच भ्रम, अविश्वास और घृणा पैदा कर सकती है, जिससे हिंसा और संघर्ष हो सकता है।

गलत सूचना से लड़ना एक सामूहिक प्रयास है। पत्रकारों, नागरिकों, और सरकारों को मिलकर काम करना होगा ताकि इस खतरे को कम किया जा सके। पत्रकारों की भूमिका इस लड़ाई में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

पत्रकारों को तथ्यों की जांच करने, सच्ची जानकारी को गलत से अलग करने और गलत सूचना का उजागर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए। वे निम्नलिखित तरीकों से ऐसा कर सकते हैं:

- स्रोतों की जांच: जानकारी को प्रकाशित करने से पहले, पत्रकारों को स्रोतों की विश्वसनीयता और प्रामाणिकता को सत्यापित करना चाहिए।
- तथ्यों की जांच: पत्रकारों को जानकारी की सटीकता को सत्यापित करने के लिए विभिन्न स्रोतों से जानकारी को क्रॉस-चेक करना चाहिए।
- संदर्भ प्रदान करना: पत्रकारों को जानकारी को संदर्भ में प्रस्तुत करना चाहिए ताकि पाठक इसकी सटीकता का आकलन कर सकें।
- निष्पक्षता बनाए रखना: पत्रकारों को निष्पक्ष और निष्पक्ष रहना चाहिए, और किसी भी विशेष एजेंडे को बढ़ावा देने से बचना चाहिए।

- गलत सूचना को उजागर करना: पत्रकारों को गलत सूचना और नकली समाचारों को उजागर करने और उन्हें फैलने से रोकने के लिए सक्रिय रूप से काम करना चाहिए।

सोशल मीडिया और अन्य डिजिटल प्लेटफॉर्म गलत सूचना का प्रसार करने के लिए आसान माध्यम बन गए हैं। पत्रकारों को तथ्यों की जांच करने और सच्ची जानकारी को गलत से अलग करने के लिए अधिक सतर्क रहना होगा। ऐसे युग में जहां जानकारी में हेरफेर और उसे विकृत किया जा सकता है, तथ्य-जांच और सत्यापन पत्रकारों के लिए आवश्यक कौशल बन गए हैं। समाचार प्रसार की तीव्र गति के लिए सटीक रिपोर्टिंग और भ्रामक सामग्री के बीच अंतर करने के लिए जांच की आवश्यकता होती है। गहन शोध और विश्वसनीय स्रोतों को प्राथमिकता देकर, पत्रकार फर्जी खबरों की चुनौतियों का मुकाबला कर सकते हैं।

2. नकली समाचार (फेक न्यूज)

नकली समाचार, जिन्हें "फेक न्यूज" भी कहा जाता है, जानबूझकर फैलाए गए झूठे या भ्रामक समाचार होते हैं। वे सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य को प्रभावित करने के लिए, या व्यक्तिगत लाभ के लिए बनाए जाते हैं। नकली समाचार पत्रकारिता की विश्वसनीयता को कम करते हैं और लोगों का विश्वास खो देते हैं।

नकली समाचारों के प्रकार:

- पूरी तरह से झूठे समाचार: ये समाचार पूरी तरह से झूठे होते हैं और उनमें कोई सच्चाई नहीं होती।
- भ्रामक समाचार: ये समाचार कुछ सच्ची जानकारी को झूठे या भ्रामक तरीके से प्रस्तुत करते हैं।

- विषय-वस्तु से बाहर: ये समाचार किसी घटना या मुद्दे के बारे में अतिरंजित या विकृत जानकारी प्रस्तुत करते हैं।
- पक्षपातपूर्ण समाचार: ये समाचार किसी विशेष विचारधारा या राजनीतिक दल को बढ़ावा देने के लिए बनाए जाते हैं।

नकली समाचारों का प्रभाव:

सार्वजनिक विश्वास कम होता है: नकली समाचारों के कारण लोगों का मीडिया और अन्य सूचना स्रोतों पर विश्वास कम होता है।

- ध्रुवीकरण बढ़ता है: नकली समाचार लोगों को समूहों में विभाजित करते हैं और सामाजिक और राजनीतिक ध्रुवीकरण को बढ़ाते हैं।
- हिंसा और घृणा फैलती है: नकली समाचार हिंसा और घृणा को बढ़ावा दे सकते हैं, खासकर जब वे जातीय या धार्मिक समूहों को लक्षित करते हैं।
- लोकतंत्र को कमजोर करता है: नकली समाचार लोकतंत्र को कमजोर करते हैं, क्योंकि वे लोगों को गलत जानकारी के आधार पर निर्णय लेने के लिए प्रेरित करते हैं।

नकली समाचारों से कैसे बचें:

- स्रोत की जांच करें: समाचार पढ़ने या साझा करने से पहले, स्रोत की जांच करें और सुनिश्चित करें कि यह विश्वसनीय है।
- विभिन्न स्रोतों से जानकारी प्राप्त करें: केवल एक स्रोत पर भरोसा न करें, विभिन्न स्रोतों से जानकारी प्राप्त करें और उनकी तुलना करें।

- समाचारों का विश्लेषण करें: समाचारों का विश्लेषण करें और देखें कि क्या वे तथ्यों पर आधारित हैं, या केवल राय या भावनाओं पर आधारित हैं।
- सोशल मीडिया पर सावधान रहें: सोशल मीडिया पर साझा किए जाने वाले समाचारों के बारे में सावधान रहें, और उन्हें बिना जांचे साझा न करें।

पत्रकारों को नकली समाचारों की पहचान करने और उन्हें उजागर करने के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। उन्हें तथ्यों की जांच करने, सच्ची जानकारी को गलत से अलग करने और नकली समाचारों के बारे में लोगों को जागरूक करने के लिए अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास करना चाहिए।

3. विज्ञापन राजस्व में कमी

डिजिटल युग ने पत्रकारिता के क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव लाए हैं। सूचनाओं का प्रसार पहले से कहीं अधिक तेज़ और आसान हो गया है, जिसके साथ कई चुनौतियां भी सामने आई हैं। इनमें से एक बड़ी चुनौती है विज्ञापन राजस्व में कमी।

पारंपरिक रूप से, विज्ञापन राजस्व पत्रकारिता का मुख्य स्रोत रहा है। समाचार पत्र, पत्रिकाएं, और टेलीविजन चैनल विज्ञापनदाताओं से पैसे लेकर उन्हें अपनी जगह और समय बेचते थे। यह मॉडल कई दशकों तक सफल रहा, लेकिन डिजिटल युग में यह ध्वस्त हो गया है।

इंटरनेट और सोशल मीडिया के आगमन ने विज्ञापन बाजार को पूरी तरह बदल दिया है। अब विज्ञापनदाता डिजिटल प्लेटफॉर्म को प्राथमिकता देते हैं, जहां वे

कम पैसे में अधिक लोगों तक पहुंच सकते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि पारंपरिक मीडिया संगठनों का विज्ञापन राजस्व काफी कम हो गया है।

यह कमी पत्रकारिता के लिए एक बड़ी चुनौती है। विज्ञापन राजस्व में कमी के कारण, कई मीडिया संगठनों को अपने कर्मचारियों की संख्या कम करनी पड़ी है, कुछ बंद भी हो गए हैं। यह पत्रकारिता की गुणवत्ता को प्रभावित कर रहा है, क्योंकि कम संसाधनों के साथ पत्रकारों के लिए अच्छी रिपोर्टिंग करना मुश्किल हो रहा है।

इस चुनौती का सामना करने के लिए, पत्रकारों को नए राजस्व मॉडल खोजने होंगे। कुछ संभावित विकल्पों में शामिल हैं:

- सदस्यता: पाठकों से शुल्क लेकर उन्हें समाचार और अन्य सामग्री प्रदान करना।
- क्राउडफंडिंग: पाठकों से धन जुटाकर पत्रकारिता को वित्तपोषित करना।
- डेटा विश्लेषण: डेटा का उपयोग करके विज्ञापनदाताओं को अधिक प्रभावी ढंग से लक्षित करना।
- ई-कॉमर्स: पत्रकारिता से संबंधित उत्पादों और सेवाओं को बेचना।
- गैर-लाभकारी संगठनों से धन: पत्रकारिता को वित्तपोषित करने के लिए गैर-लाभकारी संगठनों से अनुदान प्राप्त करना।

इन नए राजस्व मॉडलों का उपयोग करके, पत्रकारिता डिजिटल युग में जीवित रह सकती है और लोगों को सच्ची और विश्वसनीय जानकारी प्रदान करना जारी रख सकती है।

4. पत्रकारों की सुरक्षा

पत्रकारों की सुरक्षा आज के समय में एक गंभीर चिंता का विषय बन गई है। सोशल मीडिया के बढ़ते उपयोग के साथ, पत्रकारों को अक्सर धमकियां, उत्पीड़न और हिंसा का सामना करना पड़ता है। यह न केवल पत्रकारों के लिए खतरा है, बल्कि लोकतंत्र और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए भी खतरा है।

सोशल मीडिया पर पत्रकारों को होने वाले खतरों में शामिल हैं:

- धमकियां और उत्पीड़न: सोशल मीडिया पर पत्रकारों को अक्सर धमकियां, अपमानजनक टिप्पणियां और निजी जानकारी लीक करने की धमकियां मिलती हैं।
- हिंसा: कुछ मामलों में, पत्रकारों पर सोशल मीडिया पर धमकियों के बाद हिंसा भी हुई है।
- मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव: धमकियां और उत्पीड़न पत्रकारों के मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डाल सकते हैं, जिससे उन्हें चिंता, अवसाद जैसी समस्याएं हो सकती हैं।

पत्रकारों की सुरक्षा के लिए कुछ ठोस कदम उठाए जा सकते हैं:

- कानून का सख्ती से पालन: सोशल मीडिया पर पत्रकारों को धमकाने और उत्पीड़ित करने के लिए कड़े कानून बनाए जाने चाहिए और उनका सख्ती से पालन किया जाना चाहिए।
- सोशल मीडिया कंपनियों की जिम्मेदारी: सोशल मीडिया कंपनियों को अपनी प्लेटफॉर्म पर पत्रकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाने चाहिए, जैसे कि धमकियों और उत्पीड़न की रिपोर्ट करने के लिए आसान तरीके प्रदान करना।
- पत्रकारों के लिए प्रशिक्षण: पत्रकारों को सोशल मीडिया पर अपनी सुरक्षा कैसे करें, इस बारे में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

- नागरिक समाज की भूमिका: नागरिक समाज को पत्रकारों की सुरक्षा के लिए आवाज उठानी चाहिए और उन्हें धमकियों और उत्पीड़न से बचाने के लिए प्रयास करना चाहिए।

पत्रकारों की सुरक्षा लोकतंत्र के लिए महत्वपूर्ण है। पत्रकारों को बिना किसी डर या खतरे के अपना काम करने में सक्षम होना चाहिए। यह सुनिश्चित करना सरकार, सोशल मीडिया कंपनियों, नागरिक समाज और पत्रकारों की सामूहिक जिम्मेदारी है।

5. पत्रकारों की नैतिकता

डिजिटल युग ने सूचनाओं के प्रसार और उपभोग के तरीके में क्रांति ला दी है। इंटरनेट और सोशल मीडिया ने पत्रकारिता को एक नया आयाम दिया है, लेकिन इसके साथ ही नैतिकता के मुद्दे भी सामने आए हैं। पत्रकारों को हमेशा निष्पक्ष और सच्ची जानकारी प्रकाशित करनी चाहिए, लेकिन डिजिटल युग में यह पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गया है।

पत्रकारिता लोकतंत्र का चौथा स्तंभ है। यह लोगों को सूचित करने, सत्ता पर नज़र रखने और सामाजिक परिवर्तन को प्रेरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पत्रकारों की नैतिकता इस प्रक्रिया के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सुनिश्चित करती है कि:

- जनता को सच्ची और निष्पक्ष जानकारी मिले।
- पत्रकारों की विश्वसनीयता और विश्वास बने रहे।
- सामाजिक न्याय और लोकतंत्र को मजबूत किया जाए।

डिजिटल युग में पत्रकारों की नैतिकता का पालन करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिए गए हैं:

- तथ्यों की जांच करें: किसी भी जानकारी को प्रकाशित करने से पहले उसकी सत्यता की जांच करना महत्वपूर्ण है।
- स्रोतों का खुलासा करें: पत्रकारों को अपनी जानकारी के स्रोतों का खुलासा करना चाहिए ताकि पाठक उनके दावों की सत्यता की जांच कर सकें।
- निष्पक्ष और तटस्थ रहें: पत्रकारों को अपनी रिपोर्टिंग में निष्पक्ष और तटस्थ रहना चाहिए।
- सम्मानजनक भाषा का प्रयोग करें: पत्रकारों को अपनी रिपोर्टिंग में सम्मानजनक भाषा का प्रयोग करना चाहिए।
- नैतिकता के नियमों का पालन करें: पत्रकारों को सभी पत्रकार संगठनों द्वारा स्थापित नैतिकता के नियमों का पालन करना चाहिए।

आधुनिक डिजिटल युग में पत्रकारिता के सामने नई चुनौतियां हैं। इस युग में विशेष दृष्टिकोण से तथ्यों की प्रस्तुति, विचारों के घालमेल, और आग्रह-पूर्वाग्रह से ग्रस्त खबरें जनसमुदाय के हित में नहीं हैं। पत्रकारों को विशेष जिम्मेदारी से तथ्यों को सत्यापित करने और विचारों को स्पष्टता से प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। डिजिटल पत्रकारिता में विश्वसनीयता और नैतिकता को बनाए रखने के लिए समाचार संस्थानों को भी अपनी जिम्मेदारी समझनी चाहिए।

संदर्भ सूची

1. Digital Age Challenges in Journalism: Strategies for Success: https://yellowbrick.com/yellowbrick-for-media-entertainment/
2. Journalism in the Digital Age: Practice, Challenges and Opportunities:

https://www.linkedin.com/pulse/journalism-digital-age-practice-challenges-final-part-aftab-hossain

3. Confronting the Challenges to Journalism in the Digital Age: https://cipesa.org/2023/06/smell-the-coffee-kenya-disinformation-is-brewing/
4. बदलते दौर का बदलता मीडिया, पत्रकारिता और इसकी चुनौतियां - Changing media of Changing times journalism and its challenges (naidunia.com)

भारत के जनसंचार में कार्टूनों की परम्परा और गाँधी

संगीता केशरी
अतिथि प्रवक्ता, शिवाजी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
मो.9318363296
ईमेल: thekeshari13@gmail.com

सारांश

भारत के आधुनिक इतिहास में गाँधी ऐतिहासिक व राष्ट्रीय धरोहर है। इनकी शिक्षाओं, उपदेशों, मूल्यों और कृत्यों का विश्लेषण समय-समय पर होता आया है। और आवश्यक भी है कि यह 21वीं सदी के तकनीकी युग में होता रहे। आज भी गाँधी के विचार भारत के साथ विश्व के लिए एक वैकल्पिक विचार की तरह है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ आज भी हिंसा, युद्ध, रक्तपात ने दुनिया को बेचैन किए हुए है। गाँधी प्रयोगधर्मी व्यक्तित्व के थे उन्होंने पुरातन और नये दार्शनिक विचारों का मेल कराके कई लड़ाईयाँ लड़ी है। पुरातन उपवास की परंपरा और भूख की मार को गाँधी ने राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयोग किया जो विश्व के सामने मानवीय अधिकारों की लड़ाई का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनकर उभरा। इसलिए बुध्द और महावीर के सत्य और अहिंसा के दर्शन से शांति का मार्ग प्राप्त करने कि आंकाक्षा लिए हुए गाँधी को सदैव याद करते रहेंगे। क्योंकि गाँधी ने मानवता के उन्नति का रास्ता शांति, स्नेह, सद्भाव से ही संभव माना है।

1888 में कानून की डिग्री लेने के बाद, गाँधी 1893 में दक्षिण अफ्रीका में वकालत का प्रशिक्षण प्रारंभ करते हैं। इस दौरान वे दक्षिण अफ्रीका के राजनीतिक, समाजिक आंदोलनों को संचालित करते हैं। साथ ही 1903 से 1914 तक बहुभाषी इंडियन ओपिनियन नामक पत्र संपादित करते हैं। यह पत्रिका भारत की राजनीति की समीक्षा करने वाली आरंभिक पत्रिकाओं में से एक थी जिसमें कार्टून को भी शामिल किया गया था। मानवीय संवेदना को अखबारों से जोड़ने के लिए गाँधी ने कार्टूनों को अपने पत्रिका में स्थान दिया।

गाँधी के लिए कार्टून राजनीतिक दृश्य को प्रस्तुत करने वाली एक शब्दावली थी जिसका प्रयोग वे ब्रिटिश उपनिवेशओं में बढ़ते जुल्म को दर्शाने के लिए तथा अपने सत्याग्रहीयों में उत्साह एवं गतिशीलता लाने के लिए कर रहे थे।

बीज शब्द: *आधुनिक, इतिहास, जनसंचार, परंपरा, कार्टून*

शोध आलेख

उन्नीसवीं शताब्दी की शुरुआत से, कार्टूनों का प्रसार शाही ब्रिटेन और उसके उपनिवेशों में होने लगा था। ब्रिटेन और उसके उपनिवेशों के बीच सांस्कृतिक, राजनीतिक, यातायात और व्यापार के प्रसार से इसका स्थायी प्रभाव भारत के प्रिंट मीडिया, अर्थात् समाचार पत्रों पर पड़ा। इन कार्टूनों ने हास्य और आलोचना के साथ साम्राज्यवादी दोहरेपन की परतें खोल दीं। 1947 में ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता के पश्चात भारत एक लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के रूप में स्थापित होता है। जिसमें समाचार पत्र, जन संचार और राजनीति के महत्वपूर्ण साधन थे और कार्टून उसके प्रमुख अंग। औपनिवेशिक काल के कई कार्टून एल्बम, भारत में कार्टूनों की जीवंत दुनिया की गवाही देते हैं। इनमें हरिश्चंद्र तालचेरकर द्वारा वायसराय लॉर्ड कर्जन (1902) के कार्टूनों का संकलन, हिंदी पंच, भीमसेन, जैसे कैरिकेचर और कार्टून को देखा जा सकता है। ये कार्टून स्थानीय, राष्ट्रीय, वैश्विक विचारधाराओं एवं परिस्थितियों के बदलते स्वरू प को दिखाते हैं।

भारत में सम्प्रेषण प्रवाह की व्यंग्य विधा का प्रयोग कबीर, दादु, रैदास की साहित्यिक परम्परा में देखा जा सकता है। जब आधुनिक युग में जनसंचार के नए-नए आयाम विकसित हुए तब संप्रेषण का स्वरूप भी बदला। इस बदलते स्वरूप से कई नये व्यंग्यात्मक कला का जन्म हुआ जिसने खासी लोक प्रसिद्धि प्राप्त की। कैरीकेचर, कार्टून इत्यादि इसी व्यंग्यात्मक कला के नमूने हैं। कार्टून की शुरुआत औपनिवेशिक भारतवर्ष के 1850 के दशक से स्थानीय भाषा के अखबारों से हुई।

भारत में 2010-11 से अखबारों के पाठकों की संख्या में आश्चर्यजनक दैनिक वृद्धि हुई जो शायद विश्व में सबसे अधिक थी। तब से, कार्टून ने भारत के विकास के एजेंडे, लोकतांत्रिक शासन और धर्मनिरपेक्ष साख पर सवाल उठाकर हास्य और व्यंग की दैनिक खुराक अखबारों के माध्यम से देता रहा है। सर्वप्रथम भारत में कार्टूनों के प्राथमिक स्रोत समाचार पत्र थे और उनका प्रमुख विषय राजनीति थी। यह समाचार पत्रों की एक विशेष श्रेणी थी जिसमें राजनीतिक पत्रकारिता का एक महत्वपूर्ण रूप दिखता था। किंतु समाचार पत्रों के प्रबंधन के बदलते स्वरूप ने व्यावसायिकता को बढ़ावा दिया। जिससे समाचार पत्र का प्रकाशन एक उद्योग में बदल गया। आज नए-नए तकनीकों के विकास एवं शीघ्र से शीघ्र पाठकों तक पहुंच की प्रतिस्पर्धा से कार्टूनों के स्वरूप में बड़ा परिवर्तन देखा जा सकता है। इस तकनीकी युग में कार्टून का दायरा सिर्फ अखबारों तक सीमित नहीं है। यह टीवी, किताबों, एल्बम, सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों पर मीम, डूडल्स, जीआईएफ, कैरीकेचर इत्यादि स्वरूप में दिखाई देते है। जिनका प्रसार-प्रचार तेजी से हो रहा है। अब कार्टून-कला व्यक्तिगत कला से ज्यादा एक व्यावसायिक शिक्षा बन गया है जो नित नए कलाकारों को जन्म दे रहा है।

भारत में शंकर पिल्लई को कार्टूनों के पिता के रूप में जाना जाता है। लेकिन भारत के हर घर में कार्टून पहुँचाने कर श्रेय आर. के. लक्ष्मण को दिया जाता है। सन् 1984 में कार्टून के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने के लिए इन्हें रोमन मैग्सेसे पुरस्कार दिया गया। आर के लक्ष्मण का मानना है - कार्टून कला वह विधा है जो किसी पर अंगुली उठाए बिना एक बहुत ही सभ्य तरीके से किसी व्यक्ति, नीति या रीति के खिलाफ आवाज उठाती है। इसकी संप्रेषण क्षमता भौगोलिक, सांकृतिक, भाषाई सीमाओं को लांघ कर आम जनता के मनोभाव से जुड़ती है। इस हास्य चित्र वाली विधा के सफलता का श्रेय, बड़े से बड़े घटनाक्रम को प्रभावी ढंग से बिना विवरण के प्रस्तुत करने के कारण है।

विश्व में लगातार सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक गतिविधियों का स्वरूप बदल रहा है जिससे देश का चौथा स्तंभ कहे जाने वाले जनसंचार के स्वरूप में भी परिवर्तन आया है। आज समाचारों की गतिविधियाँ रफ्तारमयी हो गई हैं। समाचार अब सिर्फ पत्र-पत्रिकाओं, टीवी तक सीमित नहीं है। यह शीघ्र से शीघ्र इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों जैसे मोबाइल, कंप्यूटर आदि पर इंटरनेट के माध्यम से दर्शकों तक पहुँच रहा है। इस कारण वैचारिक गतिविधियों में इनकी भूमिका तेजी से बढ़ी है। समाचार के बदलते स्वरूप के कारण कार्टून में कई विषयगत परिवर्तन हुए हैं। अब कार्टून सिर्फ राजनीति का विषय न रहकर वर्तमान की परिस्थितियों के विभिन्न बिंदुओं को छू रहा है जिसमें सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक विषयों का समावेश हम देख सकते हैं। पुरातन इतिहास व राजनीति का पुनर्मूल्यांकन दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है ऐसे में हमारे ऐतिहासिक महापुरुषों की कृत्यों पर नित नए प्रश्नचिन्ह खड़े हो रहे हैं।

भारत के आधुनिक इतिहास में गाँधी ऐतिहासिक व राष्ट्रीय धरोहर है। इनकी शिक्षाओं, उपदेशों, मूल्यों और कृत्यों का विश्लेषण समय-समय पर होता आया है। और आवश्यक भी है कि यह 21वीं सदी के तकनीकी युग में होता रहे। आज भी गाँधी के विचार भारत के साथ विश्व के लिए एक वैकल्पिक विचार की तरह है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ आज भी हिंसा, युद्ध, रक्तपात ने दुनिया को बेचैन किए हुए है। गाँधी प्रयोगधर्मी व्यक्तित्व के थे उन्होंने पुरातन और नये दार्शनिक विचारों का मेल कराके कई लड़ाईयाँ लड़ी है। पुरातन उपवास की परंपरा और भूख की मार को गाँधी ने राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयोग किया जो विश्व के सामने मानवीय अधिकारों की लड़ाई का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनकर उभरा। इसलिए बुध्द और महावीर के सत्य और अहिंसा के दर्शन से शांति का मार्ग प्राप्त करने कि आंकाक्षा लिए हुए गाँधी को सदैव याद करते रहेंगे। क्योंकि गाँधी ने मानवता के उन्नति का रास्ता शांति, स्नेह, सद्भाव से ही संभव माना है।

1888 में कानून की डिग्री लेने के बाद, गाँधी 1893 में दक्षिण अफ्रीका में वकालत का प्रशिक्षण प्रारंभ करते हैं। इस दौरान वे दक्षिण अफ्रीका के राजनीतिक, समाजिक आंदोलनों को संचालित करते हैं। साथ ही 1903 से 1914 तक बहुभाषी इंडियन ओपिनियन नामक पत्र संपादित करते हैं। यह पत्रिका भारत की राजनीति की समीक्षा करने वाली आरंभिक पत्रिकाओं में से एक थी जिसमें कार्टून को भी शामिल किया गया था। मानवीय संवेदना को अखबारों से जोड़ने के लिए गाँधी ने कार्टूनों को अपने पत्रिका में स्थान दिया। गाँधी के लिए कार्टून राजनीतिक दृश्य को प्रस्तुत करने वाली एक शब्दावली थी जिसका प्रयोग वे ब्रिटिश उपनिवेशओं में बढ़ते जुल्म को दर्शाने के लिए तथा अपने सत्याग्रहीयों में उत्साह एवं गतिशीलता लाने के लिए कर रहे थे।

INDIAN OPINION

No. 14—Vol. 8 SATURDAY, APRIL 2ND, 1910.

"The March of Civilisation"

चित्र-1 इंडियन ओपिनियन में छपा कार्टून

इस कार्टून में गाँधी की दूरदर्शिता को देखा जा सकता है। वे विश्व के मानव के उत्थान पर कार्य कर रहे थे। अपने आदर्शों, विचारों से जनमानस को स्वाधीनता का मूल्य समझाना चाहते है। आरंभ में गाँधी जी दक्षिण अफ्रिका के

सत्ता के खिलाफ लड़ रहे थे। इसलिय उनसे संबधित बने आरम्भिक कार्टूनों का उद्देश्य, उनको नीचा दिखाना था ना कि उनके राजनैतिक एवं मानवीय चरित्र का आकलन करना।

भारत में, अख़बारों का सवाल उठाना लोकतंत्र के मानदंड को पूरा करता है। यह लोकतंत्र में पूछताछ को खोलता है, जो कि "लोकतंत्र" शब्द से जुड़ी विविधतओं को दर्शाता है। चुँकि कार्टून भी जनसंचार का एक अंग है जो हास्य-व्यंग्य के अनुदार रवैये के साथ लोकतंत्र के छिपे अर्थों के बारे में संदेह, सवालों-जवाबों की जाँच-पड़ताल करता है। जनता की भावनाएँ और आलोचनाएँ कार्टूनों में हलचल मचाती है। इस अनूठी विधा द्वारा देखे गए यथार्थ को नए ऐतिहासिक रूपों में कल्पना द्वारा पुन: समेकित किया जा सकता है। इसकी प्रभावशीलता का अंदाजा हम इसी बात से लगा सकते है कि कार्टून पाठक के निजी क्षण को सामूहिक क्षण में परिवर्तित कर देता है। ये समाज, राजनीति को देखने का नजरिया प्रकट करते हैं। एक अच्छा-cartoonist इतिहास व राजनीति को दृढ़ता से प्रदर्शित करता है। समाचार पत्रों के कार्टून महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इसकी अंतर्निहिता और अस्पष्टता मानवीय समझ का विश्लेषण करती है।

कार्टूनों में गाँधी- 21वीं सदी के तकनीकी युग में बार-बार लोकतांत्रिक व संवैधानिक विषयों की परिभाषा को पुनर्गठित करने की आवश्यकता महसूस होती है। देश की क्रांतिकारी गतिविधियों को शांतिपूर्ण ढ़ग से संचालित करने के लिए आज भी हमें गाँधीवादी विचारों की आवश्कता है। इन गाँधीवादी विचारों एवं क्रांतियों का क्रमवार अध्ययन करने के लिए कार्टूनों की मदद ली जा सकती है। प्रसिद्ध कार्टूनिस्टों में शंकर पिल्लई, आर के लक्ष्मण, रंगा, मूंजुनाथ इत्यादि कई ऐसे चित्रकार है जिन्होंने गाँधी को भारतीय जनसंचार में विभिन्न रूपों में दिखाया उनके मूल्यों, आदर्शों, शिक्षाओं, व नीतियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया। किंतु आज सूचना क्रांति के दौर में न सिर्फ वर्तमान को अपितु

भविष्य व भूत को भी निरंतर खंगाला जा रहा है। पूर्व के कार्टूनों में गाँधी को महात्मा की छवि तक सीमित करके इतिहास के कई सकारात्मक व नकारात्मक बिंदुओं को उपेक्षित रखने का भी प्रयास किया गया। किंतु आधुनिक युग के कई ऐसे कार्टूनिस्ट हैं जो इनके छवि एवं विचारों को निरंतर प्रोत्साहित कर रहे हैं। साथ ही वर्तमान की परिस्थितियों का मूल्यांकन इनके विचारों के आधार पर करने का प्रयास कर रहे हैं। सतीश आचार्य, राज ठाकरे, मंजुल, संदीप अध्वर्यु, मिका अज़ीज, इरफान इत्यादि कार्टूनिस्टों के कार्टूनों की एक लंबी श्रृंखला गाँधी पर समर्पित हैं। जिनके कार्टूनों का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया जाना चाहिए।

गाँधी एक वैश्विक चरित्र है जिन पर विश्व भर में विभिन्न प्रकार के कार्टून बने। इन कार्टूनों में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक अत्याचारों के प्रतिरोध में गाँधी के संघर्षों, उसमें प्राप्त सफलता और असफलता को रेखांकित किया गया है।

चित्र-2 में अमेरिकी पत्रिका का लेख है जिसमें गाँधी पर छपे अमेरिकी कार्टूनों का विश्लेषण किया गया है। इस लेख का शीर्षक है कि भारत के सबसे महान व्यक्ति पर अमेरिकी कार्टूनिस्टों का हमला। इस लेख में विश्व भर के अखबारों के कई कार्टूनों को एकत्रित किया गया है। "The strong man of India cartoon" में गाँधी को एक शक्तिशाली व्यक्ति के तौर पर दिखाया गया है। अगले कार्टून में गाँधी की नीतियों, उनकी सहनशीलता एवं उनके संत चरित्र को दिखाने का प्रयास किया गया है। अंतिम के कार्टूनों में गाँधी को भिखारी और मूर्ख की तरह दिखाया गया है। इन कार्टूनों में सिर्फ गाँधी के चरित्र पर ही नहीं बल्कि भारत की अस्मिता पर भी प्रहार किया गया है। गाँधी के देशव्यापी संघर्ष सीधे ब्रिटेन से जुड़े थे जिसके कारण वहां के पत्र-पत्रिकाओं में गाँधी पर समय-समय पर टिप्पणियां प्रकाशित होते रहे। यह विषय व्यक्तिगत ना होकर वैश्विक राजनीति का विषय था जिस कारण विदेशों में गाँधी के चरित्र पर कई प्रकार से

नकारात्मक प्रहार हुए। मूलत: इन कार्टूनों का उद्देश्य भारत को नीचा दिखाना था।

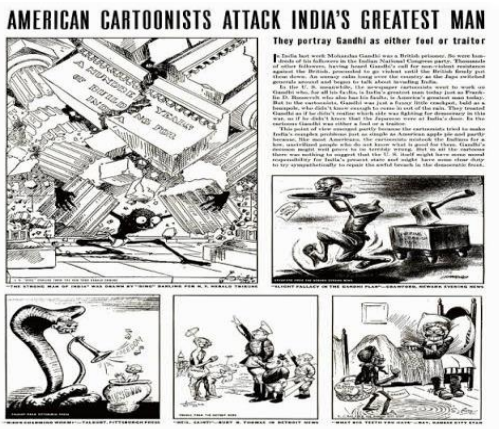
AMERICAN CARTOONISTS ATTACK INDIA'S GREATEST MAN

They portray Gandhi as either fool or traitor

अमेरिकी पत्रिका 'द लाइफ' में प्रकाशित गाँधी पर केंद्रित कुछ कार्टून

कार्टून के पितामह कहे जाने वाले केशव शंकर पिल्लै ने गाँधी पर कई कार्टून बनाये जिनका गाँधी पर बना हाथी के चित्र वाला कार्टून प्रसिद्ध है। चित्र-3

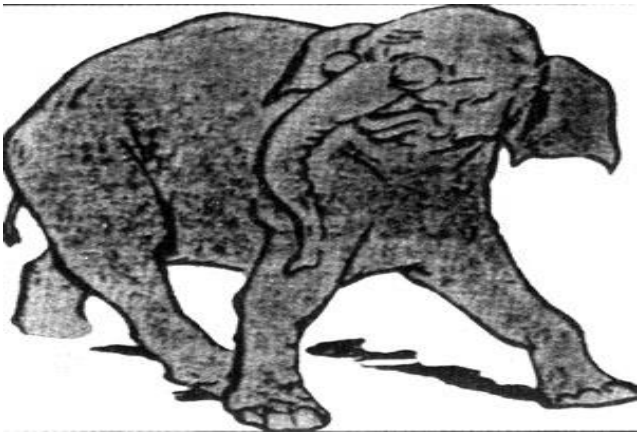

आज के दौर में कार्टून व्यावसायिक विज्ञापनों का एक हिस्सा है जो लोगों को हंसाने, गुदगुदाने के लिए जाना जाता है। किन्तु 29 जून 1950 को नवभारत टाइम्स के प्रवेश अंक में छपा एक कार्टून काफी प्रसिद्ध हुआ था जिसमें गाँधी के कदम को सत्य के बढ़ते कदम के रूप में दिखाया गया है। चित्र-4

भारतीय कार्टूनिस्टों ने गाँधी को विभिन्न तरह से दिखाया। कुछ ने इनकी सादगी भरे व्यक्तित्व को उभारना चाहा तो कुछ ने इनके राजनैतिक चरित्र को। किंतु इन सब में सबसे महत्वपूर्ण और प्रासंगिक गाँधी की विचारधारा रही जो आज के मुद्दों पर तुलनात्मक ढंग से कार्य में लाई जा रही है । आधुनिक कार्टूनों में गाँधीवादी विचारों का प्रयोग कर वर्तमान समय को देखने समझने का लोकतांत्रिक ढंग प्रस्तुत किया जा रहा है।

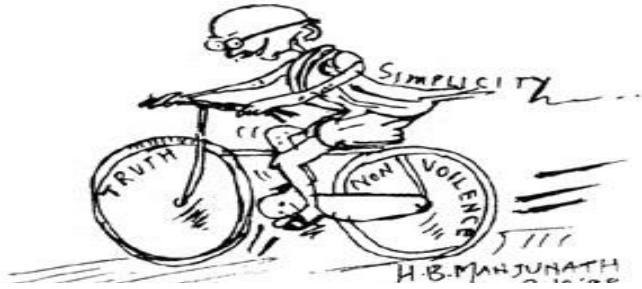

चित्र-5 इस कार्टून में मूंजुनाथ ने गाँधी की सादगी, सच्चाई, व फुर्तिलेपन को दिखाने का प्रयास किया है।

गाँधी के व्यक्तित्व से जुड़ा लाठी, चश्मा, चरखा कार्टून की दुनिया में गाँधीवादी विचारधारओं का प्रतीका चिन्ह है। इन चिन्हों का प्रयोग करके कई कार्टूनिस्टों ने गाँधीवाद को दर्शाने का प्रयास किया है।

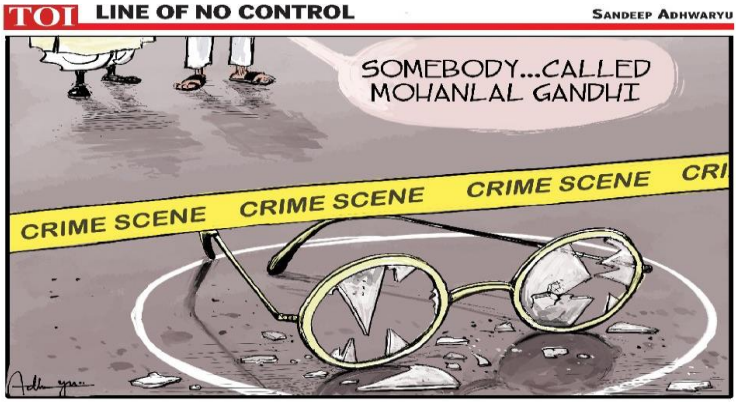

चित्र-6 टाइम आफ इण्डिया में छपे इस कार्टून में गाँधी के टूटे हुए चश्मे को दिखाया गया है यह चश्मा सत्य को देखने का प्रतीक है। हालांकि इस कार्टून को संदीप अवर्धु ने गाँधी के नाम का गलत उच्चारण किए जाने पर प्रतिक्रिया स्वरूप दिखाया है।

गाँधी के साथ चरखा और खादी देश की आर्थिक संरचना का प्रतीक था। कई व्यंग चित्रकारों ने गाँधी को उनके चरखे के साथ दिखाया है जो गाँधीवादी आर्थिक नीतियों का प्रतीक है। सुप्रसिद्ध कार्टूनिस्ट रंगा के कई कार्टूनों में भी हम यह देख सकते है। चित्र- 7

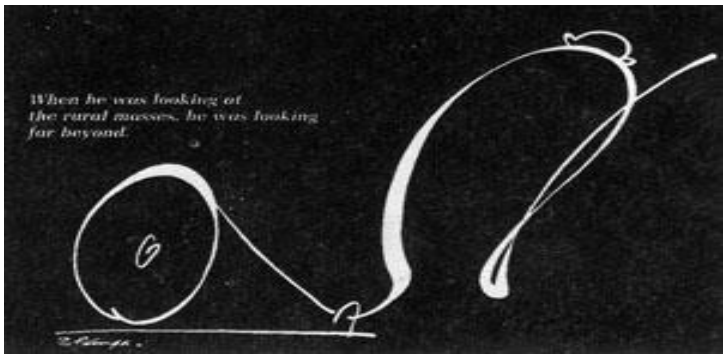

भारतीय राजनीति में गाँधी पोस्टर पर चिपकने वाले महात्मा पुरुष से ज्यादा एक आदर्श समाज की स्थापना का लक्ष्य है जिनके सहारे वर्तमान में सामाजिक, राजनीतिक पार्टियाँ स्वयं को गाँधीवादी कह कर लोकतांत्रिक मूल्यों का हवाला दे रही हैं। आज ऐसे कई कार्टून बन रहे हैं जो तत्कालीन नेताओं के लिए संदेश हैं कि गाँधी सिर्फ पोस्टर के लिए नहीं अपितु भारत के भविष्य के लिए आवश्यक है। आज भी देश में चल रहे वाद-विवाद, विमर्श के एक प्रमुख बिंदु गाँधी है जिससे प्रत्येक चिंतक टकराता है।

चित्र-8 आर. के. लक्ष्मण का कार्टुन

चित्र-9 यह एक हास्यप्रद कार्टून है। यह कार्टून अनैतिक भाषण बाजी पर व्यंग है। जिसमें फादर ऑफ नेशन महात्मा गाँधी एक नेता पर अनैतिक भाषण बाजी के कारण लाठी चला रहे हैं।

चित्र-10 कार्टूनिस्ट मंजुल के ट्विटर वॉल से लिया गया है।

यह कार्टून शराबबंदी पर व्यंग करता है। प्राय: गाँधी जयंती के दिन के कारण शराब की दुकानें बंद होती है किंतु कुछ राज्यों में इसकी अवैध बिक्री की जाती

है इस संदर्भ में कार्टूनिस्ट मंजुल ने नेताओं पर कटाक्ष किया है कि वे गाँधी को शराब बंदी के कारण याद करते हैं।

गाँधी के विचारों में स्वच्छता का स्थान प्रमुख था। यह स्वच्छता को सार्वजनिक मुद्दों में स्थान देते हुए सत्याग्रह ,अहिंसा धर्म जाति के मुद्दों की ही भांति महत्वपूर्ण मानते थे। 2 अक्टूबर 2017 से गाँधी जयंती के अवसर पर स्वच्छ भारत दिवस के रूप में मनाया जाता है। ऐसे अवसर पर स्वच्छता को लेकर गाँधी से जुड़े कई कार्टूनों को मिलाकर वीडियो भी बनाया गया जिसे 'स्वच्छ भारत'[i1] गाने में फिल्माया गया है। स्वच्छता विषय पर कई अन्य हास्यात्मक, व्यंग्यात्मक कार्टून देखने को मिलते हैं जो वर्तमान के नेताओं के दोहरे व्यक्तित्व व गंदगी पर व्यंग करते दिखाई पड़ते हैं। चित्र-11 में सतीश आचार्य ने गाँधी को याद करते हुए स्वच्छता के प्रति लोगों के उत्साह को गाँधी की विचारधारा से जोड़ कर दिखाया है।

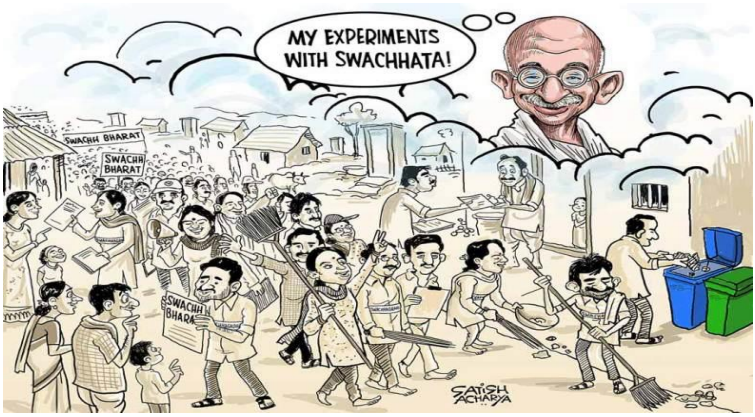

चित्र-11 सतीश आचार्य के ट्विटर वॉल से

[1] https://youtu.be/Hde8pZXDN1I

निष्कर्ष- उपरोक्त कार्टूनों के द्वारा हम गाँधी के ना सिर्फ चरित्र बल्कि उनके संघर्षों का भी आकलन कर सकते हैं। इन कार्टूनों में गाँधी के राजनैतिक, सामाजिक गतिविधियों का इतिहास है जिसमें भारतीय समाज को आदर्श समाज में स्थापित करने का संदेश छुपा हुआ है। जनसंचार में व्यावसायिक कारणों से गाँधी का दिन प्रतिदिन दुरुपयोग हो रहा है और इनके आदर्शों का गलत तरीके से प्रसारण हो रहा है जिस पर लापरवाही नहीं बरती जा सकती। यह आवश्यक है कि गाँधी की नीतियों का सही आकलन कर नई पीढ़ी को उससे अवगत कराया जाए। ये कार्टून भूत का साक्ष्य प्रस्तुत करने वाले प्रमाणिक दस्तावेज हैं जिनके आधार पर इतिहास व वर्तमान दोनों का मूल्यांकन किया जा सकता है।

कार्टून लंबे समय से एल्बम और संपादित संग्रह के रूप में प्रसारित हुए हैं। किंतु आज इनका स्वरूप बदल चुका है। इनके दृश्यों को नए ऐतिहासिक रूप में, संदेहपरक ढ़ग से कल्पना द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है। यही वजह है कि कार्टून पाठकों एवं दर्शकों में एक विशेष स्थान सुरक्षित रखता है।

संदर्भ सूची

1. कार्टूनों में गाँधी- शिवानन्द कामड़े
2. इक्कीसवीं सदी के भारत में गाँधी चिन्तन की प्रासंगिकता- प्रत्यूष वत्सला, प्रमिला
3. 'गाँधी व्यंग चित्र संग्रह- शांतिलाल शाह
4. https://navrangindia.wordpress.com/2016/10/03/gandhi-jayanthi-and-his-political-cartoons
5. https://www.forwardpress.in/2019/01/gandhi-in-cartoons-feature-story-hindi/

सोशल मीडिया के युग में हिन्दी पत्रकारिता

डॉ. कुमार कौस्तुभ
एसोसिएट एग्जेक्यूटिव प्रोड्यूसर, टीवी टुडे नेटवर्क, नोएडा
ईमेल- kkmediachamparan@gmail.com
मोबाइल नंबर- 9953630062

सारांश

हिन्दी पत्रकारिता लगभग 200 वर्ष पुरानी है। बहुश्रुत है कि हिन्दी पत्रकारिता का प्रादुर्भाव 30 मई 1826 को समाचार पत्र उदंत्त मार्तण्ड के प्रकाशन के साथ माना जाता है। तब से अब तक हिन्दी पत्रकारिता में विविध आयाम जुड़े हैं। हिन्दी पत्रकारिता अखबार से रेडियो, टेलीविजन और डिजिटल माध्यमों से गुजरते हुए सोशल मीडिया तक की यात्रा तय कर चुकी है। कहना न होगा कि सोशल मीडिया हिन्दी पत्रकारिता का सबसे नया मंच है, क्योंकि इक्कीसवीं सदी का यह कालखंड जिसमें हम जी रहे हैं, वह सोशल मीडिया का है। संवाद और सूचना के सशक्त माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित और सर्वमान्य सोशल मीडिया अब समाचारों का भी प्रमुख वाहक बन चुका है। ऐसे में इस विषय पर विचार आवश्यक हो जाता है कि सोशल मीडिया के युग में हिन्दी पत्रकारिता की क्या स्थिति और यहां इसका क्या भविष्य है? प्रस्तुत शोध पत्र में सोशल मीडिया पर हिन्दी पत्रकारिता के विभिन्न आयामों और पक्षों पर विचार किया जा रहा है ताकि यह स्पष्ट हो सके कि इसकी दिशा क्या है और किस तरह इसे आगे बढ़ना चाहिए।

बीज शब्द: *सोशल मीडिया, हिन्दी पत्रकारिता, इंटरनेट, टीवी, अखबार*

शोध आलेख

भारत में इंटरनेट और स्मार्टफोन के बढ़ते उपयोग के साथ ही सोशल मीडिया भी आम जन जीवन का अटूट हिस्सा बन चुका है। अब हर हाथ में मोबाइल है और अधिकतर व्यक्ति व्हाट्सएप, फेसबुक या X जैसे सोशल मीडिया पर पर मनोरंजन, संवाद और वाद-विवाद में समय बिताने में मशगूल हैं। यहां यह भी

गौर करना आवश्यक है कि ये माध्यम न केवल लोगों के बीच आपसी संपर्क का जरिया बने हैं बल्कि समाचारों से अवगत होने का भी खास माध्यम बन चुके हैं। किसी भी घटना के बारे में त्वरित जानकारी के लिए हर वक्त अखबार या टेलीविजन या रेडियो के सामने मौजूद रहना कभी भी मुमकिन नहीं रहा। यह कमी अब इंटरनेट आधारित सोशल मीडिया पूरी कर रहा है जिसके जरिए कहीं भी काम-काज या सफर करते हुए भी लोग किसी घटनाक्रम या समाचारों की अद्यतन स्थिति से अवगत हो सकते हैं चाहे वह क्रिकेट मैच हो, या फिर मॉस्को के कंसर्ट में हमले की खबर या राजनीतिक घटनाक्रम या मौसम के हाल में आ रहे बदलाव- हर मुद्दे, हर मामले की जानकारी सोशल मीडिया पर होती है, और ये जानकारी कोई और नहीं, बल्कि आमतौर पर वही समाचार माध्यम देते हैं जो अखबार, टीवी और रेडियो के रूप में आम लोगों के बीच मौजूद रहे हैं। वहीं इनके अतिरिक्त पत्रकारिता के बहुत-से नए स्रोत भी सोशल मीडिया पर आ चुके हैं, जिनकी पहले से कोई पहचान नहीं रही। खासतौर से हिन्दी पत्रकारिता के वर्तमान परिदृश्य को देखें तो यह स्पष्ट होता है कि सोशल मीडिया ने हिन्दी पत्रकारिता को विस्तार दिया है। परन्तु, इस विस्तार से जुड़े कौन-कौन से आयाम हैं, और कौन-कौन से विचारणीय पक्ष हैं, इन पर आगे विचार करेंगे।

समाचार माध्यम के रूप में सोशल मीडिया

इसमें कोई शक नहीं है कि सोशल मीडिया के युग में हिन्दी पत्रकारिता का विस्तार हुआ है और इसका स्वरूप व्यापक हो गया है। सोशल मीडिया असल में नये मीडिया का ही एक भाग है। नये मीडिया से तात्पर्य आमतौर पर इंटरनेट आधारित माध्यमों से है, जिनसे लोगों को सूचनाएं मिलती हैं, उनका मनोरंजन होता है और शिक्षा भी मिलती है। इंटरनेट आधारित इन माध्यमों में मुख्यतः वेबसाइट और एप शामिल हैं जिन पर विभिन्न स्वरूपों में सूचना, शिक्षा और मनोरंजन प्रदान किया जाता है। ये स्वरूप विभिन्न प्रकार की वेबसाइट्स, ब्लॉग और एप में समाहित होते हैं। इस तरह स्पष्ट है कि पारंपरिक तौर पर अखबार, टेलीविजन और रेडियो ही सूचना, शिक्षा और मनोरंजन के उपादान थे, लेकिन

अब वेबसाइट और एप भी ऐसे माध्यमों में शामिल हो गए हैं, जो संचार या व्यापक रूप में जनसंचार की प्रक्रिया में अपना योगदान दे रहे हैं। जहां तक सोशल मीडिया का प्रश्न है, तो यह वेबसाइट और एप आधारित ही हैं, और इसीलिए नए मीडिया का भाग हैं।

विश्व में इंटरनेट का उपयोग शुरु होने के बाद जब सोशल मीडिया की शुरूआत हुई, तो इसका उद्देश्य मुख्यतः अलग-अलग क्षेत्रों में, दूर-दूर रहनेवाले लोगों को जोड़ना और उनके बीच संवाद कायम करना था। यानी जो काम पहले चिट्ठी-पत्री और टेलीफोन के जरिए होता था, वह काफी हद तक इंटरनेट आधारित सोशल मीडिया के जरिए होने लगा। आधुनिक प्रौद्योगिकी और तकनीक के कारण सोशल मीडिया पर एक बार में दो व्यक्तियों के बीच ही नहीं बल्कि कई व्यक्तियों और व्यक्तियों के समूह के बीच एक ही समय में एक साथ संवाद की प्रक्रिया सुनिश्चित हुई। इस तरह, किसी मुद्दे पर तत्काल संदेश देनेवाले व्यक्ति को एक ही नहीं बल्कि अनेक व्यक्तियों की प्रतिक्रिया मिलने लगी, और फीडबैक आसान हो गया। शुरूआती दौर में सोशल मीडिया (ऑरकुट जैसे मंचों के जरिए) केवल दोस्तों या परिवार के लोगों के बीच बातचीत का माध्यम था, लेकिन व्हाट्सएप, फेसबुक, ट्विटर (अब एक्स), इंस्टाग्राम जैसे सोशल मीडिया मंचों के प्रादुर्भाव के बाद यह संपर्क केवल पूर्व-परिचितों के बीच नहीं रहा, बल्कि इन मंचों पर अपरिचित लोग भी आपस में मिलने और विभिन्न विषयों पर चर्चाएं करने लगे। सबको सबके समक्ष अपनी बात रखने और उस पर प्रतिक्रिया हासिल करने का अवसर मिलने लगा, भले ही वह पसंद हो या न हो। बात सिर्फ यहीं तक सीमित नहीं रही। सोशल मीडिया पर लोगों के आपसी संपर्क के बाद बड़े-बड़े समूहों के निर्माण का परिणाम यह भी हुआ कि इन मंचों को लोगों के बीच सूचनाएं त्वरित तरीके से पहुंचाने का माध्यम बना लिया गया। इसी स्तर पर आकर बड़ी उलझन पैदा हुई और बड़ी समस्या खड़ी हो गई जिसके बारे में आगे चर्चा करेंगे। पहले यह समझ लेते हैं कि सोशल मीडिया पर हिन्दी पत्रकारिता का स्वरूप क्या है।

सोशल मीडिया पर हिन्दी पत्रकारिता का स्वरूप

दरअसल, पिछले 5-7 वर्षों में सोशल मीडिया का फलक बड़ा हुआ है, तो इसे समाचार माध्यम के रूप में भी इस्तेमाल किया जाने लगा है। अंग्रेजी या हिन्दी या कोई भी भाषाई मीडिया अब सोशल मीडिया के उपयोग में पीछे नहीं है। इसका सबसे बड़ा कारण तो यही है कि आम लोगों में सोशल मीडिया का उपयोग काफी बढ़ा है। स्टाटिस्टा के अनुसार, भारत में 60 करोड़ से अधिक आबादी इंटरनेट का उपयोग कर रही है। इनमें 32.8 प्रतिशत लोग सोशल मीडिया पर सक्रिय हैं और 48 करोड़ 75 लाख से अधिक लोग व्हाट्सएप का उपयोग कर रहे हैं। जबकि 36 करोड़ से अधिक लोग फेसबुक और करीब 23 करोड़ लोग इंस्टाग्राम का उपयोग करते हैं (बासुरॉय, 2023)। नवंबर 2022 तक के आंकड़ों के अनुसार, भारत में माइक्रोब्लॉगिंग प्लेटफॉर्म X (पूर्व में ट्विटर) के उपयोगकर्ताओं की संख्या 25 करोड़ के पार पहुंच चुकी थी (वर्मा, 2023)। स्पष्ट है कि 140 करोड़ से अधिक की जनसंख्या वाले देश भारत में इंटरनेट और खासकर इस पर आधारित सोशल मीडिया का उपयोग बढ़-चढ़कर हो रहा है। वैसे तो उपयोगकर्ताओं में देश के हर क्षेत्र के तमाम भाषाभाषी लोग शामिल हैं, लेकिन एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व भर में 61 करोड़ से अधिक लोग इंटरनेट पर हिन्दी का उपयोग करते हैं (एबीपी, 2024)।

भले ही हिन्दी का स्थान इंटरनेट पर सर्वाधिक उपयोग की जाने वाली भाषाओं में चौथा है, लेकिन, इसके इंटरनेट पर इसके उपयोग को देखते हुए इसमें कोई शक नहीं कि भारत सहित विश्व भर में हिन्दी बोलने, लिखने और पढ़ने वाले लोगों के लिए सोशल मीडिया पर इसका उपयोग निरंतर बढ़ रहा है। यह उपयोग टेक्स्ट, वीडियो, इन्फोग्राफिक्स और विभिन्न प्रकार के ऑडियो के माध्यम से हो रहा है। सोशल मीडिया पर मौजूद सामग्रियां लोग पढ़ते हैं, देखते हैं और सुनते हैं। और सबसे बड़ी बात यह है कि उन पर अपनी प्रतिक्रियाएं भी व्यक्त करते हैं। व्हाट्सएप और फेसबुक जहां बड़े आकार वाले टेक्स्ट पोस्ट करने की सुविधा प्रदान करते हैं, वहीं X पर सामान्य उपयोगकर्ता निर्धारित सीमा में सामग्री डाल

सकते हैं। जबकि फेसबुक और X के अलावा यूट्यूब, इंस्टा जैसे मंच बड़े-छोटे वीडियो पोस्ट करने की भी सुविधा देते हैं। ये सुविधाएं ,सामान्य उपयोगकर्ताओं के साथ-साथ विभिन्न मीडिया मंचों और मीडिया से जुड़े लोगों- पत्रकारों को भी उपलब्ध हैं, जो समाचार और उनसे जुड़े विचार प्रदान करने के लिए इनका उपयोग करते हैं। इस प्रक्रिया में पारंपरिक मीडिया और इंटरनेट आधारित सोशल मीडिया के उपयोग में कई अंतर भी हैं- पहला तो यही कि सोशल मीडिया पर प्रकाशित और प्रसारित सामग्री का तात्कालिक महत्व है। हालांकि, यदि डिलिट नहीं किया जाए, तो प्रकाशित और प्रसारित सामग्रियों को अभिलेख के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है जैसा कि अक्सर नेताओं के विवादित बयानों के मामलों में होता भी है, जिन्हें ट्रोलिंग के लिए खोज-खोज कर निकाल लिया जाता है। दूसरी बात यह है कि सोशल मीडिया पर कम शब्दों में अधिक बयान करने की सुविधा होती है, जो पारंपरिक मीडिया में उस तरह से नहीं है। सोशल मीडिया पर हाइपरलिंक और हैशटैग के जरिए किसी मुद्दे की गहराई में जाने या उससे संबंधित और सामग्री प्राप्त करने की भी सुविधा होती है, जो पारंपरिक मीडिया में नहीं है। और सबसे बढ़कर है सोशल मीडिया की तीव्रता या तेजी जिसके कारण प्रकाशित और प्रसारित सामग्री बहुत जल्द बड़े उपयोगकर्ता समुदाय तक पहुंच जाती है। ये कुछ ऐसे पहलू हैं, जो सोशल मीडिया पर पत्रकारिता को व्यापक और सशक्त बनाते हैं। हिन्दी पत्रकारिता भी बड़ी अच्छी तरह से इसका लाभ उठा रही है।

दरअसल, पहले लोगों को सरकारी सूचनाएं देने का काम या तो सरकार के जिम्मे था, जो अपने तरीकों से सूचनाएं देती थी, या फिर यह काम पारंपरिक मीडिया के जिम्मे था, जो उन सूचनाओं से खबरें निकालकर या सूचनाओं को खबरों के रूप में ढालकर लोगों के सामने प्रस्तुत करते थे। साथ ही सरकारी सूचनाओं से इतर सामाजिक, स्थानीय, राज्य-स्तररीय या प्रान्तीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य में घटित हो रही घटनाओं से बन रही जानकारियों से जुड़े समाचार प्रदान करने का काम पारंपरिक मीडिया कर ही रहा था। बदलते दौर में सोशल मीडिया

का असर बढ़ते देख पारंपरिक मीडिया भी इससे अलग नहीं रहा। तमाम अखबार और टीवी चैनलों के अपने सोशल मीडिया हैंडल और पेज बन गए, जिन पर वे सारी खबरें दी जाने लगीं, जो अखबारों में और टीवी पर तो प्रकाशित और प्रसारित हो ही रही थीं। इंटरनेट आधारित सोशल मीडिया पर भी आने लगीं। इंटरनेट आधारित सोशल मीडिया को सर्वथा तेज माध्यम माना जाता है, लिहाजा लोगों के बीच पैठ बनाने के लिए पारंपरिक मीडिया ने भी इसे समाचार प्रदान करने के लिए अपनाया। इतना ही नहीं, पारंपरिक मीडिया से जुड़े तमाम जाने-माने पत्रकार भी इन सोशल मीडिया मंचों से जुड़ गए और अपने मीडिया से पहले सोशल मीडिया पर खबरें ब्रेक करने लगे, उन पर चर्चाएं करने लगे। यह भी ठीक है। सोशल मीडिया का उपयोग करनेवालों को अखबार पढ़े बगैर या टीवी देखे बगैर उन विश्वसनीय माध्यमों की खबरें नए तरीके से और आसानी से मिलने लगीं। हालांकि सोशल मीडिया पर समाचारों की प्रस्तुति को लेकर बहुत से गंभीर सवाल भी उठने लगे हैं।

सोशल मीडिया पर समाचार से जुड़े सवाल

सबसे बड़ा सवाल तो विश्वसनीयता का ही है। असल समस्या तब पैदा हुई, जब सोशल मीडिया पर समाचार के कारोबार में ऐसे तमाम लोगों की घुसपैठ हो गई, जिनकी पत्रकार या मीडिया संगठन के रूप में पहले से कोई पहचान या विश्वसनीयता नहीं थी। लेकिन, सूचनाओं की प्रस्तुति के अलहदा तौर-तरीकों के कारण सोशल मीडिया पर वे पहचान बनाने लगे। वहीं, कई ऐसे लोग भी सोशल मीडिया पर आ गए, जिनकी पहले से पारंपरिक मीडिया के प्रतिनिधि के रूप में पहचान बनी हुई थी। लेकिन सोशल मीडिया पर उनकी प्रस्तुति को देखकर यह समझना कठिन हो गया कि वे जो बता रहे हैं, वह सही है या गलत। ऐसे किरदारों ने कहीं न कहीं सोशल मीडिया के जरिए फेक न्यूज़ को बढ़ावा दिया है।

सोशल मीडिया पर समाचारों और विचारों की विश्वसनीयता का सवाल इसलिए भी उठा है क्योंकि इन मंचों पर बहुत-से ऐसे चेहरे भी आ चुके हैं, जो पूर्व में

पारंपरिक मीडिया का हिस्सा रहे और अपनी प्रस्तुतियों से पाठकों और दर्शकों के दिलों पर राज करने लगे। रवीश कुमार, पुण्य प्रसून वाजपेयी और अजीत अंजुम जैसे कई बड़े पत्रकार टीवी चैनलों से बाहर होने के बाद यूट्यूब और X पर सक्रिय हो उठे और टीवी पर फैन-फॉलोइंग का फायदा उन्हें सोशल मीडिया पर भी मिला हालांकि, दुर्भाग्यपूर्ण पक्ष यह है कि ऐसे चेहरों से जहां निष्पक्षता की उम्मीद की जाती थी, वहां वे बढ़-चढ़कर अपनी पक्षधरता साबित करते दिखे। लिहाजा, सोशल मीडिया पर शब्दों की चासनी में डूबे उनके बोलों को सत्य मान लेना आम दर्शकों और पाठकों के लिए कहां तक वाजिब होगा?

हाल के दिनों में सोशल मीडिया ऐसे मंच के रूप में स्थापित हुआ है, जिस पर किसी को भी कुछ भी बोलने की आजादी है। हालांकि, कुछ आपत्तिजनक मामले सामने आने के बाद सरकार के दबाव में सोशल मीडिया मंचों ने ऐसे तत्वों पर कार्रवाई भी की है, जो खबर के नाम पर मनमानी पर उतरते नजर आए हैं। ऐसी घटनाओं से सोशल मीडिया के रेगुलेशन की आवश्यकता भी महसूस हुई और सरकार की ओर से इस दिशा में कदम भी उठाए गए। केन्द्रीय सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने विगत वर्षों में ऐसे सैकड़ों यू-ट्यूब चैनलों पर रोक लगाई है जो भारत के विरुद्ध दुष्प्रचार में जुटे थे। वहीं, फेक न्यूज़ फैलाने वाले ट्विटर हैंडल और फेसबुक पेज पर भी कार्रवाई हुई है।

लेकिन, सोशल मीडिया के बढ़ते असर को देखते हुए एक और बड़ा सवाल उठा है, वह यह है कि क्या सोशल मीडिया पारंपरिक मीडिया को विस्थापित कर देगा, उसकी जगह ले लेगा? खासतौर से हिन्दी मीडिया और पत्रकारिता के संदर्भ में यह बात काफी मायने रखती है क्योंकि देश में बड़ी आबादी हिन्दी भाषी है। हिन्दी पत्रकारिता का बाजार हिन्दी भाषी आबादी पर ही टिका हुआ है। अब ऐसे समय में जबकि हर हाथ में मोबाइल फोन है, अधिकाधिक लोग सोशल मीडिया का इस्तेमाल कर रहे हैं, तो सवाल उठता है कि भला कोई क्यों अखबार पढ़ना चाहेगा, या टीवी पर समाचार देखना चाहेगा। एक पल के लिए यह बात जंच सकती है। 2020-21 में कोरोना के प्रकोप के दौरान वायरस फैलने के भय

से बहुत-से लोगों ने अखबार लेने भी बंद कर दिये थे। हालांकि अब वह स्थिति नहीं है। टीवी पर भी समाचार चल रहे हैं, लोग अखबार भी पढ़ रहे हैं। तो यह कहना सही नहीं होगा कि सोशल मीडिया पारंपरिक मीडिया की जगह ले लेगा। यह बात सही है कि आज सभी अखबार और टीवी चैनल वेबसाइट और एप के सहारे पढ़े और देखे जा सकते हैं, लेकिन इनके जरिए पारंपरिक मीडिया का अंत हो जाएगा, ऐसा नहीं लगता। इसके कई कारण हैं-

पहला सबसे बड़ा कारण तो यह है कि सोशल मीडिया पर समाचार संक्षिप्त रूप में मिलते हैं। खबरों को गहराई से जानना हो, तो अखबार या टीवी ही उपयुक्त माध्यम हैं, इसमें कोई शक नहीं। इस तरह, वर्तमान दौर में लोगों के पास समय की कमी को देखते हुए सोशल मीडिया समाचार हासिल करने के आसान माध्यम के रूप में उभरा है। हालांकि, दूसरा पक्ष यह भी है कि सोशल मीडिया पर खबरों की गहराई में जाने की भी व्यवस्था देखने को मिल रही है जिसका जिक्र पहले किया जा चुका है। यह पाठकों और दर्शकों को तय करना है कि वे किस तरह से किसी खबर से परिचित होना चाहते हैं। सोशल मीडिया उन्हें यह अवसर देता है कि वे खबरों के साथ दिए गए हाइपरलिंक, बैकलिंक या हैशटैग का इस्तेमाल करके विस्तार में जाएं, या फिर एक पंक्ति की खबर से रू-ब-रू होकर पेज आगे स्क्रॉल कर लें।

दूसरा कारण है, पारंपरिक मीडिया की विश्वसनीयता, जिसका कहीं न कहीं अभाव सोशल मीडिया पर मौजूद समाचार मंचों में दिखता है। इसका कारण मुख्यतः यह है कि सोशल मीडिया पर समाचारों के मंचों की भरमार हो चुकी है। रेगुलेशन के अभाव में जिसे चाहिए वही पत्रकार बनकर अपना सोशल मीडिया हैंडल बना रहा है और अक्सर बिना कोई उचित स्रोत बताए, खबरों पर ताल ठोक रहा है। आकर्षक हेडलाइन और कैचलाइन की वजह से सोशल मीडिया मंचों पर आम पाठक, दर्शक और उपयोगकर्ता अक्सर यह नहीं समझ पाते कि किसी हैंडल पर जो जानकारी दी जा रही है, वह सही है भी या नहीं और सनसनीखेज होने की वजह से उसे अपने दोस्तों और समुदायों के बीच साझा भी

करने लगते हैं, जिससे कुल मिलाकर फेक न्यूज़ की गतिविधियों को ही बढ़ावा मिलता है। ऐसी स्थिति पर नियंत्रण बेहद जरूरी है। पारंपरिक मीडिया की विश्वसनीयता सोशल मीडिया पर भी रहेगी, क्योंकि उसकी पहचान पहले से बनी हुई है।

सोशल मीडिया की तात्कालिकता भी पारंपरिक मीडिया को जिंदा रखने में मददगार होगी। पारंपरिक तौर पर किसी खास अखबार के पाठक को हर सुबह उसी अखबार की दरकार रहती है। खासतौर से हिन्दी के हर अखबार की अपनी अलग भाषा, खबरों को प्रस्तुत करने की अलग शैली है, जिसके कारण उनका अपना-अपना पाठक वर्ग है। लिहाजा, किसी पाठक के लिए अपने प्रिय अखबार से खबर हासिल करने की उसकी भूख सोशल मीडिया पर उस अखबार का हैंडल या पेज पूरा नहीं कर सकता। ऐसी ही स्थिति टेलीविजन चैनलों के साथ भी है। यदि किसी दर्शक को टीवी पर डिबेट का कोई खास शो पसंद है, तो वह भला सोशल मीडिया पर क्या हासिल करेगा?

एक और कारण यह है कि अखबार के चार-छह या 10-12 पन्नों में सामान्य पाठक को उसकी दिलचस्पी की हर सामग्री मिल जाती है, जिसके लिए उसे सोशल मीडिया के लिंक-दर-लिंक खंगालने पड़ सकते हैं।

सोशल मीडिया उस कामकाजी वर्ग या युवा पीढ़ी के लिए खबरें हासिल करने के वैकल्पिक मंच के रूप में जरूर उभरा है, जिनके पास बैठकर अखबार पढ़ने या टीवी देखने का समय नहीं है। लेकिन, विशाल आबादी वाले भारत देश में अभी भी बड़ी जनसंख्या ऐसे लोगों की है, जिनका दिन अखबार पढ़े बगैर या टीवी पर समाचार देखे बगैर पूरा नहीं होता। साथ ही साथ कहीं न कहीं फेक न्यूज़ के चलते विश्वसनीयता के संकट ने भी लोगों को सोशल मीडिया पर कम भरोसा करने को मजबूर किया है।

निष्कर्ष

नाम लेने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सभी जानते हैं कि हिन्दी भाषा के लगभग सभी अखबार, रेडियो और टेलीविजन चैनल सोशल मीडिया से जुड़े हुए हैं। तमाम पत्रकार और मीडियाकर्मी भी एकाधिक सोशल मीडिया मंचों पर मौजूद हैं। ये सब सोशल मीडिया के माध्यम से न केवल नए-नए समाचार प्रदान करते हैं, बल्कि पारंपरिक माध्यमों पर प्रकाशित और प्रसारित होनेवाली अपनी समाचार और विचार संबंधी सामग्रियों का प्रचार भी करते हैं। साथ ही साथ, बहुपक्षीय संवाद का मंच होने के कारण सोशल मीडिया से उन्हें समाचारों और विचारों पर आम पाठकों और दर्शकों की सोच से भी परिचित होने का अवसर मिलता जिनका उपयोग भी वे समय-समय पर अपनी प्रकाशन और प्रसारण सामग्रियों में करते हैं। इस तरह, सोशल मीडिया अब पारंपरिक मीडिया और उसकी उपयोगकर्ता जनता के बीच संपर्क का ऐसा मंच बन चुका है, जिस पर संवाद के साथ-साथ वाद-विवाद की भी गुंजाइश बढ़ी है, जो अक्सर ट्रोलिंग के रूप में सामने आती है। साथ ही साथ, सोशल मीडिया ने हिन्दी पत्रकारिता में बहुत-से नए चेहरों को भी आगे आने का मौका दिया है, जिनके लिए पारंपरिक मीडिया के माध्यम से अपनी पहचान बना पाना कठिन था। हालांकि, सोशल मीडिया पर चल रही पत्रकारीय गतिविधियों में कई बार यह साफ झलकता है कि सोशल मीडिया पर नियंत्रण और इसका उचित रेगुलेशन भी होना चाहिए ताकि मीडिया की मर्यादा बरकरार रहे और समाज तथा राष्ट्र के लिए अवांछित, अहितकर सामग्रियों के प्रकाशन-प्रसारण पर अंकुश लगे। हालांकि, समय-समय पर सरकार की ओर से इस दिशा में कार्रवाई भी की जाती है और राष्ट्रविरोधी या जन-विरोधी यू-ट्यूब चैनलों तथा सोशल मीडिया हैंडलों को बंद कराया जाता है। लेकिन, कहीं न कहीं, इस तरह की कार्रवाई से यह भी सवाल उठता है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर कुछ भी बोलने-लिखने और दिखाने की उच्छृंखलता क्यों? इस तरह सोशल मीडिया का बेजा फायदा उठाने की कोशिश क्यों की जाती है? वैसे तो इंटरनेट ने सोशल मीडिया के जरिए हिन्दी पत्रकारिता को असीम विस्तार का अवसर दिया है। परन्तु, इसका बेलगाम उपयोग अंततः हिन्दी पत्रकारिता के हित में नहीं ही होगा।

संदर्भ सूची

1. बसुरॉय, तनुश्री, भारत में सोशल मीडिया का उपयोग- आंकड़े और तथ्य, 19 दिसंबर 2023 https://www-statista-com.translate.goog/topics/5113/social-media-usage-in-india/?_x_tr_sl=en&_x_tr_tl=hi&_x_tr_hl=hi&_x_tr_pto=tc
2. वर्मा, सौरभ, ट्विटर की लंबी छलांग, लगातार बढ़ रहे यूजर्स, 30 जुलाई 2023 https://navbharattimes.indiatimes.com/tech/gadgets-news/twitter-added-1-6m-daily-active-users-this-past-week-another-all-time-high/articleshow/102245270.cms
3. इंटरनेट पर इन भाषाओं का होता है सबसे ज्यादा इस्तेमाल..एबीपी लाइव, 22 फरवरी 2024 https://www.abplive.com/photo-gallery/gk/these-languages-are-used-the-most-on-the-internet-know-at-which-number-is-hindi-2619959

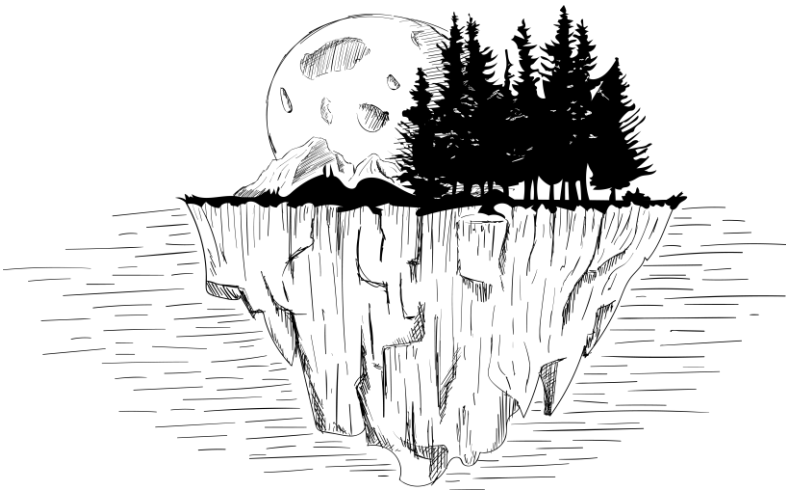

ETHICAL CHALLENGES IN NEW MEDIA IN INDIA: AN ANALYTICAL STUDY

Dr. Sankershan Paripurnan
School of Mass Communication
Ranchi University, Ranchi
Email- sankershanparipurnan8103@gmail.com
Mob- 9102171984

Abstract

The term "new media" emerged as a way to describe the evolving forms of digital communication that began to gain prominence in the late 20th century. It was coined to differentiate these emerging digital platforms from traditional forms of media like print, radio, and television. As technology advanced and new ways of creating and sharing content emerged, the term "new media" became widely used to encompass these digital communication channels and technologies.

Media acts as a bridge between the state and public. It plays a role of informer, motivator or leader for healthy democracy at all levels. In India media ethics have been a convention associated with the traditional mass media. But with the development in technology and the advent of the internet the standard ethical practices are facing continuous challenges. Media Ethics is concerned with how a moral media person should behave. The media ethics are values like trustworthiness, respect, responsibility, fairness, truth and self-restraint to be practiced by the media people voluntarily, to preserve and promote the trust of the people and to maintain their own credibility and not betray the faith and confidence of the people. This study is descriptive in Nature. The paper focuses on study of New Media Ethics and its Importance.

Key words: New, media, ethics

Introduction

"Today we are beginning to notice that the new media are not just mechanical gimmicks for creating worlds of illusion, but new languages with new and unique powers of expression." - Marshall McLuhan

New media refers to digital forms of communication that have emerged in the late 20th and early 21st centuries. It encompasses various platforms and technologies that enable the creation, distribution, and interaction with content in digital formats. This includes social media, online news websites, blogs, podcasts, streaming services, and more. New media often allows for user-generated content, interactivity, and real-time communication, shaping how information is shared and consumed in the digital age. Examples of new media include social media platforms like Facebook, Instagram, Twitter, and TikTok, online news websites such as HuffPost and BuzzFeed, video-sharing platforms like YouTube and Vimeo, streaming services like Netflix and Hulu, podcasts, blogs, and mobile apps that provide interactive and real-time communication. These platforms have transformed how information is created, shared, and consumed in the digital age.

Objective of study:

1. To know the concept of new media.
2. To understand the code of ethics of new media.
3. To explore the challenges of new media.

Methodology:

The descriptive methodology is used for this study. The secondary data is collected from books, Journals, websites, research papers and articles.

Media ethics refers to the principles and standards that guide the behavior of individuals and organizations in the media industry. It involves the ethical considerations related to the production, distribution, and consumption of media content, including journalism, broadcasting, advertising, and social media. Media ethics aim to ensure that information is presented accurately, fairly, and responsibly, while respecting the rights and privacy of individuals. Key aspects of media ethics include truthfulness, transparency, independence, and accountability in reporting and communication. Adhering to media ethics helps maintain credibility, trust, and integrity in the media profession. Ethics is a branch of philosophy that involves recommendations on right and wrong conduct. Media ethics is a topic for discussion for nearly a century. As the influence, impact and existence of media have become widespread its moral stance and adherence to ethical codes have become important issues. Ralph. E Hanson[1] (2015) has stated that media ethics is a complex topic because it deals with an institution that must do things that ordinary people in ordinary circumstances would not do. Media ethics deals with the specific ethical principles and moral standards of all forms of media including print, broadcast, film, theatre, advertising and the internet.

The ethics of journalism Is one of the most well-defined branches of media ethics and is often the most discussed one. The Society of Professional Journalists' code of ethics[2] has four main tenants:

a) Seek truth and report it, b) Minimize harm, c) Act independently and d) Be accountable and transparent.

When discussing the ethical challenges in new media in India, it's essential to delve into various aspects. New media, including social media platforms, online news portals, and digital content, have brought about significant changes in how information is disseminated and consumed.

In India, one of the critical ethical challenges in new media is the **spread of misinformation and Fake news**. With the rapid sharing of content on platforms like WhatsApp, Facebook, and Twitter, false information can quickly go viral, leading to social unrest and misinformation among the population.

Another ethical concern is the **invasion of privacy.** In the digital age, personal data is often collected and used without consent, raising questions about data protection and individual rights.
Furthermore, **issues related to online harassment, cyberbullying, and hate speech** have become prevalent in new media spaces, impacting individuals' mental health and well-being.

It's crucial to address these ethical challenges through regulations, media literacy programs, and ethical guidelines for content creators and platforms to ensure responsible and ethical practices in the new media landscape in India.

Another significant issue is the **lack of transparency and accountability** in online content. With the rise of social media influencers and sponsored content, there is often a blurring of lines between authentic information and paid promotions, leading to ethical dilemmas regarding trust and credibility.

Moreover, the **phenomenon of echo chambers and filter bubbles** in social media platforms has raised concerns about the polarization of opinions and the reinforcement of biases among users, affecting the quality of public discourse and democratic processes.

Additionally, the **issue of digital divide and unequal access to information in India** poses ethical challenges in ensuring that all segments of society have equal opportunities to participate in and benefit from the digital realm.Addressing these ethical challenges requires a multi-faceted approach involving stakeholders from government, media organizations, civil society, and technology companies to promote ethical standards, digital literacy, and responsible online behavior in the evolving landscape of new media in India.

Challenges in New Media:

In India, some of the key challenges in new media include the spread of misinformation and fake news, invasion of privacy, online harassment and cyberbullying, lack of transparency in sponsored content, echo chambers and filter bubbles, and the digital divide leading to unequal access to information. These challenges pose ethical dilemmas and require concerted efforts from various stakeholders to address them effectively. To combat fake news effectively, it is essential to practice critical thinking and verify information before sharing it. One way is to cross-check information from multiple reliable sources to ensure its accuracy.

Additionally, promoting media literacy and fact-checking skills among individuals can help in discerning credible sources from misinformation. Encouraging responsible

sharing of information and being cautious of sensational headlines can also contribute to combating fake news in the digital realm**.**

Conclusion:

The ethical challenges in new media in India are multifaceted and critical to the country's democratic processes. The advent of social media has influenced the political landscape, offering access to information and enabling the democratization of public discourse. However, it also presents various ethical dilemmas, particularly in the context of political communication. Issues such as the spread of misinformation, or "junk news," are prevalent, as found in a study conducted by Dr. Vidya Narayanan from the Oxford Internet Institute, which observed widespread misuse of information during the Indian election campaign through platforms like Facebook and WhatsApp. The ethical challenges in new media in India are multifaceted and critical to the country's democratic processes. The advent of social media has influenced the political landscape, offering access to information and enabling the democratization of public discourse. However, it also presents various ethical dilemmas, particularly in the context of political communication. Issues such as the spread of misinformation, or "junk news," are prevalent, as found in a study conducted by Dr. Vidya Narayanan from the Oxford Internet Institute, which observed widespread misuse of information during the Indian election campaign through platforms like Facebook and WhatsApp.[3]

The manipulation of public opinion through government and political actors is significant, as they are frequently involved in the non-ethical uses of social media to influence voters. This is exacerbated by a population that is largely

digitally illiterate, which can lead to misunderstandings and misinterpretations of information.[4]

National security is an area where the unethical use of social media can have serious repercussions. Incidents like the Pulwama attack saw an increase in the dissemination of fake news, which posed significant risks to the security and stability of the country.[5]

Individuals are also grappling with these issues, as evidenced by interviews which demonstrated a growing concern among ordinary Indians regarding fake news and rising religious extremism online. Despite this, many citizens have developed their own strategies to counter the negative impacts of disinformation and are actively seeking credible sources (Das & Schroeder, 2020).[6]An analytical study of the ethical challenges in new media in India would delve into these issues, examining the balance between the political benefits and the potential harm to democratic integrity and national security. It would also probe the responsibilities of various stakeholders, including political entities, social media companies, and everyday users, to mitigate harmful practices and promote ethical use of the digital space.

References:

1. Media Ethics: Truthfulness, Fairness and Standards of Decency, Ralph. E Hanson, CQ Press, an imprint of Sage Publications, Chapter 14, 2015.
2. Source:http://spj.org/ethicscode.asp
3. Dr. Vidya Narayanan's study on misinformation during the Indian election campaign and the role of social media in modern democracy is discussed in "Fake News Warfare, a New Trend in India".

4. “Online disinformation in the run-up to the Indian 2019 election” (Das & Schroeder, 2020)
5. “How did Social Media Impact India’s 2019 General Election?” (How did Social Media Impact India’s 2019 General Election?, 2019)
6. “Understanding misinformation in India: The case for a meaningful regulatory approach for social media platforms” (Madan, 2022)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: अध्यापक शिक्षा में बहुभाषिकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन

श्री आनंद दास
सहायक प्राध्यापक, श्री रामकृष्ण बी. टी. कॉलेज (Govt. Aided), दार्जिलिंग
ई-मेल -anandpcdas@gmail.com
मो. 9382918401, 9804551685.

सारांश

भारत एक 'बहुभाषिक' और 'बहुसांस्कृतिक' देश है, जिसे हमें एक विरासत के रूप में मिला है। 'राष्ट्रीय नीति 2020' के माध्यम से 'बहुभाषिकता' के साथ न्याय-अमल करना एक चुनौती पूर्ण प्रस्ताव रहेगा। यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति किसी एक भाषा और संस्कृति की ओर ध्यान केन्द्रित न करके 'बहुभाषिकता' पर ज़ोर दिया गया है। 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' में 'बहुभाषिकता' के महत्व को इस बात से समझा जा सकता है कि इस प्रारूप में 'भाषा नीति' को लेकर दो सौ छः बार भाषा शब्द का व्यवहार किया है। भारत में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं के कई स्तर हैं, जो राजभाषा, त्रिभाषा, आठवीं अनुसूची की भाषा तक ही अपना स्थान बना पाईं थीं, लेकिन इस 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' में 'बहुभाषिकता' नीतिगत दस्तावेज़ के रूप में उभरकर पहली बार सामने आया है। 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' में अध्यापक शिक्षा हेतु 'बहुभाषिकता' की स्थिति प्रायः व्यक्ति, राष्ट्र एवं समाज के संदर्भ में की जा रही है। बहुभाषिकता के इस ताने-बाने की तुलना एक बहुरंगी व बहुतंतुनुमा वस्त्र से की जा सकती है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के जरिए 'बहुभाषिकता' अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में संज्ञानात्मकता, सामाजिकता, चिन्तनशीलता व बौद्धिक क्षमताओं को निपुण बनाने में विशेष सहयोग कर सकती है; जिसे हम व्याख्या, विश्लेषण के माध्यम से समझने का प्रयास करेंगे। कई शोध या अनुसंधान के माध्यम से यह पता चला है कि भारत सहित विश्वभर के देशों में बहुभाषिक अध्यापक शिक्षा अपवाद नहीं बल्कि आदर्श हैं। सभी भाषाएँ और उनमें निहित ज्ञान समान रूप से फले-फूले,

इस शिक्षा-नीति की चुनौती या कहें तो परीक्षा हो सकती है; जिसे हम अध्ययन-विश्लेषण के माध्यम से समझने का प्रयत्न करेंगे। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' में 'बहुभाषिकता' के बहुआयामी रंगों को समझने एवं परखने का प्रयास रहेगा। बहुभाषिकता को व्याख्या,विश्लेषण व आलोचना विधि या पद्धति के माध्यम से नए तथ्यों व पक्षों को प्रस्तुत करने का लक्ष्य रहेगा।

बीज शब्द – *बहुभाषिकता, राष्ट्रीय, शिक्षा, नीति, अध्यापक*

शोध आलेख

भारत एक 'बहुभाषिक' और 'बहुसांस्कृतिक' देश है, जिसे हमें एक विरासत के रूप में मिला है। 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' किसी एक भाषा और संस्कृति की ओर ध्यान केन्द्रित न करके 'बहुभाषिकता पर ज़ोर दिया गया है। 'बहुभाषिकता' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है 'बहु'+'भाषिकता'। 'बहु' शब्द से आशय है अधिक या बहुत सारी और 'भाषिकता' शब्द से आशय भाषाओं का प्रयोग। 'बहुभाषिकता' शब्द का अंग्रेजी पर्याय 'Multilingualism' है। 'बहुभाषिकता' शब्द बहुभाषावाद, बहुभाषीयता, बहुभाष्यता, बहुभाषिता, भाषा बहुलवाद, मल्टीलिंगुअलिस्म तथा विविध भाषीयता आदि जैसे समानार्थी शब्द के रूप में प्रयोग किया जाता है। जब कोई व्यक्ति एक से अधिक यानी दो भाषा का प्रयोग करता है, तो वह द्विभाषिकता या द्विभाषावाद या द्विभाषी के नाम से अभिहित किया जाता है। वहीं बहुभाषिकता में जब कोई व्यक्ति अथवा समुदाय दो या दो से अधिक भाषाओं का प्रयोग करता है तब उसे बहुभाषिकता या बहुभाषी कहते हैं। ब्लूम फील्ड के अनुसार – ''बहुभाषिकता की स्थिति तब पैदा होती है जब व्यक्ति किसी ऐसे समाज में रहता है जो उसकी मातृभाषा से अलग भाषा बोलता है और उस समाज में रहते हुए वह उस अन्य भाषा में इतना पारंगत हो जाता है कि उस भाषा का प्रयोग मातृभाषा की तरह कर सकता है।''1 आगे चलकर रमाकान्त अग्निहोत्री लिखते हैं - ''बहुभाषिकता केवल साक्षरता में ही नहीं, अपितु भाषा शिक्षण में भी बहुत मददगार हो सकती है। वास्तव में हमारे लिए तो जरुरी है कि हम ऐसे तरीके निकाले जिनका आधार बहुभाषिकता ही हो। दुर्भाग्यवश हम

निरंतर एक भाषी देशों में बनाये गये तरीकों व सामग्री का उपयोग अपने देश में करते रहे हैं।"2 इस प्रकार एक से अधिक भाषाओं की जानकारी एवं प्रयोग बहुभाषिकता की स्थिति है। इस प्रकार हम देखते हैं 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' में 'बहुभाषिकता' नीतिगत दस्तावेज़ के रूप में उभरकर पहली बार सामने आया है।

विश्लेषण : वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बहुभाषिकता की महत्वपूर्ण भूमिका है जिसका सीधा प्रभाव अध्यापक शिक्षा में सफलता-असफलता पर पड़ता है। अक्सर यह देखा जाता है कि एक बालक की घर की भाषा और अध्यापक शिक्षा में प्रयोग की जाने वाली भाषा में अंतर होता है। जिसकी वजह से अध्यापक शिक्षा की भाषा अपने अनौपचारिक तौर पर सीखने में असमर्थ महसूस करता है। इस प्रकार वह बालक अपने अनौपचारिक स्थान घर पर विद्यालय की भाषा नहीं सीख पाता है अतः उसे विद्यालय में हेय दृष्टि से देखा जाता है इसका सीधा प्रभाव बालक की शैक्षिक निष्पत्ति पर पड़ता है। इस परिस्थिति में शिक्षकों से यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह अपने कक्षा-कक्ष में ऐसा परिवेश सृजित करें जिससे कि बालक का रचनात्मक और संवेगात्मक विकास हो सके। बहुभाषिकता किसी भी कक्षा-कक्ष में सम्प्रेषण और संवाद की भाषा पर निर्भर करता है। बहुभाषिकता से तात्पर्य अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त कक्षा-कक्ष में अन्य भाषाओं को सीखने से लगाया जाता है। इतिहास गवाह है कि अगर प्राचीन युग के विद्वानों ने उस समय के ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति, साहित्य, ग्रन्थों आदि का अनुवाद न किया होता तो आज हम ज्ञान-विज्ञान तथा भाषा-साहित्य से वंचित रह जाते। ये अनुवाद वही विद्वान कर पाते थे जो दो या दो से अधिक भाषाओं के ज्ञाता होते थे तथा इन्हें बहुभाषी भी कहा जाता था। बहुभाषिकता विद्यालयों या समूहों के बीच विचारों के आदान-प्रदान में अहम भूमिका निभाती है। बहुभाषिकता हमारी शिक्षा व्यवस्था को दूरदर्शी बनाने में सहयोग करती है।

भाषायी और सांस्कृतिक विभिन्नता भारत की विशिष्ट पहचान और शक्ति है। भारत में अनेक विविधताओं के बावजूद अनेक भाषिक

एवं सांस्कृतिक तत्व भारत को सदियों से एकता के सूत्र में बांधे है। हमारे देश की बहुसांस्कृतिकता में बहुभाषिकता निहित है। किसी भी समाज में भाषायी विभिन्नता होने पर ही उस समाज को बहुभाषिक समाज माना जाता है। कई भाषाविदों/भाषा वैज्ञानिकों का यह मानना है कि विभिन्न कारणों से अलग-अलग भाषा बोलने वाले व्यक्तियों का सम्पर्क एक-दूसरे से हुआ। वे बोलने, समझने तथा व्यवहारिक प्रयोग के अनुरूप एक-दूसरे की भाषा को अपनाते चले गये। इस प्रकार बहुभाषिकता का उदय हुआ और आज बहुभाषी लोगों की संख्या पूरी दुनिया में एकभाषी की तुलना में बहुत ज़्यादा है। बहुभाषिकता हमारे देश की एक प्राचीनतम यथार्थ है। भारत में मुख्यतः पाँच भाषा परिवार हैं- 1.हिन्द आर्य भाषा परिवार 2.द्रविड़ भाषा परिवार 3.आस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार 4.चीनी-तिब्बती भाषा परिवार 5.अंडमानी भाषा परिवार। भारत में जितनी भी भाषाएं हैं इन परिवारों के अंतर्गत आती है। आज सबसे अधिक हिन्द आर्य भाषा परिवार (इंडो-यूरोपियन परिवार) की भाषाएँ दुनिया की लगभग आधी आबादी के द्वारा बोली जाती है। जिस प्रकार पूरी दुनिया में विभिन्न सभ्यता-संस्कृति का उदय एवं विकास हुआ, ठीक उसी प्रकार भारत में भी विभिन्न भाषाओं का उदय एवं विकास हुआ। आर्यों ने प्राचीन काल में वेद, पुराण, उपनिषद्, महाभारत आदि रचनाओं के माध्यम संस्कृत भाषा को प्रतिष्ठित किया। आर्यों ने संस्कृत भाषा को ज्ञान-विज्ञान की भाषा बनाया। आगे चलकर पालि, प्राकृत जैसी भाषाएँ जनभाषा के रूप में प्रचलित हुई। भारत में धर्म प्रचारकों तथा विदेशी आक्रमणकारियों का जब हस्तक्षेप बढ़ा तो वे भी अपनी भाषा फारसी, उर्दू तथा अंग्रेजी को यहाँ लाने एवं प्रतिष्ठित करने में सफल रहे, जिसकी वजह से बहुभाषा का आगमन हुआ। आगे चलकर भारत में ब्रिटिश हुकूमत आने के बाद धीरे-धीरे भारतीय भाषाओं के साथ अंग्रेजी भाषा का प्रयोग होने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजी का राजकाज की भाषा के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान या उच्च शिक्षा (खासकर विज्ञान विषयों) की भाषा बन गया। कई युगों से भारत में विभिन्न भाषाओं का आधार इतना मजबूत था कि स्वतंत्रता प्राप्त होने से पहले ही भाषा एवं संस्कृति के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की माँग होने लगी थी।

1 अक्टूबर, 1953 में भाषा के आधार पर ही सर्वप्रथम आन्ध्रप्रदेश ने कर्नूल को अपनी राजधानी के साथ राज्य का दर्जा हासिल किया। पुनः राज्य पुनर्गठन कानून, 1956 (States Reorganisation Act, 1956) के पारित होने से राज्यों या केन्द्रशासित राज्यों की सीमाओं को तय करने वाला सबसे बड़ा कारक भाषा बन गया। इसके पीछे सबसे बड़ा तर्क दिया गया था कि एक भाषा बोलने वाले लोगों को एक प्रशासनिक इकाई के तहत रखा जाएगा तो कामकाज (राजकाज) में सुविधा होगी। हालांकि इसके बाद भी भारत में भाषा संबंधी समस्याएं बढ़ती रही, फलस्वरूप भारत सरकार भाषिक समस्याओं के निदान के लिए कभी 'द्विभाषा सूत्र' तथा 'त्रिभाषा सूत्र' या 'बहुभाषा सूत्र' को प्रस्तुत किया गया। फिर भी कोठारी आयोग (1964-66) या नई शिक्षा नीति (1986) की बात करें तो शिक्षा आयोगों ने भारत के बहुभाषिक संरचना को मजबूत करने की अनुशंसा करते हुए 'त्रिभाषा सूत्र' का समर्थन किया। राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा 2005 (NCF, 2005) में भी भाषा पाठ्यचर्या की चर्चा करते हुए स्वीकार किया गया है कि द्विभाषिकता या बहुभाषिकता से निश्चित संज्ञानात्मक लाभ होते हैं। औपचारिक शिक्षा में सबसे पहले वुड के घोषणा पत्र (सन् 1854) में अन्य भाषा (बांग्ला, संस्कृत, अरबी, फारसी) को पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया है। इस घोषणा पत्र में प्राथमिक शिक्षा का माध्यम देशी व अंग्रेजी भाषा तथा उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी को ही बनाया गया है। भारतीय शिक्षा आयोग-1882 (हण्टर कमीशन), कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग-1917 (सैडलर आयोग), वर्धा शिक्षा योजना-1937 (बुनियादी शिक्षा), खेर समिति (1938-39), विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (राधाकृष्णन आयोग 1948-49), माध्यमिक शिक्षा आयोग- 1952-53 (मुदालियर आयोग), राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964-66) कोठारी कमीशन, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1979, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा 2005 (NCF, 2005), राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 आदि जैसे आयोगों व नीतियों ने पाठ्यचर्या में भाषा पर चर्चा करते हुए द्विभाषिकता या बहुभाषिकता को संज्ञानात्मक लाभ के नजरिए से देखा है। "2006 में भी बहुभाषावाद को grassroot level के साथ

व्यक्ति की मातृभाषा के साथ शुरू करने को कहा गया।"3 भारतीय संविधान के अनुच्छेद के माध्यम से भारत की भाषागत स्थितियों, चुनौतियों तथा अवसरों को संबोधित करने का प्रयास किया गया है। भारत की भाषायी स्थिति को देखते हुए संविधान के अनुच्छेद 29 (1) के तहत भारत में हरेक नागरिक को अपनी मातृभाषा के अध्ययन व संरक्षण का मौलिक अधिकार प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 350ए के अनुसार राज्य व स्थानीय निकायों को स्थानीय भाषा में भाषाई अल्पसंख्यकों को प्राथमिक शिक्षा उनकी मातृभाषा में उपलब्ध कराने का जिम्मा सौंपा गया है। भारत में अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं को भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में संवैधानिक मान्यता मिली। संविधान की आठवीं अनुसूची में निम्नलिखित 22 भाषाएँ शामिल हैं: असमिया, बांग्ला, गुजराती, हिंदी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, ओडिया, पंजाबी, संस्कृत, सिंधी, तमिल, तेलुगू, उर्दू, बोडो, संथाली, मैथिली और डोगरी। भारतीय संविधान ने विभिन्न जाति, विभिन्न भाषा, विभिन्न धर्म तथा विभिन्न संस्कृति की अस्मिताओं के सम्मान को स्वस्थ लोकतन्त्र की बुनियादी जरूरत के रूप में स्वीकारा है, जिसकी वजह से आज हम भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में इतनी सारी भाषाओं को संवैधानिक दर्जा प्राप्त करते हुए देखते हैं। बहुभाषिकता को वैश्विक संदर्भ में विचार-विमर्श करने पर पश्चिमी देशों का जिक्र होना स्वाभाविक प्रतीत होता है। पश्चिमी देशों की तुलना में भारत में बहुभाषिकता के संदर्भ व मायने भिन्न है। पश्चिमी देशों में पाठ्यचर्या के तहत बहुभाषिकता की जरूरत एकभाषी देशों की जरूरतों को मद्देनजर रखकर विकसित की गई। वहीं भारत में बहुभाषिक एवं बहुसांस्कृतिक देश है, इन्हीं बिन्दुओं को केंद्र में रखकर अध्ययन-अध्यापन में बहुभाषिकता की अवधारणा को विकसित किया गया।

बहुभाषिकता की प्रकृति व विशेषताएँ (Nature & Characteristics of Multilingualism)

बहुभाषिता और विविधता मानव अस्तित्व का एक अंग है। बहुभाषिकता उत्कृष्ठ सामाजिक गठन, शिक्षा के ऊर्ध्वाधर विकास और सामाजिक असमानताओं को समझने की कुंजी है। बहुभाषिकता की स्थिति प्रायः व्यक्ति, राष्ट्र एवं समाज के संदर्भ में की जाती है। जन्म लेने के बाद एक बालक बोलना सीखता है, तब वह अन्य लोगों के सम्पर्क में आता है और उनके साथ अंतःक्रिया करने लगता है। उसमें बहुभाषिकता और भाषा की विविधता का गुण धीरे-धीरे विकसित होने लगती है। जब एक बालक में किसी एक भाषा के कौशलों को विकसित कर दिया जाता है तो इन कौशलों को दूसरी भाषाओं में भी स्थानांतरित किया जा सकता है। इसलिए एक भाषा सीखने के बाद अन्य भाषाएँ सीखना आसाना हो जाता है। बहुभाषिकता विभिन्न प्रकार के ज्ञान को सीखने में सहायता प्रदान करता है। एक बालक बहुभाषिकता में अधिक निपुणता प्राप्त कर सकता है। किसी भी व्यक्ति के लिए भाषायी पहचान उसकी आधारभूत पहचान मानी जाती है, क्योंकि उसकी कई पहचान भाषाई पहचान के माध्यम से समझी या पारखी जा सकती है। व्यक्ति अपने खान-पान, रहन-सहन, पोशाक-श्रृंगार, पूजा-पाठ, विवाहों आदि जैसे रीति-रिवाजों को अपनी पहचान के रूप में जीवंत रखते हैं। ठीक इसी प्रकार एक व्यक्ति अपनी बहुभाषिकता को अपनी भाषायी पहचान के रूप में जीवित रखने का प्रयास करता है।

किसी भी राष्ट्र के लिए बहुभाषिकता बहुमूल्य संपत्ति माना जाता है। बहुत लंबे समय से बहुभाषिकता को लेकर यह अपवाद चली आ रही थी कि बहुभाषिकता का संज्ञानात्मक और शैक्षिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। लेकिन कई शोध व अनुसंधान के माध्यम से यह पता चला है कि भारत सहित विश्वभर के देशों में बहुभाषिक छात्र-छात्राएं अपवाद नहीं बल्कि आदर्श हैं। बहुभाषिकता के माध्यम से छात्र-छात्राओं का संज्ञानात्मकता, सामाजिकता, चिन्तनशीलता व बौद्धिक क्षमताओं का विकास सहज ही किया जा सकता है। जिस प्रकार जैविक विविधता किसी जंगल को उन्नत बनाती है, उसी प्रकार बहुभाषिकता भी किसी व्यक्ति या समुदाय की बौद्धिक शक्तियों को

बढ़ाती है। "भाषाई परिस्थिति में संतुलन बना रहे इस हेतु शिक्षकों को विषेशरूप से बहुभाषिकता समझ होनी चाहिए और विद्यालय में विद्यार्थियों द्वारा किसी भी भाषा के प्रयोग के प्रति उदार होना चाहिए।"4 इस प्रकार बहुभाषिकता ज्ञान, अध्यापन और शिक्षण का अद्भुत साधन है। संज्ञानात्मक विकास और शैक्षिक उपलब्धियों में बहुभाषिकता एक सकारात्मक भूमिका अदा करती है। भारत में बहुभाषावाद ऐतिहासिक संपत्ति है और विविध संस्कृतियों का प्रतिबिंब है। बहुभाषिकता बनाए रखने और इसकी प्रकृति को समझने में एक स्कूल या शिक्षण संस्थानों की विशिष्ट भूमिका होती है। शिक्षा में बहुभाषिकता सांस्कृतिक जागरूकता का निर्माण करती है और रचनात्मकता को बढ़ावा देती है। बहुभाषी छात्र-छात्राएं न केवल कुछ भाषाओं पर नियंत्रण रखते हैं बल्कि वे कहीं अधिक शैक्षिक रूप से सृजनात्मक होते हैं। बहुभाषी बच्चों में अन्यों की अपेक्षा अधिक सामाजिक सहिष्णुता पायी जाती है। बहुभाषी होने के कारण वे विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में अपना समायोजन कर पाते हैं। इसलिए स्कूली पाठ्यक्रम में बहुभाषिता को विकसित करना अतिआवश्यक प्रतीत होता है। बहुभाषिकता और बहुसंस्कृतिवाद सम्प्रत्यय लगभग एक ही वस्तुस्थिति को चित्रित करता है। विभिन्न भाषाओं का प्रयोग सांस्कृतिक आदान-प्रदान का प्रमुख माध्यम है। बहुभाषिकता अपने आप में बहुसांस्कृतिकता को आलिप्त करती है अर्थात् बहुभाषिकता में बहुसंस्कृतिवाद निहित हैं। अतः शिक्षा में बहुभाषिकता छात्र-छात्राओं में सांस्कृतिक जागरूकता का निर्माण करती है और रचनात्मकता को बढ़ावा देती है।

बहुभाषिकता के लाभ (Advantages of Multilingualism)

बहुभाषिक शिक्षा अध्यापक शिक्षा में एक बढ़ता हुआ कदम है। बहुभाषिकता एक प्राकृतिक शक्ति है जो प्रत्येक व्यक्ति में सामान्यत: देखी जा सकती है। एक से अधिक भाषाओं को जानने-समझने की योग्यता मनुष्य की जन्मजात क्षमता होती है। बहुभाषिकता और विभिन्नता मानव अस्तित्व का एक भाग है। बहुभाषिकता अलग-अलग भाषाओं का सह-अस्तित्व ज्ञान है जबकि

बहुभाषावाद कई भाषाओं का परस्पर ज्ञान है। कई भाषाओं के ज्ञान के साथ-साथ विभिन्न संस्कृतियों की समझ बेहतर संचार कौशल की अनुमति देता है। बहुभाषिकता शिक्षा के लाभ का एक बढ़ता हुआ कदम है जिसे निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं -

- छात्र-छात्राओं के सर्वांगीण विकास में 'बहुभाषिकता' सकारात्मक प्रभाव डालती है। अभिप्रेरणा की दृष्टि से बहुभाषिकता उपकरणवादी एवं समग्रतावादी रूप में परिभाषित है।
- बहुभाषिकता छात्र-छात्राओं में संज्ञानात्मक वृद्धि, विस्तृत चिंतन और बौद्धिक उपलब्धियों के स्तर को बढ़ाती है तथा मानसिक योग्यता को सन्तुलित बनाए रखने में सहयोग करती है।
- शिक्षार्थियों में बहुभाषिकता आत्मविश्वास, तार्किक क्षमता, विश्लेषण क्षमता तथा सकारात्मक दृष्टिकोण पैदा करती है।
- बहुभाषिकता बच्चों में न केवल बहुभाषाओं पर नियंत्रण रखना सिखाती है बल्कि कहीं अधिक शैक्षिक रूप से सृजनात्मक बनने में भी विशेष भूमिका अदा करती है। बहुभाषी बच्चों में अपसारी चिंतन पाया जाता है।
- बहुभाषिकता ज्ञान क्षेत्र का, कार्य क्षेत्र का, सम्पर्क क्षेत्र का तथा विभिन्न क्षेत्रों की संभावनाओं का दायरा बढ़ाती है।
- शिक्षार्थियों के स्मृति, बोध व चिंतन स्तर को विकसित करने में बहुभाषिकता सहयोग करती है। बहुभाषिकता मस्तिष्क और सोचने-विचारने की क्षमता को और अधिक लचीला बना देती है।
- बहुभाषी बच्चों में अन्य छात्र-छात्राओं की अपेक्षा अधिक सामाजिक सहिष्णुता पायी जाती है। बहुभाषिक होने से भाषा को लेकर उत्पन्न होने वाले तनाव या संघर्ष से भी बचा जा सकता है।

- बहुभाषिकता शिक्षार्थियों के लिए अनेक प्रकार के रोजगार, व्यापार एवं नौकरियों के उपयुक्त अवसर को पैदा किया है।
- सामाजिक संरचना के बारे में धारणा, अनगिनत मौलिक एहसास और मुकम्मल समझ को जगाने में बहुभाषिकता सहायक सिद्ध होती है। बहुभाषी होने के कारण वे विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में समायोजन करने की क्षमता अधिक होती है।
- वैश्वीकृत दुनिया में बहुभाषिकता अधिक प्रतिस्पर्धी तथा अत्याधुनिक होने की क्षमताओं का विकास करती है।
- बहुभाषिकता संस्कृति के उदारीकरण / फैलाव/ बाजारवाद व वैश्वीकरण की आवश्यकता को पूरा करने में सहायक होती है।
- बहुभाषिक व्यक्तियों की अन्तःक्रिया अधिक से अधिक व्यक्तियों से होती है। बहुभाषिक व्यक्ति अधिक से अधिक व्यक्तियों को बातचीत से सन्तुष्ट कर पाने की क्षमता हो सकती है।
- बहुभाषिकता विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों को विकसित करने में सहायता करती है।
- अन्य भाषा को सीखने में सरलता होती है। अन्य भाषाओं की सूचनाओं व अन्य तथ्यों को जानने में मदद बहुभाषिकता करती है, साथ ही अन्य भाषा और साहित्य का रसास्वादन करने का अवसर प्रदान करती है।
- विज्ञान और तकनीकी के विकास एवं सूचना-संचार के साधनों में बहुभाषिकता की अग्रणी भूमिका होती है।

निष्कर्ष

दूसरे देशों की तुलना में भारत में बहुभाषिकता के संदर्भ व मायने भिन्न है। पश्चिमी देशों में पाठ्यचर्या के तहत बहुभाषिकता की जरूरत एकभाषी देशों की जरूरतों को मद्देनजर रखकर विकसित की गई। वहीं भारत में बहुभाषिक एवं बहुसांस्कृतिक देश है, इन्हीं बिन्दुओं को केंद्र में रखकर 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति

2020' में अध्यापक शिक्षा हेतु बहुभाषिकता को प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया गया।

संदर्भ सूची

1. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%AC%E0%A4%B9%E0%A5%81%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B7%E0%A4%BF%E0%A4%95%E0%A4%A4%E0%A4%BE
2. पाठ्यक्रम में भाषा, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, बीएड – 103, उत्पादन वर्ष - 2015, पृष्ठ संख्या - 57
3. सिंगल उषा,अंजू (2019), पाठ्यचर्या में भाषा,रोहतक, ठाकुर पब्लिशर्स।
4. तिवारी कुमार प्रवीण(सं) (2017),पाठ्यचर्या में व्याप्त भाषा, उत्तराखंड, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय।

सहायक संदर्भ ग्रंथ

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, भारत सरकार।

नई शिक्षा नीति में शिक्षण के नए आयाम एवम शिक्षक कुशलता

उज्ज्वला भोसले
श्री शंकराचार्य महाविद्यालय जूनवानी भिलाई
डॉ. संतोष कुमार शर्मा
प्राध्यापक, श्री शंकराचार्य महाविद्यालय जुनवानी भिलाई
डॉ.एन. पापा राव
कल्याण महाविद्यालय, भिलाई

सारांश

शिक्षा हम में आत्मविश्वास, वस्तुओं, तथ्यों को जानने, विश्लेषित करने और हिम्मत नही हारने का कौशल विकसित करती है। वहीँ बदलते परिवेश, समय के साथ बदलती जीवनशैली, चुनोतियाँ और अपार सम्भावनाओ के द्वार खोलती है। देशकाल की परिस्थितयों, तकनीकी युग और आवयशकताओं को ध्यान में रखते हुए समय समय पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति लाई जाती है। इसी के तहत अनेक वर्षो से यह महसूस सभी कर रहे थे कि आधारभूत ढांचे में आमूलचूल परिवर्तन की आवयश्यक्ता है। ऐसा सकारात्मक बदलाव जिसमे हिंदुस्तान की भावी पीढ़ी मजबूत भविष्य के साथ देश के विकास में अपना योगदान दे सके। नई शिक्षानीति,तीसरी है, इससे पूर्व उन्नीस सौ पचास, उन्नीस सौ अस्सी में आई। यह लगभग चालीस वर्षो बाद आई है। दो पीढियां देश में बदल गई पिछली नीति से ।

नई शिक्षा नीति बरसो के मंथन, विचारविमर्श और देश विदेश के सर्वश्रेष्ट शिक्षाविदों, लोक मर्मज्ञ, तकनीकी विशेषज्ञों आदि के लाखों सुझावों,उनके तथ्यों, प्रभाव और सबसे बढ़कर जड़ो को मजबूत करने के विचार से बनाई गई। चूंकि कोविड का दौर है इस पर उतनी चर्चा नही हुई, लेकिन यह लागू नियत समय पर होगी। ऐसा विश्वास है। किसान बिल की तरह विरोध के लिए विरोध, भड़काकर उन्हें आंदोलन की राह पर लाना नही होगा। हर व्यक्ति समझता,गुनता है कि मूलभूत जरूरतों में शिक्षा भी रोटी जितनी ही महत्वपूर्ण है। हमारे शिक्षार्थी और शिक्षक इसका लम्बे समय से इंतजार कर रहे हैं।

बीज शब्द: *शिक्षा, नीति, विचार, युग, बदलाव, क्रान्ति*

शोध आलेख

एक वह दौर था जब पीसीओ के सामने लाइन लगती थी एसटीडी के लिए। निगाहें मीटर पर होती थीं जो प्रति सेकिंड के पैसे बताता जाता था। और दिन भर काम, परिवार के साथ बैठना, पढ़ना होता था। अब मोबाइल फोन हैं जब चाहे बात करो। पहले इस आधुनिक यन्त्र में भी इनकमिंग कॉल के भी आठ रुपए प्रति मिनट लगते थे।आउटगोइंग के डबल। अब यह फ्री हुआ और अधिक उपयोगी हुआ। याद करें साइंटिफिक कैल्कुलेटर, eight डिजिट, वेल्व डिजिट के हजारो में । कलाई घड़ी, कैसेटस, एमपी3, सीडी,

डीवीडी,संगीत,वीडियोगेम, टॉर्च, किताबें आदि अब यह सब एक जेब मे समा जाने वाले स्मार्ट फोन में आ गया है। बच्चे, युवा, महिलाएं, पुरूष, वरिष्ठ नागरिक सभी इसे इस्तेमाल करते हैं। तो फिर दशको पुरानी शिक्षा नीति कैसे आज के तीव्रता से बदलते युग, रोजगार के नए अवसर, विकास, ज्ञान और सूचना के निरन्तर आगमन के साथ तालमेल बिठा पाएगी? जो अनिवार्य है वह तो रहे परन्तु जो कंटेंट अनावयशक रहा वह हटे। और नया जुड़े यही परम्परा है। विशेषकर जब वैश्विक परिदृश्य में हम एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभरे हैं। हमारे पास विस्तृत प्राचीन वांग्मय,भारतीय दर्शन, विद्वान, विदुषियां और बेहद मेहनती, प्रतिभाशाली पीढ़ी है तो उसी के अनुरूप ही नई शिक्षानीति लाई गई ।

शिक्षा हम में आत्मविश्वास, वस्तुओं, तथ्यों को जानने, विश्लेषित करने और हिम्मत नही हारने का कौशल विकसित करती है।वहीँ बदलते परिवेश, समय के साथ बदलती जीवनशैली, चुनोतियाँ और अपार सम्भावनाओ के द्वार खोलती है।

देशकाल की परिस्थितयों, तकनीकी युग और आवयशकताओं को ध्यान में रखते हुए समय समय पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति लाई जाती है। इसी के तहत अनेक वर्षो से यह महसूस सभी कर रहे थे कि आधारभूत ढांचे में आमूलचूल परिवर्तन

की आवयश्यक्ता है। ऐसा सकारात्मक बदलाव जिसमे हिंदुस्तान की भावी पीढ़ी मजबूत भविष्य के साथ देश के विकास में अपना योगदान दे सके।

नई शिक्षा नीति,तीसरी है, इससे पूर्व उन्नीस सौ पचास, उन्नीस सौ अस्सी में आई। यह लगभग चालीस वर्षो बाद आई है। दो पीढियां देश में बदल गई पिछली नीति से ।

नई शिक्षा नीति बरसो के मंथन, विचारविमर्श और देश विदेश के सर्वश्रेष्ट शिक्षाविदों, लोक मर्मज्ञ, तकनीकी विशेषज्ञों आदि के लाखों सुझावों,उनके तथ्यों, प्रभाव और सबसे बढ़कर जड़ो को मजबूत करने के विचार से बनाई गई। चूंकि कोविड का दौर है इस पर उतनी चर्चा नही हुई, लेकिन यह लागू नियत समय पर होगी। ऐसा विश्वास है। किसान बिल की तरह विरोध के लिए विरोध, भड़काकर उन्हें आंदोलन की राह पर लाना नही होगा। हर व्यक्ति समझता,गुनता है कि मूलभूत जरूरतों में शिक्षा भी रोटी जितनी ही महत्वपूर्ण है। हमारे शिक्षार्थी और शिक्षक इसका लम्बे समय से इंतजार कर रहे हैं।

(अ) शिक्षानीति का आगमन और वर्तमान परिदृश्य

-महात्मा गांधी इस बात के पक्षधर, हालांकि काफी बाद में हुए, की शिक्षा हमारी मातृ भाषा मे होनी चाहिए। वह अंग्रेजी की निःसारता और गुलाम बनाने के कुचक्र को समझ चुके थे। हिन्द स्वराज (1909) में वह मातृभाषा में शिक्षा और स्वावलम्बन की हिमायत करते हैं। वह यह भी मानते थे की इससे देश,संस्कृति पर गर्व के साथ साथ नई नई स्वदेशी खोजे और आविष्कार भी होंगे। परन्तु यह स्वप्न उनके प्रिय प्रधानमंत्री नेहरू जी के स्वप्न के विपरीत था। नेहरू अंग्रेजीदां थे और अत्याधुनिक सोच के थे। वह भारतवर्ष को जाहिलो या कहें ठेठ देसी स्वरूप से खिन्न थे। उनकी आधुनिक सोच किसी चाल या षड्यंत्र से ज्यादा उनके खुद के अनुभवों पर आधारित थी । वह महसूस करते थे कि अंग्रेजी ऐसी चाबी है जो आपके लिए हर दरवाजा खोल देती है।

लेकिन इस प्राचीन वांगमय के राष्ट्र में भाषा, संस्कृति, तकनीक, उच्च मूल्यों की जड़ें सनातन काल से रहीं हैं। यह वह भूल गए।

सिंधुघाटी सभ्यता हो,जो मातृ प्रधान थी, जिसमे मनुष्य अपनी ठेठ स्वविकसित ध्वनि से बने शब्दो से जुड़ता था। बाद में वह इतना विकसित और बेहतरीन हुआ कि उसने चित्रलिपि विकसित की। कल्पनातीत हकीकत। प्राचीन भारतवर्ष हर तरह से सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति के साथ साथ जीवन मूल्यों और कठिन परिश्रम से अपनी भावी पीढ़ी को संवारता,तराशता है। रामायण, महाभारत ग्रंथ से लेकर विष्णुगुप्त का अर्थशास्त्र, पाणिनि की अष्टाध्यायी, कल्हण की राजतरंगिणी (जिसमे कश्मीर के इतिहास के साथ साथ राजप्रणाली, शिक्षा पद्धति का विस्तृत वर्णन है) आदि बताती हैं की हमारे देश मे शिक्षा पद्धति सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण ही नही करती थी अपितु हमे देश की रक्षा के योग्य भी बनाती थी । गुरुकुल प्रणाली में राजपुत्रो को भी आम बच्चो के साथ ही विद्याध्ययन के लिए आश्रम में जाकर रहना ही पड़ता था। वहां उन्हें बाल्यकाल से ही हर तरह की जीवनोपयोगी शिक्षा यथा विद्याध्ययन, नीति के साथ साथ रणकौशल,अस्त्र शस्त्र, घुड़सवारी आदि की शिक्षा दी जाती थी।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में नए और समय की मांग के अनुरूप क्यो नही आए? लेकिन यह भी ध्यान रखना है कि हर किसी को शस्त्र, शास्त्र,विज्ञान में रुचि हो यह जरूरी नही। साथ ही कोई गणित में कमजोर है परंतु संगीत, वाद्ययंत्र,खेलो में प्रवीण तो उसके लिए विशेष प्रावधान क्यो नही हो? नई शिक्षानीति में इस पर भी प्रावधान है।

(आ) क्या कोई समय काल चुनोती से मुक्त होता है?

- चुनोती यह की पूर्ववर्ती दोनो शिक्षा नीतियां एक प्रकार से अंग्रेजो द्वारा हम पर थोपी गई मैकाले की नीति के ही अनुरूप थीं। तभी इस देश की तीन पीढियां धीरे धीरे अपनी जड़ों से कटती चली गईं। और जडविहीन विकास कैसे होता? तो वह भटककर नो दिन चले अढाई कोस की तर्ज पर वहीं खड़ी हैं। कहने को

विकास हुआ पर वह वर्टिकल हुआ, हॉरिजॉन्टल नही। यही अंग्रेज चाहते थे। कालांतर में जो सरकारें आई वह सत्ता प्रपंचो में ही उलझी रहीं।

हर समय की अपनी चुनोतियाँ होती ही हैं। दरअसल चुनोतियाँ, बाधाएं नही बल्कि आगे बढ़ने, उत्तरोतर विकास के मार्ग खोलने के साथ साथ हमारे स्किल्स, व्यक्तित्व को निखारने के साथ सामूहिक नेतृत्व की भावना को बढ़ावा देती है।

चुनोतिविहीन समाज और देश किसी काम का नही होता वह जल्स नष्ट हो जाता है। सुप्रसिद्ध आलोचक प्रभाकर श्रोत्रिय इस समय के खतरे बताते हैं, "भूमण्डलीकरण (globalization), बाजारवाद का ही स्वरूप है। कहने को यह

वैश्विक स्तर पर सभी द्वार खोलता है। कुछ आलोचकों विद्वानों ने इसे ग्लोबल गावँ जैसा नाम देकर भारत की युवा पीढ़ी को भ्रमित किया। और हमारी वसुधेव कुटुम्बकम से तुलना की। परन्तु यह गलत था।"

याद करे वह दौर आपके हमारे घरो का जहां हर बच्चे पर विज्ञान लेकर इंजीनियरिंग, मेडिकल लाइन में जाने का दबाब था। और नही हो पाता तो वह अपराधबोधग्रस्त होकर शेष पूरी जिंदगी कुंठा में जीता। आज भी है। पर जो हो जाते चयनित,कड़ी मेहनत से वह आगे जाकर बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के पुर्जे बनकर रह जाते। सेकड़ो बड़े की जगह छोटी मोटी कम्पनियो में ही जिंदगी गुजार देते।

श्रोत्रिय जी कहते हैं," जहाँ वसुधैव कुटुंबकम उदार चरित्र का लक्षण है। सारे विश्व में आत्मीयता स्थापित करने वाली भावात्मक मानवीय अवधारणा है। जबकि वैश्वीकरण पूंजीवादी देशों की विश्व विजय का शंखनाद है। यह पूर्ण रूप से शुद्ध बाजारवाद है जो यह सुनिश्चित करता है कि गरीब लोग और देश विश्व के नक्शे से मिट जाए। संचार, सूचना ,इलेक्ट्रॉनिक माध्यम, इंटरनेट इसके माध्यम है। यह लेखकों, बुद्धिजीवियों को अपना हथियार बनाता है और आम व्यक्ति के मस्तिष्क को कंट्रोल करता है। उसे वही दिखाता है जो बाजारवाद के फायदे का

होता है। लेखक से उसका मूल चरित्र छीन लेता है। वह इसके प्रभाव से प्रसिद्धि के लोभ में शिकंजे में फंस जाता है। और उतावलापन,अल्पज्ञता के साथ बाजारवाद का शिकार हो जाता है।" दरअसल भाषा अपने ही उपकरणों से जिंदा रहती है। क्योंकि हमे अच्छे से भाषा शिक्षा और लोक जब तक नहीं आएगी तब तक हम इस बाजारवाद के छल का मुकाबला नहीं कर सकते। और अकेले हो जाएगे। नई शिक्षा नीति में भाषा, संस्कृति कैसे बाजारवाद से मुकाबला करे यह बताती है । किस तरह अपनी स्वाभाविकता, अपने मूल्यों, जड़ों को संरक्षित रखते हुए उसके आधार पर आगे बढ़े।

लेकिन साथ मे विचारो की पावनता और शुद्धता होगी तभी तो हम ऐसा ज्ञानार्जन कर पाएंगे जो हमे बौद्धिक, आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाएगा (रमेशचन्द्र शाह, अक्षरा, मई उन्नीस, पृष्ठ दस)। दरअसल शिक्षा धीरे धीरे मशीनी होती जा रही थी। उसमें सब कुछ था बस आत्मा नही थी । उसकी पूर्णता तक पहुंचने के बाद अधिकांश युवा यह पाते थे की वह जो पढ़े,उसका प्रतियोगी परीक्षाओ में कोई उपयोग नही। शिक्षक बनने में थोड़ा बहुत हो जाए पर वहां भी तर्कशक्ति (reasoning), सामान्य ज्ञान के बिना मुक्ति नही। ऊपर से जो कृषको, श्रमिक वर्ग, लोक के विद्यार्थी थे वह शिक्षित होकर अपने हुनर, पुश्तेनी कार्यों से विमुख हो गए। क्योकि शिक्षा और उसके खुलेपन, आज़ादी की बयार ने उसे सपने देखना तो सिखा दिया परन्तु कड़ी मेहनत, प्रतियोगिता से जीतना उसने नही सीखा। तो वह दोनों तरफ से गया। नोकरी न मिली और घर के पुश्तेनी हुनर, किसानी से लेकर सभी स्वदेशी उपक्रम वह नही कर पाया। नतीजा हुआ बेरोजगारी, असंतोष, मोहभंग की इसी अवस्था मे कुछ अपराध की राह पर चल पड़े।

वस्तुतः यही सब शिक्षानीति से पहले का परिदृश्य था । जमीनी सच्चाई और उससे जुड़ी बाधाएं, अध्ययन, रोजगार और शिक्षण में एक गहरी खाई थी। यह ऐसा ही था कि सर्व साक्षर अभियान के तहत टेब (मिनी कम्युटर) गावँ गावँ पहुंच गए परन्तु वहाँ बिजली नही। सॉफ्टवेयर नही ।

हमारे विभिन्न, तकनीकी, मानविकी, वाणिज्य, कला, संस्कृति, कृषि, पत्रकारिता आदि के पाठ्यक्रम युवा पीढ़ी के भविष्य के लिए उतने उपयोगी नही रह गए थे। इन सब बातों पर विमर्श करके नई नीति लाई गई।

(इ) नई शिक्षा नीति उज्जवल भारत की भावी पीढ़ी के लिए

- नई शिक्षा नीति बहुत सुव्यवस्थित ढंग से हर वर्ग,रुचि, स्वदेशी, स्वालम्बन के साथ शिक्षा को ध्यान में रखकर बनाई गई। यह अपनी भाषा मे शिक्षा की बात ही नही करती अपितु शिक्षार्थी के अंदर के हुनर को भी निकालने का मार्ग प्रशस्त करती है।गांधी अपने अनुभवों से कहते थे," करोड़ों लोगों को अंग्रेजी की शिक्षा देना उन्हें गुलामी में डालने जैसा है। अंग्रेजी शिक्षा से दंभ, राग, जुल्म आदि बढ़े हैं। अंग्रेजी शिक्षा पाए हुए लोगों ने प्रजा को ठगने में,उसे परेशान करने में कोई कसर नहीं छोड़ रखी है। वह भविष्यदृष्टा थे।वे चाहते

थे कि लोग अंग्रेजी पढ़े यदि आवश्यक है तो लेकिन उसके साथ पहले वह नीति सीखें, मातृभाषा सीखें और साथ में हिंदुस्तान की एक दूसरी भाषा भी सीखनी चाहिए।

यह त्रिभाषा फार्मूला दरअसल आज की नही सदियो पुरानी परंपरा है भारतवर्ष की। हमारे पूर्वजों ने जब प्राचीन भारत मे मलमल,मसाले, हस्तशिल्प, माणक, मोती आदि का व्यापार ईसा पूर्व से करना प्रारम्भ किया तो विश्व के अनेक हिस्सो में बड़ी नोकाएँ, ऊँट, घोड़े पर वह जाते थे। तो वहां कोनसी भाषा बोली जाती थी? यकीनन उनके देश परदेस की भाषा। और हमारे पूर्वज बरसो बरस सफलता से व्यापार करते थे उन लोगो के साथ। कैसे? क्योकि प्रारम्भिक शिक्षा संस्कार अपनी मातृ भाषा में, फिर राजभाषा और फिर व्यापार, तकनीक, ज्ञान की भाषा यह उस वक़्त से मानव सीखता आ रहा है जब किताबें प्रचलन में कम थी। अधिकांश कार्य वाचिक परम्परा में होते थे, तब भी हमारे मेधावान पूर्वजों ने सीखा और देश को सर्वोच्च स्थान पर पहुंचाया। बस एक ही बात हम नही सीखे

वह थी आक्रमकता,हिंसा,हमला। हम स्वभाव से ही सहज, मीठे और सरल लोग हैं।

हमारी नई शिक्षा नीति भी इसी परम्परा को आधुनिक परिदृश्य में आगे बढ़ाने की दिशा में है।

(ई) मुख्य बिंदु और दूर होती बाधाएं :-

-यह शिक्षा नीति क्रियान्वयन की दृष्टि से सभी वर्गों को ध्यान रखकर बनाई गई है। राष्ट्रीय शिक्षा न्यास और उसके प्रखर सर्व क्षेत्रो के विद्वानों के विचार विनिमय के बाद यह बनी। उसमे प्राथमिक से उच्च शिक्षा,शोध तक के लिए सशक्त प्रावधान हैं। उन्हें ईमानदारी से लागू करने की इच्छाशक्ति हम में है तो आने वाली पीढ़ी निसन्देह बहुत सौभाग्यशाली और जागरुक बनेगी। मुख्य बिंदु :-

(1) प्राथमिक शिक्षा में आज़ादी के बाद से कोई सतही परिवर्तन हुआ तो यही की अंग्रेजी बढ़ गई, मातृ भाषा को बाहर कर दिया गया। राजस्थान, बिहार, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, हरियाणा जैसे राज्यो में माएं इंतज़ार करती हैं बच्चे के पहला शब्द बोलने का। और फिर उसे अंग्रेजी कविता, गिनतियाँ सिखाने की कवायत प्रारम्भ हो जाती है। वह भी हर वक़्त और यह कार्य कोई अल्प शिक्षित महिलाऐं नही करती। उन्हें तो संतान को चलते, दौड़ते,भागते, मिट्टी में खेलते,गिरते आत्मिक आनंद मिलता है। यह कार्य करती हैं सुशिक्षित नई सदी की महिलाएं, पुरुष जो अपने बच्चे को भावी जमाने का सुयोग्य, सफल, नागरिक बनाना चाहती हैं। यह करते हुए वह भूल जाती हैं कि उसका बचपन,खेलना,स्वाभाविक रूप से विकसित होने का उसका हक सब छीन रही हैं।

इसके लिए नई शिक्षानीति में प्रारम्भिक शिक्षा मातृ भाषा में देने का प्रशंसनीय प्रावधान है। जिससे बच्चे का सहजभाव से सीखने की प्रक्रिया जारी रहे। फिर प्राथमिक स्तर पर हिंदी और अन्य भाषा जो वह लेना चाहें जुड़ती जाएंगी। एक

और वह सहज, सरल सीखेगा वहीं दूसरी और अपनी भाषा में पढ़ने सीखने से उसके आत्मविश्वास में वृद्धि होगी।

(2) एक प्रावधान उच्च प्राथमिक से ही लागू होगा वह है लोक और जीवन से जुड़े हुनर को कौशल विकास (भारत सरकार की नई नीति, योजना2019) के तहत सीखना ही नही सिखाना भी । इसमें कुम्हार, चर्मकार, लोह कर्मकार,बागवानी, जैविक, कृषि तकनीक, फूलो की खेती, मौसमी फसलें, कीटनाशक और जैविक खाद की उपयोगिता,मूर्तिशिल्प,काष्ठ शिल्प, हस्तशिल्प, गोपालन, डेरी उद्योग, कत्था, गोंद, लकड़ी के शिल्प, मधुमक्खी,मछली पालन, कुक्कुट पालन आदि शामिल हैं।

परम्परागत इन सभी कौशलों को व्यावसायिक स्तर के लिए युवाओ को बचपन से ही सिखाना और योग्य बनाना इसकी सबसे बड़ी शक्ति है । और वह भी विद्यालयी शिक्षा के साथ साथ । स्वदेशी, स्वावलम्बी भारत की यह बेहतरीन उपलब्धि भविष्य में बन सकती है। यह प्राचीन पद्धति, जब हम हर हुनर में पारंगत थे, का ही आधुनिक स्वरूप है।

(3) माद्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर पर अधिक बदलाव नही किए गए। क्योकि ग्रासरूट लेवल से ही नई शिक्षानीति में विद्यार्थी सीखकर और मानस बनाकर आएगा तो वह उसी के अनुरूप विषय चयन करके आगे बढ़ेगा। लेकिन यहां यह ध्यान रखना होगा कि जो लोग परिवर्तन करेंगे यानी चुनाव किया अविधा या क्षेत्र का लेकिन बाद में आते आते बदलाव करेंगे उनका क्या? यह लगभग तीस फीसदी होता ही है जो विषय या क्षेत्र आगे बदलते हैं। यह स्वाभाविक मनोविज्ञान है कि मनुष्य समय और अनुभवों के साथ अपनी सोच और विचारो में परिवर्तन पाता ही है। उसके लिए कोई सटीक बात नही है इस नीति में ।

(4) उच्च शिक्षा जो आज की तारीख में अंतिम सांस ले रही थी उसके लिए विगत वर्षों से ही प्रयास होने उच्च शिक्षा मन्त्रालय ने कर दिए थे। दरअसल

हमारे महाविद्यालय के अधिकांश पाठ्यक्रम अभी तक बदले ही नही। वह, पता नही क्यो, यह उपन्यास, कथा, काव्य संग्रह हटाया तो दूसरा लगा दिया तक ही सीमित रहे। वेसे भी हमारे पास सही सही, सटीक और तथ्यपरक विवरण देती किताबो की अभी कमी है। (यह स्थापित तथ्य है कि कुछ स्वार्थ, कुछ राजनीतिक दबाब में हमारे मूल इतिहास को लिखा ही नही गया। बल्कि गुलाम बनाने वाले विदेशी आतताइयों को ही अलाउद्दिन खिलजी, मुहम्मद गोरी, बाबर, हुमायूं अकबर महान, जहाँगीर कलाप्रेमी आदि पढ़ाया गया। जबकि प्राचीन भारत गुप्त, मौर्य, हर्षवर्धन, बौद्ध काल आदि के समय भारत अत्यधिक विकसित, शिक्षित और आदर्श सभ्यता थी। तब हजारो वर्ष बाद आने वाले आतताइयों, कबीलो की नस्ल के नामोनिशान तक नही था। वांगमय, दर्शन,उपनिषद, ऋचाओ आदि का बोलबाला था । गुरुकुल पद्धति थी। और एक सम्पूर्ण मानव व्यक्तित्व निखर कर सामने आता था।

तो उच्च शिक्षा में थोड़ा और अधिक कार्य करने की आवयश्कता है। यूजीसी को भी और लोकतांत्रिक बनाने की आवयश्कता है।

(5) शोध किसी भी संस्थान, देश की प्रगति और विकास को दर्शाते हैं। हमारे यहां हर क्षेत्र विज्ञान, कला, कृषि में अब तक नब्बे प्रतिशत शोध औसत से भी कम महत्व के हुए हैं। हम शोध बेमन, मजबूरी, व्यक्तिगत लाभ को दृष्टगत रखते हुए करते हैं। इस पर प्रावधान हैं पर समय समय पर रिपोर्ट और शोधपत्र प्रकाशित करने से कुछ नही होगा। इस पर अलग से कार्य करने की आवयश्कता है। धन राशि यूजीसी लघु और महत शोध प्रोजेक्ट के लिए जरूर बढ़ी है। परंतु वह उन लोगो के लिए है जो सेवारत, निजी या सरकारी में है। अर्थात वेसे ही मोटी तन्ख्वाएँ और आरामतलब जिंदगी जी रहे हैं (माफ करें भाई लोग) तो वह अधिक क्या मेहनत ही नही करते।

इसके बजाय साहित्यकार, अध्येता जो लोक, जन मानस के मध्य कार्य कर रहे हैं, को अवसर मिलने का प्रावधान करना चाहिए। तब बेहतरीन, नए और मौलिक कार्य सामने आएंगे जो समाज और देश के हित मे होंगे।

अभी अभी (4 दिसम्बर 20) यूनेस्को की सर्वश्रेष्ट शिक्षक की सूची में विश्व में प्रथम स्थान पर महाराष्ट्र के एक सरकारी स्कूल का शिक्षक आया है। लेकिन उसे यूजीसी के नियम से कैसे भी प्रोजेक्ट नही मिल सकता क्योंकि वह उच्च शिक्षा की संस्थानों से जुड़ा नही है। और स्कूल स्तर पर प्रोजेक्ट के लिए कोई फण्ड शिक्षकों के लिए नही है। ऊपर से उसने मिली अवार्ड राशि लगभग सात करोड रुपए आधी शेष प्रतिभागियों में बांट दी। और आधी इसी कार्य मे शोध हो सके उसके लिए दान करदी |

क्या सरकार का कोई फर्ज नही की ऐसा आयोग बने जो योग्य व्यक्ति को, भले ही वह उच्च शिक्षा संस्थानों में नही है, को आवयश्क धन उपलब्ध कराए। जिससे उन जैसे असंख्य लोग आगे बढ़ सकें। यह एक विचारणीय प्रश्न है।

(6) सरसंघचालक माननीय मोहनराव भागवत जी कहते हैं," परिस्थिति के अनुसार ही सत्य की अभिव्यक्ति होगी। वही सत्य है, मानवता है, बंधु भाव है दूसरा कुछ नहीं। लेकिन हमें यह ध्यान रखना होगा कि हमारे भारतवर्ष में जो जिस समुदाय,भाषा, जाति के रहते हैं वे सभी हिंदू हैं। भारत और हिंदू समानार्थी है। मेरा मानना है जो भारतवर्ष में रहता है वह हिंदू है हिंदू शब्द प्राचीन भारत में यात्रा करने वाले, यायावर के नाम का समानार्थी था। जब भी कोई यात्री भारतवर्ष से बाहर जाता उसे देखते ही उस देश के लोग कहते यह हिंदू है, सिंधु नदी के उस पार का है। हजारों वर्षों की हमारी पहचान है। मातृभूमि, अपनी अस्मिता, संस्कृति पर गर्व का भाव । मुस्लिम, क्रिश्चियन, सिख जैन धर्मावलंबी जो भी भारत में रहता है वह हिन्दू है । यही संघ की सोच है ।" इस कथन से स्पष्ट है हमारी शिक्षा, समझ और सहिष्णुता बहुत प्राचीन के साथ साथ ग्राही भी थी। यह समझ शिक्षा देती है। वेदों में लिखा है सर्व खलु इदम ब्रह्म। अपने आपको

पहचानने और व्यापक दृष्टि से चीजो को समझने का नजरिया विकसित करने में भी शिक्षा मदद करती है। नई नीति में इस पर जोर है साथ ही वह तर्कसंगत ढंग से हमारी भावी पीढ़ी को अपनी धरोहर थाती से भी जोड़ती है। अधिक मानवीय और जीवनमूल्यपरक शिक्षा देती है।

(7)एक यह बहुत समय से देखा जा रहा था कि नोकरी करने के साथ साथ पढ़ाई भी लोग करना चाहते थे परंतु उसमे बाधाएं थी। नई शिक्षानीति में यह प्रावधान किया गया कि आप पढ़ाई के लिए सप्ताहंत में भी कक्षाएं ले सकते हो। साथ ही नोकरी, शादी, बीमारी, खेती के काम आदि के कारण यदि स्नातक, स्नातकोत्तर आदि की पढ़ाई अधूरी रहती है तो उसे आप दुबारा से वहीं से जहां छोड़ी थी दुबारा प्रारम्भ कर सकते हैं। यह बहुत बड़ी समस्या इसमे हल की गई ।

कमियाँ ही आगे राह दिखाती हैं

हर कमी आगे बढ़ने का सूत्र होती है। नई शिक्षानीति अगले सत्र से धरातल पर चरणबद्ध तरीके से आएगी। और यह एक आदर्शवादी, सर्वहितकारी, किसानों, गरीबो, आम युवा व्यक्ति के अधिक नजदीक है। पर फिर भी कमियाँ

हैं।

(1) कई मूलभूत विषय जैसे भारतीय दर्शन, जो सभी समन्वयकारी बातो का समुच्चय है, को उपेक्षित किया है।जबकि यह ऐसा विषय है जो सर्वसंधान समेटे है। इसे स्कूली शिक्षा में ही अनिवार्य विषय के रूप में होना चाहिए था। यह भूमण्डलीकरण और उसके खतरों से हमे आगाह ही नही करता अपितु समाधान देता है। सांस्कृतिक वैचारिकी को बुद्धिमता के साथ सुदृढ़ बनाता है। "तत्वमसि " ब्रह्मवाक्य, मुण्डकोपनिषद, को चार महावाक्यों में स्थान देने का आचार्य शांकर का यही उद्देश्य था। हम अपने मूल स्वरूप को पहचानकर सभी में परमेश्वर की ही अनुभूति करें।

(2) पर्यटन, विशेषकर सांस्कृतिक और लोक के लिए आवयश्क है उस पर आधारित पाठ्यक्रमो की और आवयश्कता है।

(3)तेजी से विकसित हो रहा मीडिया, प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक के लिए युवावर्ग और जो कार्यरत हैं उनके नए पाठ्यक्रम,नैतिक मूल्य और विशेषकर भाषा, अध्ययन सम्बन्धी कमियों के लिए दसवीं कक्षा से न सही पर उच्च माध्यमिक में तो प्रावधान होना ही चाहिए। वह उतना नही है। आज की भाषा यह है मीडिया की, गोदी नही मोदी मीडिया, न्यूजरूम में पीएमओ, (तदभव, 41 मई 20 अंक, पेज 134) । साथ ही मीडिया के अलग अलग विभाग

राजनेतिक,बिज़नेस, सांस्कृतिक, खेलकूद, फ़िल्म, कला आदि पर अच्छी पाठ्यसामग्री नही है। अधिकतर छात्र गूगल से काम चलाते। या अंग्रेजी की किताबो से हिंदी के छात्र कैसे पढ़ेंगे? (वही पेज़ 149) | नई शिक्षानीति में इसके लिए विशेष प्रावधान करने होंगे।

(4) यह ठीक है कि प्राथमिक स्तर से ही मातृ भाषा मे पढ़ाई और काम भी । परन्तु इसके लिए क्या शिक्षक तैयार क्या इस किस्म के धैर्यवान अध्यापक हैं हमारे पास?

इन सभी बातों से निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि देश को आगे बढ़ाने, स्वरोजगार के लिए प्रोत्साहित करने और कई नवाचारों के साथ यह एक सम्पूर्णता के नजदीक नीति है। कुछ कमियों को दूर करने के साथ यह युव पीढ़ी को नैराश्य से निकलकर उजाले की ओर ल जाने में सक्षम है। सरकार ने अपना काम कर दिया है अब शिक्षकों, समाज और भावी पीढ़ी को कार्य करना है।

संदर्भ सूची

1. श्रोत्रिय प्रभाकर, पृथ्वी क्रोध में है, सं. 2013बोधि प्रकाशन जयपुर ।
2.अक्षरा,मासिकी,मई 2019, म. प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल।

2. गवेषणा, जनवरी-मार्च 2019, महात्मा गाँधी विशेषांक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।
3. तदभव, सम्पादक अखिलेश, अंक 41, मई 2020, पत्रकारिता: केंद्रित अंक।
4. संघ बीज से वृक्ष रूप, विश्व संवाद केंद्र जयपुर, स्मारिका 2015 |
5. मधुमती, नवंबर अंक 2020, गाँधी केंद्रित, सं. बृजरत्न जोशी, राज. साहित्य अकादमी उदयपुर।
6. दैनिक भास्कर 6 अगस्त, 20, दैनिक जनसत्ता, नई शिक्षानीति, 5 अगस्त, 2020 |

स्वाधीन भारत में हिंदी का विस्तार

श्रीमती श्वेता सिंघल,
आई.एस.एस. सचिव राज्यपाल, महाराष्ट्र राज्य
शोधार्थी, हिंदी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय

सारांश

जब हम भाषा के क्रमिक विकास पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि कोई भी भाषा प्रारंभ में केवल बोलचाल की भाषा होती है। धीरे धीरे लोक परम्परा की अभिव्यक्ति का माध्यम जाती है। यह लोकगीतों, लोकनाटकों, नुक्कड नाटकों में मनुष्य व समाज की हार्दिक इच्छाओं का उनकी आप बीती के दर्द को अभिव्यक्ति का उनके लोक विश्वास का, समाज के उत्साह व उमंग का, उनकी खुशी उनके उत्साह का 'लोकभाषा' के रुप मे अभिव्यक्ति व संप्रेषण माध्यम बन जाती है।जैसे ही भाषा लिपिबद्ध होने लगती है तो धीरे-धीरे व्यक्तिगत पत्र व्यवहार में प्रयुक्त होने लगती है।वह पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से सामाजिक चेतना की अभिवाहिका का काम करती है। जैसे-जैसे यह भाषा व्यापक होने लगती है और अधिक परिष्कृत व परिमार्जित होने लगती है। तो उत्तम साहित्यिक रचना की संस्थात्मक पीठिका बन जाती है।फलस्वरूप उसके लिए साहित्यिक भाषा का आयाम भी खुल जाता है। अभी तक के अपने विमर्श में हमने पाया कि हिन्दीं में लोक साहित्य व परिनिष्ठित साहित्य की विकसित परम्परा आजादी के पहले ही प्रबल हो चुकी थी। साथ ही विदेशों में पत्र- व्यवहार के रुप में प्रयुक्त होने के कुछ दृष्टांत हमें प्राप्त होते हैं।

बीज शब्द: *भाषा, विकास, लिपि, परंपरा, अभिव्यक्ति*

शोध आलेख

जब हम भाषा के क्रमिक विकास पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि कोई भी भाषा प्रारंभ में केवल बोलचाल की भाषा होती है। धीरे धीरे लोक परम्परा की अभिव्यक्ति का माध्यम जाती है। यह लोकगीतों, लोकनाटकों, नुक्कड नाटकों में मनुष्य व समाज की हार्दिक इच्छाओं का उनकी आप बीती के दर्द

को अभिव्यक्ति का उनके लोक विश्वास का, समाज के उत्साह व उमंग का, उनकी खुशी उनके उत्साह का 'लोकभाषा' के रुप मे अभिव्यक्ति व संप्रेषण माध्यम बन जाती है।जैसे ही भाषा लिपिबद्ध होने लगती है तो धीरे-धीरे व्यक्तिगत पत्र व्यवहार में प्रयुक्त होने लगती है।वह पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से सामाजिक चेतना की अभिवाहिका का काम करती है।

जैसे-जैसे यह भाषा व्यापक होने लगती है और अधिक परिष्कृत व परिमार्जित होने लगती है। तो उत्तम साहित्यिक रचना की संस्थात्मक पीठिका बन जाती है।फलस्वरूप उसके लिए साहित्यिक भाषा का आयाम भी खुल जाता है।

अभी तक के अपने विमर्श में हमने पाया कि हिन्दीं में लोक साहित्य व परिनिष्ठित साहित्य की विकसित परम्परा आजादी के पहले ही प्रबल हो चुकी थी। साथ ही विदेशों में पत्र- व्यवहार के रुप में प्रयुक्त होने के कुछ दृष्टांत हमें प्राप्त होते हैं।

वैसे तो भारत 15 अगस्त को अनगिनत संघर्षों के बाद 1947 को स्वतन्त्र हो गया था परन्तु स्वाधीन भारत का संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ। उस समय से हिंदी के का प्रयास संस्थागत रूप में होने लगा जिसका अनवरत विस्तार होता रहा है। हिंदी को राजभाषा का दर्जा मिलने के बाद भी अनेक प्रकार के संशोधनों और परिमार्जन से होकर यह भाषा अत्यंत परिमार्जित और अभिव्यक्तात्मक हो गई है। राजभाषा बनने के बाद हिंदी जीवन और जगत के अनेक क्षेत्रों में प्रयुक्त होने लगी। इसी बीच केंद्र सरकार ने हिंदी सलाहकार समिति, राजभाषा कायार्न्वयन समिति, राष्ट्रपति के आदेश, संसदीय भाषा समिति जैसे वैधानिक माध्यमों द्वारा राजभाषा हिंदी को आगे बढाया और आज स्थिति यह है कि हिंदी लगातार विकसित और विस्तारित हो रही है। आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के जमाने में विदेशों में हिंदी का महत्व बढ़ रहा है। भारत की प्रगतिशील अर्थव्यवस्था ने विश्व में हिंदी का आकर्षण बढ़ाया है|

विदेशों में हिंदी शिक्षण पर अधिक बल दिया जा रहा है तथा प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक हिंदी का अध्ययन -अध्यापन हो रहा है।यह प्रशासनिक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी सभी प्रकार की उच्च कोटि में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन गया है। वर्तमान समय में भारतीय प्रैद्योगिकीय संस्थान के शोध छात्र अपना शोध प्रबंध भी हिंदी में प्रस्तुत कर रहें हैं।

हिंदी भाषा के विकास में हिंदी सिनेमा का भी विशेष योगदान है| हिंदी अध्यापन के लिए भी, सिनेमा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाता है तथा कई विदेशी ऐसे हैं जिन्होंने हिंदी सिनेमा देखकर हिंदी सीखी है। कुछ लोग भारतीय संस्कृति को करीब से जानने के लिए हिंदी सीखते हैं| कुछ व्यापारिक आवश्यकताओं के कारण और कुछ ऐसे भी है जिनका भाषाओं के प्रति लगाव उन्हें हिंदी सीखने के लिए प्रेरित करता है।

मध्यकाल से ही हिन्दीं फुटकर रुप में ही सही प्रशासनिक जीवन का हिस्सा थी।फिर हिन्दी की उपयोगिता के सामाजिक सरोकारों के तहत यह स्वतन्त्रता आंदोलन में मुख्य संपर्क भाषा बनी।धीरे-धीरे सांस्कृतिक, आर्थिक, भौतिक, साहित्यिक व प्रशासनिक दुनिया में इसने अपना स्थान बना लिया।

स्वतन्त्रता के पूर्व ही छायावाद में विभिन्न उपन्यासों में,कथासाहित्य में उसके परिमार्जित, अत्यंत व्यंजक, सक्षम और समर्थ भाषा के रूप में दर्शन होने लगते हैं। इसलिए लाख विरोध के बाद भी आजादी के बाद राष्ट्रभाषा के साथ-साथ राजभाषा के दर्जे की भी हिन्दीं ही अधिकारिणी बनी।

आजादी के बाद देश के कार्यव्यहारों में विविधता व संख्यात्मक इजाफा होने के कारण भाषा के कई रुप सामने आए –

1) प्रशासनिक हिन्दी
2) खेलकूद की हिन्दी
3) पत्रकारिता का हिन्दी

4) वाणिज्य व्यापार की हिन्दीं इत्यादि।

संपर्क भाषा हिन्दी - आज हिंदी सम्पूर्ण देश में तथा देश के बाहर विदेशों में भी संपर्क भाषा का केंद्र है।हिंदी स्वाधीन भारत में अधिकांश भारतीयों द्वारा प्रयुक्त होने वाली भाषा है। इसने बोलचाल के क्षेत्र में अनेकों कीर्तिमान स्थापित किए हैं। हिंदी किस तरह संपर्क भाषा के रूप में विकसित होकर जन - मन की अभिव्यक्ति का माध्यम बन रही है इस सन्दर्भ में प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय ने लिखा है कि, "अब हिंदी राजभाषा अथवा राष्ट्रभाषा की गंगा से विश्वभाषा का गंगासागर बनने की प्रकिया में है।आज विश्वस्तर पर उसकी स्वीकार्यता और व्याप्ति अनुभव की जा सकती है।आने वाला समय हिन्द और हिंदी का है।इस समय राजनीतिक, समाज –व्यवस्था, धर्म, दर्शन, संस्कृति, पर्यटन, मोरंजन, खेल और रोजगार के क्षेत्र में सबसे प्रभावी भाषा बनकर उभरी है।हमें एकजुट होकर अंग्रेजी के खिलाफ खड़े होना चाहिए। हिंदी और भारतीय भाषाओं को हम शिक्षा का माध्यम बनवाकर अपनी भाषाओं के भविष्य को सदा-सर्वदा के लिए सुरक्षित कर सकतें है।हमें अपनी सरकारों को इस बात के लिए तैयार करना होगा कि वें शिक्षा का माध्यम हिंदी और भारतीय भाषाओं को रखें और अंग्रेजी दूसरी विदेशी भाषाओं की तरह एक भाषा के रूप में सिखाई जाए।ऐसा करके ही हम आगामी चुनौतिओं के लिए अपने युवाओं को सक्षम, समझदार तथा नवाचार के योग्य बना सकते हैं।तभी वे विश्वस्तरीय मौलिक शोधकार्य कर सकेंगे।यह दौर खुली एवं विश्वस्तरीय प्रतिस्पर्धा का है। इस युग का मन्त्र है – 'स्पर्धा में जो उत्तम ठहरे रह जावें।' हम अपने नौनिहालों को हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में ही विश्वस्तरीय प्रतियोगिता के योग्य बना सकते हैं।यदि भारत को विश्व गुरु की अपनी स्वाभाविक छवि पुनः प्राप्त करनी है तो यह हिंदी और भारतीय भाषाओं द्वारा ही संभव है।" 1

हमें इस बात पर भी विचार करने की आवश्यकता है कि हिंदी साहित्य में साहित्य सृजन केवल हिंदी भाषा भाषियों ने नहीं किया है बल्कि भारत के लगभग सभी प्रान्तों के साहित्यकारों ने हिंदी में रचनाएं की हैं।सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सुनीतकुमार

चटर्जी ने भारतीय भाषाओं के सन्दर्भ में अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहा है कि," भारत की सभी भाषाओं में हिंदी का स्थान सबसे अधिक है।"
राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त ने हिंदी की व्यापकता को कविता के माध्यम से अभिव्यक्त करते हुए कहा है कि, " हिंदी का उद्देश्य यही है, भारत एक रहे अविभाज्य ,
यों तो रूस और अमरीका जितना है उसका जन राज्य ।
बिना राष्ट्रभाषा स्वराष्ट्र की, गिरा आप गूंगी असमर्थ ,
एक भारती बिना हमारी, भारतीयता का क्या है अर्थ ?"
आज हिंदी की व्यापकता का अनुमान इस संक्षिप्त आंकड़े द्वारा हम लगा सकते हैं कि भारत में हिंदी भाषियों की कुल संख्या 100 करोड़ है इनमें से करीब 50 करोड़ वे लोग हैं जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है।इसके बावजूद वें हिंदी बोल सकते हैं। आज विश्व के 136 देशों के महाविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन – अध्यापन हो रहा है जिससे यह सिद्ध होता है कि वर्तमान समय में विश्व का हर पांचवा या छठा व्यक्ति हिंदी का ज्ञान रखता है।
आज विश्व में 571 मिलीयन लोंगो की मातृभाषा हिन्दी है।

फिजी में 4 लाख लोग
संयुक्त अरब अमिराती – 2 लाख 83 हजार लोग
न्यूझिलंड – 82 हजार
सिंगापूर – 68 मिलीयन
जमैका – 50 मिलीयन
त्रिनिदाद व में 52 मिलीयन
मॉरिशस में -15000 हजार
फ्रैंज गाइना में 6000 लोग हिन्दी को अपनी मातृभाषा मानते है।

इसके अतिरिक्त हिन्दी जानने व समझने वाले लोगों की संख्या 602 मिलियन है।

जो कि विश्व जनसंख्या का 8.3% प्रतिशत है। अंग्रेजी / चीनी के बाद यह तीसरी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा बन चुकी है। स्पेनिश 534 मिलियन के साथ बंगाली चौथे स्थान पर जा चुकी है। बोली जाने वाली अर्थात संपर्क भाषा के रुप में प्रयोक्त की जाती है।इस क्रम में 17 वे नंबर पर आने वाली मराठी भाषा भी क्षेंत्र में यह भाषा लिपि व शब्दकोश को साम्यता के कारण आसान से समझी व बोली जाती है।

बीसवें नंबर पर उर्दू व 23 नंबर को गुजराती की लिपि अलग है,नहीं तो ये तीनों भाषा भाषी सहजता से एक दूसरे की बात को समझ संप्रेषित कर सकते है। 32 नंबर की उड़िया व 33 नंबर की पंजाबी भाषा – भाषियों की भी यही स्थिति है।

वैश्विक भाषाओं में भोजपुरी को अलग भाषा मानकर विश्व में भोजपुरी बोलने वालों की संख्या के आधार पर उसे 37 वां स्थान दिया गया है। जबकि सचाई यह है कि भोजपुरी हिंन्दी की ही उपभाषा है। बाहरी itenty नहीं। 40वें नं की मैथली व 46 नंबर की अवधी की भी यही स्थिति है।

इसके अतिरिक्त भारतीय उपमहाद्वीप से लेकर समस्त मिडिल ईष्ट तक हिंन्दी में आसानी संपर्क माध्यम बन जाती है।वह भाषा के रुप में लोगों के बीच बहुराष्ट्रीय संप्रेषण है।

आज अंग्रेजी – 1.452 बिलियन
67 देश की भाषा ही UN, NATO की अधिकृत भाषा है।EU
मंदारिन चीनी – 1.118 बिलियन
हिंन्दी – 343.9 लोगो की मातृभाषा
स्पेनिश – 460 मिलियन लोगो की मातृ भाषा 21 देश की अधिकृत भाषा है।
आर्टिक – 372 मिलियन 25 देश की अधिकृत भाषा है।
फ्रेंच- 300 मिलियन 29 देश की अधिकृत भाषा है।
उर्दू – 170 मिलियन लोगों की मातृभाषा है।
पंजाबी – 125 मिलियन लोगों की मातृभाषा है।

मराठी – 85 मिलियन लोगों की मातृभाषा है।
गुजराती - 61 मिलियन लोगों की मातृभाषा है।
भोजपुरी - 52 मिलियन लोगों की मातृभाषा है।
उड़िया – 35 मिलियन लोगों की मातृभाषा है।
नेपाली – 30 मिलियन लोगों की मातृभाषा है।
इस प्रकार यह मेरे अनुसार विश्व की तीसरी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है। और विश्व के बड़े हिस्से में लोग इसे समझ सकते है।वह लगातार वैश्विक विस्तार पा रही है।

प्रशासनिक क्षेत्र में हिंदी-

आज हिंदी राजभाषा का अधिकार पाने के कारण प्रशासनिक क्षेत्र में अपना अधिकार बनाने में प्रयासरत है।वह केंद्र सरकार के सभी विभागों कार्यलयों से लेकर हिंदी भाषी राज्यों के प्रशासनिक कामकाज की प्रमुख भाषा बनती जा रही है।यह भी देखा गया है कि सरकारी कार्यालयों,बैकों, निगमों,निकायों आदि में हिंदी के बोल-चाल के स्वरूप का बहुतायत मात्रा में प्रयोग होता है।हिंदी के माध्यम से सरल सम्प्रेषण सहज ही संभाव्य है क्योंकि यह सर्वाधिक लोगों द्वारा बोली और समझी जाने वाली सम्पर्क भाषा है एवं राष्ट्रीय एकता की सम्पूर्ण कड़ी है।प्राय: देखा गया है कि कार्यालयीन परिप्रेक्ष्य में दैनिक कार्यों में चर्चा के दौरान हिंदी का ही प्रयोग होता है एवं मौखिक निर्देश भी दिए जाते हैं। उच्च स्तरीय बैठकें, बोर्ड मीटिंग, नीति निर्धारण संबधी चर्चाएँ आजकल अधिकांशतया हिंदी में ही देखने को मिलती है। किसी भी सभा, सम्मलेन या संबोधन में अधिकांश उच्चतम अधिकारियों द्वारा भी हिंदी बोली जाती है और योजनाओं को हिंदी में ही समझाया जाता है।हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री के सभी संबोधन हिंदी में होते हैं ।यहाँ तक कि केंद्र सरकार की सभी गतिविधियों का माध्यम भौतिक रूप से हिंदी ही होता है।तकनीकी क्षेत्रों में भी परियोजनाओं आदि पर चर्चा करते समय कांट्रेक्टर या कामगारों को हिंदी में समझाया जाता है

जिससे वे परियोजना को भलीभांति समझ कर उसे ठीक तरह से निष्पादित कर सकें।

समग्रत: शासन – प्रशासन में, बोलचाल में हिंदी का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हो रहा है। यह सर्वविदित सत्य है कि शासन – प्रशासन के अधिकांश मौखिक आदेश –निर्देश हिंदी में ही दिए जाते हैं।परन्तु लिखित रूप में शासन – प्रशासन में हिंदी की वर्तमान स्थिति में प्रयोग की प्रचुर संभावनाएं हैं।

आज हिंदी राजभाषा का अधिकार पाने के कारण प्रशासनिक क्षेत्र में अपना ठौर बनाने में प्रयासरत है। वह केंद्र सरकार के सभी विभागों, कार्यालयों से लेकर हिंदी भाषी राज्यों के प्रशासनिक कामकाज की प्रमुख भाषा बनती जा रही है।यह भी देखा गया है कि सरकारी कार्यालयों, बैकों, निगमों निकायों आदि में हिंदी के बोल-चाल के स्वरुप का बहुतायत मात्रा में प्रयोग होता है।

हमारे वर्तमान प्रशासनिक क्षेत्र के सभी संबोधन हिंदी में होते हैं। यहाँ तक की केंन्द्र सरकार को सभी गतिविधीयों के माध्यम भौतिक रुप सें हिंन्दी ही होता है।

जब किसी भाषा को राजकीय संरक्षण प्राप्त होता है तो वह प्रशासन में प्रयुक्त होने लगती है। किन्तु हिन्दी की प्रशासनिक भाषा बनने की कहानी अत्यंत अनूठी है।

भारत में संप्रति 28 राज्य और 8 केंन्द्र शासित प्रदेश है।इनके गठन का मुख्य आधार भाषाई था।हिन्दी चूंकि देश में सर्वव्यापक है और सभी इसको बालते – समझते हैं।इसलिए यह एक लंबे संघर्ष के बाद यह राजभाषा के उच्चपद पर आसीन हो गई किन्तु आजतक भी प्रशासकीय, कार्यालयीन कामकाज पूर्णतः हिन्दी में नही होता है।कार्यालयीन, प्रशासकीय, भाषा की मुख्य विशेषता यह होती है उसका स्वरुप पूर्णतः अभिधात्मक होता है प्रशासकीय, जिससें कोई अन्य अर्थ निकलने की संभावना न हो।हिन्दी का कार्यालयीन

स्वरूप विकसित करने में आचार्य रघुवीर सहाय का बहुत बड़ा योगदान है। उन्होंने संस्कृत को नवीन पारिभाषिक शब्दावली को आधार के रुप में इस्तेमाल किया। उन्होंने संस्कृत की पाँच सौ धातुओं,बीस उपसर्गों एवं अस्सी प्रत्ययों से कार्यालयीन अंग्रेजी में प्रयुक्त शब्दों को स्थानापन्न करने के लिए हिंदी शब्द बनाए।

दूसरी ओर वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग ने अनुवाद का सहारा लिया।इसके कारण यह भाषा अत्यंत क्लिष्ट हो गई।इसका अंदाज तो डाॅ.रघुवीर को भी होने लगा था इसलिए उन्होंने कहा,'अंग्रेज़ी की प्रत्येक अर्थ-छाया के लिए हिंदी भाषा में भी नया शब्द होना चाहिए। ।।।। अंग्रेजी के तीन शब्द हैं: पहला प्रेरोगेटिव, दूसरा राइट और तीसरा प्रिविलेज।साधारण दृष्टि से ये तीनों एक जैसे शब्द हैं, किंतु प्रयोग की दृष्टि से तीनों अलग- अलग।जब अंग्रेजी में ये तीन शब्द हैं तो हिंदी में भी कम से कम तीन शब्द होने चाहिए (विशेषाधिकार, अधिकार, परमाधिकार)।जो सामान्य लोग हैं उनका तो एक ही शब्द से काम चल जाएगा, लेकिन जो विशेषज्ञ हैं उनको तीन शब्द ही चाहिए।उनका एक शब्द से काम नहीं चलेगा। यह बात चलेगी नहीं।पारिभाषिक शब्दावली तो कभी सरल हो ही नहीं सकती।यह हो सकता है कि बच्चों को सिखाने के लिए आप भाषा सरल कर दें, किंतु पारिभाषिक शब्द सरल नहीं हो सकते।सरल उन शब्दों को कहते हैं जो बिना पढ़े-लिखे लोग, कुली, बच्चे, गाँव के किसान, मजदूर लोग बोलते हैं। जब भी आपके सामने यह बात आये, आप अपने से विचार करें।

*अशोक वाजपेयी अपने व्याख्यानों में अक्सर यह संस्मरण बताते हैं। उन्होंने अपनी रचना 'हिंदी की बोलियाँ : एक बातचीत' में सरकारी हिंदी पर संस्कृत के प्रभाव की आलोचना भी की है। देखें, अग्निहोत्री और कुमार, वही: 116-120।

अधिकारियों को समझाइए कि भाषा सरल करने का अर्थ होगा पारिभाषिक भाषा का पारिभाषिकपन समाप्त करना।

डॉ.रघुवीर के विचारों की विस्तार से जानकारी के लिए केंद्रीय हिंदी निदेशालय के सहयोग से प्रकाशित उनकी अंग्रेजी में लिखी गयी पुस्तक देखें: रघुवीर, हिंदी की ऊर्जा, अनु। रामचंद्र शर्मा, भगवती प्रकाशन, दिल्ली, 1998; यह उद्धरण उनके एक लेख 'पारिभाषिक शब्द' से लिया गया जिसे धर्मवीर ने उद्धृत किया है। देखें, डॉ. धर्मवीर,। बाद में कोशिस की गई कि सरकारी हिन्दी को सरल व सुबोध बनाया जाए पर उसमें अनुदित होने के कारण कृत्रिमता आ गई थी। जो आज भी बरकरार है।

भारत सरकार के राज-भाषा विभाग द्वारा प्रकाशित हिंदी के प्रयोग संबंधी आदेशों के संकलन पर निगाह डालने से यह स्पष्ट हो जाता है। सत्तर और अस्सी के दशक में केंद्र सरकार का एक हिस्सा रघुवीरी कारिस्तानी के खिलाफ जद्दोजहद करते हुए दिखा।गृह मंत्रालय का 1976 में जारी किया गया एक कार्यालय ज्ञापन और फिर 1988 का एक कार्यालय ज्ञापन यह बताता है कि देर से ही सही पर सरकार को अपनी गलती समझ में आ गयी थी।ये ज्ञापन साफ़ तौर से कहते हैं कि सरकारी हिंदी लिखते समय न तो संस्कृत लिखने की कोशिश की जाए और न ही देवनागरी लिपि में अंग्रेजी। अंग्रेजी में मसविदा लिख कर अनुवाद करने के बजाय उसे मूल हिंदी में ही तैयार किया जाए ताकि अनुवाद के अटपटेपन से बचा जा सके। सरकारी हिंदी अलग तरह की नहीं। होती, वह भी सरल और सुबोध होनी चाहिए, उसमें आमफ़हम शब्दों का प्रयोग किया जाए, दूसरी भाषाओं के शब्दों के इस्तेमाल से परहेज़ न किया जाए, समझाने के लिए अंग्रेजी के शब्दों को कोष्ठक में लिख दिया जाए, वाक्य छोटे और सरल बनाये जाएँ। कुछ इसी तरह की हिदायतें केंद्र-राज्य संबंधों पर बने सरकारिया आयोग ने भी दीं। 59 संविधान पारित होने के साठ साल बाद 2011 में भारत सरकार का राज-भाषा विभाग 2011 सभी मंत्रालयों और विभागों के लिए यह आदेश निकाल पाया है कि सरकारी हिंदी में उर्दू, फारसी और अंग्रेजी स्रोतों के आमफ़हम शब्दों का इस्तेमाल करने से परहेज नहीं की जानी चाहिए ताकि सरकारी काम-काज की भाषा सरल और सुबोध बन सके दो उदाहरण

यह कृत्रिमता शब्दावली गठन में नहीं अपिल वाक्य संस्था में भी है। इसलिए इसे अपनाने में प्रैक्टिकल समस्याएं सामने आ जाती है।

सरकारी नौकरी में इतने वर्ष रहने के बाद मेरा अनुभव यह है। कि डीलींग हॅण्ड नवीन ड्राफ्ट बनने में कतराते है। एक वो विषय की जटिलताओं के कारण दुसरा भाषा का अभिधात्मक स्वरुप देने के चक्कर में भाषा का Interpretation कुछ और व हो जाए, इसी कारण ज्यादातर Copy – Paste के माध्यम से मूल ड्राप्ट तैयार करने की प्रवृत्ती रहती है।जिसके कारण समान विषय पर हर प्रकार को संस्थत्मक टिप्पणी पत्र के ड्राफ्ट शब्द समान रहते है। चुंकि अंग्रेजी में पहले से ही देश का सब कामकाज चल रहा था। तो उसी को सुविधाजनक मानते हुए 75 वर्ष बाद तक स्थिती में कोई बदलाव नहीं आ पा रहा है। किंतु यदि हम शब्दावली की और वाक्य विन्याप्त को इस कृत्रिमता और क्लीष्टता को थोड़ा प्राकृतिक व सरल बना पाए तो आज राजनैतिक वातावरण में हिन्दी की स्वीकार्यता कार्यालयीन कामकाज में बढ़ जाएगी।

आजकल केन्द्र सरकार में सभी फाइल्स ई –ऑफिस प्रणाली पर ही होती है। अब वहाँ physical life की संकल्पना शेष नहीं रह गई। अस परिस्थिती में अंग्रेजी में ही टिप्पणी लिखने की बाध्य है। एक तो हिन्दी टाईपिंग आती नहीं। मेरा मानना है कि यदि ई- ऑफिस प्रणाली को हिन्दी में Wookable बनाना है। तो सभी अधिकारिर्यों, कर्मचारियों को हिन्दी में भी की – बोर्ड उपलब्ध करके देना चाहिए और हिन्दी ट्यूटर व टाईप कक्षा पर हिन्दी वर्तनी के विकल्प अंग्रेजी की तरह उपलब्ध होंगे और Word में हिन्दी के लिए भी incorr अशुध्द वर्तनी पर लाल लाइन आएगी तथा उस पर क्लिक करने पर उसके शुध्द विकल्प आएगे तो इससे कार्यालय में दैनंदिन कामों में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा मिलेगा।

राजभाषा हिन्दी की एक अन्य समस्या को डॉ भोलानाथ तिवारी में अपनी पुस्तक "राजभाषा हिन्दी" में रेखांकित किया है।"पूरा हिन्दी प्रदेश अपने आप में काफी बड़ा है। बन गया है।

इस संदर्भ में अपने महाराष्ट्र राज्य में काम करने के अनुभव को मैं दर किनार नहीं कर सकती।महाराष्ट्र की राजभाषा मराठी है। और वह वास्तविक राजभाषा है। चाहे e –office प्रणाली हो या भौतिक संचिकाएं यहाँ फाईलवर्क,बैठकें,अनुदेश ,अधिसूचनाएँ,दिशानिर्देश,नियम,अधिनियम सभी मराठी भाषा में ही हैं। और सभी उनका उपयोग गर्व के साथ करते हैं।

एक तो मराठी भाषियों ने मोड़ी लिपि को त्यागकर नागरी को अपना लिया है।इससे मराठी हिन्दी व संस्कृत की शब्दावलियों का आदान-प्रदान भी आसान हो गया दूसरा फायदा यह हुआ कि मराठी भाषी व्यक्ति के लिए पूरे भारत में काम करनें में कोई खास कठिनाई या बाधा नहीं आती। अगर हम अन्य भारतीय भाषाओं जैसे की गुजराती, मराठी, तमिल, तेलगु, कन्नड, मलयालम, बंगाली, पंजाबी से कुछ शब्दावलियों का आदान – प्रदान करेंगे तो इससे हिन्दी को बढ़ावा मिलेगा। आजकल ग्र मंत्रालय से इस संदर्भ में ने उत्तर – पूर्व के राज्यों की भाषाओं के देवनागरीकरण का बीड़ा उठाया है। यदि यह प्रयास सफल हो गया तो ना केवल भारत की एकता व अखंडता में अधिक मजबूती आएगी बल्कि हिन्दी के व्यापक विस्तार और उसके राजभाषा के रुप में स्थापित करने के सार्थक प्रयासों को और अधिक मजबूती और सफलता प्राप्त होगी।

भोलानाथ तिवारी ने परिवर्धित देवनागरी वर्णमाला का नमूना अपनी पुस्तक राजभाषा हिन्दी में प्रस्तुत किया है। जिसके प्रयोग लगभग सभी भारतीय भाषाओं के देवनागरी में अभिव्यक्त किया जा सकेगा।

परिवर्धित देवनागरी वर्णमाला

देवनागरी वर्णमाला
स्वरः अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ मात्राएँ: । ि ी ु ू ृ ॠ े ै स्वरः ओ औ अं अः मात्राएँ: े ै ा ा: व्यंजन : क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण ड़ ढ़ त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह संयुक्त व्यंजन क्ष त्र ज्ञ श्र हल चिन्ह – \

जब हिन्दी व देवनागरी में सभी भाषाओं को अभिव्यक्त करने की नैसर्गिक क्षमता उत्पन्न हो जाएगी तो कार्यालयीन कामकाज में हिन्दी के प्रयोग को भी बल प्राप्त होगा।इस काम के लिए कई विभागों ने अपनी परिभाषिक शब्दावलियाँ बना ली है।जैसे विधि न्याय विभाग की विधि शब्दावली और रेल्वे

मंत्रालय ने 1978, 79, 81 में अपनी पारिभाषिक शब्दावली की चार पुस्तके प्रकाशित की है।

रिजर्व बॅंक ने 1980 में बॅंकिग शब्दावली प्रकाशित की है। 1973 में आयकर विभाग ने आयकर शब्दावली प्रकाशित की। 1980 में भारतीय साधारण बीमा निगम ने अपनी शब्दावली प्रकाशित की। राजभाषा के रुप में हिन्दी के प्रचार, प्रसार, एकरुपता, लाने के लिए राजभाषा कोश का निर्माण होना चाहिए।

आजकल डिजिटल डिक्शनरी के विकास का काम भी तेजी से चल रहा है। हम मिलकर प्रयत्न करेंगे तो निश्चित ही हिन्दी विश्व की संपन्न व प्रौढ राजभाषा व कार्यालयीन भाषा बन जाएगी।

विधि के क्षेत्र में हिंदी – विधि के क्षेत्र में हिंदी की समस्याएं पारिभाषिक शब्दावली एवं वैधिक सरंचनात्मक भाषा के गठन से जुडी हुई है।इस समय भाषा में भाषा की अभिधात्मकता कार्यलयीन भाषा से भी अधिक होनी चाहिए।

विधि के क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग को लेकर ब्रिटिशकाल में ही हिंदी की मांग उठने लगी थी।१९वीं शताब्दी में अदालती एवं कार्यालयीन भाषा के रूप में हिंदी को उर्दू के समकक्ष स्थान देने की मांग जोर – शोर से उठाई गई थी।उस समय के नागरिकों और हिंदी भाषी विद्वानों का यह मानना था कि हिंदी को हिंदी को विधि के क्षेत्र की भाषा बना कर ही रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराए जा सकते है। अतः जब भारतीय संविधान लागू हुआ और उसमें हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिया गया तब यह सुनिश्चित हो गया कि हिंदी लगातार विधि के क्षेत्र में भी प्रयुक्त होती रहेगी और विकास के नए आयामों को प्राप्त करेगी।

भारतीय संविधान समितियों में संविधान का प्रारूप तैयार करते समय हिंदी के लिए आफिशियल लैंग्वेज अर्थात् राजभाषा का आधिकारिक भाषा के रूप में प्रयोग किया है,तब से अब तक विधि के क्षेत्र में हिंदी का विकास होता जा रहा है वह लगातार विकसित हो रही है।अहिन्दी भाषी क्षेत्र के न्यायालयों एवं उच्च

न्यायालयों में भी उसका प्रयोग हो रहा है।हिंदी ने उच्चतम न्यायालय के दरवाजे पर भी दस्तक देकर याचिका स्वीकृत करवा ली है। यह लगातार विधि के क्षेत्र में भी अपनी प्रभावी उपस्थिति दर्ज करा ली है। वैसे तो विधि के क्षेत्र में प्रयुक्त होनेवाली हिंदी लगातार विकसित और फल – फूल रही है। इस समय अनेक संस्थाओं और विद्वानों द्वारा यह मांग भी की जा रही है कि विधि के क्षेत्र में हिंदी का अधिक से अधिक प्रयोग हो। इस कारण उच्च न्यायालयों से लेकर सर्वोच्च न्यायलय सब हिंदी को विधि के क्षेत्र में प्रयुक्त होनेवाली एक प्रमुख भाषा के रूप में देखने लगे हैं।अभी हाल ही में उत्तर प्रदेश सरकार ने भूमि के रजिस्ट्रेशन में प्रयुक्त होने वाली उर्दू, फारसी शब्दावलियों के स्थान पर हिंदी शब्दावली के प्रयोग पर जोर देने वाले अधिनियम को पारित किया है।विधि के क्षेत्र में हिंदी की उपयोगिता के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए महात्मा गाँधी ने लिखा है कि, "हमारी कानूनी कार्यवाहियों में हिंदी का प्रयोग होना चाहिए क्योंकि जब तक ऐसा नहीं होता तब तक प्रजा को राजनैतिक कार्यों की जानकारी नहीं मिलेगी।" कहीं न कहीं गाँधी जी द्वारा कही गई बात पर अब अमल किया जा रहा है और वर्तमान में विधि के क्षेत्र में भी हिंदी अपनी उपस्थति दर्ज करा रही है। क्योकि विधि की भाषा भले ही क्लिष्ट हो जाए पर इसमें अर्थ छटाएं नही हो सकतीं।इसमें भाषा के Interpretations भी नहीं हो सकते।हर लिखी बात का एक ही अर्थ निकलना चाहिए।आजादी के समय हिन्दी को राजभाषा का सन्मान मिला,किंन्तु न्यायालयीन भाषा के रुप में देश के उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालय की भाषा आज भी अंग्रेजी ही बनी हुई है। यदापि जिले स्तर तक न्यायिक व्यवस्थाओं में स्थानीय भाषाओं के प्रयोग को मान्यता दी गई है।

यद्यपि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 348(2) में प्रावधान है, कि राष्ट्रपति से पूर्व सहमति लेकर किसी राज्य के राज्यपाल उस हिन्दी या राज्य की राजभाषा को उच्च न्यायालय की कार्यवाही को करने में प्राधिकृत कर सकेगें किन्तु उच्चतम न्यायालय की भाषा हर हाल में अंग्रेजी ही होगी।भारत के विधिआयोग ।इनमे 18 वी रिपोर्ट-(2008)

अभी तक उत्तर प्रदेश, बिहार व मध्य प्रदेश राज्यों कें राज्यपालों ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 348/2 के तहत अपने उच्च न्यायालयों में कार्यवाहियों के लिए हिन्दी क प्रयोग को प्राधिकृत कर दिया है। इतना ही नहीं इन राज्यों में उच्च न्यायालय के निर्णयों व आदेशों में हिन्दी का प्रयोग संभव होगा।

अन्य राज्यों ने भी अपने अपने भाषा को उच्च न्यायालय की भाषा के रुप में प्राधिकृत करने का प्रस्ताव भेजा है। ऐसे करने वाले राज्यों में है, गुजरात, छत्तीसगढ़, व तमिलनाडु किंतु इनकी मांग को स्वीकार नहीं किया गया है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 210 के प्रावधान के अनुसार राज्यों के विधान मंडलों में क्रमशः उस राज्य की राजभाषा हिन्दी या अंग्रेजी का प्रयोग किया जा सकेगा।इसके प्रावधान ने हिन्दी भाषी राज्यों में विधी बनाने की भाषा व विधानमंडल की भाषा के रुप में हिन्दी के व्दार खोल दिए है।

विज्ञान के क्षेत्र में हिंदी-

स्वाधीन भारत में विज्ञान के क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग को पर्याप्त बढ़ावा मिल रहा है। आज अनेक वैज्ञानिक पत्रिकाएँ हिंदी में निकल रही है।यदि भारत सरकार के विविध वैज्ञानिक संस्थानों द्वारा वैज्ञानिक पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही है तो दूसरी ओर अमेरिका जैसे देशों में 'विज्ञान प्रकाश' जैसी उच्चस्तरीय वैज्ञानिक पत्रिका का प्रकाशन हो रहा है। वर्तमान वैश्वीकरण के दौर में हिंदी विज्ञान एवं प्रद्योगिकी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियां अर्जित की है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल में 'विश्व प्रपंच की भूमिका' शीर्षक से जर्मन दार्शनिक हेगल की पुस्तक 'रिडल ऑर यूनिवर्स' का हिंदी अनुवाद किया जिसमें भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, प्राणी विज्ञान और शरीर विज्ञान जैसे विषयों पर गंभीर सामग्री उपलब्ध होती है। धीरे- धीरे विज्ञान के अनेक क्षेत्रों में हिंदी भाषा का प्रयोग बढता गया है आज हिंदी में 4000 से अधिक वैज्ञानिक लेखकों का एक विशाल समुदाय है जिन्होंने 10,000 से अधिक वैज्ञानिक पुस्तकें लिखी है। इस सन्दर्भ में पूर्व प्रधानमंत्री पी। वी। नरसिंहराव ने लिखा है की, "विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी के क्षेत्र

में विदेशी भाषा से कोई राष्ट्र न तो मौलिक ढंग से विकास कर सकता है और न ही अपनी विशिष्ट वैज्ञानिक एवं प्रोद्योगिकीय पहचान बना सकता है।

वर्तमान डिजिटल युग में हिंदी किस तरह विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अपनी उपस्थति दर्ज करा रही है। इस पर विचार करते हुए प्रो.करुणाशंकर उपाध्याय ने लिखा है कि, "आज कोरोना संकट ने प्रोद्योगिकी एवं डिजिटल आधारित शिक्षा पद्धति अपनाने के लिए विवश कर दिया है।हम भलीभांति जानते हैं कि कोरोना कहर से शिक्षा क्षेत्र सर्वाधिक प्रभावित हुआ है जिसके चलते करोड़ों छात्रों की शिक्षा व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा रहा है।हमें अधिकांश सत्रों की परीक्षाएं रद्द करनी पड़ी और शेष के विकल्प ढूँढने पड़ रहे हैं।बावजूद इसके एक प्राध्यापक होने के नाते हम उत्तरदायित्वों का पूरी निष्ठा से पालन करते हुए तकनीक की सहायता से छात्रों को शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। वीडियो कांफ्रेंसिंग, सिस्को, वेब एक्स, गूगल मीट, गूगल क्लासरूम, ज़ूम, ई – पाठशाला, यू – ट्यूब रिकॉर्डिंग, टी. सी. एस. आयन क्लासरूम एवं स्मार्ट फोन आदि माध्यमों से हम विद्यार्थियों को पढ़ा रहें हैं, उनकी कक्षाएं ले रहे हैं।हम आंतरिक मूल्यांकन के कार्य भी ऑनलाइन ही कर रहें हैं। हम ई – कंटेंट अथवा अध्ययन सामग्री भी उन तक पहुंचा रहे हैं इसके अलावा पीएच. डी. के विद्यार्थियों को ऑनलाइन मार्गदर्शन प्रदान कर रहें हैं।आगामी समय में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के क्षेत्र में आमूलचूल परिवर्तन देखने को मिलेंगे।ऑनलाइन शिक्षण सामग्री कैसे उपलब्ध हो, ऑनलाइन परीक्षाएं कैसे हो,ऑनलाइन पाठ्यक्रम कैसे पढ़ाए जाएं, इस दृष्टि से बड़े परिवर्तन होने की उम्मीद है। वर्तमान विश्व में ज्ञान – विज्ञान के जो नवीनतम साधन और उपल्धियाँ है, उस सन्दर्भ में छात्रों को द्यतन रखना बेहद आवश्यक है इसलिए हम सब तकनीकी साधनों के माध्यम से कार्य कर रहें हैं।आगामी समय तकनीक आधारित शिक्षा व्यवस्था और तकनीक केन्द्रित विश्व- व्यवस्था का साक्षी बनने जा रहा है"।2"वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली नामक जर्नल में भारत विश्व में तीसरे स्थान पर तथा विज्ञान साहित्य के प्रकाशन में तेरहवें स्थान पर है। शीर्षस्थ

विज्ञान संस्थाओं से ८० की सदी शोधकार्य विदेशी पत्रिकाओं में छपते हैं या विदेशी संगोष्ठियों में में प्रस्तुत किए जाते हैं। भारतीय प्रयोगशालाओं में भारत की गरीब जनता की गाढ़ी कमाई से भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा सिद्ध – शोध कार्य को इस तरह विदेशों में प्रकाशित करने से भारत की जनता का कोई लाभ नहीं है, बल्कि इससे अप्रत्यक्षता प्रतिभा पलायन को जोर मिलता है, यह सब टाला जा सकता है, यदि हम सचेत हो जाएं और स्वभाषा का माध्यम अपनाएं। इसके लिए एक पंच सूत्रीय कार्यक्रम निम्लिखित है-

- बदली हुई वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप विज्ञान–प्रोद्योगिकी के क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग हेतु एक उपयुक्त नीति निर्धारित हो एवं कार्यक्रम बने, प्रथमतः यह कार्य संगोष्ठियों के स्तर पर हो।
- तकनीकी हिंदी के प्रयोग–प्रसार व हिंदी में शोध–पत्रादि एवं तकनीकी प्रतिवेदन लेखन पर व्यापक प्रशिक्षण की परियोजना चलाई जाए और समयबद्ध लक्ष्य निर्धारित किए जाएं।
- देश की अंग्रेजी विज्ञान पत्रिकाओं में अनिवार्यता हिंदी खंड हो तथा सभी अंग्रेजी शोध – पत्रों का सारांश हिंदी खंड में हों तथा सभी अंग्रेजी शोध- पत्रों का सारांश हिंदी में अनिवार्यत: दिया जाए। तकनीकी संगोष्ठियों में हिंदी सत्र की व्यवस्था हो।
- राजभाषा कार्यान्वयन के अंतर्गत वार्षिक कार्यक्रमों में हिंदी में विज्ञान संबंधी प्रशिक्षण, प्रकाशन संगोष्ठी आदि का ब्यौरा शामिल करें एवं तिमाही प्रतिवेदन में ऐसी उपलब्धियों का जिक्र हो।
- विज्ञान–प्रोद्योगिकी के क्षेत्र में हिंदी के विविध प्रयोग हेतु उचित प्रोत्साहन की व्यवस्था हो एवं ऐसे कार्यों को उचित मान्यता एवं महत्व दिया जाए"।7

जनसंचार के क्षेत्र में हिंदी-

चूँकि हिंदी भारत वर्ष के सबसे बड़े समुदाय द्वारा प्रयुक्त होने वाली भाषा है। अतः जनसंचार के क्षेत्र में भी इसकी विशेष भूमिका रही है। विगत दो शताब्दियों में जनसंचार के क्षेत्र में और वहां प्रयुक्त होनेवाली हिंदी में भी लगातार परिवर्तित हो रही है। जनसंचार के परम्परागत माध्यमों से लेकर आधुनिक माध्यमों तक हिंदी का धडल्ले से प्रयोग हो रहा था। "आज प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रानिक मीडिया, सिनेमा, टीवी, साहित्य – संस्कृति प्रशासन, राज-काज और पाठ्य पुस्तकों द्वारा हिंदी प्रसारित हो रही है। हर माध्यम की अपनी अलग –अलग भाषा शैली है। जन- जन की हिंदी, विज्ञान – तकनीकी, न्याय – पालिका और विदेशियों द्वारा प्रयुक्त हिंदी का भी अध्ययन किया जा सकता है। हमारे अपने देश में तमाम राज्यों और प्रदेशों की अपनी – अपनी बोली भाषा है। इस बोली भाषा के लहजे में प्रयुक्त हों वाली हिंदी भी गजब की है। इन सभी को मिलाकर मुंबई की खिचडीनुमा हिंदी बनती है और अंडरवर्ल्ड की जो टपोरी हिंदी बोली जाती है उसका तो अंदाज ही कुछ निराला है। समाज व्यवस्था में जैसे परिवर्तन होता है वैसे ही समय काल के अनुसार भाषा के स्वरुप में भी परिवर्तन होता रहेगा। कल संस्कृतमय भाषा थी आज यांत्रिकी और तकनीकी से प्रेरित अंग्रेजी मिश्रित हिंदी प्रयुक्त हो रही है। जब बात टेकनोलॉजी की होती है तो अनायास अंग्रेजी का वर्चस्व दिखाई देने लगता है। क्लिष्ट शब्दों के बजाय अंग्रेजी के शब्दों को जस का तस देवनागरी में लिखकर हिंदी के शब्दकोश को बढाया जाना समय की जरुरत है । जैसे- रेल, टेलीविजन, फैक्स, टेलीग्राम , ट्रेन, पोस्ट, बैंक, मोबाइल, कंप्यूटर, रेडियो, टेलिविजन, इंटरनेट,ई-मेल, डाउनलोड, डॉक्टर, ट्रक्टर, मीडिया, यूनिकोड, इंजीनियर, पेपर, प्रिंटर, बटन, इत्यादि, सैकड़ों ऐसे शब्द हैं जो जस के तस रोमन अंगेजी से देवनागरी हिंदी में प्रयुक्त हो रहे है। पहले तो नहीं पर अब धड़ल्ले से इस तरह के शब्दों का प्रयोग रोजमर्रा के जीवन में हो रहा है"3।

सोशल मीडिया की प्रकृति फास्ट फूड की तरह है। इसके कारण हिंदी आलोचना और हिंदी साहित्य जगत पर बुरा प्रभाव भी पड़ा है। इसी तरह कई गलत और

अनावश्यक ख़बरें या आर्टिकल्स भी प्रसारित होते है। यह साहित्यिक दुनिया के कन्फेशन जैसा ज्यादा दिखाई देता है। सोशल मीडिया ने नवीन विधाओं वाली नई हिंदी को भी जन्म दिया है जो डिजिटल पब्लिकेशन्स तथा लिट फेस्ट के आयोजन से आच्छादित है। "धीरे – धीरे अब सोशल मीडिया पर साहित्यिक सामग्री आडियो और वीडियो के रूप में भी आने लगी है। यूट्यूब जैसा सोशल मीडिया इसका सशक्त माध्यम है।अक्सर यह भी देखने में आता है कि सोशल मीडिया के माध्यम से कई गलत जानकारियां भी प्रसारित होती रहती है जिस पर लगाम लगना जरूरी है। यह किसी के निजी विवेक पर आधारित है। कई बार कुछ ऐसी सामग्री या कविताओं को किसी बड़े लेखक या कवी के नाम पर प्रसारित किया जाता है जिसकी रचना उस लेखक या कवि ने कभी नहीं की जाती है। अपने एक लेख में बालेन्दु शर्मा लिखते हैं कि, 'सोशल मीडिया साहित्य को नई विधाएं दे सकता है मगर अब तक ऐसा नहीं हो पाया है। एक ज़माने में ब्लॉगिंग की बड़ी धूम थी। ब्लॉगिंग एक सशक्त विधा बन सकती थी किन्तु वह माध्यम भर बन कर रह गई । अपनी रचना धर्मिता को दूसरों तक पहुंचाने का माध्यम वैसे ही है जैसे कोई भीअन्य माध्यम है या हो सकता है। जैसे टेलिविजन, सिनेमा या नुक्कड़ नाटक साहित्यिक विधाएं अभी भी नहीं है क्योंकि उनके लेखन की कोई स्पष्ट दिशा नहीं है। दूसरी ओर रेडियो नाटक और रिपोतार्ज आदि को देखिए जिनका विधाओं के रूप में पर्याप्त विकास हुआ है। सोशल मीडिया की ही तरह ये भी पारंपरिक माध्यम ही थे किन्तु वे साहित्य के साथ तारतम्य बनाने में सफल रहे।" 4

इस दौर में अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में सोशल मीडिया की अपनी अहम् भूमिका है। माना कि यह मान्यता प्राप्त माध्यम नहीं है पर पूरे विश्व में फैला इसका जाल, व्यापकता का एहसास दिलाता है। आज जन-जन के हाथों तक फैला यह एक सशक्त माध्यम है। इसमें एस। एम। एस।, यूट्यूब, वाट्सअप, ट्विटर, इन्स्टाग्राम, औरकुट, फेसबुक, मैसेंजर, मेल इत्यादि का समावेश किया जा सकता है जो पलक झपकते ही विश्व के एक कोने की खबर दुसरे कोने तक पहुंचा

देते हैं। इंटरनेट सोशल मीडिया का प्रमुख माध्यम है। जिसके सहारे यह परिचालित होता है। महज एक क्लिक की सहायता से मिनटों में कोई बात, घटना, साहित्य, संस्कृति, संवाद, तस्वीरें, मनोरंजन, थीम्स, शॉर्ट फिल्म्स, नौकरी के अवसर, विज्ञापन इत्यादि हजारों – हजार लोंगों तक पहुँच जा रहें हैं। इसकी दखल अब चैनल, पत्रकारिता एवं मनोरंजन के अन्य माध्यम भी लेने लगे है। इन माध्यमों में कई भाषाओँ का प्रयोग हो रहा है। अतः हिंदी के पक्ष में बात की जाए तो हिंदी के प्रचार – प्रसार में सोशल मीडिया अहम भूमिका निभा रही है।

"कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर 'मेन्युअल कैसलट' इसे मास कम्युनिकेशन के बजाय 'मास सेल्फ कम्युनिकेशन' का दर्जा देते हैं मतलब हम जनसंचार तो करते है लेकिन जन – स्व – संचार करते है और हमें पता नहीं होता कि हमारा यह संचार विश्व के कितने लोगों तक पहुंचेगा। इस दौर में शार्टकट लिखने के चक्कर में भाषाओं के स्वरूप को बिगाड़ने और एक नई भाषा संस्कृति को जन्म देने में भी सोशल मीडिया मुख्य भूमिका निभा रही है"5 ।

सोशल मीडिया पर हिंदी कई विधाओं में प्रयुक्त हो रही है, जैसे कि यहाँ पर कला, साहित्य, संस्कृति, संवाद, रिपोतार्ज, घटना – प्रसंग इत्यादि का जिक्र किया गया है। हिंदी के स्तर और मानक रूपों की कोई बंदिश नहीं है। भारत में सोशल मीडिया के प्रति बढ़ता क्रेज अब पारंपरिक सामाजिक रिश्तों की नई तस्वीर पेश कर रहा है। इसका प्रयोग छोटे – बड़े, अमीर – गरीब, महिला – पुरुष, सभी वर्ग के लोग कर रहें हैं। एक सर्वे के मुताबिक भारत में फेसबुक इस्तेमाल करने वालों की संख्या अमेरिका से अधिक है। यह जितना लाभदायी है, उतना ही नुकसानदेह भी।

जनसंचार के विविध माध्यमों को हम निम्न रूप में देख सकते हैं-

1- **लिखित माध्यम – समाचार पत्र** – भाषा के विकास, प्रचार – प्रसार में समाचार पत्रों का अप्रतिम योगदान रहता है। हिंदी भाषा के प्रचार – प्रसार और विकास में हिंदी समाचार पत्रों की विशेष भूमिका रही है।

हिंदी में प्रकशित पहला साप्ताहिक समाचार पत्र 'उदन्त मार्तंड' है जिसे पण्डित जुगलकिशोर मिश्र ने 30 मई 1826 को कलकत्ता से प्रकाशित किया था। हिंदी का पहला दैनिक पत्र समाचार सुधा वर्षण (1854) भी कलकत्ता में ही प्रकशित हुआ था। उन्नीसवीं सदी में बुद्धि प्रकाश, सत्य दीप, धर्मप्रकाश, तत्वबोधनी, जन प्रकाश, कविवचन सुधा, हिंदी प्रदीप, नवभारत, पंजाब केसरी, आज, राजस्थान पत्रिका ने न केवल बीसवीं सदी में प्रकाशवान बनाए रखा बल्कि इक्कीसवीं शताब्दी में भी इनमें से कुछ पत्र अपना परचम लहरा रहें है। प्रसार संख्या की दृष्टि से हिंदी समाचार पत्र अंग्रेजी सहित अन्य सभी भारतीय भाषाओं से काफी आगे है। वर्ष 2016 – 17 में समाचार – पत्रों की कुल संख्या 48,80,89,490 थी जिसमें सबसे अधिक प्रसार संख्या हिंदी समाचार – पत्रों की थी – 28,89,75,773। इस अवधि में अंग्रेजी में प्रसार संख्या 5,24,27,005 थी। किसी एक समाचार पर की प्रसार संख्या की दृष्टि से भी हिंदी आगे है इसमें दैनिक भास्कर की प्रसार संख्या सर्वाधिक है। जबकि दूसरे स्थान पर समाचार पत्र टाइम्स ऑफ इण्डिया है जिसकी प्रसार संख्या 42,68,703 है।

पत्रिकाएँ – समाचार पत्रों की भांति पत्रिकाएँ भी समाज के विचारों और साहित्य की संवाहिका होती है। पत्रिकाओं में उत्कृष्ट साहित्य मिलता है। हिंदी पत्रकारिता स्वतंत्रता से पूर्व अत्यंत ओजपूर्ण, तेजस्विनी, निर्भय तथा राष्ट्रीय चेतना की संचारिणी रही है। भारतेंदु हरिश्चंद, अम्बिका प्रसाद व्यास, गणेश शंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जैसे महान साहित्यकारों ने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से राष्ट्रीय नवजागरण की साधना की। हिंदी पत्रिकाओं से हिंदी की कई साहित्यिक विधाओं की सुरुआत हुई है। राष्ट्रभाषा हिंदी के आन्दोलन में सरस्वती, माधुरी, विशाल भारत, सुधा, हंस, धर्मयुग, और कादम्बिनी आदि पत्रिकाओं

का विशेष योगदान रहा है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका के माध्यम से हिंदी के अलंकारिक और परिष्कृत और व्यवस्थित रूप को साहित्य सृजन में विशेष स्थान दिया जिससे हिंदी भाषा का विकास सत्साहित्य में हुआ।

पत्रिकाओं की संख्या और प्रसार संख्या की दृष्टि से हिंदी में प्रकाशित पत्रिकाओं की संख्या अधिक है। वर्ष 2016 – 17 में 11600 पत्रिकाएँ हिंदी में प्रकशित हुई थी जिनकी कुल प्रसार संख्या 23,89,75,773 थी। जबकि अंग्रेजी में 1487 पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई थी जिनकी प्रचार संख्या 5,65,77,000 थी। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिंदी में प्रकाशित पत्रिकाओं ने हिदी के प्रचार – प्रसार में अपनी महतवपूर्ण भूमिका निभाई है और अभी भी केवल भारत में ही नहीं बल्कि विश्व के कई देशों में भी इन पत्रिकाओं के माध्यम से हिंदी भाषा फलफूल रही है।

2- श्रव्य माध्यम –

जनसंचार के माध्यमों में भारत में रेडियो का अत्यंत महत्वपूर्ण और विशिष्ट स्थान रहा है। लेनिन ने कहा था कि "रेडियो बिना कागज़ और बिना दूरी का समाचार पत्र है। डॉ। अर्जुन तिवारी ने लिखा है कि "भारतीय आर्षग्रंथों में नाद ब्रम्हां और शब्द ब्रहम का उल्लेख मिलता है। वेदों में वर्णित है कि ध्वनि से सृष्टि की रचना हुई। ध्वनि में ही ब्रम्हांड का विस्तार होता है तथा ध्वनि में ही वह विलीन हो जाता है।

ध्वनि और शब्द के सामंजस्य का सर्वोत्तम माध्यम रेडियो है। रेडियो मौखिक परंपरा का एक आधुनिक रूप है। भारत में रेडियो का आगमन 23 जुलाई 1927 को 'हुआ जिसका उद्घाटन इन्डियन ब्राडकास्टिंग कंपनी' के नाम से तत्कालीन वायसराय 'लार्ड इरविन' ने किया है। इसके कुछ बर्ष के उपरांत जब 'सरदार वल्लभभाई पटेल' भारत के

सूचना और प्रसारण मंत्री बने तो उन्होंने ने केवल रेडियो पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों की अवधि बधाई बल्कि सभी क्षेत्रीय बोलियों कोभी कार्यक्रम रेडियो पर प्रसारित करवाए जिसके कारण ने केवल हिंदी भाषा अपितु क्षेत्रीय बोलियों का भी विकास हुआ और रोजगार के नए मार्ग भी प्रशस्त हुए।

विविध भारती पर प्रसारित कार्यक्रमों की लोकप्रियता निर्विवाद है। भारत सरकार गाँवों का का देश है और यहाँ की अधिकांश जनता ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है जहाँ पर आज भी रेडियो संचार का प्रमुख माध्यम है। रेडियो के माध्यम से हिंदी तथा क्षेत्रीय बोलियों में कार्यक्रम प्रसारित होते है। रेडियो पर प्रसारित कार्यक्रमों के माध्यम से हिंदी का मानक और अखिल भारतीय स्वरुप भी विकसित होता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि रेडियो ही लोकतंत्र का संबल और विश्व में विचारों के सम्प्रेषण का एक श्रेष्ठ माध्यम है।

3- दृश्य श्रव्य माध्यम –

भारत में टेलिविजन का आगमन 1964 में विक्रम साराभाई के प्रयास से हुआ। आधुनिक संचार क्रान्ति में टेलिविजन की भूमिका अत्यंत महतवपूर्ण है। टेलिविजन किसी राष्ट्र की प्रगति का प्रमाणिक व्याख्याता होता है और राष्ट्र के स्वरुप का दर्पण भी होता है। विगत 10 वर्षों में टेलिविजन ने हमारे जीवन की दिशा बदल दी है। टेलिविजन में प्रसारित कार्यक्रमों के यों तो हर भाषा के दर्शक है परन्तु हिंदी का स्थान उनमें अग्रणी हैं। हिंदी के कार्यक्रम न केवल भारत में बल्कि विदेशों में भी देखें जाते है। आज सामान्यत: 872 से अधिक चैनल है जिनमें से 264 के भी ज्यादा केवल हिंदी के है और कई अहिन्दी चैनलों पर भी हिंदी के कार्यक्रम दिखाए जाते हैं।

मनोरंजक चैनलों के अलावा समाचार आधारित चैनलों की भी बाढ़ सी आ गई है। देश में 24 से अधिक चैनल 24 घंटों में हिंदी भाषा में ही समाचार प्रस्तुत करते है। इससे हिंदी के विकास और प्रचार प्रसार में टेलिविजन का महत्वपूर्ण योगदान सिद्ध होता है। टेलिविजन चैनलों पर प्रसारित कार्यक्रमों में प्रयुक्त भाषा के स्वरूप पर विचार करने पता चलता है कि जहाँ भाषा की स्वरूपगत विशेषताएं सभी में सामान हैं वहीँ कुछ कार्यक्रम और चैनल विशेष पर भिन्नता भी दृष्टिगोचर होती है। चाहे धारावाहिकों के संवाद की भाषा हो या फिर समाचारों की भाषा हो उनमें हिंदी का नया स्वरूप देखने को मिलता है। टेलिविजन पर प्रसारित इन कार्यक्रमों में हिंदी का जो रूप देखने को मिलता है वह वस्तुतः आधुनिक शिक्षित वर्ग के शहरी परिवेश की हिंदी के रूप को प्रस्तुत करता है। संवादों के माध्यम से अखिल भारतीय स्तर पर विकासमान होती आधुनिक हिंदी की झलक मिलती है।

4- कम्प्यूटर -

बीसवीं शताब्दी की सबसे क्रांतिकारी और महत्वपूर्ण उपलब्धि है - कम्प्यूटर। कप्यूटर का सबसे पहले विकास और प्रयोग 1944 में हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध में एटमबम की संबंधित गणनाओं के लिए कंप्यूटर का प्रयोग किया गया और शब्द संसाधनों के लिए अनुसंधान कार्य जोर-शोर से शुरू किए जाने लगे। बीसवीं सदी के नवें दशक में व्यक्तिगत कंप्यूटर के निर्माण से कंप्यूटर के क्षेत्र में एक ऊंची छलांग लगी और इसके साथ विभिन्न भाषाओं के सॉफ्टवेयरों का विकास शुरू हुआ। हिंदी भाषा के भी डास परिवेश में – सुलेख, शब्दरत्न, अक्षर, शब्दमाला जैसे सॉफ्टवेयर विकसित किए गए। किन्तु डास परिवेश में काम करने वालों की अपनी अलग सीमाएं थी। जैसे ही विंडोज का आगमन हुआ कंप्यूटर पर कार्य करने के अनंत द्वार खुल गए। हिंदी के अनेक प्रकार के फॉन्ट आ गए, जो अंग्रेजी के लोकप्रिय सॉफ्टवेयरों में

यथा एम।एस वर्ड, एक्सल, पी। पी। टी आदि के साथ अंग्रेजी के साथ सम्मिलित हो गए, अब इनमें हिंदी भाषा में कार्य करना अत्यंत सरल हो गया है।

कंप्यूटर के माध्यम से हिंदी का प्रयोग बढाने में उनके सॉफ्टवेयरों की विशेष भूमिका रही है जो कंप्यूटर की सहायता से टेलीविजन पर दूसरी भाषाओं के प्रसारित कार्यक्रमों में उपशीर्षक हिंदी में देने के लिए उपयोग में लाए जाते हैं। इंटेरनेट के आ जाने से तो सम्पूर्ण विश्व एक छोटे से गाँव में तब्दील हो गया है। दुनिया भर में हिंदी भाषा जानने वालों के लिए इंटरनेट पर हिंदी में बनी बेबसाइटों की उपलब्धता उनके लिए विश्वज्ञान के द्वार बन कर सामने आई है अनेक बेबसाईट हिंदी में उपलब्ध है जिससे हिंदी के प्रचार – प्रसार और विकास को बल मिला है।हिंदी में इमेल भेजने की सुविधा को हम भाषाई कंप्यूटर विकास के क्षेत्र में एक अनुपम उपलब्धि के रूप में देख सकते हैं।

इस प्रकार हम यह स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि जनसंचार के क्षेत्र में हिंदी स्वंत्रता प्राप्ति के पहले पूर्व अपना वर्चस्व स्थापित कर चुकी थी। जनसंचार के विविध माध्यमों के द्वारा आज भी हिंदी सूचे विश्व में बोली और समझी जा रही है।

तकनीक और हिंदी-

आधुनिक तकनीकी के क्षेत्र में हिंदी ने अपनी उपस्थिति दृढ़तापूर्वक जब्त कराई है। कम्पूटर के आगमन के साथ ही उस पर हिंदी के प्रयोग को लेकर भी चुनौती उपस्थित हुई । जिसका हिंदी जगत में अच्छी तरह से सामना किया। "हिंदी में सर्वप्रथम कम्पूटर के सन्दर्भ में ही शब्द संसाधन का कार्य प्रारंभ हुआ। यह भाषा संसाधन का आरंभिक सोपान है। किन्तु आरंभिक चरण में रोमन लिपि के माध्यम से ही हिंदी पाठों का कुंजीयन किया जाता था।अब भारत और विदेशों में शब्द संसाधन के अनेक पॅकेज विकसित किए गए है, जिनमें हिंदी में द्विभाषिक रूप

से या फिर बहुभाषिक रूप में विभिन्न भारतीय भाषाओं के माध्यम से शब्द संसाधन के कार्य किए जा सकते हैं। इनमें प्रमुख हैं – अक्षर, मल्टीवर्ड, शब्दमाला, शब्दरतन, बाइस्क्रिप्ट, आलेख, भारती ए। एल। पी। आदि पैकेजों में से कुछ में वे तमाम सुविधाएं भी उपलब्ध है जो 'वर्डस्टार', वर्ड परफेक्ट माइक्रोसॉफ्ट, जैसे अधुनातन वर्ड प्रोसेसिंग पैकेजों में सुलभ है। किन्तु मात्र शब्द संसाधन से किसी भी भाषा में कंप्यूटर संबंधी महत्वपूर्ण अनुप्रयोगों को संपन्न नहीं किया जा सकता इसलिए भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने केन्द्रीय सरकारी कार्यालयों के सन्दर्भ में कंप्यूटर संबंधी भाषा नीति की घोषणा करते हुए स्पष्ट कर दिया था कि किसी भी कंप्यूटर को तभी द्विभाषी मन जाएगा, जब उसमे शब्द संसाधन के साथ – साथ डाटा संसाधन की सुविधा भी हिंदी – अंग्रेजी में, अर्थात द्विभाषिक रूप में उपलब्ध होगी।" 6

डाटा – संबंधी कार्य हिंदी में संपन्न करने के लिए दो विकल्प उपलब्ध है। हार्डवेयर विकल्प और सॉफ्टवेयर विकल्प। जहाँ तक हार्डवेयर विकल्प का सम्बन्ध है, इस दिशा में आई। आई। टी। कानपुर का प्रयास विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके द्वारा विकसित यह प्रणाली जिस्ट (गेआफिक एंड इंटेलीजेंस बेस्ड स्क्रिप्ट टेकनोलॉजी) प्रोद्योगिकी के रूप में प्रसिद्ध है। इस पर आधारित विभिन्न अनुप्रयोगों के विकास का दायित्व भारत सरकार के सी- डैक नामक संस्थान को सौप गया है।जिसमें परम सुपर कंप्यूटर का विकास भी किया। सी। डैक (सेंटर पर डेवलपमेंट आफ एडवांस कम्प्यूटिंग) पुणे, महाराष्ट्र में स्थित है। जिस्ट प्रौद्यिगिकी के अंतर्गत पर्सनल कंप्यूटर के मदर बोर्ड पर एक 'प्लग इन कार्ड' लगा दिया जाता है। इसी कार्ड को जिस्ट कार्ड कहा जाता है। इस कार्ड की सहायता से आई। बी। एम। पी। सी। कंप्यूटरों पर शब्द संसाधन तथा डाटा – संसाधन के लिए प्रचलित रोमन के सभी पैकेजों का प्रयोग द्विभाषिक या बहुभाषिक रूप में किया जा सकता है। यूनिक्सजेनिक्स परिचालन प्रणालियों के लिए 'जिस्ट कार्ड' के बजाय 'जिस्ट टर्मिनल की आवश्यकता होती है। जिस्ट प्रोद्योगिकी के अनार्गत यह सुविधा सभी भारतीय भाषाओं में सुलभ है और

अब यह फारसी, अर्बे, सिंहली, तिब्बती और रूसी लिपि में भी उपलब्ध हो गई है।

इसके विपरीत सॉफ्टवेयर विकल्प के अंतर्गत कंप्यूटर में किसी भी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नही होती, ये पॅकेज फ्लापी डिस्क के रूप में उपलब्ध होते हैं। उए पॅकेज दो प्रकार के होते हैं। पहला समर्पित सौफ्टवेयर प्रोग्राम दूसरा सामान्य उद्देश्यीय सौफ्टवेयर परिवेश, समर्पित सौफ्टवेयर प्रोग्राम के अंतर्गत हिंदी में डाटा – संसाधन का एक सॉफ्टवेयर है – 'देवबेस'(द्विभाषी डाटा बेस प्रबंध प्रणाली) यह सॉफ्टवेयर ही बेस-3 प्लस के अंतर्गत हिंदी में काम करने के लिए यह एक अच्छा पैकेज है। लेकिन जी बेस के संशोधित पॅकेज (डी – बेस4) में हिंदी में काम करने के लिए इसमें संशोधन की आवश्यकता होगी।

सामान्य उद्देश्यीय सॉफ्टवेयर परिवेश के अंतर्गत रोमन लिपि के सभी सॉफ्टवेयर पैकेजों (जैसे डी। बेस, लोटस, साफ्ट बेस, क्लिपर, फाक्सप्रो, औरेकल आदि।) में हिंदी हिंदी में कार्य किया जा सकता है, उसके अलावा यह परिवेश बेसिक, कोबाल, सी पास्कल आदि प्रोग्रामिंग भाषाओं में तैयार किए प्रोग्रामों में भी हिंदी को आंतरिक क्षमता प्रदान करता है। वस्तुतः यह परिवेश जिस्ट के ही समकक्ष है। जो कार्य जिस्ट के माध्यम से हिंदी में किए जाते है, वें सभी कार्य विकल्प के रूप में इस परिवेश के अंतर्गत भी किए जा सकते हैं। आर। के रिसर्च फाउंडेशन द्वारा विकसित 'सुलिपि' नामक यह साफ्टवेयर जिस्ट के सामान ही सामान्य उद्देशीय साफ्टवेयर है, जिसके माध्यम से एम। एस। डास पर आधारित पर्सनल कंप्यूटर पर कार्यालय स्वचालन (आफिस आटोमेशन) अंग्रेजी में साथ – साथ किए जा सकते हैं। जिस्ट व सुलिपि, दोनों के अंतर्गत भारतीय भाषाओं में परस्पर लिप्यांतरण की सुविधा मौजूद है, किन्तु सुलिपि में यह सुविधा हिंदी, पंजाबी, बँगला और गुजराती तक ही सीमित है, जबकि जिस्ट में यह सुविधा सभी भारतीय भाषाओं में सुलभ है।

इसी प्रकार यदि हम हिंदी भाषा की वैज्ञानिकता पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि हिन्दी एक वैज्ञानिक भाषा है|भाषा विज्ञान की दृष्टि से हिन्दी को संगणकीय प्रौगरैमिंग की भाषा बनना अत्यन्त सरल है किन्तु इस दिशा में पर्याप्त काम नही हुआ है| भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने हन्दी प्रवाह नाम का सॉप्टवेयर तैयार किया है|

हिदी प्रवाह का भाव पक्ष जितना सबल है, तकनीकी पक्ष भी उतना ही मजबूत है|इस पाठ्यक्रम को भी "लीला पैकेज" प्रबोध, प्रवीण एवं प्राज्ञ की भाँति अंग्रेजी के अलावा 14 भारतीय भाषाओं क्रमश: असमिया, बोडो, बांग्ला, गुजराती, कन्नड, कश्मीरी, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, तमिल एवं तेलुगू के माध्यम से जनसाधारण तक ऑनलाइन वेबवर्जन एवं मोबाइल ऐप के रुप में उपलब्ध कराया गया है|

"लीला हिंदी प्रवाह" के वेबवर्जन एवं मोबाइल एवं मोबाइल ऐप में पाठों सें संबंधित शब्दों को समझने एवं समझाने के लिए बृहत शब्दावली का व्यवस्था भी की गई है| इस बृहत शब्दावली में पाठों में सम्मिलित शब्दों के अर्थ यूज़र द्वारा चयनित भाषा, में वर्णक्रमानुसार दिए गए हैं| इस भाग की विशेषता यह है कि इसमें शब्दों के उच्चारण के साथ-साथ रिकॉर्ड की सुविधा भी उपलब्ध करवाई गई है| यूज़र पाठ में आए शब्दों का अर्थ अपनी भाषा में देखने एवं जानने के अलावा हिंदी में उनका उच्चारण सुनने के बाद स्वयं उस शब्द को बोलकर रिकॉर्ड कर सकते है और फिर मूल शब्द एवं स्वंय व्दारा रिकॉर्ड किए हुए शब्द को एक के बाद एक सुनकर उच्चारण संबंधी अपनी कमियों को दूर कर सकते है| यूज़र, अपनी सुविधा के अनुसार जब चाहे, जितना चाहें और जितनी बार चाहें, इस पाठ्यक्रम को पढ़ सकते हैं|

इसी क्षेत्र में माइक्रोसॉफ्ट और गूगल ने कुछ सुविधाएं प्रदान की हैं-

(a)माइक्रोसॉफ्ट और गूगल के इंडिक कीबोर्ड (आईएमई) ऐसे ही दो टूल हैं जिनकी मदद से आप बिना किसी खर्च और प्रशिक्षण के कम्प्युटर पर आसानी

से टाईपिंग कर सकते हैं और ये आपके सिस्टम पर केवल कुछ सेकंड में इंस्टॉल हो जाते हैं| माइक्रोसॉफ्ट का इंडिक लैंग्वेज इनपुट टूल इसकी तीन सुविधाओं की वजह से बेजोड़ है|

(b) गूगल पर उपलब्ध "ट्रांसलेट" एक अच्छा विकल्प है| यह विविध भाषाओं में अनुवाद हेतु ऑनलाइन सुविधा है और इसके लिए हमें wwwltranslatelgooglelcolinपर विज़िट करना होता है| वर्तमान में हम गूगल अनुवाद पर उपलब्ध "गूगल टूलकिट" नामक सुविधा पर चर्चा करते हैं| गूगल अनुवादक टूलकिट 8 जून, 2009 में गूगल इंक व्दारा जारी किया गया था|

शब्दकोश

(a) ऑनलाइन शब्दकोश के तहत www.shabdkosh.com एक उपयोगी वेबसाइट है जो हिंदी के अतिरिक्त बांग्ला, गूजराती, कन्नड, मलयालम, तमिल, तेलगू, पंजाबी, मराठी जैसी नौ भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी शब्दों के अर्थ उपलब्ध कराती है|

(b)ई-महाशब्दकोश राजभाषा विभाग व्दारा प्रस्तुत एक ऑनलाइन शब्दकोश है जिसका विकास प्रगत संगणक विकास केंद्र (C-DAC)के व्दारा किया गया है जो कि एक व्दिभाषी- व्दिआयामी उच्चारण शब्दकोश है|

वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग का ई-शब्दकोश

(a)वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना सन् 1961 को की गई थी| यह आयोग हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के लिएवैज्ञानिकी एवं तकनीकी शब्दावली का निर्माण एवं समन्वय कार्य के अलावा तकनिकी शब्दावली, पारिभाषिक शब्दावली तथा एन्साइक्लोपीडिया का निर्माण करता है|

(b) हाल ही आयोग अपनी वेबसाइट पर ऑनलाइल परिभाषिक शब्दावली की सुविधा भी प्रारंभ की है|

हिंदी विश्व की एक विशाल जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करती है | अत: ऐसे में हमारे यह उत्तरदायित्व अत्यधिक बढ़ जाता है कि हम इसे तकनीक विकास का लाभ देते हुए विश्व की अग्रनी भाषाओं की श्रेणी में स्थापित करने का प्रयास करें|

सूचना प्रौद्योगिकी कम्प्यूटर पर आधारित सूचना प्रणाली का आधार है| सूचना प्रौद्योगिकी, वर्तमान समय में वाणिज्य और व्यापार का अभिन्न अंग बन गयी है| संचार क्रन्ति के फलस्वरुप अब इलेक्ट्रॉनिक संचार को भी सूचना प्रौद्योगिकी का एक प्रमुख घटक माना जाने लगा है| एक उद्योग के तौर पर यह एक उभरता हुआ क्षेत्र है| इसने विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं को जोड़कर अक वैश्विक अर्थव्यवस्था को जन्म दिया है| यह नवीन अर्थव्यवस्था अधिकाधिक रुप से सूचना के रचनात्मक व्यवस्था एवं वितरण पर निर्भर है| इसके कारण व्यापार और वाणिज्य में सूचना का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है| इसीलिए इस अर्थव्यवस्था को तूचना अर्थव्यवस्था (Information Economy) या ज्ञान अर्थव्यवस्था (knowledge Economy) भी कहा जाने लगा है|

हिन्दी सिनेमा –

हिन्दी सिनेमा की समाज में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है|भारतीय फिल्म निर्माता-निर्देशकों ने अपनी बेहतर प्रस्तुतीकरण से हिंदी सिनेमा को शिखर पर पहुँचा दिया है| विश्व में सबसे ज्यादा आज हिंदी भाषा में फिल्मों का निर्माण होता है| हिंदी सिनेमा उद्योग ने भारत में ही नहीं विदेशों में भी अपना एक नजदीकी रिश्ता कायम किया है। देश-दुनिया में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में हिंदी सिनेमा का अहम योगदान है| स्पीलबर्ग की फिल्म जुरासिक पार्क ने भारत मे जितना धन अपने हिंदी संस्करण से अर्जित किया वह इसके अंग्रेजी के मूल फिल्म से दो

गुना अधिक था| हिंदी भाषा बाजार और मुनाफे की कुंजी बन रही है| आज हॉलीवूड की फिल्म निर्माता भी भारत में अपनी विपणन नीति बदल चुके है| उन्हें पता है की उनकी फिल्में हिंदी में रुपांतरित होने के बाद मूल अंग्रेजी में प्रदर्शित फिल्म से कही अधिक मुनाफा कमा सकती है| पश्चिमी फिल्मों की ब्लॉकस्टर फिल्मों के हिंदी संस्करण की हमारे देश में जितनी खपत होती है वह अंग्रेजी संस्करण की संख्या से अधिक है| भारतीय हिंदी सिनेमा का हिंदी भाषा की व्यापक लोकप्रियता और इसे संप्रेषण के माध्यम के रुप में आम स्वीकृती दिलाने में अहम योगदान है|हिंदी में बनी फिल्में हिंदी भाषी नागरिकों से ज्यादा अहिन्दी भाषी नागरिकों द्वारा देखी जाती है। हिंदी भाषा के प्रचार – प्रसार में हिंदी सिनेमा के योगदान के विषय में विचार करते हुए दयानंद अवस्थी ने लिखा है कि, "भारतीय हिन्दी सिनेमा को लगभग 106 वर्ष हो गए हैं इस पूरे शतकीय दौर में न जाने कितने विषय आए और कितने विषय गए किन्तु माध्यम का भाषायी ताना बाना हिन्दी भाषा के इर्द गिर्द बुना रहा है। आज हिन्दी भाषा विश्व की चौथी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है, इथेनोलोग मार्च 2019 के 22वें संस्करण के अनुसार विश्व की दस प्रमुख भाषाओं में (अधिक जनसंख्या के द्वारा बोली जाने वाली भाषा के अनुसार) चीन की मंदारिन प्रथम, स्पेन की स्पेनिश द्वितीय, ब्रिटेन की अंग्रेजी तृतीय तथा भारत की हिन्दी चतुर्थ स्थान पर है हालांकि क्रमश: पांचवें एवं दसवें स्थान पर भी भारतीय भाषा बंगाली एवं मराठी ही है जिन्होने हिन्दी भाषा के प्रसार पर खूब मदद की है। आज संचार माध्यमों सोशल मीडिया,टेलीविज़न के धारावाहिकों मोबाइल के वेब धारावाहिकों आदि के तीव्र विकास नें इस प्रसार को और अत्यधिक गति दे दी है। "हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक पुरुषोत्तम अग्रवाल कहते हैं कि भूमंडलीकरण ने भारतीय जीवन को गहरे में जाकर प्रभावित किया है लेकिन इसका मतलब ये नहीं है कि हिंदी खत्म हो जाएगी और अंग्रेजी उसका स्थान ग्रहण कर लेगी। वो कहते हैं"भारत की 54 फीसदी आबादी 25 साल से कम उम्र के नौजवानों की है और भूमंडलीकरण ने उसकी आकांक्षाएं और चिंताएं बदली हैं। सूचना और आभासी दुनिया की नागरिकता के धरातल पर किसी कस्बे या महानगर के युवा में ज्यादा फर्क नहीं

है। दोनों एक वर्चुअल वर्ल्ड में जी रहे हैं और रियल टाइम में चैट कर रहे हैं।" इसका जीता जागता उदाहरण है टी वी में दिखाये जाने वाले विभिन्न प्रतिस्पर्धात्मक धारावाहिकों, रियालिटी शो जैसे नृत्य अथवा गायन में समान रूप पूरे भारत के कोने कोने से प्रतिभागियों का अपनी काला कौशल का प्रदर्शन ।

यह संभवत: हिन्दी भाषा के प्रसार का स्वर्णकाल कहा जाएगा जब मनोरंजन के माध्यम से भाषा नें अपनी जड़ें वैश्विक रूप में जमाई है इसमें हिन्दी फिल्मों का योगदान सर्वोपरि माना जाएगा। शायर और गीतकार गुलज़ार ने 8 वें विश्व हिंदी सम्मेलन के तहत 'हिन्दी के प्रचार प्रसार में हिन्दी फिल्मों की भूमिका' सत्र की अध्यक्षता करते हुए यह टिप्पणी की थी कि हिन्दी के प्रचार-प्रसार में फिल्मों ने साहित्य अकादमियों और नेशनल बुक ट्रस्ट से ज्यादा योगदान दिया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सिनेमा, मीडिया और हिन्दी का नाता बहुत पुराना है। जैसे हिन्दी हिन्दुस्तान की जान है, वैसे ही हिन्दुस्तान में हिन्दी के बगैर सिनेमा और मीडिया की कल्पना ही नहीं की जा सकती। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में सिनेमा और मीडिया का योगदान बहुत ही अतुल्य रहा है।हिन्दीतर भाषी क्षेत्रों में सिनेमा और मीडिया ने हिन्दी को जीवनदान दिया है।आज आप भारत के किसी भी कोनें में पहुँच जाएँ वे हिन्दी इसलिए समझ पाते हैं कि उन्होने उसे फिल्मों अथवा अन्य मनोरंजन के माध्यम से देखा व सुना है आज विदेशियों को यदि अपना प्रचार करना होता है, चाहे वह सिनेमा का हो चाहे उनके उद्योग का हो, उन्हें हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी का सहारा लेना ही पड़ता है,भारत में सिनेमा का श्रीगणेश दादा साहब फाल्के द्वारा 1912 में निर्मित और 1913 में प्रदर्शित रजा हरिश्चंद फ़िल्म से माना जाता है। इसके उपरांत प्रथम वाक फ़िल्म आलामारा का निर्माण 1931 में हुआ था तब से लेकर आज तक भारत में असंख्य फिल्मों का निर्माण हो चुका है। जन सामान्य में हिंदी को लोकप्रिय बनाने का महत्वपूर्ण योगदान हिंदी सिनेमा को दिया जा सकता है। भारत में अपनी शैशवावस्था से ही हिंदी के विकास और प्रसार में फिल्मों ने अहम् भूमिका अदा की हैं। सन

1931 में 27 फिल्में बनी थी जिनमें से 22 फिल्में हिंदी में बनी थी। भारत में प्रतिवर्ष 1000 फिल्में बनती हैं जिनमें से सबसे अधिक संख्या हिंदी फिल्मों की होती है। हिंदी फिल्मों भाषा में उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक प्रचलित विभिन्न भाषाओं – बोलियों के शब्द सहज रूप से मिलते हैं अधिकांश हिंदी फिल्मों का निर्माण अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में होता है जो हिंदी के व्यापक प्रचार और उसकी लोकप्रियता को सिद्ध करता है। यदि हम हिंदी सिनेमा के साथ – साथ टेलिविजन की बात करें तो हिंदी के प्रचार – प्रसार में टी। वी पर प्रसारित किए जाने वाले धारावाहिक अपने महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहें है। शहरों से लेकर छोटे गांवों तक के लोग जो कि वहां बोली जाने वाली क्षेत्रीय बोली से ही परिचित थे अब उन्हें हिंदी का ज्ञान भी हो गया है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि हिंदी सिनेमा का हिंदी भाषा के प्रचार – प्रसार में अत्याधिक योगदान है।

निष्कर्ष

सारांश यह है कि स्वाधीन भारत में लगातार हिंदी भाषा का विकास हो रहा है। वह सभी क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है।हिंदी अब भारतीय उपमहाद्वीप में संपर्क भाषा बन गई है।वह राजभाषा होने के कारण शासन, विधि, विज्ञान और तकनीक सभी क्षेत्रों में प्रयुक्त हो रही है । वह जनसंचार माध्यमों की प्रमुख भाषा बन कर उभरी है।आज हिंदी सिनेमा हजारों करोड़ का व्यापार कर रहा है। अतः हम कह सकते हैं की हिंदी सिनेमा और मीडिया के क्षेत्र में सबसे लोकप्रिय और उपयोगी भाषा बन गई है। संक्षेप में हिंदी उन तमाम क्षेत्रों में प्रयुक्त होने के कारण लगातार विकसित और समृद्ध हो रही है। आज उसका वैश्विक विस्तार बेहद आश्वस्तिकारक है।

संदर्भ सूची

1. भाषा पत्रिका (द्वैमासिक), मार्च – अप्रैल 2021, वर्ष -60, अंक -2, पृष्ठ संख्या – 14 -15
2. वही पृष्ठ संख्या – 10
3. प्रौद्योगिकी बैंकिंग और हिंदी, पृष्ठ संख्या- 101 , रमेश यादव

4. वही.
5. वही.
6. भाषा : राष्ट्रभाषा और राजभाषा हिंदी, डॉ. डी. सत्यलता, पृष्ठ संख्या 236
7. वही.
8. साहित्य सिनेमा सेतु पत्रिका (रील से रियल तक) ISSN : 2584-0819, लेख – ‘ हिंदी सिनेमा में हिंदी का बदलता स्वरुप’

देवनागरी लिपि एवं फ़ॉन्ट

डॉ.के. पद्मा रानी
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
शासकीय महिला महाविद्यालय,खम्मम, तेलंगाना पिन :507003
मो . नं. 9177486704
ई.मेल: raninpadma11@gmail.com

सारांश

हिंदी भाषा आज जिस विकसित और परिनिष्ठित अवस्था में है , इसका एक मुख्य कारण उसकी लिपि देवनागरी भी है। हिंदी भाषा को आसानी से सीखने और प्रयोग करने में देवनागरी लिपि का स्वरूप अत्यंत सहयोगी रहा है । हिन्दी भाषा समय के साथ परिवर्तित होती रही है । उसी प्रकार देवनागरी लिपि आज सभी भाषाओं को अभिव्यक्त करने के लिए अपने आप को परिमार्जित करती आई है। हिन्दी के साथ ही भारत की कई भाषाओं के भावों का अंकन करने के लिए देवनागरी लिपि उत्कृष्ट लिपि है, इसमें कोई मतभेद नहीं । तकनीकी क्षेत्र में आज हिंदी का प्रयोग विशेष रूप से प्रयोग में लाया जा रहा है। कंप्यूटर की दुनिया में होने वाले विकास के साथ-साथ हिंदी की देवनगरी ने अपने आपको अद्यतन किया हुआ है। कंप्यूटर में आज अनेक ऐसे तकनीक हैं , जिसके माध्यम से भारत की देवनागरी लिपि से जुड़ी भाषाओं को टाइप किया जा सकता है । देवनागरी लिपि को उसके उच्चारण स्थान के अनुसार स्वर और व्यंजन में वर्गीकृत किया गया है ,जिसके कारण इसके उच्चारण और लेखन में स्पष्टता और वैज्ञानिकता रहती है ।

बीज शब्द : परिनिष्ठित, अवस्था, अद्यतन फॉन्ट ,मानक, वर्तनी

शोध आलेख

हिंदी भाषा आज जिस विकसित और परिनिष्ठित अवस्था में है , इसका एक मुख्य कारण उसकी लिपि देवनागरी भी है। हिंदी भाषा को आसानी से सीखने और प्रयोग करने में देवनागरी लिपि का स्वरूप अत्यंत सहयोगी रहा है । हिन्दी

भाषा समय के साथ परिवर्तित होती रही है। उसी प्रकार देवनागरी लिपि आज सभी भाषाओं को अभिव्यक्त करने के लिए अपने आप को परिमार्जित करती आई है। हिन्दी के साथ ही भारत की कई भाषाओं के भावों का अंकन करने के लिए देवनागरी लिपि उत्कृष्ट लिपि है, इसमें कोई मतभेद नहीं।हिंदी भाषा से जुड़े अनेक ज्ञान-विज्ञान, तकनीकी क्षेत्र के विषय अत्यंत आसानी से और पूर्णता के साथ हिंदी भाषा में लिखे जा रहे हैं। हिंदी के तकनीकी विकास के साथ भी देवनागरी ने स्वयं को तकनीकी स्वरूप में ढाल दिया है ।आज के युग में देवनागरी लिपि प्राचीन स्वरूप से हटकर बिल्कुल अद्यतन रूप में अनेक कार्यों में संलग्न है।

टाइपराइटर से लेकर आज के कंप्यूटर जगत के तकनीकी उपकरणों के क्षेत्र में देवनागरी लिपि सक्रिय है।देश-विदेश के अनेक कार्यों में देवनागरी लिपि का प्रयोग अत्यंत सार्थकता के साथ हो रहा है। देवनागरी के अनेक फ़ॉन्ट आसानी से प्रयोग में ले जा रहे हैं। जो उसके वैज्ञानिक संबल का प्रमाण है।

देवनागरी लिपि अपने विकास के समय से ही भाषायी प्रयोग के अनुकूल रही है।यह जटिलता से सरलता की ओर अग्रसर होती आई है। समय-समय पर होने वाले परिवर्तनों के आधार पर इसमें अक्षरों के लिखने का तरीका बदलता आया है।जैसे कि ण का प्राचीन रूप कुछ (रण्।)इस प्रकार था ,लेकिन अब ण इस प्रकार लिखा जाता है ।अ ,झ, आदि भी आसानी से लिखने योग्य बदल गए हैं।लेखन में समय की बचत और स्थान के संक्षिप्त करने के लिए देवनागरी लिपि में ऐसे सुधार होते आए हैं।

देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता के लिए यह एक सटीक प्रमाण है कि आज यह सर्वत्र अत्यंत सुगमता और सरलता से प्रयोग में लाई जा रही है। इस कारण केवल हिंदी ही नहीं भारत की कई आर्य भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि प्रयुक्त है। जैसे कि पंजाबी, मराठी, नेपाली ,कोंकणी, बोडो, भोजपुरी, मैथिली, संथाली आदि के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग होता है। " भारतवर्ष के अधिकांश ग्रंथ

,पत्रिका ,समाचार पत्र आदि देवनागरी लिपि में प्रकाशित होते हैं। वही हमारी राष्ट्रीय लिपि के रूप में स्वीकृत है। देवनागरी लिपि की लोकप्रियता का कारण इसकी वैज्ञानिकता है तथा अन्य समस्त लिपियां की अपेक्षा उसकी श्रेष्ठता। भाषा विज्ञान के विद्वानों के मत अनुसार देवनागरी लिपि संसार की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है। इसमें संसार की लगभग समस्त भाषाओं की ध्वनियों और शब्दों को उच्चरित करने का सामर्थ्य है। नागरी लिपि व्यवस्थित रूप में निर्मित लिपि है। " (1)वर्णमाला ,मात्राएं , शब्द भंडार आदि भाषा प्रयोग की समस्त क्षमताओं के साथ उपलब्ध हैं। संस्कृत ,पालि ,प्राकृत ,अपभ्रंश आदि देवनागरी लिपि में ही लिखे गए हैं। इसलिए देवनागरी पूरे भारत में सर्व सुलभ रही है। ब्राह्मी लिपि से उत्पन्न देवनागरी आज देश की प्रतिनिधि लिपि बन गई है। जिससे कि यह आसानी से सीखी जा सकती है। नागरी लिपि सीखने से भारत की अनेक लिपियाँ या भाषाएं आसानी से सीखी जा सकती हैं।

देवनागरी लिपि केवल विचार विनिमय का साधन मात्र नहीं है। इसमें भारतीय भाषाओं की सभ्यता ,संस्कृति और मान्यताओं को भी व्यक्त करने की क्षमता है। अनेक युगों से सँजोये गए भावों को रूप देती है।प्राचीन काल में संस्कृत देश को जोड़ने का कार्य करती थी। इसलिए देवनागरी भी उसे के साथ फलती –फूलती गई। और आज वह अनेक भाषाओं की लिपि बन गई है। किसी भी देश के गौरव के लिए अपनी भाषा का होना आवश्यक है ,उसी प्रकार लिपि का भी। देवनागरी लिपि भारत की राजनीतिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सक्षम है।" किसी भी राष्ट्र की लिपि का संबंध वहाँ के धर्म तथा वहाँ की संस्कृति के साथ भी होता है देवनागरी लिपि का भी संबंध भारतीय धर्म तथा संस्कृति के साथ है इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। जिस प्रकार राष्ट्रीय गौरव को सामने रखते हुए हम भारत को सदा स्वतंत्र देखना चाहते हैं। इस प्रकार राष्ट्र गौरव का यह तकाजा है कि हम भारतीय भाषा तथा भारतीय लिपि को ही राष्ट्रीय भाषा तथा राष्ट्रीय लिपि का स्थान दें "। (2) संस्कृत के अनेक शब्द राजभाषा के लिए प्रयुक्त हैं ,उसी प्रकार देशी शब्द भंडार में आगत

विदेशी शब्दों को व्यक्त करने के लिए भी देवनागरी उपयुक्त है। या यूँ कहा जा सकता है कि देवनागरी ने स्वयं को उस रूप में अद्यतन किया है, जो एक विकासशील लिपि की पहचान है। संस्कृत के कोषाधिकारी , वित्त , माननीय जैसे शब्द प्रचलित है। उसी प्रकार बैंक , पोस्ट , चेक ,ऑडिट , मॉनिटर , दफ़्तर , प्याज़ आदि विदेशी शब्दों को देवनागरी लिपि व्यक्त करती है।

देवनागरी लिपि की विशेषता के कारण ही आज प्रशासन ,भारत के संघ की राजभाषा हो या राज्यों की राजभाषा हो , अपनी भाषा के शब्दों का प्रयोग करता है। वह किसी अन्य की लिपि या शब्दों पर निर्भर नहीं हैं। कुछेक विदेशी शब्द हैं, जो कि लोगों के सदियों से साथ में जीवन यापन करने के कारण आपस में व्यवहृत हैं, जो कि भाषायी लें दें में सहज ही हो जाते हैं।

देवनागरी लिपि स्वर-व्यंजन की वैज्ञानिकता से स्पष्ट रूप से ,वर्तनी दोष के बिना ,किसी भी भाषा का शब्द लिखा जा सकता है। भारत देश में विदेशी भाषाओं के शब्दों के प्रचलन से अनेक शब्द भारतीय शब्द भंडार का हिस्सा बन गए। उन शब्दों को मौखिक रूप के साथ लिखित रूप में भी प्रयोग करने के लिए यह मेल जरूरी हो गया। अतः देवनागरी लिपि में उन शब्दों के लिए नयी ध्वनियों को प्रस्तुत किया गया , जिससे कि अंग्रेजी लैटिन,अरबी,फारसी, फ्रेंच सहित अनेक भाषाओं के कठिन-से-कठिन शब्द भी आसानी से लिखे जा सकते हैं। दूसरी भाषाओं की अपनी विशेषताएं हो सकती हैं। अनेक अक्षर भी हो सकते हैं ,परंतु उच्चारण और वर्तनी दोष के लिख पाना देवनागरी लिपि में ही संभव है,ऐसा कहा जा सकता है।जैसे कि ऑसम ,स्पेक्ट्रमकलर,द्रविड़ मुनेत्र,स्पेलिंग,ऑटोफ़ोनोस्कोप,फ़ोनोस्कोप आदि।

देवनागरी लिपि को उसके उच्चारण स्थान के अनुसार स्वर और व्यंजन में वर्गीकृत किया गया है ,जिसके कारण इसके उच्चारण और लेखन में स्पष्टता और वैज्ञानिकता रहती है। बिना किसी वर्तनी दोष के लिखा जा सकता है। इस प्रकार भाषा प्रयोग में वर्तनी दोष से बचकर शब्दार्थों का सही प्रयोग किया जा

सकता है। जैसे की फ और में फ़ में अंतर है। फ का प्रयोग संस्कृत के शब्दों में होता है। अरबी-फारसी के में फ़ का होता है। फ संस्कृत का ओष्ठ्य वर्ण है और पारसी का फ़ दंतोष्ठ्य का ।उदाहरण के लिए इनके उच्चारण में दांत और ओष्ठ्य के प्रयोजन को समझने में आसानी होगी। संस्कृत और अरबी शब्दों का अर्थ समझकर सटीक भाव में इसका प्रयोग किया जा सकता है। शट का अर्थ अम्ल ,खट्टा होता है। जबकि षट का अर्थ छ: होता है। बोलने के साथ लिखने में भी सही वर्ण का चयन अनिवार्य है। अन्यथा अर्थ का अनर्थ होता है ।भारत देश में इस्लाम के आगमन के बाद अरबी फारसी शब्दों के इस्तेमाल के लिए नुक्ते का प्रयोग आरंभ हुआ।देवनागरी लिपि नुक्ते को आत्मसात करते हुए संस्कृत और अरबी फारसी शब्दों में अंतर को दिखाने में सफल रही। ऐसे कई उदाहरण देख सकते हैं जहाँ पर नुक्ते के प्रयोग से शब्दों में अर्थ परिवर्तन होता आया है ।राज(शासक) – राज़(रहस्य) ,जरा(वृद्ध)- ज़रा(थोड़ा), कलम(एक चावल) – क.लम(लेखनी) ,क.लक(रंज) – कलक(एक तरह की मछली) आदि अलग अर्थ वाले शब्द हैं ।

देवनागरी लिपि की सबसे विशेषता यह है कि जो लिखा जाता है वही पढ़ा जाता है अर्थात् प्रत्येक अक्षर की एक ध्वनि है। इसे पढ़ने और लिखने में दुविधा नहीं होती। जिस ध्वनि का प्रयोग करना है ,उसकी एकमात्र ध्वनि होती है और उसी का प्रयोग होता है।एक अक्षर को बोलना और दूसरे अक्षर को लिखना नहीं होता।जैसे कि ज का प्रयोग केवल ज का स्वर ही व्यक्त करता है।क प्रयोग करने के लिए 52 अक्षरों में से किसी अन्य को नहीं लिया जा सकता। हाँ कुछ एक ध्वनियाँ है जहाँ उच्चारण में भले ही समानता रहती है।जैसे कि रि और ऋ के उच्चारण एक सा लगता है। लेकिन देवनागरी लिपि के मानकीकरण के समय स्पष्ट कर दिया गया है कि संस्कृत के शब्द ऋ से शुरू होते हैं। इस प्रकार शब्दों में लिखित रूप के आधार पर हम शब्दों का अर्थ अलग-अलग देख सकते हैं।जिस अर्थ की आवश्यकता है ,उसी वर्तनी का प्रयोग किया जाना चाहिए।

मानकता हिंदी भाषा की विशेष उपलब्धि है। इसके लिए देवनागरी लिपि सहायक रही है। शिक्षित वर्ग मौखिक भाषा के प्रयोग में जितनी सावधानी बरतता है ,उतना ही लेखन में ।कार्यालय,शिक्षा ,पत्र व्यवहार,साहित्य लेखन आदि में मानक वर्तनी आवश्यक होती है।विविध प्रकार की वर्तनियों को परखकर भाषा प्रयोग के लिए उपयुक्त ध्वनियों को चुनकर भाषा और लिपि को और भी परिमार्जित किया गया है। प्राचीन रूप में सर्वनाम और कारक चिह्न जोड़कर लिखते थे , परंतु अब एकरूपता लाने लिए लिए " इस के " लिखने के लिए "इसके "सर्वनाम और कारक चिह्न को जोड़ने का नियम है।इसी प्रकार इसीलिए के स्थान पर इसलिए , ठन्डा के स्थान पर ठंडा ,स्थाई के स्थान पर स्थायी आदि अनेक शब्दों को मानक करते हुए देवनागरी लिपि को वैज्ञानिक और परिनिष्ठित किया गया है।

हिन्दी अनेक सीमाओं को पार करती हुई आज तकनीकी युग में प्रवेश कर चुकी है।उसकी वैज्ञानिक संरचना

उसकी की धरोहर है। तकनीकी क्षेत्र में आज हिंदी का प्रयोग विशेष रूप से प्रयोग में लाया जा रहा है।कंप्यूटर की दुनिया में होने वाले विकास के साथ-साथ हिंदी की देवनागरी ने अपने आपको अद्यतन किया हुआ है।कंप्यूटर में आज अनेक ऐसे तकनीक है ,जिसके माध्यम से भारत की देवनागरी लिपि से जुड़ी भाषाओं को टाइप किया जा सकता है । "वैज्ञानिक प्रगति की कोई सीमा नहीं होती। परंतु यह मौलिक तथ्य ध्यान में रखना आवश्यक है कि नागरी तथा उसकी सहभागिनी लिपियाँ इतने थोड़े समय में कंप्यूटर में आरूढ़ हो सकी ,उसका कारण है उसकी वैज्ञानिक संरचना ,जो हमारी धरोहर है।" (3)कंप्यूटर और इंटरनेट के आरंभ के दिनों में एक दो फॉन्ट हुआ करते थे ,जैसे कि जगदीश ,कृति देव ,कोकिला आदि ।लेकिन आज अनेक ऐसे फॉन्ट हैं ,जिसके माध्यम से कंप्यूटर में कार्य ,हिंदी भाषा में किया जा सकता है। यूनिकोड के कारण आज कई फॉन्ट उपलब्ध हैं ।जैसे कि निर्मला,मंगल,एरिअल ,अपराजिता आदि ।

पहले हिंदी भाषा में टंकण करने के बाद कंप्यूटर में उसे देखना हो तो उसी कंप्यूटर में इस तरह के फॉन्ट को डाउनलोड करने की आवश्यकता होती थी। परंतु आज ऐसा नहीं है। यूनिकोड अगर हो तो किसी भी कंप्यूटर में आप हिंदी टाइप कर सकते हैं और अंकित सामग्री देख सकते हैं। कंप्यूटर के लैंग्वेज सेटिंग में ही हिंदी टाइपिंग को सेट कर सकते हैं।इसके लिए इंटरनेट से कुछ भी लेने की आवश्यकता नहीं होती। ध्वनि या फोनेटिक के हिसाब से ,बिना टाइपिंग शिक्षण के हिंदी टाइपिंग की जा सकती है। जैसे कि "पंत"की टाइपिंग के लिए अंग्रेजी " पी ए एन टी " को टाइप करने से हिन्दी का "पंत" आ जाएगा। जब हम हिंदी में टाइपिंग करते हैं तो अनेक तरह की वर्तनियाँ दिखाई देती हैं जिसमें हमको अपने मनपसंद शब्दों को चुनने का अवसर मिलता है।

इतना ही नहीं मोबाइल में भी "जी बोर्ड " एप्लीकेशन को डाउनलोड कर हिंदी टाइपिंग की जा सकती है। अक्षर और हिन्दी के अंक भी बड़ी आसानी से अंकित कर सकते हैं इसके में भी दो विकल्प उपलब्ध है , एक अक्षरों को देखकर आप हिंदी वर्णमाला के अक्षरों के हिसाब से टाइप कर सकते हैं या फिर ध्वनि के हिसाब से टाइप कर सकते हैं।उदाहरण के लिए फोनेटिक टाइपिंग में ,कंप्यूटर या लैपटॉप में भी हेडफोंस के आधार पर वाइस टाइपिंग(बोलकर) कर सकते हैं।जिसमें हिन्दी फॉन्ट को चयन कर वाइस टाइपिंग कर सकते हैं। वॉइस टाइप करने के लिए उच्चारण दोष से मुक्त होना होगा और स्पष्ट रूप से उच्चारित करना होगा।वरना अधिक गलतियाँ हो जाती हैं। यूनिकोड के आधार पर एक फोन में टंकित सामग्री को दूसरे फॉन्ट में बदलने की भी संभावना है।यह भी बिना इंटरनेट के किया जा सकता है।

हिंदी के फॉन्ट में अभी भी कुछ संभावनाएँ बाकी हैं। जैसे कि टाइपिंग करते समय एक वर्तनी की कई तरह के विकल्प देते हैं जबकि इसकी आवश्यकता नहीं है ,क्योंकि हिंदी में इतने तरह की वर्तनी के साथ एक शब्द नहीं मिलता है। जैसे कि आरती शब्द के कई विकल्प देता है - आरती,आराती,आरति ,अराती आदि। हिंदी में इनके प्रयोग हो सकते हैं। परंतु

इनके अलावा अन्य शब्द भी देते हैं जिनके कोई अर्थ भी नहीं होते हैं। वर्ड फाइल को पीडीएफ बनाने के बाद कभी वह अक्षर छोटे –छोटे डिब्बों में बदल जाते हैं। यदि आवश्यकता हो तो उसी पीडीएफ फ़ाइल को फिर से वर्ड फाइल बनाते समय अक्षर इधर-उधर खिसक जाते हैं , जिस कारण उसी फिर से टाइप करने की आवश्यकता होती है। जबकि अंग्रेजी भाषा में ऐसा नहीं होता। इस तरह कभी-कभी इस भाषा में अंकित सामग्री को किसी मेल में से डाउनलोड करने के बाद अक्षर इधर-उधर खिसक जाते हैं। संभावना है कि आने वाले दिनों में हिंदी फॉन्ट से जुड़ी अपनी तकनीकी समस्याएं समाप्त हो जाएंगी। इन सबके बावजूद कह सकते हैं कि आज हिंदी में टाइपिंग के कार्य के कारण हिंदी क्षेत्र के अनेक कार्य आसान हो गए हैं। आने वाले समय में यह राष्ट्रीय लिपि की समस्त क्षमताओं के साथ और भी विकसित होगी।

संदर्भ सूची

1. हिन्दी व्याकरण : डॉ राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी : पृ . सं 35
2. हिंदी भाषा शिक्षण : भाई योगेंद्र जीत पृ. सं . 183
3. हिंदी भाषा शिक्षण : भाई योगेंद्र जीत पृ. सं . 191

विभाजन की त्रासदी और अल्पसंख्यक वर्ग
('ज़िंदा मुहावरे' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)

चंचल कौशिक
हिंदी विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली
ईमेल – chanchalkaushik3375@gmail.com
संपर्क सूत्र – 9582751695

सारांश

आधुनिक काल की महिला लेखिकाओं में नासिरा शर्मा का नाम बहुत ही आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है। नासिरा शर्मा अपने विचारो को अभिव्यक्त करने के लिए उपन्यास और कहानी दोनों विधाओं का उपयोग करती है। नासिरा शर्मा के अब तक 12 उपन्यास और 10 कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। नासिरा शर्मा के अधिकांश उपन्यास मुस्लिम समाज और उनके जीवन की समस्याओं को केंद्र में रखकर लिखे गए है। मुस्लिम समाज की पीड़ा, उत्कंठा, असुरक्षा की भावना, अजनबीपन, अकेलापन, दमित इच्छाएं, भारत पाक विभाजन का दर्द, और अल्पसंख्यक मुस्लिम समाज में गहन मानसिक अवसाद की स्थिति को लेखिका ने अपने उपन्यास में दर्शाया है। अपने अस्तित्व की तलाश करते मुस्लिम शरणार्थियों की दुर्दशा को भी लेखिका के उपन्यास में देखा जा सकता है। लेखिका अपने उपन्यासों में मुस्लिम समाज के यथार्थ को समाज के सामने लाकर रखती है। स्वयं मुस्लिम परिवार से होने के कारण लेखिका के स्वयं भी अपने कुछ अनुभव रहे है जिन्हें वह उपन्यास के माध्यम से समाज के सामने प्रदर्शित करती है।

बीज शब्द : *समकालीन, मुस्लिम समाज, विस्थापन, अल्पसंख्यक, असुरक्षा*

शोध आलेख

15 अगस्त 1947 में देश आजाद हुआ था। भारत और पाकिस्तान को दो भागों में विभाजित किया गया था। 1 करोड़ से अधिक लोग अपना वतन छोड़कर दूसरे मुल्क जाने के लिए विवश हुए। पाकिस्तान में रहने वाले लाखों

हिंदू और सिख परिवारों ने भारत की और पलायन किया इसी प्रकार यूपी, पंजाब और बिहार में रहने वाले मुस्लिमों को पाकिस्तान की ओर विस्थापित होना पड़ा। भारत के एक विशाल देश है यहां पर सभी धर्म के लोग निवास करते है। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी, बौद्ध, जैन ये सभी धर्म इस देश के निवासी है। भारत में हिंदू धर्म की संख्या ज्यादा है तो उन्हे हिंदू बहुसंख्यक कहा जाता है। मुस्लिम, सिख, पारसी, बौद्ध, जैन, ये सभी धर्म की जनसंख्या भारत में हिंदुओं से कम है इसलिए इन्हें अल्पसंख्यक की श्रेणी में रखा जाता है। अल्प का अर्थ 'कम' होता है अर्थात जो संख्या में कम होते हैं, उन्हें अल्पसंख्यक कहा जाता है। भारतीय संविधान के 29-30 अनुच्छेद में अल्पसंख्यक को विशेष अधिकार दिए गए है। अल्पसंख्यक को दो भागों में विभाजित किया जाता है एक धर्म के आधार पर और दूसरा भाषा के आधार पर। भाषाई अल्पसंख्यक वह होते है जिनकी मातृभाषा उस राज्य की भाषा से अलग होती है। "केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1992 के तहत राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग की स्थापना की। पाँच धार्मिक समुदाय, अर्थात, मुस्लिम, ईसाई, सिख बौद्ध, और पारसी को अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में अधिसूचित किया गया। तत्पश्चात, 27 जनवरी, 2014 को केंद्र सरकार की अधिसूचना के तहत जैन समुदाय को भी अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में अधिसूचित किया गया।" [1] इस आयोग का मुख्य उद्देश्य अल्पसंख्यक समुदाय का संरक्षण करना और उनके विकास के लिए प्रयासरत रहना है। भारत-पाक विभाजन के बाद अधिकांश मुस्लिम समुदाय ने पाकिस्तान की ओर पलायन किया जिसके कारण भारत में मुसलमानों की संख्या में कमी आई और उन्हे अल्पसंख्यक का दर्जा दिया गया। हिंदी साहित्य में अनेक मुस्लिम लेखकों और अन्य लेखकों ने भी 'अल्पसंख्यक विमर्श' पर लिखा है जिनमें राही मासूम रजा, मंजूर एहतेशाम, अनवर सुहैल, अब्दुल बिस्मिल्लाह, नासिरा शर्मा का नाम उल्लेखनीय है। नासिरा शर्मा अपने उपन्यासों में विशेषकर मुस्लिम समाज और उनके जीवन की समस्याओं को उजागर करती है। समकालीन महिला लेखिकाओं में नासिरा शर्मा का विशिष्ट योगदान है। नासिरा शर्मा का जन्म 22 अगस्त 1948 में मुस्लिम

परिवार में हुआ था। लेखिका को कई पुरस्कारों से सम्मानित भी किया गया है जैसे अर्पण सम्मान, शाल्मली उपन्यास के लिए महादेवी वर्मा पुरस्कार, कुइयाँजान के लिए यू. के कथा सम्मान से विभूषित किया गया है और 2016 में प्रकाशित पारिजात उपन्यास के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार उन्हें दिया गया।

नासिरा शर्मा कृत 'जिंदा मुहावरे' उपन्यास भारत पाक विभाजन की त्रासदी को इंगित करता है। देश विभाजन की पीड़ा से भारतीय मुसलमान सबसे ज्यादा प्रभावित हुए हैं जिसका वर्णन लेखिका ने अपने उपन्यास में किया है। अधिकांश भारतीय मुसलमानों ने विभाजन के पश्चात पाकिस्तान की ओर पलायन किया और उन्होंने अपने घर परिवार को भारत में ही छोड़कर पाकिस्तान जाने का निर्णय लिया। विभाजन की यह त्रासदी भारतीय मुसलमानों के आपसी पारिवारिक विघटन का कारण भी बनी। एक ही परिवार के कुछ लोग पाकिस्तान चले गए तो कुछ लोगों ने भारत में ही रहने का निश्चय किया। अलग-अलग देशों में रहने के कारण एक ही परिवार के लोगों में एक दूसरे के प्रति मन-मुटाव और दूसरे देशों के प्रति मोहभंग की स्थिति हमें इस उपन्यास में देखने को मिलती है।

बंटवारे के इस दर्द ने भारतीय मुसलमानों के परिवार को विघटित कर दिया। उपन्यास के केंद्र में उत्तर प्रदेश का फैजाबाद है। उपन्यास में रहमतुल्लाह और उनके परिवार की कथा है जिनका पूरा परिवार हिंदुस्तान के बंटवारे की त्रासदी से प्रभावित हुआ। रहीमउद्दीन के बेटे निजाम ने दूसरे मुस्लिम लोगों से प्रभावित होकर पाकिस्तान जाने का निर्णय किया और रहीमउद्दीन के दूसरे बेटे इमाम ने भारत में ही रहने का निश्चय किया। निज़ाम अपने वतन, अपने माता पिता और भाई सबको छोड़कर पाकिस्तान चला जाता है। भारत में रहने वाले भारतीय मुसलमानों के सोच, विचार विभाजन के पश्चात किस तरह बदल जाते है ये हम उपन्यास के पात्र निज़ाम के माध्यम से देखते है जब निज़ाम सोचता है- "जमीन...! जमीन से चिपके रहना तभी तक भला, जब वह अपनी पहचान हो, इज्जत हो, अपने बीज अपनी फसल हो, मगर जब सब कुछ बेगाना बना दिया

जाए और साबित करना पड़े कि यह मिट्टी... इससे अच्छा वह टुकड़ा है जो काट कर दामन में डाल दिया गया हो। अब उसी को पालना पोसना और अपना समझना होगा।" [2] उपन्यास में विभाजन के पश्चात भारतीय मुसलमानों को ऐसा महसूस होता है कि उनसे सब कुछ छीनकर उन्हे हिंदुस्तान से बेघर किया जा रहा है शायद यही अनुभूति निज़ाम को भी महसूस होती है जिसके कारण वह पाकिस्तान चला जाता है। निज़ाम जब अकेले पाकिस्तान जाने की जिद करता है तो उसका भाई इमाम हर संभव प्रयास करके उसे समझाने का प्रयत्न करता है इमाम कहता है- "भूल मत करो, जमीन सबकी छीनेगी। जब मुल्क से जमींदारी खत्म हो रही है, तो इसका मतलब है, हर छोटा बड़ा चाहे वह हम हो या कोई और... पढ़ लिखकर नादान मत बनो। बंटवारा मुल्क का हुआ है, हमारे इस गांव का तो नही? हमारा पुस्तैनी घर, खेत रिश्तेदारी, बिरादरी सब कुछ यही है। वह तो किसी ने नहीं छीना?" [3] निज़ाम के पाकिस्तान चले जाने पर उसके माता पिता को उसके वापिस आने की उम्मीद सर्वदा लगी रहती थी। रहीमउद्दीन चारपाई पर बैठकर गांव की तरफ आने वाली पगडंडी को ध्यान से देखते रहते थे और उन्हें ऐसा महसूस होता था कि उनका बेटा निज़ाम वापिस आकर कहेगा- "सच कहत रहे अब्बा, घर से बाहर निकलो तो बस जिल्लत और दुख के सिवाय कुछ हाथ नहीं लागत है।" [4] निज़ाम के वापिस आने की उम्मीद उसके माता पिता की मृत्यु का कारण बन जाती है। पुत्र की याद में फात्मा बी सर्वदा बीमार रहने लगी थी। अनेक प्रकार के रोग उनके शरीर को घेरे रखते थे, जिसके कारण उनकी मृत्यु हो जाती है। निज़ाम जब पाकिस्तान से रहीम के घर खत भेजता है तो रहीम के घर देर रात पुलिसवाले जांच करने आते है। पुलिस वालों की पूछताछ से रहीमउद्दीन को गांव में बेहद अपमान महसूस होता है जिससे कारण रहीमउद्दीन की मृत्यु हो जाती है। लेखिका निज़ाम के लिए कहती है- "उसका जाना एक की मौत का और आना दूसरे की मौत का कारण बना; और बाकी की गर्दनों में लानती का तौक अलग डाल गया।" [5] गांव में जब किसी के घर पुलिस वालों की जांच होती है तो गांव में इसे बिलकुल अच्छा नही समझा

जाता है जिसके कारण रहीमउद्दीन और उसके बेटे इमाम को ग्रामीण समाज में अपमान झेलना पड़ता है।

निज़ाम को पाकिस्तान में जाने पर अपनी भूख को शांत करने के लिए बंधुआ मजदूरी, बोझा ढोना और फेरी लगाना का काम भी करना पड़ता था। निज़ाम शुरूआती दिनों में पाकिस्तान में रहते हुए सोचता है- "बीसियों बीघा, जमीनबाग, कुआं, घर बाहर छोड़कर जिस मुल्क को वह अपना समझ कर आया वहां दो गज जमीन के लाल पड़े थे।" [6] निज़ाम अपनी मेहनत से पाकिस्तान में एक बड़ा आदमी बन जाता है, परंतु हिंदुस्तान की यादें, अपना वतन उसे हमेशा याद आता रहता है। निज़ाम भारत आने के लिए कई बार वीजा के लिए आवेदन देता है, परंतु हर बार किसी कारणवश उसे वीजा प्राप्त नहीं होता है। निज़ाम अपने स्वयं के विवाह के लिए अपने परिवार वालों को पाकिस्तान आने के लिए आमंत्रण भेजता है परंतु वहां से भी उसको सिर्फ निराशा हासिल होती है। निज़ाम भारत आने के लिए और अपने परिवार वालों से मिलने के लिए तड़पता रहता है। निज़ाम कई बार अपने परिवार वालों को पाकिस्तान बुलाता है परंतु परिवार का कोई भी सदस्य पाकिस्तान नही जाता है। भारत पाक बंटवारे का इमाम के मन पर इतना गहन प्रभाव पड़ता है और इमाम जावेद से कहता है- "वह सब ठीक है, मगर याद रखो, इस बंटवारे के बोझ से हमारी पीढ़ी आजाद नहीं हो सकती। भले ही तुम जैसे लोगों के लिए भूल जाने वाली बात हो, मगर हम जैसों के लिए ऐसी लानत है, जो चाह कर भी हम भुला नहीं सकते। जैसे में मैं सिर्फ मुल्क और समाज से नही, बल्कि अपने आप से भी जवाब तलब करता हूं कि यह सब क्यों और कैसे हुआ?।" [7] उपन्यास के अन्य पात्र सबीहा के माता पिता भी हिंदुस्तान आकर अपने पुराने घर को देखने की इच्छा अपनी पुत्री सबीहा से करते है। सबीहा के अब्बा कहते हैं- "सबीहा बेटी, मरने से पहले एक बार हिंदुस्तान जाकर अपने घर को देखने की तमन्ना रह गई है।" [8] निज़ाम को पाकिस्तान में रहते हुए महसूस होता है कि भारत से आये भारतीय मुसलमानों को मात्र 'मुहाजिर' की दृष्टि से देखा जाता है। पाकिस्तान में बहुसंख्यक आबादी

मुस्लिम समुदाय की है उसके बावजूद भारतीय मुसलमानों के साथ भेदभाव किया जाता है उन्हे अल्पसंख्यक ही समझा जाता है। निज़ाम सोचता हैं- "कुछ भी तो नहीं बदला। वहां हिंदुओं का खौफ था कि वह मुसलमानों को जीने नही देंगे मगर यहां तो हिंदू मुट्ठी पर ही है; और जो मुसलमान भरे हुए है, वह पंजाबी, सिंधी, बलोची और पठान पहले है मगर मुहाजिरों पर आरोप है कि वह भारत में हिन्दू और अब पाकिस्तान में सिंधी के साथ बना कर नही रह पा रहे है, क्योंकि बात चार कौमों की न होकर पांच की उठ रही है। अलगाव का अहसास दिलो में बढ़ रहा है और कहा यह जा रहा है कि इनको मिल जुलकर रहना आता ही नहीं है।" [9] भारतीय मुस्लिम समुदाय का पाकिस्तान की और पलायन का एक मात्र कारण पाकिस्तान में बहुसंख्यक मुस्लिम वर्ग का होना था। निजाम को भी ऐसा ही महसूस होता था कि पाकिस्तान में रहते हुए उसमें असुरक्षा की भावना नही पनपेगी लेकिन पाकिस्तान में हो रहे सांप्रदायिक दंगे भारतीय मुस्लिम वर्ग में भी असुरक्षा की भावना को प्रबल कर देता है। निज़ाम का बेटा इन्हीं दंगों में गायब हो जाता है। देश में दिन प्रतिदिन बढ़ते सांप्रदायिक दंगों के कारण निज़ाम को पाकिस्तान में रहने पर दर्द और पीड़ा की गहन अनुभूति होती है। लेखिका उपन्यास में भारत से गए भारतीय मुसलमानों के बच्चों की मनोदशा को भी अपने उपन्यास में अभिव्यक्त करती है जिनका जन्म पाकिस्तान में हुआ था। निज़ाम का पुत्र अख्तर कहता है - "यह तुजुर्बा कितना तकलीफ देह होता है कि जहां आप पैदा हो, जिस जमीन को आप अपना वतन समझे, उसे बाकी लोग आपका गलत कब्जा बताएं। कदम-कदम पर यह एहसास दिलाएं कि तुम यहाँ के नही बाहर के हो, हिंदुस्तान के गांव से निकलकर आये हो। तुम्हारी पहचान एक पनाहगीर की और यह 'टेक इट ईजी' तक का मसला नहीं रह जाता है।" [10]

निज़ाम को जब विभाजन के 45 वर्ष बाद भारत आने का मौका मिलता है तो यहां पर उसको भारत छोड़कर चले जाने का पश्चाताप होता है। हिंदुस्तान आने पर निज़ाम को अपने वतन में बेहद आनंद की अनुभूति होती है। पाकिस्तान

में बनी कोठियों में रहते हुए ऐसा चैन और सुकून निज़ाम को वहां प्राप्त नहीं हुआ था। निज़ाम का दिल अपने हिंदुस्तान में रहने के लिए चाहता है परंतु ऐसा संभव नहीं है। परिवार के न साथ रहने की तड़प और हिंदुस्तान छोड़ने का गम निज़ाम के मन को कचोटता रहता है। निज़ाम अपने भतीजे ग्यास से कहता है - "पछतावा... बहुत पछतावा हो रहा है बेटे तुम से क्या छिपाना। कुछ मजा नही आया जिंदगी में, सब कुछ पाकर भी क्या खोया, यह आज समझ में आया।" [11] निज़ाम को पाकिस्तान में रहते हुए भारतीय परिवेश से इतना प्रेम है कि वह अपने बेटे अख्तर के लिए भारतीय मूल निवासी की लड़की को अपने घर की बहु बनाने का सपना देखता है तो यहां भी निज़ाम को निराशा हासिल होती है। निज़ाम सैफउल्लाह से उनकी पुत्री रूही का हाथ मांगते है, तब सैफउल्लाह कहते है- "आप इस शहर की हालत देख रहे है? ऐसी हालत में अपनी लड़की का हाथ कैसे किसी पाकिस्तानी लड़के के हाथ में थमा दूं। पहले के लगाए दाग धोते-धोते चालीस-पैंतालीस साल गुजर गए और अब फिर वही बात..." [12]

उपन्यास के अंतिम शेष पन्नो में निज़ाम भारत में कुछ समय और अपने परिवार के साथ बिताने के लिए अपने वीजा को आगे बढ़ाने हेतु प्रयासरत रहता है परंतु ये संभव नहीं हो पाता है। अंत में वह दुखी मन से अपने शहर कराची जाने के लिए विवशरत है।

निष्कर्ष

नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यास जिंदा मुहावरे में अल्पसंख्यक मुस्लिम समाज के सभी पक्षों को समाज के सामने उजागर किया है। हिंदुस्तान और पाकिस्तान के बंटवारे के दर्द को लेखिका ने उपन्यास में निज़ाम और उसके परिवार के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है। आजादी से पहले आपसी भाईचारे की नींव पर रहने वाले भारत में विभाजन के बाद जिस तरह धर्म के आधार पर भेदभाव होता है यह भी हम इस उपन्यास में देख पाते है। विभाजन से हिंदू मुस्लिम जीवन जिस तरह प्रभावित होता है इसका भी वर्णन लेखिका ने अपने उपन्यास में किया है।

संदर्भ सूची

1. https://www.minorityaffairs.gov.in/show_content.php?lang=2&level=0&ls_id=216&lid=221
2. शर्मा, नासिरा (1994) जिंदा मुहावरे. दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृष्ठ सं 09
3. शर्मा, नासिरा (1994) जिंदा मुहावरे. दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृष्ठ सं 10
4. शर्मा, नासिरा (1994) जिंदा मुहावरे. दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृष्ठ सं 20
5. शर्मा, नासिरा (1994) जिंदा मुहावरे. दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृष्ठ सं 64
6. शर्मा, नासिरा (1994) जिंदा मुहावरे. दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृष्ठ सं 15
7. शर्मा, नासिरा (1994) जिंदा मुहावरे. दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृष्ठ सं 48
8. शर्मा, नासिरा (1994) जिंदा मुहावरे. दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृष्ठ सं 53
9. शर्मा, नासिरा (1994) जिंदा मुहावरे. दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृष्ठ सं 74
10. शर्मा, नासिरा (1994) जिंदा मुहावरे. दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृष्ठ सं 100
11. शर्मा, नासिरा (1994) जिंदा मुहावरे. दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृष्ठ सं 126
12. शर्मा, नासिरा (1994) जिंदा मुहावरे. दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृष्ठ सं 123

सामाजिक जीवन में दर्शन की महत्ता

भुमिका मनसुख सोलंकी
शोधार्थी - संस्कृत विभाग
सरदार पटेल विश्वविद्यालय, गुजरात
bhumisolanki0508@gmail.com

सारांश

दर्शन हमारे सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलु से जुड़ा हुआ है। हम उसे अपने जीवन से पृथक नहीं कर सकते। मनुष्य आरम्भ से ही अपनी वैचारिक दुनिया में बेहतर जीवन और समाज निर्माण का सपना अपने चेतन-अवचेतन मन में संजोए बेहतर समाज की कल्पना से ओतप्रोत रहा है। मानवीय विचारों का इतिहास बताता है कि दर्शन ही उसके वैचारिक जीवन को रचने, गढ़ने और दिशा देने का बुनियादी आधार रहा है, जहाँ से व्यक्ति अपने अस्तित्व और जीवन के महत्तर सवालों से लेकर रोजमर्रा की समस्यायों को हल करने का चेतना सूत्र प्राप्त करता है। दर्शन मानव अस्तित्व की व्याख्या करने वाला अनुशासन है। दर्शन एक वैचारिक अनुशासन है और विचार का अपना एक भौतिक सामाजिक आधार होता है। यहाँ हम कह सकते है कि कोई भी समाज अपने वैचारिक और सामाजिक जीवन को अलग-अलग रखकर एक सामाजिक प्राणी की भाँति समाज में नहीं रह सकता। दर्शन एक विचार है और मनुष्य विचारशील प्राणी और जहाँ दर्शन का सम्बन्ध विचार से है वहीं मनुष्य का समाज से है और विचार मनुष्य के विवेक से उत्पन्न होते हैं। यहीं से दर्शन की सामाजिक जीवन में महत्ता का एक ढाँचा तैयार होने लगता है। मनुष्य का सामाजिक-वैचारिक संघर्ष उसे दार्शनिक श्रेणी में ला देता है। इसप्रकार दर्शन आज मानव-जीवन की वास्तविकता का सत्य है जो हमारे जीवन और समाज से गहनता से जुड़ा हुआ है।

बीज शब्द : *दर्शन, सामाजिकता, विचार, मानव-जीवन*

शोध आलेख :

आमतौर से हम दर्शन को तर्क, ज्ञान, मूल्य, मन और भाषा के माध्यम से सत्य को तर्कबद्ध तरीके से समझने का साधन मानते है। कह सकते हैं कि दर्शन तर्कबद्धतापूर्ण ढंग से क्रमबद्ध विचार करने की एक कला है। जहाँ अरस्तु इसे विज्ञान मानते हुए अलौकिक तत्वों के वास्तविक स्वरूप की खोज के रूप में देखते हैं वहीं 'लेबिस' इसे एक मानसिक प्रक्रिया मानते है। दर्शन को तमाम विचारकों ने अपने-अपने विचारों से अभिहित किया है। इन्हीं में कार्ल मार्क्स इसे दुनिया को बदलने के लिए की गई उसकी व्यख्या के रूप में परिभाषित कर इसे सामाजिक जीवन से जोड़ देते हैं। वैसे भी हम भारतीय दर्शन की बात करें तो दर्शन हमारे सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलु से जुड़ा नजर आता है।

गीता में कहा गया है कि "यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।" अर्थात् श्रद्धालुओं के अनुरूप ही मनुष्य होता है, उसकी कार्य प्रणाली निश्चित होती है तथा उसी के अनुरूप उसे फल की उपलब्धि होती है। आचार्य बलदेव उपध्याय ने अपनी पुस्तक में इसी को उदहारण स्वरूप प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि "इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य का दर्शन होता है, चाहे वह उसे जाने या न जाने। इस तरह दर्शन हमारे जीवन के साथ अनुस्यूत है। हम उसे अपने जीवन से पृथक नही कर सकते।" स्पष्ट है कि हमारे सामाजिक जीवन में दर्शन की भूमिका एक अंग की तरह है जो हमारे सामाजिक जीवन को तर्क सम्मत ढंग से सुगढ़ बनाती है। यह सर्वविदित है कि मनुष्य आरम्भ से ही अपनी वैचारिक दुनिया में बेहतर जीवन और समाज निर्माण का सपना अपने चेतन-अवचेतन मन में संजोए बेहतर समाज की कल्पना से ओतप्रोत रहा है। मानवीय विचारों का इतिहास बताता है कि दर्शन ही उसके वैचारिक जीवन को रचने, गढ़ने और दिशा देने का बुनियादी आधार रहा है, जहाँ से व्यक्ति अपने अस्तित्व और जीवन के महत्तर सवालों से लेकर रोजमर्रा की समस्यायों को हल करने का चेतना सूत्र प्राप्त करता है।

सुधा चौधरी अपनी पुस्तक 'दर्शन की सामाजिक भूमिका और भारतीय जीवन दृष्टि' में दर्शन की सामाजिक जीवन की महत्ता को बखूबी स्पष्ट करते हुए

लिखती है – "दर्शन मानव अस्तित्व की व्याख्या करने वाला अनुशासन है। यह सम्पूर्ण समाज की जीवन दृष्टि है, जिसके आधार पर संस्कृतियों, सभ्यताओं, मानव-व्यक्तित्व व सामाजिक-आदर्शों का निर्माण होता है।" हम कह सकते है कि हम जिस जगत मे रहते हैं मनुष्य का उससे गहनतम सम्बन्ध है और इस जगत और इसकी नियति को समझने के लिए मनुष्य जिस पद्धति या दृष्टि का अनुसरण करता है वह दर्शन है। दर्शन हमारे जीवन के सम्बन्ध में हमारी सोच, अर्न्तदृष्टि, समझ व नज़रिया है जिसके माध्यम से हम सामाजिक जीवन के पहलुओं को सूक्ष्मता से तर्क सम्मत समझने का प्रयत्न करते हैं। दर्शनकोष में लिखा गया है कि 'दर्शन प्रकृति, समाज और मानव चिन्तन के सामान्य नियमों का अध्ययन है।' पश्चिम दर्शनशास्त्रियों ने दर्शन को 'बौद्धिकता और प्रेम' के रूप में व्याख्यायित करते हुए इसे बौद्धिक अनुशासन माना है। वैसे यह विदित है कि दर्शन फिलॉसॉफी का पर्याय है जो इन्हीं दो यूनानी शब्द प्रेम और बौद्धिकता से मिलकर बना है। भारतीय चिन्तको ने दर्शन को मात्र प्रेम और बौद्धिकता की परिधि तक सीमित नही रखा। इस संदर्भ में माधवाचार्य ने कहा है कि "दर्शन में केवल बौद्धिक व्याख्या की बात ही अभिप्रेत नही है बल्कि इसके द्वारा परमसत्ता के साक्षात्कार का भी बोध होता है।" भारतीय दृष्टि में दर्शन विचार का नही प्राप्ति का विषय रहा है, जो अध्यात्म से जुड़ा हुआ है। किन्तु इसकी भी मूल विषय वस्तु जीवन और जगत है।

वैसे सामान्यजन में दर्शन को लेकर यह धारणा बनी हुई है कि दर्शन सामान्यजन के जीवन से कोसों दूर है और यह धारणा सिर्फ सामान्यजन के बीच ही निहित नहीं है हमारा प्रतिष्ठित बौद्धिक वर्ग भी बहुत हद तक यही स्वीकार करता है कि दर्शन हमारे समझ से बाहर है, और हमारे व्यवहारिक जीवन में इसकी कोई उपयोगिता नही है। बहुत से तो दार्शनिक चिंतको ने अपनी दार्शनिक श्रेष्ठता प्रदर्शित करने के लिए दर्शन को सामान्यजन के जीवन से अलग हटाकर इसे अलौकिक रूप देने का प्रयास किया है। किन्तु यह विभ्रम मात्र है कि दर्शन सिर्फ आत्मा-परमात्मा और जीवन-मृत्यु के अलौकिक चिन्तन का ही विषय है।

यह धारणा अब स्थापित हो चुकी है कि आज दर्शन हमारे व्यावहारिक जीवन में दृष्टव्य है जिसकी हमारे सामाजिक जीवन में महत्ता है। दर्शन आज मानव जीवन की वास्तविकता का सत्य है जो हमारे जीवन और समाज से गहनता से जुड़ा हुआ है। हम यह पहले ही बता चुके है कि "दर्शन एक वैचारिक अनुशासन है और विचार का अपना एक भौतिक सामाजिक आधार होता है जहाँ से दार्शनिक निष्पतियाँ न केवल उद्घाटित होती है बल्कि व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार और जीवन दृष्टि की नियामक भी बनती है।" यहाँ हम कह सकते हैं कि कोई भी समाज अपने वैचारिक और सामाजिक जीवन को अलग-अलग रखकर एक सामाजिक प्राणी की भाँति समाज में नहीं रह सकता। दर्शन एक विचार है और मनुष्य विचारशील प्राणी और जहाँ दर्शन का सम्बन्ध विचार से है वहीं मनुष्य का समाज से है और विचार मनुष्य के विवेक के उत्पन्न होते हैं। यहीं से दर्शन की सामाजिक जीवन में महत्ता का एक ख़ाका तैयार होने लगता है।

हमारे समाज का एक वर्ग जिसे हम बौद्धिक समझते है वह दर्शन को सामाजिक सापेक्ष हथियार की भाँति इस्तेमाल करता है। उसे यह पता है कि मानव स्वभाव और उसके दैनिक जीवन से जुड़े आपसी सम्बन्धों पर दर्शन का गहरा प्रभाव पड़ता है, क्योंकि वह अपने जीवन में सतत संघर्ष के साथ विवेकसम्मत चिन्तन और सृजन भी करता है और यह सब उसके व्यक्तिगत जीवन का एक हिस्सा है। इसलिए यह वर्चस्ववादी वर्ग दर्शन को एक विशिष्ट अलौकिक शक्ति के रूप में प्रदर्शित कर इसकी सामाजिकता को खण्डित करता है। यही वर्चस्ववादी वर्ग दर्शन के माध्यम से ही आमजन के बीच अपना प्रभुत्व कायम कर अपनी सामाजिक जरूरते पूरी करता है। उन्हें पता है कि दर्शन का हमारे सामाजिक जीवन में विशिष्ट महत्व है फिर भी अपने वर्चस्व को बचाये रखने के लिए वे दर्शन की सामाजिकता को नकारते हैं, क्योकि दर्शन सामान्यजन की बेहतरी और इंसानी समाज के निर्माण की सैद्धान्तिक बुनियाद बनाने की क्षमता रखता है।

सामाजिक जीवन में दर्शन की महत्ता को इस दृष्टि से भी देखा जा सकता है कि यह "व्यक्ति को अपने परिवेशीय घटनाओं, प्रक्रियाओं और स्थितियों को समझने और जानने की समग्र विश्व दृष्टि प्रदान करता है। दर्शन ही ब्राह्मण, मनुष्य तथा सम्पूर्ण मानव जाति का संनियम करने वाले सर्वाधिक बुनियादी नियमों का अध्ययन करता है। यह मनुष्य, समाज और प्रकृति की परस्पर द्वंदात्मक आत्मीयता का विश्लेषण करता है।" यह सर्वविदित है कि दर्शन अलौकिक व परमात्मिक मात्र नही है। यह हमारे सामाजिक जीवन का एक अहम अंग है जो हमें सोचने-समझने की दृष्टि प्रदान करता है।

मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य अपने दुःखो से मुक्ति पाकर चिरआनंद की प्राप्ति करना है। हमारे भारतीय दर्शन में इसे चेतना की मीमांसा के रूप में जाना जाता है जिसका लक्ष्य दुःखो के मूल कारण खोजकर अज्ञान से मनुष्य को मुक्ति दिलाकर मोक्ष की प्राप्ति करवाना है। यहाँ मोक्ष का तात्पर्य परमात्मिक व अलौकिक सत्ता से नही है। यहाँ मोक्ष अज्ञान, परम्परावादी व रूढ़िवादी विचारों को नष्ट करके सत्य ज्ञान को प्राप्त करना जीवन का मुख्य उद्देश्य है। दर्शन परम्परा व रूढ़िवादी विचारों के शमन का मार्ग प्रशस्त करता है जिससे मनुष्य अपने सामाजिक जीवन को उत्तम बना सके और एक सभ्य समाज का निर्माण कर सके। दर्शन सामाजिक जीवन के मौलिक सिद्धान्तो और धारणाओं की व्याख्या करता है और सामाजिक सम्बन्धो के सर्वोच्च आदर्शों का निरूपण करते हुए मानव सुखमय मानव-जीवन एवं समाज-निर्माण की संकल्पना करता है।

मार्क्स का मानना है कि "विचारों के विकास का इतिहास दिखाता है कि मनुष्य का सामाजिक अस्तित्व, उसकी सामाजिक चेतना जिसका एक रूप दर्शन होता है, को निर्धारित करता है।" मार्क्स की दृष्टि से देखें तो मनुष्य के सामाजिक चिन्तन की यह प्रक्रिया एकांत चिन्तन की नही है जैसा की परम्परावादी दर्शनशास्त्रियों ने बताया है, क्योंकि मनुष्य सदैव वैचारिक संघर्ष से जूझता रहा है, उसके वैचारिक संघर्ष आध्यात्मवादी नही बल्कि उसके समाज

और उसके जीवन से जुड़ी हुई रोजमर्रा की घटनाएँ हैं जिससे वह हर दिन उलझता है। उसका यही सामाजिक वैचारिक संघर्ष उसे दार्शनिक श्रेणी में ला देता है।

संदर्भ सूची :

1. भारतीय दर्शन, आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण- वि.सं. २०७८।
2. भारतीय दर्शन (ऐतिहासिक और समीक्षात्मक विवेचन), डॉ. नन्द किशोर, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, षष्ठ
    a. संस्करण- २००२।
3. भारतीय दर्शन, वाचस्पति गैरोला, लोकभारती प्रकाशन, छठवाँ संस्करण- २०१६।
4. दर्शन की सामाजिक भूमिका और भारतीय जीवनदृष्टि, सुधा चौधरी, गार्गी प्रकाशन, प्रथम संस्करण- २०१६।
5. दर्शन और जीवन, सम्पूर्णानन्द, परिपूर्णानन्द वर्म्मा, कानपुर, १९४१।
6. भारतीय दर्शन वैचारिक और सामाजिक संघर्ष, श्रीनिवास सरदेसाई, संवाद प्रकाशन, मुंबई : मेरठ, संस्करण- २००९।
7. A History of Indian Philosophy, volume. 2, Jadunath Sinha, Central Book Agency, Calcutta,1952.

कृषि तकनीकी परिवर्तन का अर्थ, महत्व एवं उपयोगिता का एक अध्ययन

पूनम यादव
शोधार्थी, भूगोल विभाग
एमयूआईटी विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
शोध निदेशक
डॉ. सलिक सिंह
भूगोल विभाग
एमयूआईटी विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

सारांश

कृषि व्यवस्था में तकनीकी परिवर्तन का उपयोग बीसवीं सदी की देन मानी जाती है। यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया एवं यूरोप के अनेक देशों में कृषि क्षेत्र में नवीन मशीन व अन्य उपयोगी उपकरण का प्रयोग 19 वीं शताब्दी के मध्य काल से प्रारंभ हुआ। लेकिन भारत जैसे अपेक्षाकृत अल्पविकसित कृषि प्रधान देशों में तकनीकी परिवर्तन का प्रभाव कृषि क्षेत्र में बहुत बाद में देखने को मिला है। जैसे भारत में परंपरागत रूप से हल-बैल एवं मानवीय श्रम का प्रयोग आधुनिक काल तक देखने को मिलता है। इस कारण से कृषि क्षेत्र में नवीन तकनीकी कृषि का उपयोग कृषि अर्थव्यवस्था में न होने से भारतीय कृषि सदियों से पिछड़ी हुई बनी रही है। भारत के संदर्भ में तकनीकी परिवर्तन का व्यापक प्रयोग 1960-70 के दशक में हरित क्रांति के युग से वृहद् रूप से दिखाई देता है। औद्योगिक क्षेत्र और कृषि विकास के अतिरिक्त आजकल सेवा क्षेत्र में भी कार्यकुशलता और उत्पादकता के बढ़ाने के लिए तकनीकी परिवर्तन के नवीन आयामों का प्रयोग सर्वत्र दिखाई देता है। चूँकि वर्तमान शोध का विषय कृषि विकास में तकनीकी परिवर्तन के उपयोग और प्रभाव से संबंधित है, अतः कृषि क्षेत्र के समग्र विकास में तकनीकी परिवर्तन के सभी पहलुओं का अध्ययन करना समसामयिक एवं आवश्यक होगा।

बीज शब्द: *कृषि, व्यवस्था, नवीन, तकनीक, परिवर्तन*

शोध आलेख

आज का युग विज्ञान एवं तकनीकी का युग है। मानव जीवन का कोई भी क्षेत्र विज्ञान एवं तकनीकी से अछूता नहीं है। आर्थिक रूप से विज्ञान एवं तकनीकी का आशय कार्य की ऐसी प्रणाली से है जो उपलब्ध साधनों का श्रेष्ठतम उपयोग करते हुये उत्पादन, रोजगार, राष्ट्रीय आय एवं देशवासियों के रहन-सहन के स्तर में तुलनात्मक रूप सें उन्नति करना है।

वस्तुतः तकनीकी परिवर्तन एक अति व्यापक धारणा है। तकनीकी परिवर्तन का संबंध केवल कृषि क्षेत्र से नहीं है, तकनीकी परिवर्तन मूलतः औद्योगिक क्षेत्र का कारण और परिणाम है। यदि तकनीकी परिवर्तनों के इतिहास का अध्ययन किया जाये तो यह स्पष्ट होगा कि इसका सुप्रारंभ औद्योगिक क्षेत्र में हुआ है। औद्योगिक क्षेत्र में औद्योगिक विकास को शीघ्र गति प्रदान करने के लिए नवीन वैज्ञानिक आविष्कार, अनुसंधान, नवीन मशीन की खोज को प्रोत्साहन मिला है। उत्पादन के आकार तथा पैमाने में परिवर्तन लाने हेतु, छोटे पैमाने के स्थान पर बड़े पैमाने पर उत्पादन प्रारंभ करने और औद्योगिक वस्तु के उत्पादन और उत्पादकता में तीव्र वृद्धि लाने हेतु तकनीकी परिवर्तन के तहत् आधुनिक मशीन और नये उपकरणों के निर्माण और व्यापक उपयोग को प्रोत्साहन मिला है। लेकिन तकनीकी परिवर्तन की विधा आज के युग में औद्योगिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रह गई है। यह मनुष्य और समाज के आर्थिक क्रिया-कलापों और जीवन के सभी बिंदुओं को स्पर्श करती है। यद्यपि कृषि अर्थव्यवस्था विश्व के अधिकांश देशों के आर्थिक विकास के तहत् प्राचीन काल से प्रारंभ हुई है। लेकिन कृषि क्षेत्र में तकनीकी परिवर्तन कालान्तर में बहुत बाद में प्रवेश किया है। इग्लैण्ड में 18 वीं सदी में औद्योगिक क्रांति का युग प्रारंभ हुआ। इग्लैण्ड की औद्योगिक क्रांति की सफलता के पीछे व्यापक तकनीकी परिवर्तन के सफल और वृहद् उपयोग का हाथ रहा है। इसके तहत् इग्लैण्ड में

नये-नये आविष्कारों को प्रोत्साहन मिला जैसे- परिवहन के क्षेत्र में जेम्स वॉट का रेल्वे इंजन का आविष्कार, सूती वस्त्र के उत्पादन के क्षेत्र में सूत की कटाई और बुनाई के नवीन यंत्रों एवं प्रिंटिंग एवं छपाई मशीन का आविष्कार आदि। कृषि व्यवस्था में तकनीकी परिवर्तन का उपयोग बीसवीं सदी की देन मानी जाती है। यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया एवं यूरोप के अनेक देशों में कृषि क्षेत्र में नवीन मशीन व अन्य उपयोगी उपकरण का प्रयोग 19 वीं शताब्दी के मध्य काल से प्रारंभ हुआ। लेकिन भारत जैसे अपेक्षाकृत अल्पविकसित कृषि प्रधान देशों में तकनीकी परिवर्तन का प्रभाव कृषि क्षेत्र में बहुत बाद में देखने को मिला है। जैसे भारत में परंपरागत रूप से हल-बैल एवं मानवीय श्रम का प्रयोग आधुनिक काल तक देखने को मिलता है। इस कारण से कृषि क्षेत्र में नवीन तकनीकी कृषि का उपयोग कृषि अर्थव्यवस्था में न होने से भारतीय कृषि सदियों से पिछड़ी हुई बनी रही है। भारत के संदर्भ में तकनीकी परिवर्तन का व्यापक प्रयोग 1960-70 के दशक में हरित क्रांति के युग से वृहद् रूप से दिखाई देता है। औद्योगिक क्षेत्र और कृषि विकास के अतिरिक्त आजकल सेवा क्षेत्र में भी कार्यकुशलता और उत्पादकता के बढ़ाने के लिए तकनीकी परिवर्तन के नवीन आयामों का प्रयोग सर्वत्र दिखाई देता है। चूँकि वर्तमान शोध का विषय कृषि विकास में तकनीकी परिवर्तन के उपयोग और प्रभाव से संबंधित है, अतः कृषि क्षेत्र के समग्र विकास में तकनीकी परिवर्तन के सभी पहलुओं का अध्ययन करना समसामयिक एवं आवश्यक होगा।

अर्थ और परिभाषा :

कृषि क्षेत्र में तकनीकी परिवर्तन को परिभाषित करने के पहले इस विषय को तीन भागों में विभाजित करना उचित होगा -

1. कृषि विकास,
2. तकनीकी परिवर्तन,
3. कृषि विकास में तकनीकी परिवर्तन,

1. कृषि विकास :- कृषि विकास एक बहुआयामी धारण है। इसका संबंध कृषि अर्थव्यवथा के चहुँमुखी विकास से है। सैद्धान्तिक रूप से कृषि के विकास का संबंध कृषि भूमि के उपयोग एवं उत्पादकता की वृद्धि से लिया जाता है। जिसमें भू-प्रणाली में सुधार से लेकर कृषि भूमि के क्षेत्र के विस्तार, कृषि भूमि में गुणात्मक सुधार, सिंचाई, सुविधाओं का चहुँमुखी विकास व विस्तार, रसायनिक एवं जैविक खाद का अधिकाधिक उपयोग, कीटनाशक दवाईयों का व्यापक प्रयोग तथा कृषि यंत्रीकरण में व्यापक सुधार और आधुनिकीकरण द्वारा संपूर्ण कृषि उत्पादन व उत्पादकता में वृद्धि लाने आदि से संबंधित है।

इससे अतिरिक्त कृषि एवं ग्रामीण विकास के अन्य पहलुओं जैसे- परिवहन, शिक्षा, प्रशिक्षण, बाजार, आधुनिक भण्डारण की सुविधाओं का विस्तार आदि भी तकनीकी परिवर्तन से प्रत्यक्ष रूप से न सही वरन् अप्रत्यक्ष रूप में समाहित है।

2. तकनीकी परिवर्तन :- सर्वप्रथम तकनीकी परिवर्तन का व्यापक अर्थ समझना उचित होगा, तकनीकी परिवर्तन नवीन वैज्ञानिक शोध एवं आविष्कार आदि से संबंधित है जो संबंधित क्षेत्र के विकास में बहुआयामी परिवर्तन लाकर उसकी कार्यकुशलता में वृद्धि कर तीव्र गति प्रदान करता है। तकनीकी परिवर्तन के तहत् नवीन मशीन उपकरण एवं शोध और ज्ञान का व्यवहारिक उपयोग किया जाता है। तकनीकी परिवर्तन के अन्तर्गत नवीन तकनीकी ज्ञान शिक्षा एवं वैज्ञानिक प्रशिक्षण का भी समावेश किया जाता है ताकि मनुष्य और समाज के आर्थिक क्रियाकलापों में इस प्रकार का परिवर्तन परिलक्षित हों, जो उनकी सोच और कार्यकुशलता में वृद्धि ला सकें। जिसका समग्र प्रभाव रोजगार, आय, उत्पादन, कार्यकुशलता एवं समग्र आर्थिक विकास की तीव्र गति के रूप में परिलक्षित हो। तकनीकी परिवर्तन एक सैद्धांतिक अध्ययन मात्र न होकर नवीन वैज्ञानिक अनुसधान एवं सर्वेक्षण तथा खोज का एक प्रयोगात्मक परीक्षण है।

3. कृषि विकास में तकनीकी परिवर्तन की प्रक्रिया: - कृषि उत्पादन की प्रक्रिया प्रारंभ में जुताई, बुवाई, सिंचाई, उन्नत बीज रासायनिक खाद, कीटनाशक दवाईयां एवं कृषि उपज की कटाई तथा अन्य सभी पहलुओं में व्यापक परिवर्तन को बताता है। उदाहरण के लिए 1. कृषि भूमि की जुताई में हल-बैल के स्थान पर ट्रेक्टर का उपयोग करना, 2. सिंचाई में परंपरागत कुओं के साथ-साथ नवीन डीजल और विद्युत पंप सेटों का उपयेग, 3. स्प्रिंकलर द्वारा सिंचाई तथा अन्य आधुनिक तकनीकी विधि को अपनाकर सिंचित क्षेत्र का अधिकाधिक विस्तार करना, 4.परंपरागत बीज के स्थान पर आधुनिक उन्नत एवं संश्लेषित बीजों का उपयोग करना, 5. भूमि की बनावट और स्थानीय जलवायु के अनुसार विभिन्न फसलों के लिये उपयुक्त और उन्नत बीजों का रोपण करना, 6. परंपरागत खाद के स्थान पर रासायनिक खाद एवं आधुनिक विधि से तैयार की गई, जैविक खाद का आदर्श उपयोग, 7. उगती फसलों को हानि पहुँचाने वाले कीट-पतंगों एवं अवांछित खरपतवारों को समाप्त करने के लिये कीटनाशक दवाईयों आदि का उपयोग करना, 8. आधुनिक भू एवं पौध संरक्षण के अन्य सभी उपायों को वैज्ञानिक ढ़ंग से क्रियान्वित करना, 9. भूमि की उर्वराशक्ति को पुर्नस्थापित और बढ़ाने के लिये मृदा का नवीन वैज्ञानिक और तकनीकी ढ़ंग से परीक्षण और सुधार करना।

इन सभी कृषि की विधाओं में तकनीकी परिवर्तन का अंतिम लक्ष्य विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न फसलों के समग्र उत्पादन में वृद्धि लाने में सहायक प्रेरक तत्वों के उपयोग को बढ़ाना एवं साथ ही फसलों के उत्पादन में वृद्धि लाने के मार्ग में उत्पन्न बाधाओं को समाप्त कर फसलों के समग्र एवं प्रति उत्पादकता में वृद्धि लाना है। आजकल नवीन तकनीकी परिवर्तन में कृषि उत्पादन के बाद विपणन बाजार उचित मूल्य, परिवहन साधनों का विकास, गोदामों में संचय की समुचित व्यवस्था आदि कृषि उत्पादन के बाद के विक्रय संबंधी क्रियाओं में व्यापक सुधार का भी समावेश किया जाता है।

कृषि अभियांत्रिकी - कृषि अर्थव्यवस्था में तकनीकी परिवर्तन का व्यापक उपयोग मशीन और नये उपकरणों का कृषि कार्य में अधिकाधिक उपयोग से जुड़ा हुआ है। तकनीकी रूप से इसे कृषि अभियंत्रण की संज्ञा दी जा सकती है। कृषि अभियंत्रीकरण वस्तुतः कृषि कार्य की विभिन्न क्रियाओं में नवीन मशीन और उपकरणों के उपयोग को प्रदर्शित करता है जिसके अंर्तगत परम्परागत पशु एवं मानवीय श्रम द्वारा संचालित साधनों के स्थान पर नवीन वैज्ञानिक और उन्नत मशीन और उपकरणों को प्रतिस्थापित करना है। जिसके फलस्वरूप समय की बचत के साथ-साथ कृषि की उत्पादकता में कई गुनी वृद्धि होगी।

यंत्रीकरण कृषि उत्पादिता बनाने हेतु यांत्रिक शक्ति का प्रयोग है। आधुनिक ढ़ंग से सफल तथा उन्नत कृषि के लिए यांत्रिक शक्ति का उपयोग महत्वपूर्ण है। यंत्रीकरण अथवा मशीनीकरण का संबंध ऐसे उन्नत कृषि यंत्रों से है। जिनकी सहायता से प्रति इकाई उत्पादकता लागत घट जाती है और ऐसी भूमियों पर खेती हो जाती है। जो बंजर और (संभव) कम उपजाऊ है। सघन एवम् बहुफसलीय कृषि प्रणाली भी कृषि में नवीन एवं उन्नत कृषि औजारों की उपेक्षा करती है। यंत्रीकरण से एक ओर तो श्रम तथा मजदूरी में बचत होती है और दूसरी ओर उत्पादन बढ़ता है। अनेक कृषि कार्य ऐसे होते हैं जिन्हें हाथ से करना प्रायः अनुपयोगी और महंगा होता है ये कृषि कार्य यंत्रों द्वारा किये जा सकते हैं।

कृषि में यंत्रीकरण का आशय कृषि कार्यों में यन्त्रों तथा मशीनों के प्रयोग से है। जो कृषि कार्यों में पशुओं तथा मनुष्यों का स्थान लेता है। यंत्रीकरण में मुख्यतः ट्रेक्टर, नलकूप, पम्पिंग सैट, थ्रेसर, चारा काटने की मशीन, कम्बाइनर ड्रिल, हारवेस्टर पुटेटों, हारवेस्टर काटन पिनर, क्रेन हारवेस्टर तथा क्रेन क्रेशर आदि आधुनिक यंत्र गिने जाते हैं। सामान्यतः ट्रेक्टर खेती करने का एक बहुउद्देशीय यन्त्र माना जाता है तथा कृषि में यंत्रीकरण का अर्थ भी इसका पर्यायवाची बन गया है। यंत्रीकरण की क्रियाओं में खेत जोतने, बुबाई करने, सिंचाई करने, फसल काटने, चारा काटने, सामान ढोने (ग्रामीण परिवहन) गुड बनाने, प्रशोधन यन्त्रादि

को सम्मिलित किया जाता है। जिसका अर्थ कृषि क्षेत्र में आधुनिक यन्त्रों व क्रियाओं का प्रयोग ही कृषि यंत्रीकरण कहलाता है।

भारत के प्रमुख कृषि अर्थशास्त्री जे.पी. भट्टाचार्या के अनुसार ''कुछ कृषि कार्यों को जो कि पशुओं या मनुष्यों अथवा दोनों ही के द्वारा किए जाते हैं मशीनों द्वारा किये जाएं तो कृषि का यन्त्रीकरण पूर्ण भी हो सकता है, अथवा आंशिक भी पूर्ण यंत्रीकरण में फार्म या खेत संबंधी सभी कार्य प्रायः मशीनों द्वारा किये जाते हैं, जबकि आंशिक यंत्रीकरण में फार्म संबंधी कार्यों का आंशिक भाग ही मशीनों द्वारा किया जाता है। पूर्ण यन्त्रीकरण अपनाया गया है।''

भारत के प्रमुख कृषि वैज्ञानिक अर्थशास्त्री डॉ स्वामीनाथन के अनुसार ''कृषि फसलों की उत्पादिकता बढ़ाने के लिए कृषि की सभी क्रियाओं में नवीन मशीन एवं अन्य यान्त्रिक शक्तियों का व्यापक प्रयोग एवं समावेश कृषि यंत्रीकरण का एक व्यवहारिक रूप है।''

भारत के प्रमुख अर्थशास्त्री प्रो. दन्तवाला के अनुसार ''कृषि उपज में क्रांतिकारी वृद्धि हेतु नवीन तकनीकी ज्ञान का कृषि के विविध क्रियाओं में गहन उपयोग करना अति आवश्यक है, कृषि मशीनीकरण को उन्नत नवीन मशीन टूल्स एवं अन्य उपकरणों द्वारा परंपरागत कृषि पद्धती को इस प्रकार प्रतिस्थापित किया जाये कि सभी कृषि फसलों की उत्पादकता में व्यापक वृद्धि के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।'' इस संदर्भ में प्रो. स्वामीनाथन का उदाहरण देना उचित होगा,

संक्षेप में तकनीकी परिवर्तन के अन्तर्गत कृषि अर्थव्यवस्था में नवीन कृषि यंत्रीकरण की सर्वोच्च भूमिका परिलक्षित होती है, कृषि यंत्रीकरण तकनीकी परिवर्तन का प्रारंभिक एवं आधारभूत तत्व है, जिसके अन्तर्गत प्राचीन श्रम एवं पशु, हल, बैल, कृषि जोत की पद्धति में नवीन ट्रेक्टर तथा अन्य आधुनिक मशीनों द्वारा संपूर्ण कृषि कार्य को प्रतिस्थापित किया जाता है, तकनीकी परिवर्तन के तहत् कृषि यंत्रीकरण का अधिकाधिक प्रयोग होने से न केवल प्रति

हेक्टेयर फसलों की उत्पादकता में वृद्धि होती है, जबकि किसानों की समग्र आय में वृद्धि होने से उनका जीवन स्तर भी ऊँचा उठने लगता है।

कृषि यंत्रीकरण के प्रकार

कृषि यंत्रीकरण दो प्रकार का होता है- 1. सम्पूर्ण यंत्रीकरण, 2. आंशिक यंत्रीकरण। जब कृषि के सभी कार्य मशीनों द्वारा किये जाते हैं तो उसे सम्पूर्ण यंत्रीकरण की संज्ञा दी जाती है। आजकल कनाडा, अमेरिका, इत्यादि विकसित देशों में इस प्रकार की खेती की जा रही है।

जब कृषि के अधिकांश कार्य मशीनों द्वारा और कुछ कार्य मानव व पशु शक्ति द्वारा किये जाते हैं, तो इस प्रकार की खेती को आंशिक यंत्रीकरण की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार की खेती का प्रचलन भारत जैसे कृषि प्रधान अधिक जनसंख्या वाले विकासशील देशों में सर्वत्र दिखाई देता है।

कृषि यंत्रीकरण की उपादेयता - नवीन तकनीकी ज्ञान और परिवर्तन का जब कृषि क्षेत्र में व्यापक प्रयोग होने लगता है तब कृषि यंत्रीकरण का उपयोग सम्पूर्ण कृषि कार्य की विधाओं में प्रारंभ से लेकर फसल कटाई की अंतिम प्रक्रिया तक यंत्रीकरण का उपयोग बढ़ता जाता है। इससे संपूर्ण देश में कृषि अर्थव्यवस्था का स्वरूप अल्पविकसित से एक विकसित क्षेत्र के रूप में परिवर्तित होन लगता है। इस प्रकार तकनीकी परिवर्तन का लाभ निम्नलिखित है-

1. प्रतिहेक्टेयर कृषि उत्पादकता में वृद्धि,
2. उत्पादन व्यय में कमी,
3. श्रम के ज्ञान और कार्यकुशलता में वृद्धि,
4. भूमि सुधार को प्रोत्साहन,
5. श्रम शक्ति के लिए रोजगार के नये अवसर,
6. समग्र उत्पादन में वृद्धि,
7. कृषि के अनावश्यक कार्यों से मुक्ति,

8. पशु संबंधी व्यय में कमी,
9. सिंचाई की सुविधाओं का विस्तार,
10. व्यापारिक और नकदी फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहन,
11. घन और समय की बचत,
12. मशीनों की श्रेष्ठता का लाभ,
13. कृषकों की ज्ञान और तकनीकी प्रशिक्षण को प्रोत्साहन,
14. संपूर्ण ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार,,
15. कृषि विकास में औद्योगीकरण को प्रोत्साहन,
16. अर्थव्यवस्था के व्यापक सुधार को प्रोत्साहन,
17. कृषि के आधुनिकीकरण का सूचक,
18. अन्य लाभ,

तकनीकी में कृषि यंत्रीकरण की समस्यायें और हानियाँ,

1. जोतों का आकार छोटा होना,
2. बेकारी की समस्या,
3. प्रारंभिक शिक्षा की कमी,
4. प्राविधिक शिक्षा की कमी,
5. पशुओं द्वारा प्राप्त विशेष लाभों का अभाव,
6. खेतों का तितर-बितर होना,
7. पूंजी की कमी,
8. पशुओं के उपयोग की समस्या,

तकनीकी परिवर्तन के तहत् कृषि कार्य में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख आधुनिक उपकरणः-

1. ट्रेक्टर - 20 वी सदी के प्रारंभ में तकनीकी परिवर्तन के तहत् कृषि पद्धति में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का सर्वप्रथम श्रेय ट्रेक्टर को जाता है। वास्तव में ट्रेक्टर कृषि यंत्रीकरण के क्षेत्र में सबसे वृहद बहुउद्देशीय कृषि कार्यों के लिए सर्वाधिक उपयोगी और लाभकारी कृषि उपकरण माना जाता है, ट्रेक्टर एक जटिल एवं

छोटे-बड़े कलपुर्जों से बनी बहुत बड़ी एवं भारी मशीन है। ट्रेक्टर एक स्वयं चलने वाली (सेल्फ प्रीपेड) मशीन है, यह स्वयं चलती है और दूसरी कृषि मशीनों को चलाती है इसमें चार पहिये होते हैं, किसी-किसी ट्रेक्टर में ट्रेक्स भी लगे होते हैं।

यदि ट्रेक्टर के आविष्कार और प्रयोग के इतिहास का अध्ययन किया जाये तो स्पष्ट होगा कि विश्व में पहला ट्रेक्टर सन् 1908 में अस्तित्व में आया था। कृषि योग्य एवं सामान्य कार्यों के लिए ट्रेक्टर का उपयोग सन् 1925 में हुआ, तभी से कृषि के यन्त्रों एवं अन्य मशीनों की खोज शुरू हो गयी आज कृषि का मशीनीकरण हो गया है। लगभग सभी कार्य आज मशीनों द्वारा होने लगे हैं। फलस्वरूप कम लेबर, कम समय, कम लागत के साथ कार्य अच्छा, उचित समय पर हो जाता है तथा पैदावार में भी वृद्धि होती है। विश्व में हवा के टायरों वाला न्यूमेटिक ट्रेक्टर जो डीजल फ्यूल से चलित था, सन् 1930 में खोजा गया हमारे देश में इन ट्रेक्टरों का प्रोडक्शन सन् 1960 में शुरू हुआ। 1960 के बाद से कृषि के क्षेत्र में मशीनीकरण के कारण सभी कार्य आसान हो गये हैं। दिन-प्रतिदिन मैकेनाईजेशन का स्तर बढ़ता ही जा रहा है, जिसका कारण है, ट्रेक्टिव पॉवर का कृषि क्षेत्र में बढ़ता हुआ उपयोग।

संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा एवं यूरोप के विकसित देशों में कृषि कार्य में ट्रेक्टर के प्रयोग की आवश्यकता इसलिए उत्पन्न हुई, क्योंकि इन सभी अतिशीतोष्ण देशों में वर्ष के आधे समय में बर्फीली तूफानी हवाओं के कारण कृषि उत्पादन की सम्पूर्ण अवधि अत्यन्त अल्प हो जाती है। अतः एक ही कृषि भूमि में दो या तीन फसलों की बुबाई और जुताई के लिये समय की कमी की समस्या सदैव बनी रहती है। इसके अतिरिक्त मानवीय श्रम के माध्यम से फसल की बुबाई और कटाई में बहुत अधिक समय लग जाने के साथ ही जनसंख्या और श्रम शक्ति के अभाव और पूंजी और नवीन तकनीकी ज्ञान के आविष्कार और प्रयोग के औचित्य की पृष्ठ भूमि में कृषि कार्य में ट्रेक्टर जैसे आधुनिक उपकरण की नितान्त आवश्यकता प्रतीत हुई। इसके विपरीत भारत जैसे अधिक जनसंख्या वाले कृषि प्रधान देशों में नवीन वैज्ञानिक आविष्कार एवं तकनीकी

ज्ञान के अभाव में हल-बैल एवं मानवीय श्रम का प्रयोग सदैव होता रहा हैं इसके अतिरिक्त भारतीय कृषकों की दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण ऊँची पुँजीगत लागत वाले महंगे ट्रेक्टर जैसे उपकरण का प्रयोग मध्यम, लघु, एवं सीमांत कृषकों के बस की बात नहीं रहती है। फिर भी हरित क्रांति के बाद से आधुनिक और वैज्ञानिक कृषि को आज सर्वत्र प्रोत्साहन मिलने लगा है। आधुनिक तकनीकी ज्ञान का कृषि क्षेत्र को अधिकाधिक लाभ मिले, इस नई कृषि नीति को अब भारत में केन्द्रीय और राज्य सरकारें भी सर्वोच्च प्राथमिकता देने लगी हैं। अब सरकार की नयी कृषि विस्तार नीति के तहत् बैंकों के माध्यम से भी ट्रेक्टर जैसे बड़े और महंगे उपकरण को क्रय करने की भी उदार ऋण नीति अब लागू की जा चुकी है।

निष्कर्ष

"झुन्झुनू जिला शेखावाटी क्षेत्र के सुनहरे अतीत पुरातन संपदा के अनकहे पृष्ठ और प्रमाणों तथा महाभारत कालीन स्मृतियों को अपने अंतराल में समेटे हुए है''।

झुन्झुनू जिले का नामकरण उसके मुख्यालय झुन्झुनू नगर के कारण पड़ा। प्राचीन अवधारणा के अनुसार झुन्झुनू के राजा झुंझारसिंह के कारण इसका नाम झुन्झुनू पड़ा। स्थानीय लोगों की धारणा यह है कि यह नगर झुंझारसिंह ने बसाया। 15वीं शताब्दी का इस शिलालेख में खेतड़ी नगर का उल्लेख है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सन् 1956 में भारतीय संविधान में संशोधन हुआ, जिसके अनुसार भारत में सम्पूर्ण राज्यों का पुनर्गठन किया गया, तदानुसार राजस्थान की स्थापना हुई। एक नवम्बर 1956 में स्थापित भारत का हृदय स्थल राजस्थान राज्य आकार की दृष्टि से भारत का सबसे वृहद् राज्य बन गया। सन् 1956 से लेकर 1972 तक झुन्झुनू जिला कोटा संभाग के अंतर्गत था। लेकिन सन् 1973 में जयपुर संभाग का गठन हुआ, जिसके अंतर्गत सीकर, झुन्झुनू, एवं चुरु जिलों का समावेश किया गया। आकार की दृष्टि से झुन्झुनू जिले का क्षेत्रफल 5,928 वर्ग किमी है, जो जयपुर संभाग के जिलों, जयपुर एवं सीकर के बाद

आकार में तीसरे क्रम पर है। भले ही झुन्झुनू जिला आकार की दृष्टि से मध्यम स्तर का हो, लेकिन ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि की दृष्टि से बहुचर्चित, लोकप्रिय एवं समुचित सर्वेक्षण एवं खोज का केंद्र माना जाता है। 1 नवम्बर 1999 को छत्तीसगढ़ राज्य का गठन हो जाने के बाद राजस्थान में जिलों की संख्या 33 रह गई है।

संदर्भ सूची

1. नाथूरामका, लक्ष्मीनारायण (1986) - भारतीय अर्थव्यवस्था, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा.
2. झिंगल, ओ.पी. (1999) - एग्रीकल्चर इंजीनियरिंग, अमन पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ.
3. मिश्रा, ए.पी. (2005) - जलसंसाधन प्रबंधन एवं संरक्षण, आविष्कार पब्लिशर डिस्ट्रीव्यूसन.
4. त्रिपाठी; राजपूत (2007) - कृषक दूत, धान की उन्नत खेती, इंदिरा गांधी कृषि वि.वि., रायपुर.
5. तोमर; दुबे; शर्मा; पहलवान - जैविक खेती, विस्तार संचालनालय, जवाहरलाल नेहरु कृषि वि.वि., जबलपुर.
6. सिंह, जे. आर. - ट्रैक्टर संचालन एवं रख-रखाव, कृषि जगत, भोपाल.
7. जोशी, प्रीति - जैविक खाद तंत्र ज्ञान, सृजन एवं विज्ञान विकास संस्थान, भोपाल.
8. कुमार, एस. - ए हैण्ड बुक आफॅ एगी्रको, अमन पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ.
9. तिवारी; सिंह - कृषि भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद.

सन्त काव्यान्दोलन का उदय और आवश्यकता

डॉ. शीला आर्या
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली. 110067
मो. 9540489044
ईमेल: Sheelalobiyal@gmail.com

सारांश

यह शोध पत्र मध्यकालीन संत काव्यान्दोलन के उदय की पृष्ठभूमि और आवश्यकता को ध्यान में रखकर लिखा गया है। किसी भी काल की कठोर आवश्यकताएँ महापुरुषों को जन्म देती हैं। सन्तों का उदय भी अपने समय की विशेष या कठिन परिस्थितियों की आवश्यकता थी। मध्यकालीन सन्त हों या आधुनिक कालीन डॉ. भीमराव सभी का समय अपने सामाजिक परिवेश के कारण कठिन रहा है। इन सभी ने अपने अवसरों को तलाशा और उनका सदुपयोग किया। कबीर निर्गुण या निराकार उपासक के माध्यम से मध्यकाल में समाजवाद की स्थापना करने वाले सन्त प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित किये जा सकते हैं। सन्त काव्यान्दोलन का मध्यकालीन भारतीय साहित्येतिहास में क्या महत्त्व था और मध्यकालीन परिवेश में उसकी क्या भूमिका रही? कहने की आवश्यकता नहीं कि इस बहु-आयामी और बहु-स्तरीय सन्त काव्यान्दोलन का प्रभाव जितना व्यापक था उसकी जड़ें उतने गहरे तक जुड़ती हैं। इसलिए इतने समयान्तराल के बाद भी यह प्रासगिंक है और हमारे राष्ट्रीय, सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन को अनुशासित करने का कार्य करता है। अपने युग विशेष में सन्तों ने जो नैतिक मूल्य गढ़े वे आज भी प्रासंगिक और मूल्यवान हैं।

बीज शब्द- *मध्यकालीन, पृष्ठभूमि, सन्त, काव्यान्दोलन, सामाजिक*

शोध आलेख

साहित्य अपने समय की पड़ताल है इसलिए साहित्यकार अपने समय के सामाजिक अंर्तद्वन्द्व से मुह मोड़कर नहीं रह सकता है। भारतीय संहिता में साहित्य ने हमारे समाज में सामाजिक असमानता और लिंग भेद के सवालों पर बहुतायत

रूप से मानव-विरोधी एवं स्त्री विरोधी सवालों पर या तो परम्परावादी तर्क प्रस्तुत किया है, या चुप्पी साध ली है। जबकि मानवीय अस्मिता का सवाल हो या स्त्री अस्मिता का सवाल, व्यक्तिगत अस्मिता का सवाल नहीं बल्कि सामाजिक अस्मिता का सवाल भी है। भारतीय मुख्यधारा के साहित्य में यह सवाल जस का तस है। सन्त भी उन्हीं सवालों से जूझते नजर आते हैं और दलित साहित्यकार भी। साहित्य-लेखन अपने समकालीन समाज की उपेक्षा नहीं कर सकता। उसमें अपने समय के समाज एवं उसकी विकृतियों, सामाजिक मूल्यों और अपने समय में लगातार होने वाले संघातों एवं परिवर्तनों का लेखा-जोखा भी होना चाहिए, और सन्त साहित्य में अपने समय की तस्वीर साफ-साफ दिखाई देती है। सही मायनों में 'निर्गुण' सत्य की खोज है। असल बात यह है कि समाज की मूल संरचना में उसके निर्मम, उसके अन्तरण और अनुकूलन से सम्बद्ध राजनैतिक सामाजिक, प्रशासनिक तथा सांस्कृतिक इतिहास में मध्ययुगीन मूल्य निर्माण में लोकप्रिय सन्तों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। सन्तों के उदय के लिए उसकी तत्कालीन युगीन परिस्थितियाँ जिम्मेदार थीं। मध्यकालीन सन्त काव्यान्दोलन अपने ढंग का पहला आन्दोलन है, जिनके द्वारा व्यक्त किया गया विचार सीधा-सादा आडम्बरहीन एवं व्यापक है। अतः सन्त कवियों के उपदेशक वाणी का सुव्यवस्थित गंभीर अध्ययन भारतीय संस्कृति को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण कड़ी है। आज तक यह आरोप लगते रहे कि इन अशिक्षित सन्तों के दार्शनिक विचार क्रमरहित, अस्पष्ट व असम्बद्ध हैं। यह आरोप सही नहीं हैं? बल्कि जरूरत है उनके विचारों एवं उनकी दार्शनिकता को समझने व आत्मसात् करने की। यही इस शोध पत्र का उद्देश्य है।

किसी भी काल की कठोर परिस्थितियां एवं आवश्यकताएँ महापुरुषों को जन्म देती हैं। सन्तों का उदय भी अपने समय की विशेष या कठिन परिस्थितियों की आवश्यकता थी। जहाँ तक सन्त व भक्त कवि का अंतर है स्पष्ट है कि जो ईश्वर को पत्थर की मूर्ति के रूप में आराध्य मानकर उसकी भक्ति, उपासना, व्रत, नैवेद्य तथा उसको विविध रूपों में अवतरित मानकर बहुदेवतावाद और अवतारवाद

में विश्वास करते हैं संसार से मोहभंग, मांगकर खाने तथा समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारियों से भागकर अपने आराध्य पर कविता करता है वह भक्त है। जैसे- तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, ये सभी भक्त कवि और कवयित्री हैं, परन्तु जो सत्य की खोज में एक अजस्र शक्ति को प्रवाहमान मानते हुए मनुष्य को सर्वोपरि मानते हैं। उनकी एकता-अखण्डता और समभाव में विश्वास करते हैं वे सन्त कवि हैं। व्रत, पूजा, नैवेद्य में इनका विश्वास नहीं है, दान-दक्षिणा से ये दूर रहते हैं। घर-गृहस्थी में रमते हुए अपने काम करते हैं और संयम का आचरण करते हैं। संसार से विरक्ति इनका उद्देश्य नहीं बल्कि मनुष्य जीवन के नैतिक कार्यों में इनका विश्वास है। इसलिए कर्म के सिद्धांत में विश्वास करते हैं। संसार से विरक्ति और अपने उद्देश्यों से विरक्ति भक्तों की पहचान है वे ईश्वर को ही अपना सर्वेसर्वा मानते हुए किसी चमत्कार की उम्मीद में उसके निर्देशों का इंतजार करते हैं।

मध्यकाल में जो विचार बौद्ध धर्म के प्रवर्तन के बाद अपने सुशुप्तावस्था में चला गया था, वह इस्लाम के आते ही फिर से ताकतवर हो चला था। ब्राह्मणवाद ने एक बार फिर से अपने प्रपंच दिखाते हुए एकता का मंत्र फूँकने का प्रयास किया। ताकि हिन्दुस्तान की जनता जातिवाद के बैर-भाव भुलाकर इस्लाम को उखाड़ फेंक दे। इसलिए उसने सामाजिक एवं धार्मिक मुक्ति का राग अलापकर सबको एक करने का प्रयास किया। परन्तु निम्न तबके के संतों ने पत्थर के ईश्वर का खंडन करते हुए निराकार में विश्वास कर ब्राह्मणवाद को जोरदार चुनौती दी। यह नवमानवतावाद का राग था। प्रत्येक युग अपने समय में मानवतावाद की परिभाषा गढ़ता है। क्योंकि इसका अभिप्राय है मनुष्य को उसकी सम्पूर्ण शक्ति का स्रोत समझकर लक्ष्य निर्धारित करना। मध्यकालीन सन्तों का लक्ष्य था अपने आपको जानना और मनुष्य को उसकी शक्ति के रूप में पहचान दिलाना। तभी तो नामदेव टूटी हुई मूर्ति को देखकर ईश्वर में विश्वास करना छोड़ देते हैं और निर्गुण में रिक्त हो जाते हैं।

सुमन राजे मध्यकालीन नवजागरण को द्विमुखी संघर्ष की भूमिका में पनपता मानती हैं। एक अन्तर्मुखी दूसरा बहिर्मुखी। बहिर्मुखी संघर्ष के लिए वे कहती हैं-

"इस्लाम जैसे संगठित मजहब से भारत का पाला पहली बार पड़ा था। इन दोनों संस्कृतियों के संघात से बहुत से स्फुलिंग उत्पन्न हुए जिन्होंने इस नवजागरण को गति प्रदान की। इस प्रकार की आवाज सुनाई पड़ी। पत्थर का ईश्वर ईश्वर नहीं, मिट्टी का ईश्वर ईश्वर नहीं, काठ का ईश्वर ईश्वर नहीं है और सेतुबँध रामेश्वरम्, गोकर्ण, काशी, केदार आदि पुण्य-क्षेत्रों के मन्दिरों में स्थित ईश्वर ईश्वर नहीं है। अपने आप को जान लेना ही ईश्वर है।"1 यह सत्य है परन्तु यह परिवर्तन मध्यकाल में आकर अचानक नहीं आता है इस विचार की ठोस भूमि इससे पूर्व चार्वाकों ने लोकायत में पहले बन चुकी थी।

डॉ. धर्मवीर के अनुसार- "इसमें यह बात मान लेने की है कि यदि मुसलमानों का सामाजिक प्रभाव इस देश पर न पड़ा होता तो दलित जातियों में से इतने सारे सन्त नहीं निकल सकते थे। दो समाजों के परस्पर सम्पर्क में आने की उठापटक में से तत्कालीन भारतीय समाज में दलित और गैर-दलित समाज में अनेक सन्तों ने जन्म लिया था।"2 सन्त काव्यान्दोलन के उद्देश्यों ने यह सिद्ध किया है कि कोई भी साहित्य-लेखन अपने समकालीन समाज की उपेक्षा नहीं कर सकता। उसमें अपने समय के समाज एवं उसकी विकृतियों, सामाजिक मूल्यों और अपने समय में लगातार होने वाले संघातों एवं परिवर्तनों का लेखा-जोखा भी होना चाहिए, और सन्त साहित्य में अपने समय की तस्वीर साफ-साफ दिखाई देती है।

सही मायनों में 'निर्गुण' सत्य की खोज है, सन्तों के उदय के लिए उसकी तत्कालीन युगीन परिस्थितियाँ जिम्मेदार थीं। शिव कुमार मिश्र के अनुसार- "निर्गुण पंथ का उदय ''मध्यकाल में निर्गुण पंथ के तहत निर्गुण भक्ति के रूप में हुआ। निर्गुण भक्ति का उत्तर में यह उदय कोई आकस्मिक घटना नहीं है, सिद्ध और नाथ उसके लिए पहले ही जमीन प्रशस्त कर चुके थे। कुछ तो विद्यमान ब्राह्मणवादी सामाजिक संरचना की जटिलताएँ-फलतः निम्न कहे जाने वाले एक बृहद मानव-समुदाय का अभिशप्त जीवन इस्लाम के प्रवेश के साथ उत्पन्न चुनौतियाँ थीं।"3 असल बात यह है कि समाज की मूल संरचना में उसके निर्मम,

उसके अन्तरण और अनुकूलन से सम्बद्ध राजनैतिक सामाजिक, प्रशासनिक तथा सांस्कृतिक इतिहास में मध्ययुगीन मूल्य निर्माण में लोकप्रिय सन्तों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। मध्यकालीन सन्त काव्यान्दोलन अपने ढंग का पहला आन्दोलन है, जिनके द्वारा व्यक्त किया गया विचार सीधा-सादा आडम्बरहीन एवं व्यापक है। अतः सन्त कवियों के उपदेशक वाणी का सुव्यवस्थित गंभीर अध्ययन भारतीय संस्कृति को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण कड़ी है। आज तक यह आरोप लगते रहे कि इन अशिक्षित सन्तों के दार्शनिक विचार क्रमरहित, अस्पष्ट व असम्बद्ध हैं। क्या यह आरोप सही है? नहीं...! जरूरत है उनके विचार उनकी दार्शनिकता को समझने व आत्मसात् करने की। जहाँ तक सन्त व भक्त कवि का अंतर है स्पष्ट है कि जो ईश्वर को पत्थर की मूर्ति के रूप में आराध्य मानकर उसकी भक्ति, उपासना, व्रत, नैवेद्य तथा उसको विविध रूपों में अवतरित मानकर बहुदेवतावाद और अवतारवाद में विश्वास करते हैं संसार से मोहभंग, मांगकर खाने तथा समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारियों से भागकर अपने आराध्य पर कविता करता है वह भक्त है। जैसे- तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, ये सभी भक्त कवि और कवयित्री हैं, परन्तु जो सत्य की खोज में एक अजस्र शक्ति को प्रवाहमान मानते हुए मनुष्य को सर्वोपरि मानते हैं। उनकी एकता-अखण्डता और समभाव में विश्वास करते हैं वे सन्त कवि हैं। व्रत, पूजा, नैवेद्य में इनका विश्वास नहीं है, दान-दक्षिणा से ये दूर रहते हैं। घर-गृहस्थी में रमते हुए अपने काम करते हैं और संयम का आचरण करते हैं। संसार से विरक्ति इनका उद्देश्य नहीं बल्कि मनुष्य जीवन के नैतिक कार्यों में इनका विश्वास है। इसलिए कर्म के सिद्धांत में विश्वास करते हैं। संसार से विरक्ति और अपने उद्देश्यों से विरक्ति भक्तों की पहचान है वे ईश्वर को ही अपना सर्वेसर्वा मानते हुए किसी चमत्कार की उम्मीद में उसके निर्देशों का इंतजार करते हैं।

अमानवीय जर्जर व निष्प्राण होती मानवता, भेदभाव और ऊँच-नीच के पैमाने पर कसने वाली मानसिकता, हिन्दू-मुसलमान में विभाजित करने वाली सामाजिक संरचना, ब्राह्मणवाद, सामन्तवादी मानसिकता, धर्म के पाखंड, मंदिर-

मस्जिद, तीर्थ-नवाज ये सब चुनौतियाँ सन्तों के समक्ष मौजूद थीं। उन्होंने बड़ी गम्भीरता से इन बाह्य उपक्रमों को चुनौती दी। इसलिए वे उसका संवर्द्धन करते हैं तथा समाज व्यवस्था के संस्थापकों द्वारा इसे विकृत करने से बचाने का प्रयास करते हैं। बकौल इरफान हबीब "मध्यकालीन एकेश्वरवादियों में पाये जाने वाली जाति प्रथा के प्रति विद्वेष का उत्स भी इस्लाम के अभ्युदय के पूर्व मौजूद था।...बौद्ध सिद्धों में अधिकतर निम्न जाति के थे और ब्राह्मणों के विरोधी थे। परम गुरु की अवधारणा विकसित करने वाले जोगियों का नाथ सम्प्रदाय एकेश्वरवादियों में लोकप्रिय था। नाथों, सिद्धों से जाति विरोध की भावना ली और उसे आगे बढ़ाते हुए एकेश्वरवादियों को दिया।"4

मध्यकाल में सन्त काव्यान्दोलन के उदय की पृष्ठभूमि को स्पष्ट रुप से समझने के लिए डॉ. अम्बेडकर की इस उक्ति पर ध्यान देना होगा जिसमें वे कहते हैं, कि ''क्रान्ति का नेतृत्व करने वाले किसी समाजवादी का यह आश्वासन कि मैं जाति प्रथा में विश्वास नहीं करता। मेरे विचार में काफी नहीं है। आश्वासन ऐसा होना चाहिए जिसकी गहरी बुनियाद है। अर्थात् एक देशवासी का मानसिक व्यवहार दूसरे के प्रति व्यक्तिगत समानता और भाईचारे की भावना से भरा हो।''5 डॉ. अम्बेडकर यद्यपि यह बात समाजवाद के सन्दर्भ में कर रहे हैं परन्तु इसकी समानता मध्यकालीन सन्त काव्यान्दोलन से भी की जा सकती है, क्योंकि इस सन्दर्भ में मध्यकाल में सन्तों ने समाज-परिवर्तन के उद्देश्य से जो काव्यान्दोलन चलाया उसका उद्देश्य यही था और उसका परिक्षेत्र भी अखिल भारतीय था।

इसी तरह की बात करते हुए इतिहासकार सतीश चन्द्र मध्यकालीन परिस्थितियों में सन्त काव्यान्दोलन के उदय तथा सामाजिक और साहित्यिक पटल पर कमजोर वर्णों और वर्गों में क्रियाशील होने के कारण बताते हैं कि "इस्लाम के आगमन से ब्राह्मणों की स्थिति कमजोर हुई, उनकी आर्थिक हालत भी खराब हुई। अतः समाज पर से उनका नियंत्रण खत्म हुआ। ब्राह्मणों राजपूतों के बीच जो एक अलिखित समझौता या वहाँ मुसलमानों के आने से खत्म हुआ और नई परिस्थिति में नए सम्बन्ध? विकसित हुए।"6 परन्तु भारत के सामन्ती ढ़ाँचे को

वे बदल न सके, लेकिन उन्होंने छोटे-छोटे हिन्दू राजाओं को हराकर केन्द्रीय राज्यसत्ता को स्थापित किया। इससे उद्योग धन्धों का विकास हुआ, इस नई विकास नीति में उन कई जातियों को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। व्यापार प्रणाली ने वर्ण-व्यवस्था पर चोट की और कर्म आधारित जातियों को उन्नति का मौका मिला, जो व्यापार से समृद्ध हुई।

इतिहासकार इरफान हबीब "15वीं सदी के मध्य तक उत्तर भारत में लोकप्रिय एकेश्वरवादी आन्दोलन के अभ्युदय के कारणों ने अकसर इतिहासकारों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। मुख्य रूप से कबीर एवं नानक द्वारा प्रतिपादित यह आन्दोलन उस परंपरित भक्ति आन्दोलन से भिन्न है, जिसका विकास भी इसी के साथ हुआ; और जिससे एकेश्वरवादी आन्दोलन को जोड़कर अकसर भ्रम पैदा किया जाता है। ये दोनों अपनी मूल प्रकृति में वस्तुतः भिन्न थे।...इसके अनुयायियों ने पारंपरित भक्ति आन्दोलन के अनुयायियों से न सिर्फ अपने को अलग रखा, बल्कि अपने बीच विचारों की एकरूपता भी देखी। गुरु अर्जुन देव द्वारा सिख धर्मग्रंथ 'गुरुग्रंथ साहिब' का किया गया संग्रह इसका सबसे अच्छा उदाहरण है, जिसमें नानक और उनके अनुयायियों के अतिरिक्त कबीर और रैदास जैसे एकेश्वरवादी गुरुओं की रचनाएँ समाहित हैं। जबकि पारंपरित भक्तिपरक रचनाएँ बिलकुल ही नहीं ली गई है।" 7

सन्त काव्यान्दोलन की धारा विक्रम् की शताब्दी से प्रवाहित होती हुई 15वीं शताब्दी में एक विराट रूप धारण कर अपने दीर्घकालीन समय में अखिल भारतीय हो जाता है। निर्गुण सन्तों की विशेषता यह है कि इन्होंने वेद, पुराण, मंदिर, मूर्तिपूजा, पोथी, वेद एवं संस्कृत भाषा के महत्त्व को किनारे धकेल दिया। सदाचार, सादगी, निर्भीकता, त्याग, मेहनत की कमाई पर विश्वास करते हुए गृहस्थ जीवन में रहे। निजी अनुभव और सत्य साधना को सर्वोपरि माना, यही इनका ईश्वर और राम है। विभिन्न प्रकार के आडम्बरों में अरुचि प्रकट कर मानवीय व्यवहार का सामंजस्य प्रस्तुत किया। इनकी सूची काफी लंबी है लेकिन इनमें प्रमुख हैं दक्षिण के नामदेव, (छीपा), कबीर (जुलाहा), रैदास (चमार), धन्ना

(जाट), दादू (धुनिया) तथा पीपा एकमात्र क्षत्रिय, और राजपरिवार से थे। इस काव्यान्दोलन ने दक्षिण से उत्तर भारत तक अनेक बोलियों और भाषाओं को आत्मसात करते हुए श्रेत्रवाद और भाषाओं की सीमा को पार किया तथा अखिल भारतीय एकता का प्रमाण दिया।

इससे प्रमाणित होता है कि "इतिहास का कोई युग ऐसा नहीं हुआ जब इस व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह न हुआ हो, इस अर्थ में भगवान बुद्ध पहले महान सामाजिक क्रांतिकारी थे। संतों ने कुछ समय तक ब्राह्मणों के वर्चस्व को चुनौती देने में सफलता प्राप्त की। उन्होंने एक सीधे-सादे धर्म की शिक्षा दी, जिसमें आचरण की शुद्धता पर बल दिया गया।"8 वर्ण-व्यवस्था, जाति व्यवस्था में अस्पृश्यता जैसा घृणित व्यवहार सदियों से भारतीय सामाजिक जीवन का अंग बना है। बुद्ध से पहले इस प्रथा पर शायद ही कोई प्रभावशाली प्रहार हुआ हो, बुद्ध ने ही सर्वप्रथम इस व्यवस्था के मूल आधार वेद और उपनिषदों की सत्ता को नकारा था। यद्यपि मध्यकालीन सन्त काव्यान्दोलन से पूर्व के सभी मानवीय धर्म दर्शन इसकी ताकत व प्रेरणा के रूप में प्रवाहित रही हैं।

इतिहासकार सतीश चन्द्र के मध्यकालीन विषयक परिस्थितियों की बात करते हुए डॉ. तारकनाथ बाली भी इसी तरह का तर्क देते हैं उनके अनुसार "सन्त काव्य का प्रमुख प्रयोजन है त्रस्त, सन्तप्त, उपेक्षित, उत्पीड़ित मानस को परिज्ञान प्रदान करना।"9 वास्तव में सन्त काव्यान्दोलन तत्कालीन भारत की राजनैतिक, सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक तथा धार्मिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में विकसित हुआ एक अनुभूतिपरक और क्रांतिकारी जनान्दोलन था। जिसकी परिणति कविता लेखन के रूप में हुई, जो सन्त काव्यान्दोलन कहलाया। इसकी प्रेरणा का आधार तत्कालीन जनमानस का हित एवं उसके पूर्ववर्ती समाज सुधार आन्दोलन थे, जो चार्वाक दर्शन, बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन, सिद्ध, नाथ साहित्य के रूप में रहे हैं। जिनमें अपने समय के सामाजिक प्रतिरोध दिखाई देते हैं। सन्तों ने भी अपने समय में वर्ण-व्यवस्था के आगे घुटने टेकने के बजाय समन्वय की भावना से समाज-कल्याण को अपनी कविता का माध्यम बनाया। शोषित,

प्रताड़ित मानव की परिस्थितियों का उनकी प्रवृत्तियों के साथ अनुभूतियों का गम्भीरता के साथ विचार किया। तत्पश्चात् सामाजिक तथा धार्मिक रूढ़ियों का विश्लेषण कर उसका अंधानुकरण न करते हुए क्रोध, हिंसा, लोभ आदि की आलोचना की व सदाचार की शिक्षा दी।

"पढ़-पढ़ थाके पंडिता, किनहुँ न पाया पार।
कथ-कथ थाके मुनिजना दादू नाम अधार।।86।।
निगम हि अगम विचारिये, तउ पार न पावे।
तातैं सेवक क्या करे, सुमिरण ल्यो लावे।।87।।"10

शास्त्रीय ज्ञान की अनिवार्यता को नकारा और प्रेरणा दी कि अनुभूति की प्रमाणिकता, जीवन दर्शन की गंभीरता, सरलता एवं सादगीपूर्ण जीवन ही प्रभावशाली है। इसका सूत्रपात सर्वप्रथम दक्षिण से नामदेव ने किया। ये पहले सगुण उपासक थे। फिर एकाएक छुआछूत और मन्दिर में प्रवेश वर्जित होने के कारण इनका ईश्वर से विश्वास ही उठने लगा था। जिसका ठोस प्रमाण था ईश्वर की शक्ति का परीक्षण, जो भक्ति करते-करते ही दिखाई देने लगा। क्योंकि मध्ययुग तक 'महाभारत' और 'रामायण' जो हिन्दू संस्कृति की सुदृढ़ता के आधारतत्व एवं विश्वकोष बन चुके थे वह ब्राह्मणवादी संस्कृति से मध्ययुगीन भक्ति साधना की संस्कृति तक का एक गुणात्मक अध्याय था। ईश्वर की जिस शक्ति का वे गुणगान सुनते आये थे, उसके प्रति नामदेव की आस्था का एकाएक कम होना भी ईश्वर की शक्ति की परीक्षा थी। नामदेव समझने लगे कि जो ईश्वर स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर पाये वे दूसरों की रक्षा क्या करेंगे?

"एकै पाथर कीजै पाऊ दूजै था थर धरिए पाऊ।
जै इहु देऊ तऊ उहु भी देवा, कहि नामदेव हम हरि की सेवा।।"
"देव द्रऽचा-ऐसे देव तेही फोडिले तुर की/

घातले उदकी बोभातीना/ऐसी ही दैवतें नको दाब् देवा'।।11

...अर्थात् पत्थर के देवताओं को मुसलमानों ने तोड़ा-फोड़ा और पानी में डुबा दिया। फिर भी वे न क्रोध करते हैं, न क्रन्दन करते हैं, ईश्वरो मैं ऐसे देवताओं के दर्शन नहीं चाहता।"12 यह उस समय सन्दर्भ में एक बड़ा प्रश्न था, जो स्पष्ट करता है कि जिस जनचेतना का परिणाम तत्कालीन सन्त काव्यान्दोलन था। वह समाज से उभरने वाला प्रतिक्रियावादी और विद्रोही काव्य था, जिसकी अभिव्यक्ति सन्तों के माध्यम से हुई। वह पूर्ण रूप से अस्मितावादी जनचेतना आन्दोलन भी था। इसे सुमन राजे और स्पष्ट करते हुए कहती हैं कि "सम्पूर्ण भक्ति कालीन नवजागरण लोक-चेतना की जागृति का परिणाम था। इसका सर्वप्रथम संकेत सिद्धों एवं जैनों की रचनाओं में मिलता है। महायान का सारा आन्दोलन ही लोकपरक था। उनके बाद नाथों और सन्तों में इस परम्परा का विकास हुआ।"13

शिवकुमार मिश्र इसका जोरदार कारण बताते हुए कहते हैं कि "ब्राह्मणवादी-सामन्ती शक्तियाँ बराबर अपने वर्चस्व को फिर से कायम रखने में प्रयासरत रहीं, भक्ति के आरम्भिक दौर में, दक्षिण में आलवार भक्तों के समय में और कालान्तर में उत्तर भारत में, मध्यकाल में, भक्ति और उपासना के क्षेत्र में, बिना किसी भेदभाव के, सबको जो समान अधिकार दिया गया, उसके पीछे सदाशयता उतनी नहीं थी, जितनी विवशता या मजबूरी। भक्ति के प्रवाह में जो वेग था, उसका कारण भी साधारण जनता और ब्राह्मणवादी सामन्ती शक्तियाँ यह समझ चुकी थीं कि यदि साधारण जनता के इस वेग को नियंत्रित नहीं किया गया तो पूरी सामाजिक संरचना के ही अस्त-व्यस्त हो जाने की आशंका है। अपने समाजतंत्र को बनाए और बचाए रखने के लिए उन्हें ऊँच-नीच, हिन्दू-मुसलमान सबके लिए उपासना और भक्ति के द्वार खोलने पड़े।"14 अपने प्रवेश के साथ इस्लाम के दरवाजे सबके लिए खुले थे। परन्तु हिन्दू धर्म के शास्त्रीय परम्परा के संस्कार इसके विपरीत पड़े। अतः "अपनी कुलीनता की रक्षा की चिन्ता तत्कालीन हिन्दुओं को अधिक सताने लगी थी और उसकी सुरक्षा के निमित्त वे स्मृतियों और टीकाओं का सहारा लेने लगे थे।"15

मध्यकालीन परिवेश पर प्रकाश डालते हुए इतिहासकार सतीश चन्द्र कहते हैं, "इस्लाम के आगमन से ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा और प्रभाव को गहरा आघात लगा। ब्राह्मणों ने प्रायः भोली-भाली जनता द्वारा पूजी जाने वाली प्रतिमाओं को ईश्वर के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया जिन्हें ब्राह्मण ही नियंत्रित कर सकते हैं। तथा इन प्रतिमाओं की शक्ति और महत्त्व पर संदेह करने वालों को शाप दे सकते हैं। इन प्रतिमाओं को विधर्मी तुर्कों ने पैरों तले रौंदकर गिरा दिया और ब्राह्मणों एवं मन्दिरों के अन्य सेवकों की या तो हत्या कर दी या भगा दिये गए। फिर भी तुर्कों को कोई हानि न हुई। अनेक मन्दिरों द्वारा नियंत्रित धन और संपत्ति के खोने से ब्राह्मणों को भौतिक रूप से भी क्षति पहुँची ...ब्राह्मणों के प्रभावहीन होने का लाभ नाथपंथी योगियों को मिला।"16

बकौल डॉ. बच्चन सिंह, "यह पहला भारतीय नवजागरण था जो कश्मीर से कन्याकुमारी और गुजरात से असम तक फैला हुआ था। सारे देश में इसका प्रसार एक साथ नहीं हुआ। कहीं पहले हुआ तो कहीं काफी बाद में। अपनी-अपनी परिस्थितियों के कारण यह कहीं 6वीं-7वीं शताब्दी में फैला कहीं 12वीं-13वीं शताब्दी में तो कहीं 15वीं शताब्दी में।"17 इस्लाम का योगदान इतना रहा कि उसने बहुदेवतावाद के सामने एकेश्वरवाद की अवधारणा को शक्तिपूर्ण ढ़ंग से स्थापित किया। इस्लाम वर्ण व्यवस्था तथा विभिन्न जातियों में बँटे इस समाज में एक समानता की उम्मीद लेकर आया था। आर. सी. मजूमदार कहते हैं कि "मुसलमानों के लोकतांत्रिक विचार, जिनसे एक ही धर्म को मानने वालों में समानता की शानदार भावना पैदा हुई, हिन्दुओं की जाति व्यवस्था के बिलकुल विपरीत थे।"18 इसके अलावा इस्लाम में गुलाम प्रथा को छोड़कर, श्रेणीबद्धता केवल धन और राजनैतिक सत्ता तक निर्भर थी, जन्म के आधार पर नहीं। बावजूद इसके उल्लेखनीय तथ्य यह है कि मध्ययुग में जहाँ एक ओर हिन्दुओं को बहुदेवतावादी और मूर्तिपूजा कहकर उनकी निंदा की जाती थी वहीं दूसरी तरफ संपूर्ण मध्ययुगीन इस्लामी साहित्य में भारत में प्रचलित जातिप्रथा, छूआछूत, भेदभाव, अछूतों पर अत्याचार उनके दमन की कोई आलोचना देखने को या

पढ़ने को नहीं मिलती जबकि मध्ययुगीन हिन्दू धर्म की सबसे कमजोर कड़ी या सबसे बड़ी बुराई के रूप में यह मौजूद रही है।

इसके कारण जो भी हों मध्यकालीन सन्त कवियों द्वारा लिखा सन्त साहित्य भी निम्न अथवा सामान्य वर्ग की जनानुभूति से प्रेरित साहित्य है। जिसका उद्देश्य अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता व अशिक्षित, उपेक्षित जनता में आत्म-विश्वास के साथ आत्मगौरव की भावना जागृत करना था। करनी व कथनी की तारतम्यता पर बल देना, यथार्थ चित्रण, उत्पीड़ित शोषित जनता में आत्मविश्वास के साथ कर्म को बढ़ावा देना था। आचरण की पवित्रता को सर्वोपरि रखकर जीवन की व्याख्या कर सन्तों ने अपने समय की परिवेशगत परिस्थितियों में मानवमात्र का परिष्कार किया। मनुष्य की शुद्रता, स्वार्थपरता, असत्यप्रियता, संकीर्णता, कामुकता तथा अर्थ लोलुपता जैसी विसंगतियां जो विद्यमान थीं, उनसे मानव जाति को उबारने में सन्तों के संघर्षों का विशेष योगदान एवं महत्त्व है। परम्परावादी युगों के प्रभाव भी उन्हें बदल नहीं पाये बल्कि उन्होंने स्वयं युग बदले, सामाजिक परिवर्तन की स्वस्थ परम्परा को आगे बढ़ाकर उन्होंने आने वाले युगों के लिए युग दृष्टा की भूमिका निभाई। साहित्य यथार्थ या वास्तविक का ही अभिव्यक्त या प्रतिध्वनित रूप है। फिर चाहे शुक्ल यह आरोप लगाएँ कि सन्तों ने 'ब्राह्मण व वेदों का अपमान किया उनका विरोध किया', परन्तु सन्तों की वाणी में मात्र वेद, शास्त्र, ब्राह्मण और ब्रह्मा ही नहीं बल्कि अनुभूति का विषय अधिक दृष्टिगोचर होता है। लेकिन वेदों का सहारा लेकर जो पाखण्ड अपने चरम पर था उसका विरोध सन्त अवश्य कर रहे थे। यह तो वैदिक कालीन साहित्य से स्पष्ट होता है कि वेदों का खण्डन तो वैदिक काल में ही आरम्भ हो चुका था, सन्तों से पूर्व महावीर जैन, बौद्धं-सिद्ध तथा नाथ साहित्य में स्पष्टतः देखा जा सकता है।

मध्यकालीन सन्त काव्यान्दोलन वर्तमान से अतीत को देखने की दृष्टि है, यह मध्यकाल की लम्बी कालावधि तक चलता रहा, इसके मुख्य कारण क्या थे? इस विषय में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं हमें उस पर नहीं जाना है। मुख्य रूप से इसका कारण देश की अपनी ही सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनैतिक,

धार्मिक तथा आर्थिक टकराहटों से उत्पन्न आन्तरिक अन्तर्विरोध एवं उनसे उत्पन्न परिस्थितियाँ थीं जो लम्बे समय से एक समान अपरिवर्तित बनी रहीं। जब मध्यकाल में केंद्रीय सत्ता सुदृढ़ हुई तो सामन्ती ढाँचा शिथिल पड़ने लगा। समय के साथ परिवर्तन की गूँज सुनाई देने लगी, सन्तों को अभिव्यक्ति की आजादी के रूप में यह परिवर्तन दिखने लगा था। परिवर्तन आंशिक ही सही, पर व्यवस्था जब जर्जर होकर असफल होती है, तब उसका कारण अपने ही अंतर्विरोध होते हैं। मुगलकालीन बादशाह केंद्रीय सामन्तवाद का प्रतिनिधि भी होता था, जो बड़े साम्राज्यों के लिए सूबों की व्यवस्था कर विश्वस्त सूबेदारों को नियुक्त करता था। ये सभी राजकुल से सम्बद्ध और बादशाह के करीबी विश्वसनीय होते थे। इन सामन्तों से सूबेदार, जागीरदार, मनसबदार इत्यादि सभी केंद्रीय सामन्ती व्यवस्था को सुदृढ़ करते थे। समय के साथ केंद्रीय शक्ति के कमजोर पड़ने के साथ ये सामन्त ही शासक बनने की लड़ाई लड़ने लगे। सतीश चन्द्र इसे "सामन्ती अंतर्विरोध कहते हैं।" 19

सन्तों के काव्यान्दोलन से पूर्व भारत की राजनीतिक और सामाजिक जीवन में सर्वत्र विश्रृंखलता और अराजकता का माहौल था। दसवीं से ग्यारहवीं शताब्दी से तो लगभग सभी राज्यों में पराक्रम प्रदर्शन की प्रवृत्ति देखी जाती थी। राजपूती शौर्य का अहं एवं उनकी विलास प्रियता ने विभाजित भारत को और अधिक खोखला कर दिया था। इन्हीं आंतरिक अंतर्विरोधों और छोटे-छोटे राज्यों के आपसी झगड़ों में मध्यकालीन भारत और अव्यवस्थित होकर टूट गया था।इस देश ने आंतरिक लड़ाई-झगड़ों और आंतरिक भेद-भावों में ही अपनी सारी शक्ति नष्ट कर दी थी।

सामाजिक परिवर्तन की ऊर्जा से सम्पृक्त सन्तों की प्रासंगिकता आज आधुनिक समीक्षकों के लिए भी आधार का काम कर एक दृष्टिकोण प्रदान करती है। सन्तों की रचनाधर्मिता में निहित कथ्य, वर्तमान जीवन में भौतिक और मनोभौतिक परिस्थितियों में समस्याओं का कहाँ तक समाधान प्रस्तुत कर सकता है? मध्यकालीन सन्त काव्यान्दोलन इस कसौटी पर खरा उतरता है। इसलिए ऐसे

अनुभूतिपरक काव्यान्दोलन का सम्बन्ध तत्कालीन समस्याओं के हल तक सीमित नहीं होता है। उसका उद्देश्य आने वाले युगों के लिए एक आधार भूमि तय करता है। युगों-युगों तक मनुष्य की जीवन-शक्ति को बल देना होता है। रचनात्मक चेतना अपने युग के अधूरेपन को भरने के साथ-साथ अपने अतीत को भविष्य तक संवाहित करने का प्रयास करती है। सन्त साहित्येतिहास के इस सत्ता प्रवाह में स्व की पहचान मनुष्य के साहचर्य एवं मानवीय संवेदना का तादात्म्य भविष्य से जुड़ता है। इस दृष्टिकोण से सन्तवाणी में वह युग और उसमें रह रहे सामान्य व विशिष्ट जन की चित्तवृत्तियों के प्रतिबिम्ब विद्यमान हैं।

मध्यकालीन सन्तों ने इतिहास, साहित्य, परिवेश एवं समाज को जिस तरह परखा उसे नया संदर्भ दिया वह इतिहास धारा का एक पूरा अध्याय कहा जा सकता है। वैसे तो इतिहास जीना, इतिहास बनाना, इतिहास लिखना तथा इतिहास को जगाना ये सब अलग-अलग पक्ष हैं। परन्तु कहीं न कहीं जुड़ते भी हैं। फिर इतिहास भी शासन-प्रशासन और आमजन का अलग होता है। चूँकि यहाँ बात सन्तों की हो रही है तो न तो वे शासक-प्रशासक थे और न ही वे उनकी नीतियों के संचालक थे। सन्तों ने इतिहास देखा ही नहीं, जिया भी है। महाभारतकार व्यास की तरह, मध्यकालीन सन्तों ने ज्ञान की आँखों से आम आदमी के दर्द व डर और उसके प्रति घृणा को महसूस किया है। वे अनुभव के इतिहास से गुजरते हुए जन-जन के सरोकारों को साक्षी मानकर चले हैं। इसलिए कही-सुनी और शास्त्रों में दर्ज इतिहास को प्रमाण कैसे मान सकते हैं, ये तो आँखों देखी और अनुभवबोध को ही सत्य और प्रमाण्य मानते हैं। इसीलिए कबीर स्पष्ट करते हैं -

"तेरा मेरा मनुवा कैसे इक होय रे।
तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता हौं आंखिन देखी।।
मैं कहता सुरझावन हारी, तू राख्यौ अरूझाइ रे।।" 20
"साखी आँखी ग्यान की, समुझि देखु मन माहिं।
बिन साखी संसार का, झगरा छूटत नाहिं।।

साधु पुरुष देखी कहैं, सुनी कहैं, नहिं कोय।
कानों सुनी सो झूठ सब, देखी सांची होय।।
आतम अनुभव बिन अरवा, विद्यावाद के काज,
ज्यूं कुसां के शिंगडां, पाश पड़न को साज।।"
"बिन देखे की बात तु मेरी, काम तु मेरा कच्चा।
रहम बिना साहिब नहीं, राजी, बिन रहम कुन सच्चा।।
"अनुभव ज्ञान हुए बिना, कबहुं न होत प्रमान।"21

भारतीय समाज व्यवस्था की ये जो 'तू राख्यो अरूझाई रे' वाली अवधारणा है इसके विपरीत ही पूरी की पूरी सन्त काव्यधारा और दलित लेखन लाठी लेकर सुलझाने का प्रयास कर रहा है और बार-बार समझाने का प्रयास कर रहा है कि अनुभव के आधार पर लिखा साहित्य ही प्रामाणिक लेखन है।

मध्यकालीन भारतीय परिदृश्य में जो कुछ रचा गया और जिसका प्रसार भक्ति आन्दोलन के नाम पर पूरे साहित्यिक जगत में हुआ, लगभग सभी प्रमुख भाषाओं में जिसे भक्ति काव्य कहा गया और जिसके प्रतिनिधि रचनाकार तुलसी थे, क्या वह मध्यकालीन भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास को समझने में यथार्थवादी दृष्टिकोण से सही होगा? या कल्पनातीत साहित्य के रूप में? या फिर वह जिसमें समय-समाज का यथार्थ पुनःसृजित हुआ है? यह प्रश्न विचारणीय है। मध्यकालीन रचनाशीलता, विशेष रूप से सन्तों की रचनाओं में जो युग-सन्दर्भ के दृश्य पुनः सृजित हुए हैं, टूटते-मूल्यों की त्रासदी के संकेत करते हैं। मूल्य के स्तर पर यह चिंता सन्तों में अधिक मुखर है। इसलिए सन्त मात्र मध्यकालीन सन्त नहीं है, उन्हें सन्त कहकर इसीलिए सम्बोधित किया गया कि उन्होंने समाज व जनकल्याण के प्रति अपनी प्रतिबद्धताओं को नहीं छोड़ा। अतः वे समाज सुधारक भी थे और इतिहास दृष्टा भी। अधोमुखी वृत्तियाँ सामन्ती समाज की कठिनाईयाँ थीं, अतः समाज सुधारक के रूप में सन्तों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही। समाज-सुधारक के तौर पर जो सन्त मध्यकालीन भारतीय

परिवेश में सक्रिय रहे वे समन्वित संस्कृति का कौन-सा रूप गढ़ना चाहते थे? मध्यकालीन परिवेश एक ओर वैभव-विलास से युक्त सामन्ती परिवेश था, तो दूसरी ओर सन्तों का जन-जागरण का अध्याय शुरू हो चुका था। जिनका मुख्य जोर आचरण की शुद्धता पर था। मदरसों और पाठशालाओं की शिक्षा में धर्म की प्रमुखता थी। जबकि सन्तों का आग्रह जीवनानुभव के आधार पर प्राप्त ज्ञान के प्रति था। निम्न वर्गीय सन्त इसी समय सामाजिक क्रांति के अग्रदूत बने, वे सत्य के समर्थक थे, इसलिए उन्होंने यही तथ्य सामने रखे।

सन्तों ने यहाँ की विराट संस्कृति में जहाँ मनुष्य धर्म के बीच फंसा था, धर्माधारित जातियों की नकारात्मक संरचना पर सीधा वाद-विवाद सम्भव बनाया। वेदों उपनिषदों का विश्लेषण कर उनकी स्थापनाओं को खारिज किया। इससे सामाजिक परिवर्तन की जो हवा चली उसने भौतिक जरूरतों को भी महसूस कराया। इसे मध्यकालीन पुनरुत्थान से जोड़ते हुए एवलिन अण्डरहिल कहते हैं कि ''यह पुनरुत्थान एक हद तक परम्परागत हिन्दू धर्म में बढ़ते हुए कर्मकाण्ड के खिलाफ प्रतिक्रिया थी।''22 मार्क्स की टिप्पणी पर ध्यान दें तो वे भी यही कहते हैं कि ''हर युग में शासक वर्ग के विचार ही शासक विचार होते हैं, सिवाय उस स्थिति के जब कोई विशेष वर्ग पूरे विद्यमान सामाजिक ढाँचे को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न करता है।''23 इस आधार पर निःसन्देह सन्तों ने जिस प्रतिक्रिया के साथ सामन्ती ढाँचे का विरोध किया, वह आडम्बरों के विरुद्ध एक सशक्त आवाज थी।

कन्हैयालाल चांचरीक इस सम्बन्ध में जो मत देते हैं वह इसके विपरीत पड़ता है। वे कहते हैं कि "मध्यकालीन सन्तों के भक्ति पूर्ण काव्य में सुधारवादी शब्दावली आती है। उसमें विद्रोह के स्वर हैं जिससे अक्सर यह अर्थ निकाला जाता है कि भक्तिकालीन सन्त काव्यधारा समाज की रूढ़ियों, आडम्बरों और जाति व्यवस्था के विरुद्ध एक सशक्त आवाज थी। लेकिन कुल मिलाकर तत्कालीन समाज में कोई बड़ी परिवर्तन की लहर हमें दिखाई नहीं देती।"24 वह समय नए सिरे से अपनी अस्मिता की तलाश कर रहा था। सामाजिक और

मानवीय मूल्यों की रिक्तता को अनुभव कर रहा था, इसलिए नए मूल्यों की स्थापना, पूरी आशा, आस्था और विश्वास के साथ नई भूमि तैयार कर रहा था। यह बेचैनी पूरे भारतीय परिदृश्य में देखी जा सकती है। यह मात्र हिन्दी ही नहीं बल्कि विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न बोलियों, देशी भाषाओं में एक साथ सुनाई पड़ती है, यही सबसे बड़े परिवर्तन की लहर थी। इतिहास की धारा किनारों से नहीं बल्कि समाज के बीच से होकर गुजरती है। इसलिए उसका प्रभाव समाज पर भी पड़ता है। सन्तों ने इतिहास की उसी परिस्थिति में विलासी जीवन व अपने परिवेश के धनवानों, जागीरदारों तथा राजाओं की दिखावटी व झूठी शान-ओ-शौकत तथा सामन्तों की थोथी काया पर चिन्ता जताते हुए व्यंग्यात्मक वाणी से प्रहार किये। यह इतिहास का एक अंग है जो तत्कालीन समाज में घटित हो रहा था। बकौल डॉ. रमेश चन्द्र मिश्र "गुलाम मानसिकता में निर्मित अथवा शासन प्रशासन द्वारा तैयार किये-कराये गये इतिहास में, बहुजन समाज के सांस्कृतिक-राजनीतिक-आर्थिक अथवा आध्यात्मिक दृष्टिकोण के प्रति अथवा अभिजात वर्ग और उसके दृष्टिकोण के प्रति, तत्कालीन सत्ता, जनमानस की आक्रोश भरी एवं विरोधमूलक अभिव्यक्ति को या तो नजरअंदाज कर देती है अथवा शिथिल (कन्फ्यूज) ढंग से प्रस्तुत करती है। किसी भी स्वतंत्र, जीवन्त और बहुत बड़ी ऐतिहासिक-सांस्कृतिक विरासत वाले देश के लिए, इतिहास का ऐसा लेखन-शिक्षण, आत्मघाती ही सिद्ध होता है। फिर चाहे वह इतिहास पाक, अरबी या फारसी में लिखा गया हो। अथवा पुराण शैली वाली पवित्र संस्कृत में रचा गया हो। ऐसा इतिहास, सामान्य जन के गाँव से गुजर कर नहीं आता, क्योंकि उसकी उपजीव्य सामग्री जन के उच्छावासों से निकलकर नहीं आती और न जन-भाषा के प्रवाह से ही वह अभिसिंचित हो पाती है।... सन्त वाणी इसी प्रकार का भाषा-काव्य है, जिसमें उस युग के बहुत बड़े जन-समाज का पूरा-का-पूरा सामाजिक इतिहास व्यंजित देखा जा सकता है।"25

सन्त काव्यान्दोलन सामाजिक मुक्ति का आन्दोलन था, जो निम्न व मध्य वर्गीय बहुजन चेतना, समानता-स्वतंत्रता और मानवीय-निष्ठा से संचालित होता

है। यह इतिहास-चेतना से परिपूर्ण निष्ठा के साथ मानवीय सृजन शक्ति से पूर्णतः जुडा है। इसलिए कर्म के सिद्धान्त को प्रतिष्ठित करता है। जीवन की असामाजिक प्रवृत्तियों को व्यावहारिक सात्विकता से कमजोर करता है। सन्त काव्यान्दोलन जिस पृष्ठभूमि में उदय हुआ वह विशिष्ट जनों का नहीं बल्कि सामान्य जनों का इतिहास है। जो एक मनुष्य को, स्वयं को सम्पूर्ण सन्दर्भों में पहचानने की क्षमता देता है। अपने समय-सन्दर्भों में उस परिवेश की एकदम जटिल रूढ़ व दमघोटू परिस्थितियों में बदलाव लाने को प्रेरित करता है। संतों ने उस परिवेश को महसूस किया है, अनुभव किया है व आँखों से देखा है। उन कठिन परिस्थितियों को जिया है, अभावों को सहा है, तब क्या सन्तों की वाणी एक सजग इतिहासकार की कलम से कम है? जो अपने परिवेश के सब ओर की जीवंत-व-मृत घटनाओं को अभिव्यक्त करती है।

निष्कर्ष- सन्तों की कविता मामूली आदमी को संवेदना प्रदान कर काव्य-रस का अधिकारी बनाती है। इस अर्थ में यह अपनी पूरी समग्रता के साथ मध्यकालीन जन-जन का इतिहास बनकर उभरी है। सन्तों की यह क्षमता इतिहासबोध से प्रेरित है इसलिए इतिहासबोध पर प्रश्न चिन्ह लगाती है। जिन समय संदर्भों की सीमा के बीच रची-बसी सन्त वाणी एक समाज चेता कवि की जन-जन के प्रति बेचैनी, साधन सम्पन्न सुविधा भोगियों के प्रति उनकी फटकार है, वहीं सामाजिक विसंगतियों के प्रति तीव्र आक्रोश है। दीन-हीनों, उपेक्षितों के प्रति उनकी संवेदना, रूढ़ बनते धर्म न्यामकों के प्रति अस्वीकार की हट है। शासन-प्रशासन के प्रति उदासीनता, बेरुखी, शासकों के जन-विरोधी कार्यों के प्रति खीज है। सन्तों में मानवीय संवेदना कूट-कूट कर भरी है। सन्तों की वाणियों में तत्कालीन समाज की पूरी छवि प्रतिबिम्बित और प्रतिध्वनित होती है। समाज के प्रति इतना बड़ा दायित्व उठाने वाले इन समाज चेता सन्तों की वाणियाँ इतिहास का प्रमाण्य क्यों अर्जित नहीं कर पायीं? सन्तों ने समता और बन्धुत्व के उद्देश्य से दूरगामी प्रभाव को लेकर जिस चेतना का प्रसार किया वह युगानुरूप इतिहास लेखन न भी हो पर इतिहास खंगालना और इतिहास जगाना अवश्य है।

संदर्भ सूची

1. सुमन राजे, हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली, सं. 2006, पृ.124
2. धर्मवीर, गुरु रविदास, समता प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-1992, पृ.6
3. शिव कुमार मिश्र, हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 33
4. गोपेश्वर सिंह- संपादक, भक्ति आन्दोलन के सामाजिक आधार, भारतीय प्रकाशन, पृ. 35
5. डॉ. भीमराव अम्बेडकर, भारत में जाति प्रथा एवं जाति प्रथा उन्मूलन (सम्पूर्ण वाङ्मय), भाग-1 (भूमिका), अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सं. 2013, पृ.65
6. उद्धृत, गोपेश्वर सिंह- संपादक, भक्ति आन्दोलन के सामाजिक आधार, भारतीय प्रकाशन, पृ. 31
7. उद्धृत, गोपेश्वर सिंह- संपादक, भक्ति आन्दोलन के सामाजिक आधार, भारतीय प्रकाशन, पृ.35
8. जगजीवन राम, भारत में जातिवाद और हरिजन समस्या, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली,, पृ 12
9. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. डॉ. नगेन्द्र, प्रकाशन, मयूर पेपर बैक्स, संस्करण 2006, पृ.143
10. दादू ग्रंथावली, सं. डॉ. बलदेव बंशी, प्रकाश संस्थान, नई दिल्ली, पृ.20
11. संत नामदेव, कृ. गो. वानखड़े गुरूजी, संस्करण 2012, पृ.85
12. सुमन राजे, हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2006, पृ.123
13. सुमन राजे, हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली सं. 2006, पृ.123
14. शिवकुमार मिश्र, हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2009, पृ.33

15. डॉ. नगेन्द्र, संपादक, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स, संस्करण 2006, पृ.95
16. गोपेश्वर सिंह, संपादक, भक्ति आंदोलन के सामाजिक आधार, भारतीय प्रकाशन, सं. 2006, पृ.32
17. डॉ. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2009, पृ.75
18. गोपेश्वर सिंह- संपादक, भक्ति आन्दोलन के सामाजिक आधार, भारतीय प्रकाशन, पृ.47
19. उद्धृत, प्रेमशंकर, भक्ति काव्य का समाज दर्शन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2000, पृ.32 30
20. उद्धृत, उदय प्रताप सिंह, सामाजिक व्यवस्था में संत कवियों का योग प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली सं. 2012, पृ.
21. उद्धृत, रमेश चन्द्र मिश्र, सन्त साहित्यः प्रवाह, सन्त साहित्य संस्थान,नई दिल्ली, प्रथम सं. 2002 पृ.231
22. कबीर: एक रहस्यवादी कवि, इन्द्रप्रस्थ भारतीय, समुदाय भवन, पदमनगर, दिल्ली, अप्रैल-जून, 2000, पृ.18
23. कार्ल मार्क्स, जर्मन आइडियोलॉजी, मार्क्स एण्ड एंगेल्स: सेलेक्टेड वर्क्स, खण्ड-एक, मास्को, 1969, पृ.47
24. मोहनदास नेमिशराय, उद्धृत - भारतीय दलित आन्दोलन का इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण 2013, पृ.23
25. डॉ. रमेश चन्द्र मिश्र, सन्त साहित्य प्रवाह, सन्त साहित्य संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2002, पृ.232

कश्मीर में संत परम्परा : एक विवेचन

प्रो. रूबी जुत्शी
हिंदी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, कश्मीर

सारांश

प्राचीन काल से कश्मीर प्रसिद्ध रहा है और यह प्रसिद्धि न केवल इस धरती की प्राकृतिक छटा के कारण है अपितु यह धरा अनेक ऋषियों, मुनियों, सूफी-संतों, दार्शनिकों, आलोचकों, सहित्यकारों तथा महापुरुषों की जन्मभूमि है तथा उनका पालन-पोषण भी इस स्वर्ग रूपी आंचल में हुआ है। इन सूफी संतों में शेख-उल-आलम तथा ललद्यद सबसे प्रसिद्ध और बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी है। कश्मीर की ऋषि परम्परा का आरम्भकर्ता या संस्थापक शेख नूर-उद-दीन को माना जा है। जिन्हें नुन्द ऋषि या शेख-उल-आलम के नाम से भी जाना जाता है। संत-परंपरा कश्मीर की संस्कृति का एक अभिन्न अंग माना जाता है जिसने इस्लन के विकास को प्रेरित किया है।

बीज शब्द: *कश्मीर, संत, परंपरा, दर्शन, आलोचना, व्यक्तित्व*

शोध आलेख

प्राचीन काल से कश्मीर प्रसिद्ध रहा है और यह प्रसिद्धि न केवल इस धरती की प्राकृतिक छटा के कारण है अपितु यह धरा अनेक ऋषियों, मुनियों, सूफी-संतों, दार्शनिकों, आलोचकों, सहित्यकारों तथा महापुरुषों की जन्मभूमि है तथा उनका पालन-पोषण भी इस स्वर्ग रूपी आंचल में हुआ है। इन सूफी संतों में शेख-उल-आलम तथा ललद्यद सबसे प्रसिद्ध और बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी है।

शेख-उल-आलम (नुन्दऋषि)

शेख-उल-आलम नुन्दऋषि के नाम से भी जाने जाते है। कश्मीर घाटी की अधिकांश जनता इन्हें शेख-नूरूदीन वली के नाम से भी जानती है। कश्मीर में इन्हें ऋषि परम्परा का प्रवर्तक माना जाता है। इनका जन्म 14वीं सदी सन् 1377 ई. में कुलगाम कोईमुह में हुआ तथा देहान्त सन् 1438 ई. में हुआ था इनके पिता

कश्मीर के दक्षिण पश्चिम में स्थित एक छोटी घाटी सुन्देगूर किश्तवाड़ के राया थे अर्थात् शेख-उल-आलम के पूर्वज किश्तवाड के राजपूत थे। किश्तवाड़ तब एक छोटा सा स्वतंत्र राज्य था लेकिन बाद में डोगरा शासक महराजा गुलाब सिंह के शासन काल में शेख साहब के पितामाह (दादा) किश्तवाड़ के एक स्थानीय युद्ध में पराजित हो गये जिसके पश्चात् वह अपने परिवार और भाइयों के साथ कश्मीर आ गए और फिर हमेशा के लिए यहीं पर बस गये। नुन्दऋषि के पिता का नाम सत्तारसंज था और माता सदुरा अर्थात् सागर था जिन्हें कश्मीर में सदर मौज अर्थात् सदूरा माँ के नाम से प्रसिद्ध है। नुन्दऋषि के पिता को जब गुडस्थू से निकाल दिया जाता है तो वह काफी समय तक इधर-उधर घूमते रहे। अंत में उस स्थान पर पहुंचे जहाँ पर एक स्थानीय संत यासमन ऋषि ध्यान लगाया करते थे। सलार संज अर्थात् नुन्दऋषि के पिता उनके शिष्य बन गए और उन्होंने इस्लाम धर्म को स्वीकार किया। इसके बाद उनका नाम सालारूदीन हो गया। सालारूदीन और सदरा का विवार यासमन ऋषि ने ही सम्पन्न करवाया था। सालारूदीन और सदुरा दोनों का परिवार तिलसर और दुदरकोट में संज नाम से जाने जाते थे। कुछ मान्यताओं के अनुसार इन्होंने कुछ समय तक किश्तवाड़ पर शासन अवश्य किया था। पीर हसन शाह के अनुसार बटवारे के समय जागीरदार निश्चित क्षेत्र पर शासन करते थे और अपनी-अपनी जागीरों की रक्षा दुर्ग बना कर करते थे। ऐसे स्थान जहाँ पर ऐसे दुर्ग निर्मित हुए अपने-अपने नामों के साथ कोर्ट प्रत्यय से जाने जाते है जैसे जेनाकोर्ट दुदरकोर्ट आदि । दुर्ग का प्रबंध अधिकमी संज कहलाता है। इससे स्पष्ट है कि नुन्दऋषि के माता-पिता और पूर्वज तिलसर और दुदरकोर्ट के दुर्ग-रक्षक नियुक्त हुए थे। इसी कारण इनका परिवार संज कहलाते थे। इस बात का समर्थन स्वयं नुन्दऋषि ने किया है-

"संजय छयम मौज तअ संजय छुम मोलुय"

अर्थात् मेरे माता-पिता दोनों संज वंश से है, कहा जाता है कि विवाह के बाद संज दम्पति नंदऋषि के माता-पिता को पुत्र प्रप्ति की बड़ी इच्छा थी। पूर्णमा की रात को खेई गाँव में चौकीदारी करते हुए सलारूदीन गाँव से बाहर निकल गया और एक साधु की झोंपड़ी के पास कुछ क्षण ठहरे। वह साधु एक ज्योतिषी होने

के साथ-साथ एक सिद्ध पुरुष भी था। रात्रि के सन्नाटे में सालार संज को साधु की आवाज सुनाई दी, जो अपनी पत्नी से कह रहा था कि आज रात पौ फटने से पूर्व खेई जोगीपूरा के चश्में में गुलाब का गुच्छा उभरेगा और जो पवित्र स्त्री उसकी सुगंध लेगी, वह विश्व के महान योगी अथवा वली, ऋषि को जन्म देगी। गुलाब क्षणभर में ही अंतर्धाम हो जायेगा और उसके स्थान पर कुमुदिनी का गुच्छा उभर आएगा जो स्त्री उसे सूंघेगी, वह स्त्री वली, ऋषि की माँ बनेगी। यह सुनते ही सलारुदीन उलटे पाँव घर पहुँचे और यह सारी घटना पत्नी सदरा को सुनाई, दोनों चश्मे की ओर दौड़ पड़े और वहाँ पहुंचने पर उन्होंने साफ-स्वच्छ, दुग्ध-धवल पानी में गुलाबों का गुच्छा उभरते देखा और सदरा ने उसे सूंघ लिया जिसके परिणामस्वरूप नुन्दऋषि का जन्म हुआ। नुन्द का जन्म होते ही इनके पिता का देहांत हो जाता है। ऐसा माना जाता है कि जब नुन्दऋषि का जन्म हुआ तो उस समय उन्होंने तीन दिनों तक माँ का दूध नहीं पिया जिसके कारण इनकी माता को चिन्ता होने लगी। तीसरे दिन की संध्या के समय एक महान योगिनी, श्रेष्ठ कवयित्री ललद्यद वहाँ से गुजर रही थी। नुन्द की माँ ने उनसे कहा कि शिशु दूध पीने से इन्कार कर रहा है। तब ललद्यद ने शिशु को गोद में उठाया, अपनी छाती से लगाया और उनके कान में

ये वाक्य कहा-

"चय मालि चय, जय 'नअ यलि न मंदछोख
चय 'नअ क्याज़ि छुख मंद'छान।"

अर्थात् जब आपको जन्म लेने में लज्जा नहीं आई तो आप संसार के सुख लेने और दूध पीने से क्यों लज्जा रहे हो। ललद्यद के एक वाक्य पर शिशु दूध पीना शुरू किया। अतः ऋषि ने एक योगिनी के निर्देश पर प्रथम बार संसार के आनंद का अनुभव किया। नवजात शिशु जब तृप्त हुआ तो ललद्यद ने उनकी माँ को कहा कि लो मेरे आध्यात्मिक उतराधिकारी का पालन-पोषण करो। यह भी मान्यता है कि शिशु को नूरूद्दीन नाम सैयद हुसैन ने दिया था। जिसके कारण इनके माता-पिता इन्हें नुन्द (अति प्यारा) कहते थे। तत्पश्चात् शेख नूर-उद्दीन ने उसी नुन्द शब्द को नुन्दऋषि के रूप में इस उपनाम को अपनाया। नुन्द बचपन

से ही परिवार के अन्य सभी बच्चों से भिन्न थे। उनकी माँ ने जब उन्हें गाँव के विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा जहाँ मौलवी साहब ने उन्हें अरबी भाषा के दो वर्ण अलिफ़ और बे पढ़ाया। बालक ने प्रथम अक्षर अलिफ़ बड़ी प्रसन्नता से पढ़ा और दूसरा वर्ण बे पढ़ने से इंकार कर दिया। जब गुरु ने पूछा तो वह बोले कि (अलिफ़ से अल्लाह जो एक है और सर्वव्यापक है। बे से दुई का भाव उत्पन्न होता है। मौलाना साहब को क्रोध आया और नंद को विद्यालय निष्कासित कर दिया। यह सब देखकर उनकी माँ निराश से गई और नुन्द को जुलाहे का काम सीखने के लिए भेजती है। सदरा ने बालक को अपने गुरु सैयद सिमनानी जो उस के बहुत बड़े इस्लाम धर्म के अनुयायी थे और ईरान के सिमनान शहर से मीर सयद अली हमदानी पूर्व कश्मीर आए थे और कुलगाम गाँव में निवास कुरते थे। उन्हीं की देख-रेख में सदरा ने नुन्द को छोड़ दिया।

प्रसिद्ध उपन्यासकार जी. एन गौहर के अनुसार "बाबा नसीब उनकी पारस्परिक निकटता का वर्णन करते हुए कहते है कि सैयद सिमनानी नरुद्दीन की कविता के इतने रसिया थे कि यदि वह न आते तो सिमनानी विशु नदी पार करके उनके घर पहुँच जाते।" अतः नुन्दऋषि आरंभिक काल से ही कविता रचने लगे थे। जीवन से विरक्त होने से पूर्व ही उनकी काव्य-कला के चाहने वालों का वर्ग उपस्थित था। यही कारण है कि सैयद सिमनानी को उनका प्रथम मित्र मार्गदर्शक, अध्यापक तथा गुरू कहा जाता है।

नुन्द ने (शेख साहब) ने धर्म प्रचारक सैयद अली हमदानी साहब से भी आरंभिक शिक्षा प्राप्त की। युवावस्था में इन्होंने कृषि कार्य का अनुभव भी किया है। अपने धार्मिक एवं दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का चयन कृषि जीवन से किया है।

"युस करि गोगुल सुय करि क्राव"

अर्थात् जैसा बोओगे वैसा काटोगे, वैसे ही फल की प्राप्ति वैसे ही होगी जैसे कर्म करोगे। नुन्दऋषि का विवाह 20 वर्ष की आयु में हो गया था। नुन्द को सांसारिक

बनाने के लिए उनकी माँ ने उनका विवाह जयदयद नामक महिला से करवाया जो दादसर त्राल की रहने वाली थी। जयदयद संभवतः ज़ेयतून या जावेदा का संक्षिप्त रूप है। एक गृहस्थ होने के उपरान्त भी उन्होंने आध्यात्मिक चितन, धार्मिक क्रियाओं को निरंतर जारी रखा। बाबा नसीबुदीन के लेखन ने यह प्रतीत होता है कि वे अपना अधिकतर समय सैयद सिमनानी साहब के साथ व्यतीत करते थे।

शेख साहब की तीन संतानें थी- दो बेटे, एक बेटी परन्तु उनमें से कोई भी अधिक समय तक जीवित न रह सका। एक बेटे की मृत्यु शिशु अवस्था में ही हो गई तथा दूसरे बेटे और बेटी की मृत्यु गुफा में हुई जहाँ नुन्द सांसारिक सुख-सुविधाओ को त्याग कर ध्यान लगा रहे थे। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने अपना अधिकतर समय नितान्त रहकर गुफाओं में ध्यान लगाने में व्यतीत किया है। वह सांसारिक सुख-सुविधा तथा अपने परिवार को त्याग कर केवल ईश्वर भक्ति में लीन होकर गुफाओं में रहे। और १२ वर्षों तक कठिन तपस्या की। अपने अनुभवों के फलस्वरूप जो कुछ भी उन्होंने कहा, वह कश्मीरी साहित्य की अमूल्य निधि बन गई। अपने आध्यात्मिक गुणों से ओतप्रोत होने के कारन ही उनके श्रृको अर्थात् वाणी को कोशुर कुरान अर्थात् पहला कश्मीरी भाषा के कुरान की मान्यता प्राप्त हुई। नुन्द से न केवल मुस्लमान अपितु सभी वर्गों और धर्मो के लोग प्रेम करते थे। मुस्लमानो के लिए यदि वह शेख नुरद्दीन वली अथवा अलमदारे-कश्मीर या शेख उल-आलम है तो हिन्दूओं के लिए समान महत्व रख वाले सहजानंद अथवा नुन्द ऋषि हैं।

इन्होंने समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार की कुरीतियों, भेद-भाव, धर्म के नाम पर होने वाले आडम्बरों, और निम्न वर्ग का शोषण जैसी कुरितियों पर करारा व्यंग किया है। इन्होंने हिन्दू-मुस्लमान दोनों धर्मों के लोगों के लिए एक ऐसा मंच प्रस्तुत किया जिस पर दोनो धर्मों के लोग एक दूसरे से स्वतंत्रतापूर्वक मिला करते थे। नुन्द का मानना था कि संसार का प्रत्येक जीव ईश्वर की संरचना

है। इसके अतिरिक्त नफ़स अर्थात् इन्द्रीय निग्रह भौतिक सुविधामों का भोग न करना, यह सब उन पर बौद्ध धर्म का प्रभाव था। नुन्द ऋषि जब गुफा से बाहर आए तो देश-भ्रमण के लिए तथा इस्लाम धर्म के प्रचार एवं प्रसार के लिए निकल पड़े। नुन्द जब गुफा में निवास कर रहे थे तो उस समय उनकी माँ उनके पास आई और पुनः घर वापिस चलने के लिए अनुग्रह किया लेकिन नुन्द उनके अनुग्रह को स्वीकार नहीं करते तो उस समय उनकी माँ ने ताना देते हुए उनसे कहा कि मैंने तुम्हें दूध के रूप में अपना खून पिलाया है, तुम उसका क़र्ज़ कैसे उतारोगे। इसके बाद उन्होंने कश्मीर के विभिन्न स्थलो पर ऋषि परम्परा के केंद्र तथा उप-केंद्र स्थापित किए। एक मान्यता के अनुसार जब नुन्द ऐसे ही कश्मीर के अलग-अलग स्थानों में भ्रमण कर रहे थे तो पानी की तलाश में घास के मैदानों में विचरण कर रहे थे तो उन्होंने पानी की तलाश में अपनी छडी से जमीन को छुआ और दूध निकला। उन्होंने दूध से पूछा कि आप सिर्फ पीने के काम में आ सकते है फलस्वरूप दूध पानी में परिवर्तित हुआ। ततपश्चात् उस स्थान का नाम दूधपथरी पड़ गया जो वर्तमान समय में बहत प्रसिद्ध पर्यटक स्थल है। इन्होंने एक ऐसे सूफी सम्प्रदाय की नीव डाली जिस पर चलना कठिन था। इस सूफी धारा को लोकप्रिय बनाने के लिए उन्होंने बहुत परिश्रम किया। उन्होंने लगभग प्रत्येक जिले में अपने आदोलन के केन्द्र स्थापित किए और कर्मचारियों से स्वयं प्रशिक्षित किया।

कश्मीर शैव और बौद्ध दर्शन का मूल केन्द्र रहा है जिसके कारण इन दर्शनों का प्रभाव नुन्द ऋषि में भी देखने को मिलता है। नुन्द ऋषि एक समाज सुधारक के रूप में हमारे सामने आते है। उन्होंने समाज में व्याप्त बुराइयों, रूढ़ियों, जाति-पाति का भेदभाव, धार्मिक अंधविश्वास आदि का डटकर विरोध किया। उस समय समाज इतनी अधिक बुराइयों से ग्रस्त था जिसके चलते लोग धर्म परिवर्तन करने पर विवश हो गये और उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार लिया। इस धर्म को अपनाने के बाद बहुत से लोगों ने अपने जाति नाम को नहीं छोड़ा। यही कारण है कि मुस्लमानो में आज भी हिन्दू जाति के नाम प्रचलित है जैसे रैना,

कौल, भट्ट, धर, पंडित आदि। नुन्दऋषि ने जनता को मानवता का पाठ पढ़ाया। उनका मानना था कि मानवता ही सबसे बड़ी जाति है और जाति-पाति के भेद-भाव को समाज से दूर करने की प्रेरणा देते हुए कहते है-

''यथ दुनियाहस जात हअविध क्या मेलीय
गद्दी चाक अडिजन येलि ख़ाक मेलीय।''

अर्थात् यह संसार नश्वर है यहाँ तुम किस को इस जाति-पाति का भेद-भाव दिखाते हो। यह संसार क्षणिक है, नश्वर है। ऐसी भावनाओ को अपने मन से निकाल कर ऊपर उठो और अपने आलौकिक जीवन की ओर ध्यान दो। नुन्दऋषि ने समाज में शांति और भाईचारे का संदेश दिया । एकता में शक्ति का पाठ पढ़ाते हुए सबी को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास किया चाहे वह किसी भी जाति, कुल धर्म से सम्बन्ध क्यों न रखता हो, उन्होंने घाटी में शांति का वातावरण स्थापित किया। इस भाईचारे का अलख जगाते हुए कहते हैं:-

"जात छय दपान जात छय मयानी जात ग्रीशिथ क्याह छु सोदा
जात डीशिय क्याह मुदाह छु।"

अर्थात् जाति-पाति के भेद-भाव से कुछ प्राप्त नहीं होता। तुम इसमें अपना समय और व्यापार दोनों नुष्ट कर रहे हो । यह तो सांसारिक वस्तु है। ऐसे भेद-भाव से तुम क्या स्पष्ट करना चाहते हो। इससे कोई लाभ प्राप्त नहीं होगा। इसके अतिरिक्त उन्होंने मानवता, एकता और ज्ञान पर बल दिया। ज्ञान को उन्होंने अधिक महत्व देते हुए लोगों को ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया। उनका मानना था कि ऐसा ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है जो लोगों में एक जागरूकता उत्पन्न करके समाज में व्याप्त बुराइयों के अंधकार को दूर करे। उन्होंने न केवल समाज की कुरीतियों का विरोध किया बल्कि नारी सम्मान और नारी-शिक्षा पर विशेष बल दिया। १४ वीं सदी में सर्वप्रथम कश्मीर घाटी ने नारी शिक्षा मंडलीयाँ खोलने का श्रेय भी नुन्द ऋषि को जाता है। उन्होंने महिलाओं को इस्लाम धर्म से परिचित कराने के साथ उनको अधिकारों के प्रति भी सचेत किया। मानवता को सर्वोपरि घोषित करके सदैव समाज के लोगों को अहिंसा का पाठ पढ़ाते रहे। वह अपनी

भूख मिटाने के लिए किस जानवर के साथ हिंसा करने के पक्ष में नहीं थे। देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए बलि चढ़ाने वालों की कड़े शब्दों में निंदा करते रहे। नुन्द ऋषि के समय मनुष्य चाहे किसी भी धर्म-जाति या सम्प्रदाय का रहा हो सभी उनकी बातों से प्रभावित हुए। कुछ लोगों ने आरम्भ में उनका विरोध भी किया। उन्हें चमत्कारी, ढोंगी और छल करने वाला आदि संज्ञाएँ भी दी परन्तु धीरे-धीरे लोग उनकी और आकर्षित होते गए। वह अपने समाज सुधारक के मार्ग से हटे नहीं बल्कि निडरता से प्रत्येक परिस्थिति का सामना करते रहे और अपने कार्य में किसी हद तक सफल भी रहे। उनकी सफलता का एक मात्र कारण यह भी था कि उन्होंने केवल उपदेश ही नहीं दिए अपितु अपने हाथों में लठिया उठाकर स्वयं प्रत्येक बुराई के विरुद्ध खड़े हुए। उन्होंने ऐसे समाज की परिकल्पना की थी जो हर प्रकार की बुराई, ऊँच-नीच, आडम्बर, रूढ़ियों आदि से मुक्त हो, जहाँ समाज भाईचारे के साथ रहे और सत्य के मार्ग पर खड़ा हो।

हजरत जैनउदीन ऋषि (ऐशमुकाम)

इस्लाम धर्म में आने से पूर्व जैनउदीन का मूल नाम ज़िया सिंह था जिनका पैतृक घर किशावर में था। जहाँ जहाँ उनके पिता यश सिंह जो उस रियासत के राजाओं के वंशज थे। बालावस्था में इतने बीमार हो गए थे कि जैनउदीन की माता ने उनके जीवित रहने की सरि आशा खो दी थी। दुख और चिंता से अभिभूत होकर उसने प्रतिज्ञा की कि यदि बच्चा बीमारी से ठीक हो जाएगा तो वह शेख नूरुद्दीन के यहाँ जाकर हाज़री लगाएंगी। इच्छानुसार प्रार्थना करने पर बालक ज़िया सिंह (जैनउदीन) धीरे-धीरे ठीक होने लगा। लेकिन उनकी माँ शेख नूरुदीन के पास जाने की प्रतिज्ञा भूल गई। समय बीतता गया और काफी समय बीतने के बाद ज़िया सिंह (जैनउदीन) फिर से बीमार पड़ गया और उनकी माँ को भूली हुई प्रतिज्ञा स्मरण हो आई। वह बेटे के साथ कश्मीर के लिए निकल पड़ी। कश्मीर पहुंचने पर ज़िया सिंह की माँ ने संत से प्रार्थना की और अपनी भूल के लिए क्षमा मांगने लगी। शेख के आशीर्वाद से ज़िया सिंह (जैनउदीन) ठीक होने लगे। ऐसा कहा जाता है कि संत के आध्यात्मिक उत्थान और संत के महान चरित्र को

महसूस करते हुए ज़िया सिंह (जैनउदीन) ने इस्लाम धर्म अपना लिया। इस्लाम अपनाने के बाद ज़िया सिंह (जैनउदीन) शेख नुरुद्दीन के सभी शिष्यों में सबसे प्रतिष्ठित बन गए। अपनी धर्मपरायणता और तपस्या से उन्होंने बहुत नाम कमाया। शेख नुरुद्दीन उनका बहुत सम्मान करते थे और अपने एक कथन में उन्होंने जैन-उद-दीन को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की है- मेरी ज़ेना अमृत का स्रोत हैं, ईश्वर के प्रति उसकी भक्ति ऐसी है कि वह उससे भी आगे निकल जाता है।

वह एक शिष्य के रूप में अपने ही गुरु से आगे निकल गये। वर्षों तक अपने गुरु की सेवा करने के पश्चात जैन-उद-दीन नुन्दऋषि के आदेश से एश्मुकाम चले गए और वहां एक गुफा में रहने लगे। लोक स्मृति और भौगोलिक साहित्य दोनों में ऐसे कई तथ्य है जिनका श्रेय जैन-उद-दीन को दिया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि एक बार जैन-उद-दान ने अपने एक शिष्य को एक निश्चित स्थान पर भेजा। शाहकुल पर काम कर रहे सरकारी अधिकारियों ने उसे जबरन मज़दूरी के लिए पकड़ लिया। जब शिष्य वापिस लौटा और संत को बताया कि क्या हुआ था, इस घटना ने नहर को सूखने का कारण बना दिया ! जब लोगों ने जैन-उद-दीन से अनुरोध किया तब उन्होंने पानी का प्रवाह बहाल किया। ऐसी मान्यता है कि जैन-उद-दीन को उस समय के शासक सुलतान जैन-उल-आबद्दीन (1920-1470) ने घाटी छोड़ने के लिए कहा था और उसके बाद वह तिब्बत चले गए। सुलतान की नाराजगी का कारण यह था कि जब सुलतान शाहकुल में काम की प्रगति का निरीक्षण करने के लिए अपने आधिकारिक दौरे पर थे तो उसे पास की गुफा में ऋषि को देखने की इच्छा हुई। ऐसा कहा जाता है कि जैन-उद-दीन को उस प्रकार का आदर-सत्कार नहीं हुआ जिस तरह से शाही मेहमानों का स्वागत किया जाता था। सुलतान अप्रसन्न हुआ और उसने उसे राज्य छोड़ने के लिए कहा जिसका उन्होंने पालन किया। इसी बीच कहा जाता हूँ कि सुलतान के पैर में फोड़ा हो गया और चिकित्सक उसे ठीक करने में विफल रहे। उन्होंने उस समय के प्रमुख संत हामी अधम से मदद मांगी, उन्होंने उसे बताया कि वह

जैन-उद-दीन की नाराजगी के कारण पीड़ित थे। सुलतान ने संत को वापिस लाने के लिए अपने बेटे हैदर को तिब्बत भेजा। जैसे ही जैन-उद-दीन ने अपना पैर घर की और जाने वाली सड़क पर रखा, सुलतान ठीक हो गया और जब संत घाटी में पहुंचे तो सुलतान व्यक्तिगत रूप से उन्हें लेने गये। संत के चमत्कारों और आध्यात्मिक योगदानों की संचारात्मक योजना इतनी उज्जवल थी कि अबुल फजल जैसा तर्ककदी भी इन कहानियों से प्रभावित हुआ लगता है। के लिखते है कि- 'बारह वर्षों तक उसने (ऐशमुकान) में इस कोठरी पर कब्जा किया और (अपने जीवन के) अंत में उसने इसका मुँह एक विशाल पत्थर से बंद कर दिया और कभी बाहर नहीं गया और किसी को उसका निशान भी नहीं मिला ! यद्यपि जैन-उद्दीन के कई चमत्कार उनकी विशिष्ट स्थिति की गवाहिश देते हैं।' जैन-उद-दीन की कब्र ऐशमुकाम ने दीन (इस्लाम) कश्मीर के लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत है।

वाल्टर लॉरेंस कहते है- इस तीर्थस्थल का कश्मीर के नाविकों द्वारा बहुत सम्मान किया जाता है जो अपने बच्चों को वहाँ ले जाते है उनका मुंडन करवाते हैं। जैन-उद-दीन, नुन्दऋषि (शेख नूरुद्दीन) के चार प्रमुख शिष्यों में से एक ही थे। इनकी जियारत हिन्दु और मुसलमान के लिए समान रूप से गहरी श्रद्धा का विषय है। घाटी के सभी हिस्सों से बड़ी संख्या में यहां लोग आते है।

बामु-उद-दीन (भूमसाद)

भूमसाद जाति से एक प्रसिद्ध ब्राह्मण थे। इस्लाम स्वीकार करने के पूर्व इनका नाम भूमसाद था जब इन्होंने इस्लाम स्वीकार किया तो इन्होंने अपना नाम बामु-उद-दीन रखा। यह नुन्दऋषि के प्रसिद्ध शिष्य थे। शेख नुरुदीन के हाथों ही इस्लाम स्वीकार किया था। इनका बड़ी संख्या में कश्मीरी पंडितों द्वारा सम्मान किया होता था जो प्राचीन गुफा व मंदिर में रहते थे। चूना पत्थर की चट्टान जहाँ वह अनेक मूर्तियों, की पूजा किया करता था। ऐसा माना जाता है प्रतिदिन पाँच स्थाने पर एक साथ स्नान का आदी था- चंदनयार, शेरहयार, छत्रयार, कुलरनागऔर

खादन्यार। जब नुरुद्दीन ने उनकी प्रतिष्ठा के बारे में सुना तो उनसे मिलने पहुँच गए और उन्हें इस्लाम में परिवर्तित करने का फैसला किया। प्रसिद्ध बुमजू गुफा पर पहुंचकर शेख ने देखा कि भूम साधु कई मूर्तियों से घिरा हुआ था और दोनों ने धर्मिक और सामाजिक महत्व के कई मुद्दो पर लम्बी चर्चा की। ईश्वर एकता, मूर्ति पूजा, अनुष्ठान प्रथाएँ और ब्राह्मणवादी जाति अभिविन्यास। ब्राह्माण तपस्वी के तर्क समान रूप से इतने शक्तिशाली थे कि शेख को अपने पैत्रिक धार्मिक विश्वास को त्यागने के लिए राज़ी करना बहुत कठिन हो गया। एक लम्बी चर्चा के बाद ब्राह्मण ने स्वेच्छा से इस्लाम स्वीकार कर लिया।

मखदुम साहिब

हजरत सुलतान उल-अरफीन, शेख हमज़ा मखदूम का जन्म १०० हिजरी कमरी में सोपोर एक गाँव तुज्र शरीक में हुया था। इसके पिता हज़रत बाबा उस्मान रैना एक चन्द्रवंशी राजपूत जो उच्च कोटि के विद्वान और रहस्यवादी संत थे। इस तरह सुलतान उल-आरिफीन हजरत शेख हमाज़ा मखदूनी को रहस्यवाद विरासत में मिला। यह कश्मीर घाटी में ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने अपने कार्यों और उपदेशों के माध्यम से लोगो के दिलों में अपनी जगह बनाई। उन्हें सच्चे धर्म की ओर अग्रसर किया और एकेश्वरसाद की रोशनी से प्रदान की। संत ने इस्लाम की विचारधारा का प्रचार किया और अनंतनाग जिले में विभिन्न गांवों में कई मस्जिदों का निर्माण किया, लगभग 10 वर्षो तक जिले में रहने के बाद ९९५ हिजरी (1587) ईस्वी में संत की मृत्यु हो गई। कश्मीर के सबसे पवित्र तीर्थस्थलों में से एक मखदूम साहिब की जियारत है जो श्रीनगर शहर में हरिपर्वत पहाडी के दक्षिणी किनारे पर स्थित है।

निष्कर्षतः कश्मीर की ऋषि परम्परा का आरम्भकर्ता या संस्थापक शेख नूर-उद-दीन को माना जा है। जिन्हें नुन्द ऋषि या शेख-उल-आलम के नाम से भी जाना जाता है। संत-परंपरा कश्मीर की संस्कृति का एक अभिन्न अंग माना जाता है जिसने इस्लन के विकास को प्रेरित किया है।

संदर्भ सूची

1. बक्शकादिर. सन् 1959 नूरनामा, पोर्ट ऑफ़ स्पेन, कादिर , बक्श इस्लामिक सर्विस
2. कलाम शेखुल आलमकादरी सैफुद्दीन ,
3. कामिल मोहम्मद अमीन. सन् 1998 नूरनामा शेख-उल-आलम , चेयर, दरगाह हजरतबल, श्रीनगर
4. बक्श कादिर. सन् 1959 नूरनामा, पोर्ट ऑफ़ स्पेन, कादिर बक्श , इस्लामिक सर्विस

हिंदी कहानियों में मानसिक दिव्यांग चेतना का अन्वेषण

वैशाली सिंघल
शोधार्थी, हिंदी विभाग
एम.जे.पी. रुहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली (उ. प्र.)
मो. न. 8851422094
ईमेल: vaishalisinghal072@gmail.com

सारांश

मनुष्य विश्व की सर्वश्रेष्ठ ईश्वरीय निर्मिति है। ईश्वर ने मनुष्य को इच्छा, भाव के साथ-साथ कल्पना और बुद्धि भी प्रदान की है। परंतु विचारणीय प्रश्न है कि क्यों कुछ मनुष्य बुद्धि से कमजोर प्रसूत होते हैं। हालांकि दिव्यांगता अभिशाप नहीं है। भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में भी दिव्यांगों ने वह मुकाम हासिल कर दिखाया है जो सकलांगो की सोच से भी दूर है। परंतु मानसिक दिव्यांगता से पीड़ित व्यक्ति की स्थिति अत्यंत संवेदनशील है। स्वयं दिव्यांग ही नहीं उनके प्रति परिवार और समाज की सोच व व्यवहार भी चिंतनीय है। अत्यधिक भावप्रवणता के कारण मानसिक दिव्यांगों को समुचित देखभाल की आवश्यकता हैं। उनके प्रति परिवार और समाज के दृष्टिकोण में बदलाव लाना भी युग की आवश्यकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में हिंदी कहानियों में व्यक्त की गई मानसिक दिव्यांगों की वेदना, पीड़ा का अन्वेषण किया गया हैं।

बीज शब्द – *मानसिक, विकलांग, दिव्यांग, विमर्श, हिंदी, कहानी*

शोध आलेख

"देश भर में किए गए एक सर्वे के अनुसार, भारत की सामान्य जनसंख्या का लगभग 7 प्रतिशत हिस्सा मानसिक बीमारियों से ग्रस्त है। इसके अलावा इनमें से लगभग 10 प्रतिशत लोगों को इमीडिएट मेडिकल केयर की आवश्यकता होती है। ऊपर दिए गए आंकड़ों के मुताबिक या तथ्यों को देखते हुए हमें जरूर इस स्थिति का एहसास होगा कि इस मानसिक विकृति का सामाजिक परिणाम कितना भयावह होगा।"[(1)]

मानसिक दिव्यांगता जिसका अर्थ है अविकसित, अर्धविकसित अथवा उन्माद या पागलपन की वह स्थिति जिसमें रोगी असामान्य प्रतीत होता है तथा उसे किसी न किसी संस्था अथवा विशेष उपचार की अनिवार्यता अनुभूत की जाती है। यह जनमत: भी हो सकती है, दुर्घटनाजन्य भी, प्रसव पूर्व या प्रसवोत्तर भी। इससे पीड़ित व्यक्ति बोलने, उठने, बैठने, चलने, फिरने अथवा अपने सामान्य दैनिक कार्यों को पूर्ण करने में कठिनाई का अनुभव करता हैं। इनके प्राय: सभी कार्यों में असामान्य गति लक्षित होती हैं। तथा ऐसे व्यक्तियों को प्राय: विशेष देखरेख की आवश्यकता होती है।

हिंदी साहित्य विविध विचारधाराओं, प्रवृत्तियों, विशेषताओं का कोष्ठागार है। हिंदी साहित्य द्वारा समाज के प्रत्येक आर्तजन को अभिव्यक्ति मिली है। दलित, अल्पसंख्यक, स्त्री, वृद्ध, आदिवासी आदि समाज के सभी पीड़ित समुदाय की मनोव्यथा का सूक्ष्म चित्रांकन हिंदी साहित्य सागर में मोतियों की तरह सराबोर हैं। ऐसे में दिव्यांगों की मनोव्यथा का चित्रांकन होना सदी के नवोत्थान का परिचायक है।

हिंदी कहानियों का विकास यदि देखें तो इसमें पर्याप्त विविधता परिलक्षित होती है। आधुनिक काल में सन् 1900 से हिंदी कहानी विधा का सूत्रपात होता है। तत्पश्चात युग प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित हिंदी कहानी के क्षेत्र में मुंशी प्रेमचंद जी का आगमन होता है। मुंशी प्रेमचंद जी हिंदी कहानी के क्षेत्र में मिल के पत्थर सिद्ध हुए है। पूस की रात, पंच परमेश्वर, सौत, कफन, ईदगाह आदि के द्वारा आदर्श और यथार्थ का सामान्य हिंदी साहित्य में बेजोड़ है। तत्पश्चात मनोवैज्ञानिक कहानीकार, जैसे इलाचंद्र जोशी, जैनेंद्र आदि के द्वारा मानव मन के सूक्ष्म उदगारों का सृजन हुआ। हिंदी कहानी विभिन्न आंदोलनों द्वारा पुष्पित होती रही। वर्तमान 21वीं सदी में हिंदी कहानी द्वारा एक नवीन विमर्श – दिव्यांग विमर्श का शुभारंभ हुआ है। हालांकि यह अभिनव विमर्श है परंतु इसके बीज 20 सदी की कहानियों से ही मिलने लगते हैं। जैसे फणीश्वरनाथ रेणु की 'ठेस', कथा सम्राट प्रेमचंद की 'पत्नी से पति', महादेवी वर्मा जी की

'गूंगिया', अज्ञेय की 'खितीन बाबू' आदि कहानियां दिव्यांग विमर्श के प्रमाण हैं। परंतु एक विमर्श के रूप में दिव्यांगों हेतु चिंतन 21 वीं सदी में ही आरंभ हुआ। दिव्यांगों को मुख्यतः दो श्रेणियां में बांटा गया है - एक शारीरिक दिव्यांग, दूसरे मानसिक दिव्यांग। हिंदी कहानियों में मानसिक दिव्यांगों को दृष्टिगत रखते हुए अनेक सुंदर व मर्मस्पर्शी कहानियों का सृजन हुआ है जिनका अनुसंधान निम्नवत है –

लेखक महेंद्र देवेश्वर 'दीपक' की 'एक रोटी जली हुई' शीर्षक कहानी में एक दिव्यांग बच्ची है जो गंभीर व्याधि से बच तो जाती है परंतु मानसिक रूप से वह विक्षिप्तावस्था में पहुंच जाती है। परिणामस्वरुप उसके पिता उसके प्रति अजनबी स्वरूप व्यवहार करने लगते हैं तथा एक दिन वह घर छोड़कर चले जाते हैं। मानसिक रूप से दिव्यांग बच्चों को सहानुभूति व संवेदना का ना मिल पाना दिव्यांग बच्चों की मार्मिक स्थिति का परिचायक हैं। सर्वप्रथम विक्षिप्तावस्था के बालक दूसरी ओर देखरेख करने वाले माता पिता से वंचित हो जाना पीड़ा को द्विगुणित कर देता हैं। निश्चय ही यह कहानी पाठकों को मानसिक दिव्यांग बच्चों की वेदना से द्रवीभूत कराने में सफल सिद्ध हुई हैं। लेखक सत्यराज की 'छोटू' शीर्षक कहानी में छोटू नायक है जो कि जन्मत: मानसिक रूप से दिव्यांग है। अनेक चिकित्सकों के उपचार पश्चात भी वह स्वस्थ नहीं हो पता है तथा उसकी विक्षिप्तता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। उसका पागलपन पूरे परिवार के लिए भय और आतंक का केंद्र बन जाता है। एक दिन वह चूहे मारने की दवा खाकर मृत्यु का वरण कर लेता हैं। "यह कहानी मानसिक विकलांग छोटू की कहानी है जो बहुत उपद्रवी है। मां-बाप के लाड़ के कारण उसकी यह विकलांगता और उग्रतर होती है और अंत में उसकी मृत्यु हो जाती है।"(2)

नरेश पंडित की 'नीली घाटी में खुलती आँख' शीर्षक कहानी में सतमासा जियालाल नायक है जो कि 8 से 10 वर्ष की उम्र का सामान्य बालक दृष्टिगत होता है। परंतु "चौदहवें साल में जियालाल का शरीर अजीब तेजी से बढ़ना शुरू हुआ। उसे गजब की भूख लगने लगी। घर की रोटियाँ इसके पेट को

पूरी नहीं पड़ती और जो कुछ भी इसके सामने पड़ता, उसे वह हजम कर जाता।"[3] वह पागल कुत्ते की खोपड़ी पर भी ऐसे प्रहार करता है कि वह वहीं ढेर हो जाता है। डॉक्टर शिवरतन मानघना का मंतव्य हैं – "जियालाल को जब पता चला कि लाहौरी लड़कियों को एजेंटों के जरिए शहर में बेचता है तो उसने उसे भी कुत्ते जैसा ही मारा।"[4] अर्ध विक्षिप्तता की स्थिति में होने के पश्चात भी वह समाज सेवा का उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत करता हैं। प्रसिद्ध हिंदी नाटककार, उपन्यासकार और लघु कथा लेखक स्वदेश दीपक की 'बाल भगवान' शीर्षक कहानी मानसिक दिव्यांगों की उत्तम कहानियों में से एक है। इस कहानी में एक मानसिक व्यथा से पीड़ित बालक है। लेखक द्वारा उसका रेखांकन इस प्रकार हैं – "सर जितना बड़ा है, दिमाग उतना ही छोटा है। वह जन्म से ही ऐसा है। आयु बढ़ी, शरीर बढ़ा लेकिन दिमाग एक छोटे से ताले की तरह हमेशा से बंद है। वह पागल नहीं, सीधा भी नहीं, इधर की भाषा में सिद्धध है। सयाने दिमाग और पागल दिमाग के बीच के दिमागवाला।"[5] कुछ स्वार्थी लोगों द्वारा इस अर्धविक्षिप्त बालक को ही बाल भगवान नाम से प्रसिद्ध किया गया है। ये स्वार्थपरायण लोग उस अर्धविक्षिप्त बालक को पैसा कमाने का जरिया बनाते हैं। तथा अंधविश्वासी समाज उसे भविष्य दृष्टा के रूप में सहर्ष स्वीकार भी कर लेता है। कहानी द्वारा स्वार्थी अवसरवादी लोगों का पर्दाफाश किया गया है जो लोभवश दिव्यांगों के साथ भी दुर्व्यवहार करने से नही कतराते। डॉक्टर अनीता सिंह की 'मंदबुद्धि' शीर्षक कहानी एक दिव्यांग मंदबुद्धि बालक के अपने माता-पिता के प्रति आत्मसमर्पण और कर्तव्यनिष्ठता की कहानी है। कथा नायक राजेश के पिता अमरलाल और माता दुलारी अपने बड़े बेटे राजेश के मंदबुद्धि होने के कारण दुखी दंपति हैं। राजेश के भविष्य से चिंतित उसके पिता उसे अपने ही साथ खेती किसानी, गाय भैंस को चारा खिलाने इत्यादि कार्य में दक्ष कर देते है। इस प्रकार अपने कार्य के प्रति उसकी कर्मठता को देखते हुए एक गरीब कृषक उसे अपनी कन्या से विवाह का प्रस्ताव देता है। जिससे उसके पिता सहर्ष स्वीकार कर उसका विवाह संपन्न करा देते हैं। समय बीतने के साथ ही अन्य बच्चे विवाह और नौकरी हेतु अलग-अलग स्थानो पर रहने लगते हैं तथा घर में

केवल राजेश, उसकी पत्नी और माता-पिता ही शेष रह जाते हैं। वृद्धावस्था के कारण माँ पार्किसन से पीड़ित हो जाती हैं परंतु राजेश के प्राणपण समर्पण अवलोकनीय हैं – "वह सुबह से शाम तक मां की सेवा में लगा रहता यहां तक की दैनिक क्रिया से निवृत करना नहलाना कपड़े पहनना खाना खिलाना खिलाना करवट बदलवाना सारे काम मन लगाकर करता।"(6) राजेश की सेवा परायणता को देखकर उसके पिता अमरलाल कहते हैं – "दुलारी, हमारे और भी बच्चे मंदबुद्धि रहते तो कितना अच्छा होता।....जिन बच्चों की तरफ से निश्चिंत थे कि वह सबल हैं, सकलांग हैं, सक्षम हैं, आज वही बच्चे तेरी विकलांगता की हालत में तुझसे मुंह मोड़ लिए हैं और यह मंदबुद्धि विकलांग अपनी विकलांगता नहीं, बल्कि सकलांगता का परिचय देकर तेरी दिन-रात सेवा कर रहा है।"(7) लेखिका सिम्मी हर्षिता की कहानी 'अनिमंत्रित' का केंद्रबिंदु मनु जन्म से ही मानसिक रूप से दिव्यांग बालक है। वह इधर-उधर दौड़ता रहता है। कभी घर वाले उसे उठाकर, पड़कर सामान की तरह बंद कर देते हैं और वह कमरे में चिल्लाता रहता है। खिड़कियों और दरवाजे से बच्चे उसे देखकर पागल कहकर चढ़ते-रुलाते हैं। वह शरीर से तो विकसित हो रहा है परंतु उसका मस्तिष्क अभी भी विकसित नहीं हो पा रहा है। इसी उधेड़बुन में एक दिन उसकी मां की अनुपस्थिति में उसकी बड़ी बहन गुस्से में कह देती है – "बैल की तरह बड़े होते जा रहे हो... शर्म नहीं आती तुम्हें? तुम क्यों जीवित हो अब तक? क्यों जीने का तुम्हें बहुत मोह है? तुम्हें भला जीकर करना भी क्या है यहां...?"(8) प्रस्तुत कहानी द्वारा मानसिक दिव्यांग बालक पर उसके स्वजनों द्वारा किया गया दुर्व्यवहार समाज के यथार्थ को पूर्ण मार्मिकता के साथ उद्घाटित करता हैं। दिव्यांगों की वेदना को सहज, स्पष्ट व संवेदनशील भाषा द्वारा अभिव्यंजित किया गया हैं।

मानसिक दिव्यांगों में प्राय: हीन ग्रंथि परिलक्षित होती है। हीन ग्रंथि से तात्पर्य है स्वयं को श्रेष्ठ या सर्वश्रेष्ठ समझ लेना तथा दूसरों की अनदेखी करना। ऐसे में अनेकांशत: द्वंद उत्पन्न होता है परिणामस्वरूप अंतर्विरोध का आगमन होता है। एडलर के मतानुसार – "सामान्यतः सभी मनोग्रंथियों का मुख्य कारण

हीनता या श्रेष्ठता की ग्रंथियां है।"[9] अहम और कुंठा जैसी ग्रंथियां व्यक्ति के बहिर्मुखी और अंतर्मुखी चरित्र को प्रभावित करती है। इससे मानव स्वभाव और उसका संपूर्ण जीवन आश्चर्यजनक रूप से प्रभावित होता है। इन्हीं हीन ग्रंथियों का विवेचन हिंदी कहानियों में प्रभावपूर्ण रूप से अंकित किया गया हैं। सुषमा मुनींद्र की 'हस्ती मिटती नहीं हमारी' शीर्षक कहानी की नायिका अंबी कुरूप और चेचक के दाग होने के कारण दुखित है। हीन ग्रंथि का शिकार होने के कारण वह अपनी कुरूपता को कम करने हेतु चेहरे पर पाउडर, माथे पर सुंदर बिंदी और आंखों में काजल लगाती है। तत्पश्चात भी वह पति द्वारा अपमानित होती रहती है। हीन ग्रंथि की शिकार इस नायिका का दर्द वास्तव में समाज के यथार्थ को ही उद्घाटित करता हैं। लेखिका शिवानी की 'चील-गाड़ी' शीर्षक कहानी एक ऐसी महिला की व्यथा कथा है जो यक्ष्मा रोग से पीड़ित है तथा उसका चेहरा भी क्षयग्रस्त हो गया है। मात्र 7 वर्ष वैवाहिक जीवन व्यतीत करने के उपरांत वह विधवा हो जाती है। परंतु इन सब से संघर्ष करते हुए वह अपनी मेहनत और लगन से जीवन में ऊंचाइयों को प्राप्त करती है। उसकी जिजीविषा और कर्मठता प्रशंसनीय है। सचेतन कहानी आंदोलन के प्रवर्तक महीप सिंह द्वारा रचित 'और और वृत' शीर्षक कहानी की नायिका का चरित्रांकन इस प्रकार किया गया हैं – "यह अंधेड़ आयु की हड्डियों का ढांचा मात्र थी। रंग उसका बहुत काला तो नहीं था पर ऐसा मटमैला था जिसके सामने गहरा काला रंग अच्छा लगता है। आँखो पर पुराने फ्रेम का एक चश्मा और उसके पीछे छिपी आँखो से झाँकती हुई एक बड़ी डरावनी- सी कठोरता। आँखो की वह कठोरता सारे चेहरे पर बिखरी हुई थी।"[10] स्वयं की इस कुरूपता के कारण वह हीन ग्रंथि से ग्रस्त रहने को विवश है। समाज की उपेक्षा और लांछना उसके दुख में 'जले पर नमक छिड़कने' का कार्य करती हैं। कहानीकार ने समाज की संवेदनहीनता और दिव्यांगों की मानसिक पीड़ा का सजीव चित्रांकन स्तुत्य कहानी में सफलतापूर्वक सम्पन्न किया है।

निष्कर्षस्वरूप साहित्यकारों द्वारा अभिव्यंजित कहानियों के माध्यम से मानसिक दिव्यांगों की वेदना का सूक्ष्म दृश्यांकन किया गया है। दिव्यांगों की स्वयं की पीड़ा, समाज से प्राप्त उपेक्षा और अन्यत्र संघर्षों से लड़ते हुए भी जीवन में सफलता अर्जित करना निश्चित रूप से किसी भी सकलांग को आश्चर्यचकित कर देता हैं। दिव्यांगों की ऐसी पीड़ादायक स्थिति को देखकर अनायास ही मन में सहानुभूति का भाव मुखरित होने लगता है। एवं समाज की संवेदनहीनता पर ग्लानि से पाठक का हृदय द्रविभूत हो जाता हैं। वास्तव में, समय की आवश्यकता है कि दिव्यांगों के सुधार हेतु उचित कदम उठाए जाए एवं उन्हें सशक्त व आत्मनिर्भर बनाया जाए।

संदर्भ सूची :-

1. (संपा) आनंद कश्यप : विकलांग-विमर्श विविध सोपान, पंकज बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2022, पृ संख्या 74।
2. विनय कुमार पाठक: विकलांग विमर्श दशा और दिशा, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2021, पृ संख्या 177।
3. वही, पृ संख्या 178।
4. वही, पृ संख्या 178।
5. https://www.hindisamay.com/content/2761/1/%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%B5%E0%A4%A6%E0%A5%87%E0%A4%B6-%E0%A4%A6%E0%A5%80%E0%A4%AA%E0%A4%95-%E0%A4%95%E0%A4%B9%E0%A4%BE%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A4%BE%E0%A4%81-%E0%A4%AC%E0%A4%BE%E0%A4%B2-

%E0%A4%AD%E0%A4%97%E0%A4%B5%E0%A4%BE%E0%A4%A8.cspx

6. विनय कुमार पाठक: विकलांग विमर्श दशा और दिशा, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2021, पृ संख्या 181।
7. वही, पृ संख्या 181।
8. डॉक्टर कविता यादव: समकालीन कथा साहित्य में निशक्त केंद्रित रचनाएँ, पंकज बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2021, पृ संख्या 127।
9. विनय कुमार पाठक: विकलांग विमर्श दशा और दिशा, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2021, पृ संख्या 183।
10. वही, पृ संख्या 184।
11. डॉक्टर कविता यादव: समकालीन कथा साहित्य में निशक्त केंद्रित रचनाएँ, पंकज बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2021, पृ संख्या 127।

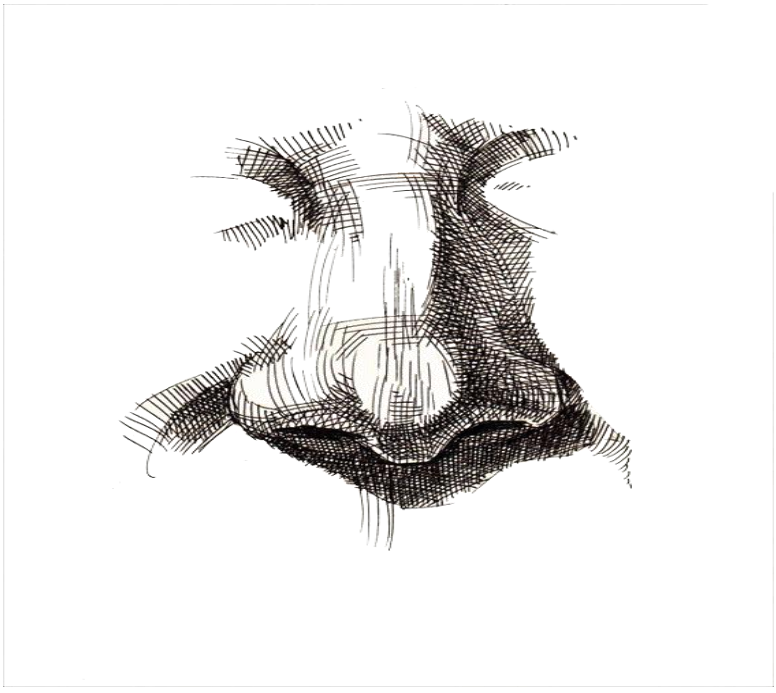

विकलांग विमर्श की हिन्दी कहानियाँ और गुलकी बन्नो

किसान गिरजाशंकर कुशवाहा
परास्नातक छात्र, हिन्दी विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी
ईमेल - kushraazjhansi@gmail.com
मो० - 9569911051, 8800171019
दीपक नामदेव
परास्नातक छात्र, हिन्दी विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी
ईमेल: deepaknamdev39589@gmail.com
मो० - 8840052043

सारांश

21वीं सदी विमर्शों की सदी है। इस सदी में विभिन्न अस्मितामूलक विमर्शों जैसे - स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श आदि विमर्शों ने नए आयामों को प्राप्त किया है और विकलांग विमर्श, किसान विमर्श, पर्यावरण विमर्श, वेश्या विमर्श, बाल विमर्श, वृद्ध विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, भाषा विमर्श, शिक्षा विमर्श एवं भिखारी विमर्श इत्यादि समकालीन विमर्श अंकुरित होकर विशाल वटवृक्ष बनने के लिए आंदोलनरत हैं। डॉ० विनय कुमार पाठक जी ने स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श और विकलांग विमर्श पर प्रमाणित आलोचनात्मक ग्रंथ रचकर समकालीन विमर्शों की आलोचना के क्षेत्र में नए-नए कीर्तिमान स्थापित किए और इन अस्मितामूलक विमर्शों में नई - नई स्थापनाएँ और मान्यताएँ स्थापित कीं। 21वीं सदी के पहले दशक में डॉ० विनय कुमार पाठक जी ने नए अस्मितामूलक विमर्श - 'विकलांग विमर्श' का प्रवर्त्तन बिलासपुर, छत्तीसगढ़ की उर्वर भूमि से किया। हाशिए के समाज को मुख्य धारा में लाने का प्रयास 'विमर्श' का गंतव्य-मंतव्य रहा है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक के दस्तक के साथ बिलासपुर, छत्तीसगढ़ में 'अखिल भारतीय विकलांग चेतना परिषद' की नींव रखी गई।

बीज शब्द: *अस्मिता, विमर्श, दलित, आदिवासी, स्त्री, विकलांग, साहित्य, कहानी*

शोध आलेख

21वीं सदी विमर्शों की सदी है। इस सदी में विभिन्न अस्मितामूलक विमर्शों जैसे - स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श आदि विमर्शों ने नए आयामों को प्राप्त किया है और विकलांग विमर्श, किसान विमर्श, पर्यावरण विमर्श, वेश्या विमर्श, बाल विमर्श, वृद्ध विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, भाषा विमर्श, शिक्षा विमर्श एवं भिखारी विमर्श इत्यादि समकालीन विमर्श अंकुरित होकर विशाल वटवृक्ष बनने के लिए आंदोलनरत हैं। डॉ० विनय कुमार पाठक जी ने स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श और विकलांग विमर्श पर प्रमाणित आलोचनात्मक ग्रंथ रचकर समकालीन विमर्शों की आलोचना के क्षेत्र में नए-नए कीर्तिमान स्थापित किए और इन अस्मितामूलक विमर्शों में नई - नई स्थापनाएँ और मान्यताएँ स्थापित कीं।

21वीं सदी के पहले दशक में डॉ० विनय कुमार पाठक जी ने नए अस्मितामूलक विमर्श - 'विकलांग विमर्श' का प्रवर्त्तन बिलासपुर, छत्तीसगढ़ की उर्वर भूमि से किया। हाशिए के समाज को मुख्य धारा में लाने का प्रयास 'विमर्श' का गंतव्य-मंतव्य रहा है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक के दस्तक के साथ बिलासपुर, छत्तीसगढ़ में 'अखिल भारतीय विकलांग चेतना परिषद' की नींव रखी गई। इसमें विकलांगों के पुनर्वास और समग्र विकास को लेकर डॉ० द्वारका प्रसाद अग्रवाल ने 121 योजनाओं की संकल्पना की। इस तरह स्त्री, दलित, आदिवासी विमर्श के बाद 'विकलांग विमर्श' को गति मिली। डॉ० अग्रवाल इस विमर्श के पुरोधा और डॉ० विनय कुमार पाठक प्रवर्त्तक प्रमाणित हुए। परिषद द्वारा विकलांग विमर्श पर साहित्य के प्रकाशन के समानांतर दस राष्ट्रीय और एक अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन ऐतिहासिक घटना सिद्ध हुई। इसी कड़ी में बारहवीं संगोष्ठी 'इक्कीसवीं सदी का अस्मितामूलक विकलांग विमर्श' का आयोजन किया जा रहा है। (1.)

हिन्दी साहित्य में विगलांग जनों पर केंद्रित रचनाएँ हर विधा में हिन्दी साहित्य की शुरूआत से ही रची गईं हैं। हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं में से कहानी सबसे प्रचलित और लोकप्रिय विधा है। विमर्श प्रवर्त्तक डॉ० विनय कुमार पाठक ने विकलांग विमर्श के प्रमाणित आलोचना ग्रंथ 'विकलांग-विमर्श : दशा और दिशा' के तीसरे अध्याय में विकलांग विमर्श की कहानियों का उल्लेख किया है। उन्होंने विकलांगता के प्रकार के अनुसार कहानियों का निर्धारण किया है और उन्हें क्रमबद्ध तरीके से प्रस्तुत किया है। जिनमें जन्मजात शीरीरिक विकलांगता पर ऊषा प्रियंवदा की 'टूटे सपने', सिम्मी हर्षिता की 'अनियंत्रित', नरेन्द्र नामदेव की 'समापन', उदय प्रकाश की 'हिंदुस्तानी' आदि शामिल हैं। वहीं हकलाहट की विकलांगता पर फणीश्वरनाथ रेणु की 'ठेस' कहानी हुई है। अंधेपन की विकलांगता पर जयशंकर प्रसाद की 'बेड़ी', ज्ञान प्रकाश विवेक की 'अंधा सूरज', डॉ० रेखा पालेश्वर की 'खुली आँखों का दुख', रेणु यादव की 'दबे पांव', शिवानी की 'कालू', डॉ० रेशमी पांडा मुखर्जी की 'देवी' और ममता कालिया की 'राजू' इत्यादि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। गूंगेपन की विकलांगता पर डॉ०

पाठक ने जिन कहानियों को शामिल किया है, वे इस प्रकार हैं - रांगेय राघव की 'गूंगा', रवींद्रनाथ ठाकुर की 'गूंगी', संतोष श्रीवास्तव की 'गूंगी', प्रमिला वर्मा की 'प्रतिबिम्ब', डॉ० अभिनेष जैन की 'बोलते चित्र' आदि शामिल हैं। पक्षाघात से ग्रसित विकलांगता पर चित्रेष की 'मन के जीते जीत', कुलदीप बग्गा की 'पोलियो', दीप्ती खंडेलवाल की 'अभिशप्त', राजी सेठ की 'उन दोनों के बीच', तेजेन्द्र शर्मा की 'मुझे मार डालो' और कुष्ठ रोगियों की विकलांगता पर शिवानी की 'करिये छिमा' की चर्चा की गई है। मानसिक विकलांगता पर उदय प्रकाश की 'टेपचू', डॉ० विनय कुमार पाठक की 'तभी चिड़िया फुर्र' और नाशिरा शर्मा की 'इबनेमरियम' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। (2.)

विकलांग विमर्श की विशेष कहानियों में शुमार

'गुलकी बन्नो' धर्मवीर भारती की प्रसिद्ध हिन्दी कहानी है। ये कहानी 'नई कहानी आंदोलन' के दौर में लिखी गई थी, जो उनके चर्चित कहानी-संग्रह 'बंदगली का आखिरी मकान' में संकलित है, जिसका प्रकाशन सन 1955 ई० में हुआ था।

'गुलकी बन्नो' कहानी में एक कुबड़ी स्त्री के जीवन-संघर्ष को बड़ी सजीवता के साथ दिखाया गया है। कुबड़ी गुलकी अपने पति और समाज द्वारा सताई गई, उपेक्षित की गई और हेय समझी गई स्त्री है। गुलकी ने जब मृत संतान को जन्म दिया तब ढ़ोर पति ने उसे सीढ़ी से ढकेल दिया था, जिससे उसकी कमर टूट गई और वो कुबड़ी बन गई। गुलकी को कुड़बनेपन की असहनीय पीड़ा के शिकार बनाने वाला अपराधी उसका पति है।

जब पति गुलकी को त्यागकर दूसरा विवाह रचा लेता है तब पिता की मृत्यु के बाद गुलकी को मायके में अकेले ही रहना पड़ता है और वो घेघा बुआ के चौतरें पर बैठकर सब्जियाँ बेचकर जीवनयापन करती है। जिस गुलकी के साथ समाज अमानवीय व्यवहार करने से बाज नहीं आता है। उसी गुलकी में मानवता कूट-कूटकर भरी हुई है। वह सामाजिक व्यवहार करने में कुशल थी और विकलांग होते हुए भी आत्मनिर्भर है इसीलिए जबसे उसने घेघा बुआ के चौतरें पर तरकारियों की दुकान रखी थी, तभी से मिरवा, झबरी कुतिया, बच्चे, मेवा, ड्राइवर साहब की लड़की निरमल समेत सभी लोग चौतरें पर इकट्ठे होने लगे थे।

उन विकलांग बच्चों मिरवा और मटकी को गुलकी ही अपनी दुकान और देहरी पर चढ़ने देती है, जिन्हें परिवार, समाज, मुहल्ला-पड़ोस, रिश्तेदार सभी दुतकारते थे, उन्हें अछूत समझकर अपने पास नहीं आने देते थे। ये बच्चे

जानकी उस्ताद के बच्चे थे। उस्ताद संक्रमित बीमारी के कारण गल-गलकर मरे थे और ये बच्चे भी विकलांग, विक्षिप्त और रोगग्रस्त पैदा हुए थे। गुलकी दुर्घटना के कारण विकलांग हुई थी, और विकलांगता के कारण जीवन में आईं मुशीबतों

और विकलांग लोगों के साथ समाज के रैवैये को अच्छी तरह से समझती थी इसलिए वो इन बच्चों के साथ उचित व्यवहार करती है।

'गुलकी बन्नो' को बाल-बच्चे मसखरी का पात्र समझते हैं। मेवा मसखरी करते हुए कहता है, " ए कुबड़ी, ए कुबड़ी! अपना कूबड़ दिखाओ। " और एक मुट्ठी धूल उसकी पीठ पर छोड़कर भागा। परित्यक्ता कुबड़ी 'गुलकी' के नीरस जीवन में अगर कहीं कुछ ध्वनि, लय, कम्पन है भी तो मिरवा और मटकी के गाने के कारण। अनुभूति की सघनता ने छोटे - छोटे दृश्यों को गंभीर अर्थ दिया है, चाहे वह बच्चों का जुलूस हो, बच्चों का कुबड़ी से खेल, घेंघा बुआ का कूड़ा फेंकने का प्रसंग। ये सब निष्ठुर समाज की स्वार्थपरता, मनुष्य से खिलवाड़ की प्रवृत्ति और गुलकी की मर्मभेदी करूणाओं को प्रस्तुत करते हैं। (3.)

" कुबड़ी ने पहले इधर-उधर देखा, फिर फुसफुसाकर मेवा से कहा, " क्यों रे! जीजाजी कैसे लगे तुझे ? " मेवा ने असमंजस में या संकोच में पड़कर कोई जवाब नहीं दिया तो जैसे अपने को समझाते हुए गुलकी बोली, "कुछ भी होय। है तो अपना आदमी! हारे-गाढ़े कोई और काम आएगा ? औरत को दबाय के रखना ही चाहिए।" (4.)

गुलकी का उपर्युक्त कथन इस बात का परिचायक है कि भारतीय समाज में स्त्री के साथ हजारों सालों से दोयम दर्जे के इंसान जैसा व्यवहार हो रहा है। स्त्री को पुरूषप्रधान समाज सताया रहा है, उसके साथ बंधुआ मजदूरों जैसा व्यवहार करता रहा है। और 'अब स्त्री को दबाकर रखना चाहिए', ये रूढ़िवादी समाज में पुरुषों और स्त्रियों की सोच बन गई है। इस सोच को में बदलाओ लाने की जरूरत है। समाज में बदलाओ लाने के साथ ही किसानों और स्त्रियों को सम्मान दिलाने के लिए हमारी 'बदलाओकारी विचारधारा' काम कर रही है।

गुलकी का पति दूसरी शादी करने के बाद जब सालों बाद गुलकी को लेने उसके गाँव आता है तब वो गुलकी के बारे में बात करते हुए घेघा बुआ से कहता है, "

इसे ले तो जा रहे हैं, पर इतना कहे देते हैं, आप भी समझा दें उसे, कि रहना हो तो दासी बनकर रहे। न दूध की न पूत की, हमारे कौन काम की ; पर हाँ औरतिया की सेवा करे, उसका बच्चा खिलावे, झाड़ू-बुहारू करे तो दो रोटी खाय पड़ी रहे। पर कभी उससे जबान लड़ाई तो खैर नहीं। हमारा हाथ बड़ा जालिम है। एक बार कूबड़ निकला, अगली बार परान निकलेगा।" (5.)

एक दिन घेघा बुआ से झगड़ा हो गया था, जिस बजह से बुआ ने गुलकी को अपने चौतरें पर सब्जियों की दुकान लगाना बंद करा दिया था और उसके पास अपना घर भी नहीं था। उसका मायके में भी अब कोई अपना सगा नहीं था इसलिए उसने पति के साथ ससुराल जाने का निश्चय किया। यदि गुलकी पति के साथ न जाती, तो फिर जाती कहाँ ?.....

मायके से गुलकी की बिदाई पर मिरवा ने गाना गया, " बन्नो डाले दुपट्टे का पल्ला, मुहल्ले से चली गई राम? " ये गाना उस मुहल्ले में हर लड़की की बिदा पर गाया जाता था। मटकी ने भी मिरवा के साथ सुर मिलाया, " बन्नो तली गई लाम! बन्नो तली गई लाम! बन्नो तली गई लाम!" गुलकी की बिदाई पर मुन्ना बहुत रो रहा था।

गुलकी भी रो रही रही, इक्के से वो आँसू पोंछते हुए परदा उठाकर मुड़-मुड़कर देख रही थी। सिर्फ झबरी कुतिया सड़क तक इक्के के साथ गई और फिर लौट गई लेकिन मायके के स्त्री, पुरूष और बच्चों में से कोई भी गुलकी को बिदा करने सड़क तक नहीं गया क्योंकि उस समाज और गॉव में मानवता मर चुकी थी। (6.)

'गुलकी बन्नो' का विश्लेषण करते हुए पंचराज यादव लिखते हैं, " यह कहानी अंत तक अपनी संवेदनात्मक बुनावट और विषयवस्तु की रोचकता से सबकी आँखें नम कर देती है। गुलकी एक ऐसी स्त्री है। जो अपने पति के द्वारा घर से इसलिए निकाल दी जाती है क्योंकि वो एक मरे हुए बच्चे को जन्म देती है। यह

कहानी पाठकों से सवाल करती है, समाज से सवाल करती है। क्या एक मरे हुए बच्चे के जन्म के लिए जिम्मेदार महज स्त्री होती है ? क्या बच्चे को जन्म देना ही स्त्री का होना है ? और उसकी उपस्थिति नहीं, कोई मूल्य नहीं है समाज में ? इन समस्त प्रश्नों का उत्तर मिलना आसान नहीं है और हमारा समाज स्त्रियों के प्रति इन्हीं धारणाओं से लगभग गिरा दिखता है।" (7.)

आलोचक गोपाल राय का कहना है कि " गुलकी बन्नो हाशिए पर स्थित लोगों की विशेषकर पति द्वारा उपेक्षित अभाव, उपेक्षा और अपमान की जिंदगी जीनेवाली कुबड़ी औरत की कहानी है। कहानीकार ने उसे पूरी सहानुभूति दी है, परंतु उसे विद्रोह करते क्यों नहीं दिखाया है। यह बात समझ में नहीं आती। " (8.)

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि धर्मवीर भारती की कहानी 'गुलकी बन्नो' में विकलांग स्त्री के जीवन-संघर्ष को सजीवता के साथ दिखाया गया है और भारतीय समाज से मानवीय मूल्यों के ह्रास का भी चित्रण किया गया है। 21वीं सदी में भारतीय समाज में मानवीय मूल्यों की स्थापना और विश्व में मानवधर्म की स्थापना के सराहनीय प्रयास किए जा रहे हैं। मानव धर्म के प्रयासों में विकलांग विमर्श के प्रवर्त्तक डॉ० विनय कुमार पाठक की साहित्य सेवा और समाजसेवा युगांतकारी है। धर्मवीर भारती की 'गुलकी बन्नो', फणीश्वरनाथ रेणु की 'ठेस', रांगेय राघव की 'गूँगा', जयशंकर प्रसाद की 'बेड़ी', ज्ञान प्रकाश विवेक की 'अंधा सूरज', डॉ० रेखा पालेश्वर की 'खुली आँखों का दुख', ममता कालिया की 'राजू', तेजेन्द्र शर्मा की 'मुझे मार डालो', उदय प्रकाश की 'हिंदुस्तानी', शिवानी की 'करिये छिमा', विनय कुमार पाठक की 'तभी चिड़िया फुर्र' और नाशिरा शर्मा की 'इबनेमरियम' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

संदर्भ सूची -

1. आमंत्रण पत्र, राष्ट्रीय संगोष्ठी - इक्कीसवीं सदी का अस्मितामूलक विकलांग विमर्श, 9 फरवरी 2024, आयोजक - हिन्दी विभाग,

शासकीय जे० पी० वर्मा स्नातकोत्तर कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़।
2. विकलांग-विमर्श : दशा और दिशा - डॉ० विनय कुमार पाठक, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2020
3. हिन्दी कहानियों में विकलांग-विमर्श - डॉ० श्रवण कुमार मीणा, विकलांग विमर्श का वैश्विक परिदृश्य - संपादक डॉ० सुरेश महेश्वरी, भावना प्रकाशन, प्रथम संस्करण - 2014, पृष्ठ - 372
4. गुलकी बन्नो - धर्मवीर भारती, फेमिना ऑनलाइन पत्रिका, 29 जून 2020
5. वही
6. वही
7. स्त्री पीड़ा और बाल मनोविज्ञान की मार्मिक कथा 'गुलकी बन्नो' - पंचराज यादव, भाषा - द्विमासिक पत्रिका, जुलाई - अगस्त 2021, केंद्रीय हिन्दी निदेशालय, भारत सरकार, आईएसएसएन - 0523-1418, पृष्ठ - 15,
8. हिन्दी कहानी का इतिहास, भाग-2 - गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण - 2019, पृष्ठ - 231

निलज वनिता का सांस्कृतिक भौतिकवाद

अमर सिंह
शोधार्थी, हिन्दी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग
केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, कसरगोड, पेरिया -671320

सारांश

'निलज वनिता' को हमने उसी तरह से जैसे 'सांस्कृतिक भौतिकवाद' जो 'मोर्विस हैरिस' के 'कल्चर मटेरियल' से थोड़ा ऊपर और भिन्न है के अनुसंधान पद्धति के माध्यम से समझा। यहाँ जब 'निलज वनिता' रीतिकाल में दिखी तो, क्योंकि सुधीश पचौरी जी ने रीतिकाल : सेक्सुआलिटी समारोह को एक विखंडन और फूको विचरण आलोचना पद्धति से समझा है। इस लिए यह हमें तभी समझ आएगा जब हम किसी अन्य सिद्धांतिकी के माध्यम से इसे समझेंगे अन्यथा नहीं। यह बात स्वयं वाणी प्रकशन के संपादक अरुण माहेश्वरी जी ने लिखी और कही है वे लिखते हैं कि ''यह किताब नव्य-इतिहासवादी, उत्तर-आधुनिकतावादी, उत्तर-संरचनावादी, संस्कृतिक भौतिकवादी नजरिए से हिन्दी साहित्य के नैतिकतावादी दरोगाओं द्वारा रीतिकाल की इन चिर निंदित स्त्रियों के सम्मान को बहाल करती है, रीतिकाल के कुपठियों की वैचारिक राजनीति को सप्रमाण ध्वस्त करती है और रीतिकाल को नए सिरे से पढ़ने के लिए विवश करती है।'' हालांकि वे लेखक के अधीन बात कर गए लेकिन वास्तविकता वे न पहचान सके कि रीतिकाल के बाद उन महिलाओं के साथ क्या हुआ और वे क्या होकर क्या कर रहीं हैं। इस लिए मैंने इसे सांस्कृतिक भौतिकवादी सिद्धांतिकी से समझा है।

बीज शब्द: *संस्कृति, सांस्कृतिक, भौतिक, आधुनिकता, इतिहास, संरचना, स्त्री*

शोध आलेख

प्रिय, प्रमाता क्या संसार भर में जितने भी मानवीय, वातावर्णीय, मानवभौतिकीय क्रियाकलाप हो रहे या किए कराये जा रहे हैं जिनमें अपराध, अनीति, कुकर्म, दुराचार, अहं, अविधिता आदि सम्मिलित हैं क्या वे सब परिष्कृत, परिशुद्ध और

नियमावृत हैं? यदि हाँ तो ठीक है। यदि न, तो आप ये मानिये कि जब ये सभी मानवीय कृतिकतायेँ परिष्कृत नहीं हैं, तब भला उन्हें शुद्ध परिष्कृत भाषा व पाठ-दार्शनिकीय वातावरण में कैसे अभिव्यक्त व संप्रेषित किया जा सकता है? संसार में अब तक जब से हम सचेत हुये हैं तब से हम से अधिक सचेत लोगों ने मानवीयता को समाज के बड़े ठेकेदारों ने चाहे वे सनातनवादी हों, बुद्धवादी हों चाहे मुगल, सामंत, उपनिवेशी आदि हों, सभी ने समाज को कई नई और अविश्वानीय तथा बलपूर्वक कभी-कभी अंधेड़ आँधी की तरह नई अविधिक दशाएँ और दिशायेँ दीं हैं। यह मात्र कुछ धन और यश प्राप्ति के लिए अधिक से अधिक हुआ है। इतिहास को तो परिष्कृत करा कर नवीन रूप दे दिया गया। लेकिन आज सामयिक सामाजिक बोधपरक युग ने इतिहास परिष्कृतिकरणीयता को धर दबोचा और इस हर बात को हर विषय को एक शंका की दृष्टि से देखने की परिकल्पना ने वास्तविकतों को बाहर फेंकने का काम प्रारम्भ कर दिया या जा रहा है।

यह सुलभ सांसारिक हाव-भाव और रंगबाजी सबसे अधिक साहित्य में देखने को मिलती है। हालांकि ऐसा नहीं है कि अन्य विषयानुशासनों में यह सब नहीं देखने में आता। सारे मानव-प्राणी विषयों में देखने में आता है। साथ ही वह चाहे किसी पत्र, पात्र के द्वारा हो अथवा किसी समाज, साहित्य आलोचक के मुखारविंदु व लेखन से- के द्वारा। इसका मुख्य कारण खासा साहित्य और सामाजिकी में आयी नवीन आलोचना सिद्धांतकियाँ हैं। सिद्धांतिकियाँ चाहे वह मार्क्सवादी हो, चाहे विखंडनवादी हो, नव्य इतिहासवादी और चाहे सांस्कृतिक भौतिकवादी और चाहे सांस्कृतिक साहित्य। इन सारी सिद्धांतकियों ने अपने-अपने रूप में एक ही समान बात के भिन्न-भिन्न अर्थचित्रव्याकरण और मानी देने प्रारम्भ किए हैं। जैसा कि होना भी चाहिए था। इसी रूप में एक विषय जो आज गंभीर समस्या बनता जा रहा है। वह है - स्त्री विमर्श। इस विमर्श को हम सांस्कृतिक भौतिकवादी सिद्धांतिकी से खोलना चाहते हैं या खोल कर देखा जाय तो?

जैसा सांस्कृतिक भौतिकवाद के बारे में सुधीश पचौरी ने कहा है कि "हर सांस्कृतिक 'कृति' (टेक्स्ट) का ऐतिहासिक संदर्भ होता है। इस तरह हर कृति खास परिस्थिति की पैदाइश होती है। इतना ही नहीं, हर कृति का एक कृतिगत इतिहास होता है। जिनसे उसकी कृतीयता या पाठीयता बनती है। इसके अलावा हर कृति के कृतिगत इतिहास और उसके इतिहास के 'पाठीयकरण' को देखना समझना होता है और इस तरह कृति को अनुशासनों के आर पार जाकर उसके उन विमर्शों को पढ़ना होता है जो कृति से गुजर कर जाते हैं। इसीलिए सांस्कृतिक भौतिकतावादी अध्यन के लिए यह जरूरी है कि वह कृति में सक्रीय 'सत्ता' के प्रश्नों पर ध्यान दें और हाशिये पर डाल दिये गए समूहों (जैसे मजदूर वर्ग, महिला वर्ग व समलैंगिक) को फोकस कर सके।''1

यहाँ ध्यान रखने की बात यह है कि जिस प्रकार मजदूर वर्ग पर ध्यान दिया जाय या अन्य पर ठीक वैसे ही समाज में जो अन्य में है चाहे वह व्यापारी वर्ग हो या कोई अन्य समाज संदर्भ, समाज के उस संदर्भ पर भी फोकस किया जाना चाहिए? अब यहाँ यह ध्यान में रखने योग्य बात है कि सांस्कृतिक का अर्थ संस्कृतिक से भिन्न है। सांस्कृतिक का अर्थ होता है किसी व्यक्ति के चरित्र के दर्शन के सौन्दर्य के आयाम जिसमें निहित हों जैसे संरचना और भौतिकता, कला आदि उस बिम्बार्थ वातावरण को सांस्कृतिक कहा जाता है। संस्कृतिक अर्थात किसी समूह या समाज के व्यक्तित्व के दर्शन के सौन्दर्य के आयाम जिसमें निहित हो जैसे होली, दीवाली आदि। इसे और अधिक गहरे समझने के लिए एक उदाहरण और पचौरी जी की पुस्तक से लेते हैं। वे कहते हैं कि "कहने की आवश्यकता नहीं सांस्कृतिक भौतिकवादी नजरिया सचेत रूप से 'राजनीतिक' है। वह 'व्याख्या की राजनीति' को महत्व देता है वह मानता है कि हर व्याख्या 'राजनीतिक' होती है और इसीलिए वह ऐसे 'पठन' पर बल देता है जो शोषितों, दमितों और हाशियाकृतों पर न केवल ध्यान दें बल्कि टेक्स्ट या कृति और उसकी व्याख्या में प्रतिरोध व भीतरघात की संभावनाओं पर ध्यान दें। सांस्कृतिक भौतिकवाद टेक्स्ट या कृति के विरोधी पाठ की जरूरतों पर ध्यान देता है ताकि

कृति में निहित सत्ता की प्रतीकात्मक संरचना में कतव्योंत (टिंकर) की जा सके।''2 वैसे तो यह बहुत ही सूक्ष्म पद्धति है लेकिन इसे उतनी ही सरलता से समझा भी जा सकता है। हालांकि ध्यान रहे कि 'सांस्कृतिक' शब्द 'कल्चर' शब्द का पर्याय नहीं है। 'कल्चर' शब्द के लिए 'संस्कृतिक' शब्द का प्रयोग होता है। साथ ही यह भी कि यह मोर्विश हैरिश के 'कल्चर मटेरियल' की अर्थवृति से बड़ा है। इसलिए सुधीश पचौरी के उपरोक्त कथनार्थ से थोड़ा बाहर भी रहेगा।

अब, यह बात है देश में फैल रहें एक महामारी की भांति स्त्री-विमर्श का संविधान की ओर अपना रुख करते हुए जाना। जो पुरुष वर्ग के लिए एक जीवन प्रदूषण है। यह मात्र मैं ही नहीं कह रहा महान समाजशास्त्री 'आनंद कुमार' और महिला एवं बाल-विकास मंत्री 'रेणुका चौधरी' भी कहते हुये उद्धरत रेखा कस्तवार जी की पुस्तक 'अपने होने का अर्थ' में कहती मिली। पुस्तक-पाठ में उद्धरत है कि "शेर हो गयी स्त्री" सामाजिक संक्रांति का सबसे जलता सवाल है। कानून के स्त्री के प्रति संवेदनशील होने पर अपने अधिकारों के प्रति जागतीं औरतों से व्यवस्था आतंकित है। कल से स्त्रियाँ 'वैधानिक आतंकवाद' फैलाने में सफल होंगा। न्यायविदों की चिंता गहरी है। स्त्रियाँ भेंडिया आया, भेंडिया आया चिल्ला रहीं हैं, कल जब सच में भेंडिया आ जाएगा तो स्त्री को मदद के हांथ नहीं मिलेंगें अर्थात स्त्री झूंठी शिकायतें कर रही है कानून के इस दुरुप्रयोग के खिलाफ किसी सजा का प्रावधान भी नहीं। कहा यह भी जाता रह है कि अब तो पुरुष प्रताड़ित है, घरेलू हिंसा के खिलाफ आने वाली शिकायतों में 13-14 प्रतिशत हिस्सा प्रताड़ित पुरुषों का है। सामाजशास्त्री आनंद कुमार राय है दुरुपयोग की गुंजाईस खत्म नहीं हुयी तो उपलब्धियां बेमानी हो जाएंगी। इसलिए सबकी सुनवायी हो, सबको न्याय, मिले ऐसी मंशा रेणुका चौधरी जी (मंत्री महिला एवं बाल-विकास) ने व्यक्त की हैं।''3 यहाँ न्याय की आवश्यकता इस लिए है कि स्त्री-विमर्श निगमों की दें है। वह निगमवादियों की एक व्यापारिक चाल है जैसे कि राजनीति मर्मज्ञ सतीश कुमार कहते हैं कि "अंग्रेजों के समय में स्त्रियों की स्थिति में सुधार के

उपाया किए गए''4 साफ स्पष्ट होता है कि यह भूमिका उसी समय यानी हल्फ जागरण से ही प्रारम्भ की गयी थी। हाल्फ जागरण यानी आधी बाते बताना और आधी छुपा लेना। कुछ ज्ञानी-सरोकारियों का मानना है कि यह काम सिमरन बुवा (simone-de-beauvoir) से या एक स्वीडिश महिला के काम-शिक्षा देने के लगभग 1896 के आस-पास से माना जाता है कि इन्होंने प्रारम्भ किया। लेकिन यह अर्ध-सत्य है। आशारानी व्होरा जी कहती हैं कि "प्राचीनकाल की अधिकार सम्पन्न नारी मध्यकाल के बाद 19वीं शताब्दी तक आते-आते पूरी तरह अधिकारविहीन व पर-निर्भर हो चुकी थी।''5

यही महिला जो मुगल समय में दरवारों में काम करती थी। जिनके पति इन्हें छोड़ कर किसी कारणवस चले गए या त्याग दीं गईं, ये वही महिलाएं हैं जिन्हें सहारा दे निगमवादियों ने अपने व्यापार की अंदरूनी चाल खेली अर्थात वे बड़ा बाज़ार बनाना चाहते थे। जबकि वास्तविक सत्य में कहें तो कह सकते हैं कि उपनिवेशवादियों, निगमवादियों बुर्जुवा व्यापारवादियों ने इसे अपने निजी स्वार्थ के लिए संसार में फैलाया है, हो सकता है सिमरन बुवा इन उपनिवेशवादियों की प्रशंसक एजेंट हो। सत्ता की अंदुरूनी चाल और जाली-व्याकरण के बारे में आम-फहम समाज के लोगों को बहुत ही कम जानकारी होती है। शायद यह आधुनिकता के रोंप की एक चाल रही हो जैसे कि सुधीश पचौरी जी ने लिखा भी है कि "आधुनिकता की दूसरी पहचान राजनीतिक अथव भौगोलिक कही जा सकती है। यह है आधुनिकीकरण और पश्चिमीकरण का एकमेव हो जाना। आधुनिकता- यहीं एक भूमंडलीय विचार बनी। वह पशचिम के देशों के शक्तिपरीक्षण और उपनिवेशवाद का वैचारिक औजार बनी। एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका देशों ने यह बहुत बाद में जाना कि ज्ञानोदय एक नई गुलामी है, उन विचारों की गुलामी जो कहीं बाहर बनी हैं। ये तमाम विचारधाराएँ एक दमनात्मक अस्त्र के रूप में प्रकट होती और जीवन को अनुकूलित करती हैं।''6 यह अंदरूनी और निरपेक्ष बौद्धिकता से समझने लायक है। पहले ये किस प्रकार आदर्श हिन्दू स्त्री का निर्माण करते हैं। फिर किस प्रकार इस अपवित्र यानी

'निलज बनिता' जो कभी दासी या निम्न स्तर के कामों से जुड़ी हुयी रहने वाली स्त्री जिसने अभिशप्तावस ऐसे काम करने प्रारम्भ किए थे। पुनः क्या यानी 'वनिता' अर्थात वह महिला जिसे किसी खास उदेश्य के हित को ध्यान में रखते हुये एक बनाई गई दिशा में मोड दिया गया हो, को कैसे निर्मित किया गया था इन निगमवादियों के द्वारा। इन निगमवादियों ने किस तरह अनुकूलन तैयार किया था। इसे आप सुधीश पचौरी की पुस्तक से पढ़िये।

हालांकि पचौरी ने स्वयं उसी अपवित्र स्त्री को विमर्श से जोड़ दिया। शिक्षा और काम करने तक जो की ठीक था। सशक्तीकृत होकर संविधान में स्थिति दर्ज करवाने की इनकी ज़ोर-मानी पूर्णतया गलत हैं। हालांकि वे कहते हैं कि "आरंभिक मिशनरी जिस स्त्री को बराबर बनाते हैं, वह यही पवित्र स्त्री है। यह हिन्दू स्त्री का आदर्श निर्माण है जिससे बाद के दिनों के रूपक के लिए पवित्र बनाए रखा जाना है और अ-पवित्र स्त्री से यानी रीतिकाल की स्त्री से बचाना है, इसलिए रीतिकाल की नायिका और नायिका भेद से उसे बचना है।''7

हालांकि इस स्त्री से सहानुभूति रखने के मूल कारण हिंदुओं के मानस में हिन्दू स्त्री के प्रति का वातावरण अपने दावों के लिए निर्मित करना था। ये नायिका भेद से इन्हें इसी लिए बचाया जाना है ताकि वे आगे चलकर एक नई अर्थनीति तैयार कर सके। फिर आगे देखिये "इस अलग स्त्री का निर्माण सबसे पहले मिशनरी करते हैं और इसी स्त्री का निर्माण बाद के इतिहासों में होता है जो रीतिकाल की स्त्री को उक्त श्रेणी में रख कर किनारे कर देती है।'8 यह किनारे कर देना भी पचौरी जी निगमवादियों एक 'काल' यानी युग-समय की कला है। पचौरी जी जिसे आप न समझ सके। जिससे उनके धंधे निर्मित होने थे। आप यह भूल गए कि बाजार अधिक संख्या में हुये लोगों से ख़ासा जो अधिक प्रभाव को समझते हो से ही ससक्रीय होता है। फिर जब हम और आगे बढ़ते हैं तो "शुरू के मिशनरी लोगों ने उच्च जाति केन्द्रित हिन्दू स्त्री का निर्माण किया। यह हिंदुओं की पुनर्खोज से जुड़ा था। यहाँ एक समस्या आती है।''9 यह समस्या क्या थी। इसी निलज स्त्री की निगमवादियों को यानी आज की 'सशक्तित स्त्री' का निर्माण करना था।

क्योंकि यह जब सामाजिक प्रतियोगिता में आएगी तब और अधिक अर्थिकता बढ़ेगी। वह भी बाजार में बाज़ार के लिए जो युगों तक चलती रहे। देखिए "यहाँ एक समस्या आती है। उन्नसवीं सदी के ऐन आरंभिक दिनों में यानी अठारह सौ के कुछ आगे के दिनों में भी एक ऐसी स्त्री की तस्वीर बनती है जो कि एक प्रकार की स्वैराचारिणी है और हिन्दू स्वभाव के साथ दगा करती है।''10

पचौरी जी आप ने यही पंक्ति में वास्तविकता को दबा दिया। आपने यहाँ फाल्ट लाइन नहीं दिखाई। पूरी पंक्ति-वातावरण को फर्श के नीचे कर दिया। यदि मैं आप से कहूँ कि यह स्त्री अचानक से कहाँ से आ गयी? जिसने या जो हिन्दू स्वभाव के साथ दगा करती है। आप बुरा न माने तो कहना चाहता हूँ- कि यह वही है जिसे आपने निलज बनिता माना है। लेकिन यह निगम खेल से निर्मित निलज वनिता है। जिसकी निर्मिति की गई थी और आप ने इसे विमर्श से जोड़ कर उसे वह स्वतन्त्रता प्रदान करने की बात कर दी। जिससे पुरुष वर्ग खतरे में पड़ सकता है। आप ने इस शंका की भूमिका स्वयं विदित की है। आप देखिये "और ये तमाम बहस स्त्री शिक्षा में, साहित्य की शिक्षा देने के संदर्भ में पैदा होती हैं। साहित्य की शिक्षा देना उपनिवेशवादियों की एक जरूरत है।''11

'जरूरत' शब्द पर यदि आप ध्यान देते तो यह गलती आप से न होती। आगे भी आप ने कुमकुम संगारी के हवाले से कहलवाया है कि "कुमकुम संगारी बताती हैं किस तरह अंग्रेज़ ओरियंटलिस्टों ने भाषा और साहित्य के शिक्षण को नियंत्रित किया और किस तरह भारतीय स्थानीय एलीट की जरूरतों से उसे मेल में रखा ताकि अनुकूलन में परेशानी न हो''12 वे कई नियमों से चल रहे थे। उन्हीं नियमों में यह भी एक नियम छिपा था। जिसे समझना समय के साथ कठिन हुआ। जो यहाँ आज पकड़ में आया है।

व्यापारी, निगमवादी सब निर्लज्ज होते हैं। इनमें निर्लज्जता कहाँ से आयी? इसे हम एक संवाद से समझते हैं। लिखा है कि ''आधुनिक ज्ञान विज्ञान ने मनुष्य को बहुत कुछ बुद्धिसम्मत बना दिया था। नीत्शे की इस घोषणा से कि 'ईश्वर मर

गया', बौद्धिक जगत में एक क्रांतिकारी परिवर्तन आया। यथार्थ का स्वरूप ही बदल गया। पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, अच्छे-बुरे जो कसौटियाँ धर्मग्रंथों में निर्धारित की गईं थीं, उनकी प्रामाणिकता समाप्त हो गई और पुराने मूल्य विघटित हो गए। मनुष्य ने पाया कि वर्तमान परिस्थिति (सिचुएशन) में वह असहाय, क्षुद्र और निरर्थक प्राणी है। विज्ञान की प्रगति ने भी निश्चयवादी सिधान्त को खोखला सिद्ध कर दिया। क्वान्टम सिधान्त और सापेक्षतावाद से सिद्ध हो गया कि न तो कोई सार्वभौम सत्य होता है और न शाश्वत नैतिकता। अणुओं की सत्ता के असिद्ध हो जाने के बाद अणु शक्ति (एनर्जी) में बदल जाता है और शक्ति अणु में। निश्चयात्मकता के समाप्ती की अंतिम घोषणा हो गयी। अस्तित्ववादी दर्शन ने इस पर अपनी मोहर लगा कर इसे और भी पुष्ट कर दिया।''13 इसकी जानकारी समाज और साहित्य में बहुत बाद में आई। लेकिन निगम और व्यापारियों को इसकी भनक प्राचीन समय से है। इसका एक बड़ा कारण समुंद्रेय व्यापार है। संसार भर में आज भी उपनिवेशियों के लिए किसी की भी मृत्यु और जन्म इनके लिए एक खेलमानी, एक नाटक है। इस तरह इन निगमवादियों जिन्होंने अराजक और स्वतंत्र विचरण किया तथा सम्पूर्ण पृथ्वी को एक बाजार का खेल बना दिया। जिसमें कई तरीकों से व्यापार किया गया। चाहे वह सामाजिक हो या भौगौलिक और इसी संदर्भ में हम इन स्त्रीयों को व्यापार के व्याकरण में किस प्रकार व्याकर्णित किया गया। इसे एक शोध पद्धति 'सांस्कृतिक भौतिकवाद' की प्रयोगिता से समझ रहे हैं। इसी सांस्कृतिक भौतिकवादी अनुसंधान पद्धति के आधार में हम 'निलज वनिता का सांस्कृतिक भौतिकवादी' यानी ''निलज वनिता के इतिहास की संरचना की बनावट का स्वरूपिकपरिणाम'' देख रहे हैं। हम इनकी सतत और असतत बिंदुयिक प्रक्रिया को जानेगें। साथ ही यह भी की उनका 'भीतरी स्वरूपीयिता' कैसी है? वह पुरुष वर्ग के लिए किस प्रकार घातक हैं।

यह बात यहाँ न उठाते यदि यही बात किसी अन्य आलोचक ने उठाई होती। लेकिन यह आवश्यक समझ पड़ा कि जब हिन्दी साहित्य और मीडिया

आलोचक तथा हिन्दी साहित्य को पाश्चात्य साहित्यालोचना से अनुपमीय और अनन्य परिचय कराने वाले प्रो. सुधीश पचौरी ने अपनी एक पुस्तक 'रीतिकाल : सेक्सुआलिटी का समारोह' नामक कृति में यह लिखा-दिखा कि "निलज बनिता यानि बेशर्म औरत निर्लज्ज होना ही एक स्त्री का सबसे बड़ा एमपवारमेंट है।''14 यह सशक्तिकरण वाली पुरुष वर्ग के साथ सदैव से मुझे 'घाट' और 'घाट' की तरह लगी और मैं वास्तविकता सामने लाने के लिए 'जम' गया।

हालांकि बात तब तक ठीक थी। जब तक पचौरी जी ने प. रामचंद्र शुक्ल, प. महावीर प्रसाद जी और डॉ नगेन्द्र जी ने जो आक्षेप रीतिकालीन महिलाओं पर लगाए जो अश्लील, निंदनीय तथा उन्हें पाठ से बाहर कर दिया जाये जैसे कहे जाते थे या कह गए, ने (पचौरी) उनके विरोध में कहा कि नहीं रीतिकालीन महिला किसी भी प्रकार से निंदनीय, अश्लील और पाठ से बाहर करने योग्य नहीं है। बल्कि वे जीवन की एक प्रक्रिया में जीने वाली महिलाएं हैं। वे अपने समय की 'सेल्स वुमन' हैं। वे मुगल काल में ही उपस्थित हों अपनी उपस्थिती और जीवन परिस्थिति दर्ज करा चुकीं थीं। वे सभी वास्तव में वास्तविक स्त्रियाँ हैं। यह जो कहा गया पचौरी जी के द्वारा, यहाँ तक तो लगभग बात ठीक थी। उन्होंने 'हेलन' और 'मेडोना' के साथ-साथ केट मिलेट, जेके रोलिंग, मेरे बूथ के भी उदाहरण दिये। बात यहाँ तक भी खूब ठीक थी। क्योंकि ये शिक्षा और आत्म निर्भर के प्रति की दिशा की महिलाएँ हैं। लेकिन जब उन्होंने स्त्री को एमपवारमेंट से जोड़ दिया यानी स्त्री को विमर्श से जोड़ दिया। बात तब अधिक घातपरक (हानिदायी) हो गई या समझ पड़ी। उन्होंने लिखा है कि ''मेडोना, जेके रोलिंग, केट मोस तथा मेरे बूथ में क्या समानता है? कास्मोपोलिटन पत्रिका के अनुसार पहली प्रख्यात गायिका अभिनेत्री हैं, दूसरी 'हैरी पाटर' वाली सर्वाधिक बिकने वाली लेखिका है, तीसरी प्रख्यात मॉडल है, चौथी बैटिस्टर है। ये विश्व की चार सर्वाधिक ताकतवर स्त्रीयां हैं। 'कासमों' की संपादिका लोरन कैंडी का कहना है कि ये नई जमीन तोड़ने वाली वर्जनाओं को ध्वस्त करने वाली हैं जिन्होंने बहुत मेहनत की है और सफलता पायी है। कैंडी का कहना है ये औरतें बहुत

आनंदकारी हैं, निडर हैं। जिनकी हम तारीफ किया करते हैं और शायद अपनी बच्चियों को उन जैसा बनाने की कामना करते हैं।''15

ये महिलाएं पुरुष वर्ग के लिए बहुत घातक हैं क्योंकि ये मनमानी के साथ संविधान में उपस्थिति दर्ज करा रही हैं। यहाँ यह सब इन महिलाओं को मनमानी छूट देने के कारण हुआ है। क्योंकि कुछ महिलाओं की स्थिति कुछ पुरुषों द्वारा सोचनीय कर दी गई थी। इसका अर्थ यह नहीं है कि कुछ महिलाएं ऐसी नहीं थीं। कुछ चांडाल भूमिकाओं की महिलाएं भी समाज में थीं। यहाँ एक कथन जाने माने महिला संदर्भ के लेखक राजकिशोर जी का उद्धरत करना अनुचित न होगा, वे कहते हैं कि ''जिस तरह सभी पुरुष वेश्यागामी नहीं होते, उसी तरह सभी स्त्रियाँ लड़ाकू नहीं होतीं। जिस तरह कुछ ही पुरुष अपनी पत्नी को पीटते हैं, उस तरह कुछ ही स्त्रियाँ घर को भट्ठी बना कर रखती हैं। अतः सबको एक ही लाठी से हाँकना उचित नहीं''16 अब देखने योग्य और समझने लायक बात यह है कि किसी एक महिला के कारण या उदाहरण के तौर पर लें तो कह सकते हैं कि जैसे किसी का रेप हुआ। उसमें किसकी गलती थी और कितनी थी? कि परिणाम रेप तक पहुँचा यह कह नहीं ही सकते। क्योंकि स्त्री सदैव झूठी ही होती है राजकिशोर जी उसी पुस्तक में फिर लिखते हैं कि "झूठ और धोखा सीधी-सादी औरत की भी नियति है और तानाशाह औरत की भी।''17

यह स्त्री यदि संविधान में अपनी स्थिति बना लेगी तो हमरे लिए बहुत अन्याय के अनन्य किवाड़ खुल जाएंगे। जो एक महिलाओं के द्वारा अति होगी। जो एक सवाल कि भाँति हमारे समुख खड़े हैं या होंगे। यहीं हम राजकिशोर जी का एक उदाहरण अपने पक्ष के लिए और लेते हैं। देखिये "यह सवाल इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि आजकल स्त्रियों को विद्रोह की शिक्षा कुछ ज्यादा ही दी जा रही है। स्त्री अधिकारों की चेतना एक बात है, किन्तु पुरुष को सतत अपराधी मानकर चलना बिलकुल दूसरी बात है। स्त्री के संदर्भ में पुरुष का इतिहास निश्चय ही बहुत गंदा है, लेकिन उस इतिहास का प्रतिरोध लेने की राजनीति उससे भी गंदी ही कही जाएगी। इसीलिए पुरुष द्वारा स्त्री अधिकारों के हर अतिक्रमण को सिर्फ

पुलिसिया निगाह से देखना उचित नहीं है। अंततः तो कानून ही शरण है, किन्तु बहुत सारी चीजों का निपटारा आपसी समझ और सहानुभूति के विस्तार से किया जा सकता है और किया जाना चाहिए।''18 यहाँ राजकिशोर जी न केवल पुरुष पर होने वाले अत्याचारों जो भविष्य में दिखेंगे के प्रति सहानुभूति दर्ज कराते हैं बल्कि वे इस बात पर भी ज़ोर देते हैं कि ऐसा ही होना चाहिए। अर्थात एक मानी यह कि वे जो संविधान में अपनी स्थिति दर्ज करने में ज़ोर पर हैं वह पूर्णतया गलत है। किसी एक के किए कर्मों की सजा सबको नहीं मिलनी चाहिए। क्योंकि संविधान में दर्ज धारा सबके लिए लागू हो जाती है फिर निम्न सोच की महिलाएं इसका घातक और गलत लाभ उठाती हैं। हमने देखा है की यह विमर्शवृति एक मनोरोग की तरह आगे बढ़ती जा रही है। राजकिशोर जी यह भी मानते हैं कि यह एक रोग है। एक कुंठा है। एक पागलपन है। यह पागलपंथी प्रत्येक पुरुष पर लागू करने का अधिकार शासन समाज को देख परख कर ही देना चाहिए। ये व्यक्तिगत मसले हैं संविधान में इन्हें पालना ठीक नहीं। वे इनकी कुंठा यानी हताशा, निराशा, मनोरोग, तनाव से उपस्थित इस विमर्श के होने को कैसे स्पष्ट करते हैं यहाँ उनकी पुस्तक से स्पष्ट होता है। वे कहते हैं कि "कोई भी तानाशाह हर तरह से अकेला आदमी होता है, विफल या अर्ध सफल तानाशाह तो और भी ज्यादा। अतः ऐसी पत्नियाँ और माँएँ धीरे-धीरे और ज्यादा शक्की, बदमिजाज तथा झगड़ालू होती जाती हैं और इसी अनुपात में उनका अकेलापन भी बढ़ता जाता है। दरअसल वे हमेशा एक हारती हुई लड़ाई लड़ती हैं, इसीलिए उनकी कुंठा साल-दर-साल और गाढ़ी हो जाती है।''19

और यह इस प्रकार से एक बौखलपन हैं। हाल-फिलहाल आने वाले समय में पूंजीवादी राष्ट्र जब इधर ध्यान देंगे। सामान्य तौर पर कहा जा सकता है कि जल्द ही यह पागलपन समाप्त हो जाएगा। राजकिशोर जी लिखते हैं कि "जिन्हें भ्रम है कि सामंतवाद या पूंजीवाद ने स्त्री की यह दुर्दशा की है, उन्हें साम्यवादी देशों में स्त्री की हालत पर गौर करना चाहिए। है।''20 इस बात से साफ स्पष्ट होता है कि

जिस समय सम्पूर्ण विश्व एक पूँजीवादिता के रूप में बहाल हुआ। उस दिन इनका खेल समाप्त हो जाएगा।

अब हम पचौरी जी को स्मरण में लेते हैं जैसे-फिर वे पंक्ति बदलते हैं और लिखते हैं कि "रीतिकाल में हमारे यहाँ भी ऐसी ही नायिकाएँ रहीं। लेकिन उन्हें क्रमिक तरीके से पराजित कर दिया गया।''21 लेकिन बाद में सुधीश पचौरी जी ने उन्हीं स्त्रियों को सशक्तिकरण और विमर्श से जोड़ देते हैं। जबकि वे यह अच्छे से जानते हैं कि विमर्श की स्त्री का निर्माण एक प्रतियोगिक अपने रूप में अपने लाभ के लिए मिशनरियों, उपनिवेशियों, निगमवादियों ने 'हाल्फ जागरण' के माध्यम से निर्मित किया था। जो एक अंदरूनी चालू-चाल है जो पूर्णतया जाली है और इसे पूरे विश्व में इन निगमवादियों ने फैला दिया है। जो आज एक विमर्श का रूप ले बैठी हैं। "यदपि अंग्रेजों ने इस देश में नयी अर्थव्यवस्था, औद्योगिकता, संचार-सुविधा, प्रेस आदि को अपने निजी स्वार्थ के लिए स्थापित किया, फिर भी इससे भारत का हित हुआ।"22 इससे साफ स्पष्ट होता है कि इन निगमवादियों ने 'हाल्फ जागरण' के माध्यम से कुछ ऐसी स्थापनाएं कीं। जिनसे वे समाज के अंदर भी अधिकाधिक निगमन कर सकें। क्योंकि किसी न किसी प्रकार वे पुरुषवर्ग से तो धन निगमित कर ही रहे थे। साथ ही साथ यह उनकी चाल थी। कि महिलाओं से भी किस प्रकार से उन्हें एक व्यवस्था में लाया जाय और विशेष स्तर पर उन्हें भी निगम का कलपुर्जा बनाया जाय। यह निगमवादियों की एक चाल थी। जिसे महिलाएं न समझ सकी। क्योंकि महिलाएं अनुकूलन ढूंढतीं थीं।

ये कौन सी महिलाएं थीं। वही जिनके पति या तो इनके किसी गलत लत या काम के कारण इन्हें छोड़ दिया करते थे अथवा कभी जिनकी अकाल मृत्यु हो जाती थी अथवा किसी दूसरी महिला के त्रिया-चरित्र में जा फँसते थे। ऐसी महिलाएं पूरे विश्व में थीं। निगमवादियों के 'हाल्फ जागरण' और समाज में बाज़ार की परख व बाज़ार-व्याकरण को समझते हुये जहां जहां इन लोगों ने अपना जाल फैलाया और अनुकूलन दिया वहाँ वहाँ महिला सशक्तिकरण परिवेश बनाने लगे।

उपनिवेशवादियों का यह मानना था की यदि ये सशक्त होकर धन कमाएँगी और विकास के बारे में सोचेंगी तब वे बाज़ार में आएंगी अवश्य और बाज़ार पर हमारा राज तो है सदैव से सदैव तक ही यह उनकी एक चाल-नीति थी। जिसमें पूरे विश्व की महिलाएं फंसी हैं व औरों को भी साथ में फँसा रही हैं।

पुरुषों पर सदैव स्त्रियों ने अत्याचार ही किये हैं। चाहे वह पत्नी रूप में हों अथवा फूहड़ आधार में। पुरुष सदैव एक स्थिर पेड़ की भाँति रहा है। ये महिलाएं उस पर सदैव एक अमरबेल की भाँति 'अनुकूलन पाकर' आयीं और जिसके साथ रहीं, वह भी सिर पर, उसे पूर्णतया नष्ट कर के दम भरी। क्योंकि अमरबेल की प्रकृति ही ऐसी होती हैं। वह 'अनुकूलन तक' ही चमकती हैं। इधर इन महिलाओं या ऐसी महिलाओं के पास अन्य कोई सहारा न रह जाता था। ऐसी ही महिलाओं का उद्धार किया निगमवादी मिशनरियों ने 'हाल्फ जागरण' के माध्यम से और इन महिलाओं में अधिक से अधिक वे महिलाएं ही थीं जो किसी भी प्रकार से निम्न स्तर या निम्न कुल और जाति की होती थीं। आज भी आप देखें तो पाएंगे कि जिनके पास लगभग में कुछ खाने या खोने यानी धर्म सम्मान नहीं है। वही लोग इन 'अनुकूलन के शिकार' होते जा रहे हैं या होते हैं। बहुतों ने तो धर्म तक बदल लिए, और यह वही महिला थी जो 'निलज' थी जिसका कोई सम्मान नहीं था। यह पहले 'दासी' आदि का काम क्या करती थीं। इस प्रकार जब ये थोड़ा सफल दिखीं। क्योंकि ऐसी महिलाएं निगमवादियों को तो और आधिक संख्या में चाहियें थीं। इस प्रकार जब और अन्य महिलाएं इनकी देखा-देखी में संख्या में बढ़ने लगीं तब कुछ उच्च दर्जे की महिलाओं ने इनकी भीड़ का लाभ उठाना प्रारम्भ किया। आज ये संविधान में स्थितियां बनाने पर अमादा हैं।

यह पुरुष वर्ग के लिए मूर्ततया और पूर्णतया सबसे अधिक विषकारी और खतरनाक है। इसके खतरनाक होने का सबसे बड़ा कारण इन विमर्शवादी स्त्रियों का संविधान में अपनी जगह बनाना है। जबकि वास्तविका रूप में शिक्षा और जीवन में सुधार की सीमा तक ही रखा गया था। ताकि समाज में पुरुष और स्त्री के मध्य मृत्यु-लक्ष्य तक 'अनुकूलन' बना रहे, विद्रोह नहीं विद्रोह करना तो इन्हें

सिखाया गया अपने स्वार्थ के लिए और इस काम का प्रारम्भ विश्व भर में निगमवादियों ने किया था। विश्व की सारी महिलाएं जो उच्छवत थीं वे 'अनुकूलन का पाठ' जानती थीं। महिलाओं के प्रति यह ज्ञानावृति प्राचीन समय से विदमान थी। पर सीमा भर, ऐसे ही ताकि जीवन को वे समझ सके तथा समाज में वे विशेष संतुलन बना सके। वैसे यह 'अनुकूलन का पाठ' भारत में भी पहले से ही विदमान था। खैर फिर भी किसी बिन्दु, पदार्थ या स्त्री का निर्लज्ज होना ही यदि सबसे बड़ा एमपवारमेंट है। तब पुरुष वर्ग से इसे छींना क्यों जा रहा है। पुरुष से अंदरूनी रूप में ये उनके अधिकार-स्वाधिकार के रूप में हड़प लेने की मंशा इनकी 'फैसले अब हमारे है' पुस्तक से देखिये वे कहती हैं कि "इसीलिए औरत के लिए सभी जायज़, नाजायज़ है और मर्द के लिए सारे नाजायज़, जायज़ है क्योंकि सत्ता उसी की है, सियासत उसी की है, संसद व कानून सबके सब उसके नियंत्रण में हैं।"23 आप देखेंगें कि ये महिलाएं जो संविधान में अपनी स्थिति बनाने के लिए दम भर रही हैं जिनकी भूमिका ही बाजारी है, वे किस तरह पुरुष के कर्तव्य अपने नियंत्रण में लेने की चेष्ठा में हैं। यदपि इस छींन-छोर के पीछे का व्याकरण क्या हैं। अतः वह कौन सा आधार रहा कि 'निर्लजियता' होने में इतनी बड़ी शक्ति मानी जाने लगी। सोचने की बात यह है कि यह सशक्तिकरण जो प्रत्येक स्त्री को स्त्री विमर्श की ओर खींचते हुये ले जा रहा है वह भी संविधान की ओर साथ ही वह भी कुछ चुनिन्दा महिलाओं के कारण जो कि एक स्वार्थ के कारण जो एक प्रकार से संसद की सदस्यता लेने के चक्कर में हैं अथवा किसी बड़े अंतर्राष्ट्रीय पदों पर पहुंचने की लालसा बनाए हुये हैं और उनके जाल में फंस रही है, वे स्त्रीयां जिनको विमर्श और अपने जीवन का 'व' और 'ज' भी नहीं पता।

इधर यदि गवाही 'ग्रीन ब्लाट', 'हैडेन ह्वाइट' और सहमति 'सुधीश पचौरी' की लेते हुये कहें तो कह सकते हैं कि कोई भी इतिहास रेखीय नहीं होता। बल्कि कथित इतिहास में इतिहास को रेखीय बना देने की कमी होती हैं। उस समय के इतिहास या जो घटित हुआ हैं अथवा इतिहास में अनुसंधान पद्धतियों कि कमी

जिससे हम वास्तविकताओं तक न पहुँच सके हैं। एक बात और कभी-कभी जैसे भारत में 1800 ईसा के आस-पास कुछ गिने चुने लोग ही थे। जो 'ठीक-ठाक पढ़ना लिखना' जानते थे। लेकिन वे भी भारत के स्वतन्त्रता आंदोलन में सक्रीय थे। वास्तविक इतिहास कौन लिखता? इतिहास छिपे पड़े रहे। इधर नव्य-इतिहासशास्त्रवादी पद्धति ने साहित्य और 'वास्तुजगत' के माध्यम से इतिहास के असतत में आने वाली बिंदुईताओं को खोलना प्रारम्भ किया। जिसमें नए-नए विषयों की पहचान हो, वे हमारे सामने खुलकर आ रहे हैं।

इस 'निलज वनिता' को हमने उसी तरह से जैसे 'सांस्कृतिक भौतिकवाद' जो 'मोर्विस हैरिस' के 'कल्चर मटेरियल' से थोड़ा ऊपर और भिन्न है के अनुसंधान पद्धति के माध्यम से समझा। यहाँ जब 'निलज वनिता' रीतिकाल में दिखी तो, क्योंकि सुधीश पचौरी जी ने रीतिकाल : सेक्सुआलिटी समारोह को एक विखंडन और फूको विचरण आलोचना पद्धति से समझा है। इस लिए यह हमें तभी समझ आएगा जब हम किसी अन्य सिद्धांतिकी के माध्यम से इसे समझेंगे अन्यथा नहीं। यह बात स्वयं वाणी प्रकशन के संपादक अरुण माहेश्वरी जी ने लिखी और कही है वे लिखते हैं कि ''यह किताब नव्य-इतिहासवादी, उत्तर-आधुनिकतावादी, उत्तर-संरचनावादी, संस्कृतिक भौतिकवादी नजरिए से हिन्दी साहित्य के नैतिकतावादी दरोगाओं द्वारा रीतिकाल की इन चिर निंदित स्त्रियों के सम्मान को बहाल करती है, रीतिकाल के कुपठियों की वैचारिक राजनीति को सप्रमाण ध्वस्त करती है और रीतिकाल को नए सिरे से पढ़ने के लिए विवश करती है।''24 हालांकि वे लेखक के अधीन बात कर गए लेकिन वास्तविकता वे न पहचान सके कि रीतिकाल के बाद उन महिलाओं के साथ क्या हुआ और वे क्या होकर क्या कर रहीं हैं। इस लिए मैंने इसे सांस्कृतिक भौतिकवादी सिद्धांतिकी से समझा है।

हम निलज वनिता को आज शंका की दृष्टि से क्यों देखने लगे हैं इसका कारण आप सुधीश पचौरी के शब्दों के माध्यम से समझिए "यह भूमंडलीय समय है। मनुष्य एक साथ ही विश्व नागरिक है और स्थानीय है। अपने समाज में मौजूद

उपद्रव बहुत कुछ आधुनिक और उत्तर-आधुनिक की टकराहटों का नातीजा है। इसलिए यह टिहरी गाँठ है जो खुल रही है। आधुनिकीकरण की योजना अपने यहाँ अंग्रेजों के जामने में शुरू हुई थी जिसे आजादी के बाद अखिल भारतीय स्तर पर लागू किया गया। उसके सामने स्वयं अपनी प्रकृति को पहचानने की चुनौती उठ खड़ी हुई है।"25 आज हम विश्व नागरिकता को समझते हैं और उनकी चाल को भी इस लिए हम गाँठों से टकराने की चाप मोल ले रहे हैं औए हमारे साथ है उत्तर-आधुनिकता की व्याकरण व बहस ! जहाँ हर 'चाल' और हर 'नीति' एक विज्ञापन है। जिनके पीछे ऊंचे दर्जे का काम करती है निगम या व व्यापार कला !

संदर्भ सूची

1. नयी साहित्यिक सांस्कृतिक सिद्धांतिकियाँ, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2022, पृ. 461
2. नयी साहित्यिक सांस्कृतिक सिद्धांतिकियाँ, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2022, पृ. 461
3. अपने होने का अर्थ, रेखा कस्तवार, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2012, पृ. 99
4. महिला सशक्तिकरण, सतीश कुमार, THE WOMEN PRESS, NEW DELHI, FRIST PUBLISHED – 2016
5. औरत कल, आज और कल, आशारानी व्होरा, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, संस्करण – 2011, पृ. 5
6. आलोचना से आगे, सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2000, आवृति 2006, पृ. 15
7. रीतिकाल : सेक्सुआलिटी का समारोह, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2017, पृ. 24
8. रीतिकाल : सेक्सुआलिटी का समारोह, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2017, पृ. 24

9. रीतिकाल : सेक्सुआलिटी का समारोह, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2017, पृ. 24
10. रीतिकाल : सेक्सुआलिटी का समारोह, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2017, पृ. 24
11. रीतिकाल : सेक्सुआलिटी का समारोह, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2017, पृ. 25
12. रीतिकाल : सेक्सुआलिटी का समारोह, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2017, पृ. 25
13. हिन्दी साहित्य का इतिहास सं. डॉ नगेन्द्र, डॉ हृदयाल, प्रकाशन मयूर बुक्स, नई दिल्ली, 62 वाँ संस्करण – 2018, पृ. 416
14. रीतिकाल : सेक्सुआलिटी का समारोह, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2017, पृ. 51
15. रीतिकाल : सेक्सुआलिटी का समारोह, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2017, पृ. 9
16. स्त्री पुरुष : कुछ विचार, राजकिशोर, पृष्ट सं. 145, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2000, आवृति 2018, पृ. 132
17. स्त्री पुरुष : कुछ विचार, राजकिशोर, पृष्ट सं. 145, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2000, आवृति 2018, पृ. 134
18. स्त्री पुरुष : कुछ विचार, राजकिशोर, पृष्ट सं. 145, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2000, आवृति 2018, पृ. 112
19. स्त्री पुरुष : कुछ विचार, राजकिशोर, पृष्ट सं. 145, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2000, आवृति 2018, पृ. 134
20. स्त्री पुरुष : कुछ विचार, राजकिशोर, पृष्ट सं. 145, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2000, आवृति 2018, पृ. 145
21. रीतिकाल : सेक्सुआलिटी का समारोह, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2017, पृ. 9

22. हिन्दी साहित्य का इतिहास सं. डॉ नगेन्द्र, डॉ हृदयाल, प्रकाशन मयूर बुक्स, नई दिल्ली, 62 वाँ संस्करण – 2018, पृ. 413
23. फैसले अब हमारे हैं, रंजना श्रीवास्तव, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, संस्करण – 2017, पृ. 126
24. रीतिकाल : सेक्सुआलिटी का समारोह, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2017, आवरण पृष्ट बाईं ओर
25. आलोचना से आगे, सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2000, आवृति 2006, पृ. 7

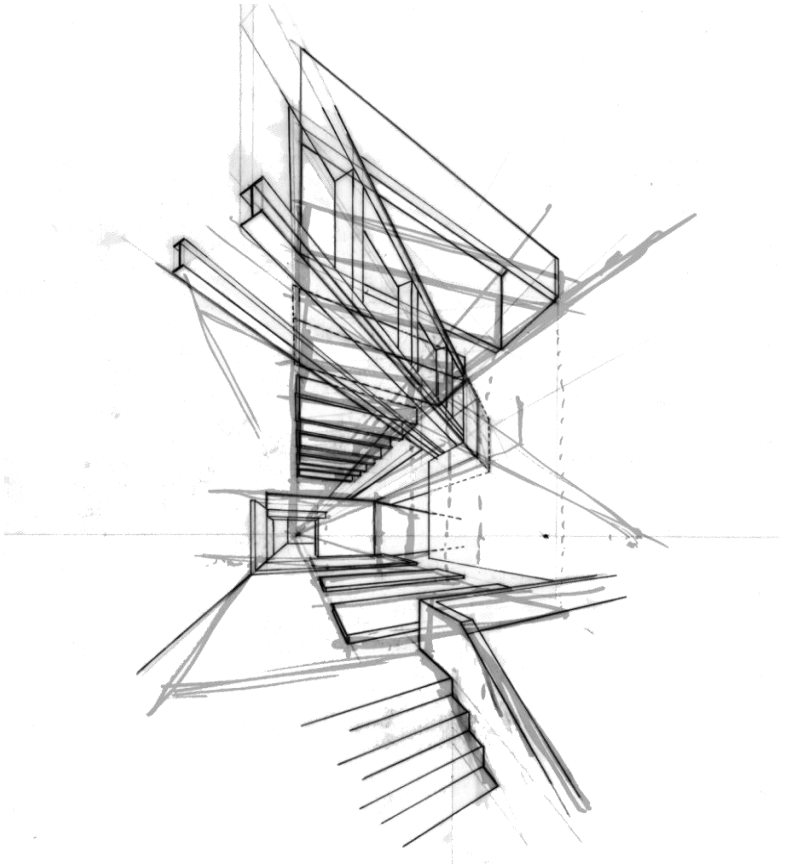

यथार्थ की भोथरी जमीन और तेजेन्द्र शर्मा की कहानियाँ

डॉ . अंजु
राजकीय कन्या महाविद्यालय, अजमेर
ईमेल: dranjukalyanwat@gmail.com

सारांश

तेजेन्द्र शर्मा समकालीन प्रवासी कथाकारों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अपने समय की नब्ज और सामयिक परिवेश को पूरी सूझबूझ से देख – परख उसे कहानियों में पूरी शिद्दत से उकेरा है। जिसमें देश – विदेश से अर्जित जीवनानुभवों की भट्टी में तप संवेदना की आंच में परिष्कृत हो अभिव्यक्त हुए हैं। तेजेन्द्र शर्मा ने जीवन की समस्याओं से दो -चार होते हुए प्रवासी जीवन की त्रासद विडम्बनाओं, इच्छा - आकांक्षाओं, तनावों, दम तोड़ते खोखले रिश्तों, तनावों, नस्लवाद, आतंकवाद, धर्मांधता, गरीबी, लाचारी आदि अनेक विद्रूपताओं का यथार्थ के धरातल पर चित्रण करने में सफल रहे हैं।

बीज शब्द: *रिश्ते, सच्चाई, अवैध, लावारिस, पासपोर्ट, परवशता, आतंकवाद*

शोध आलेख

अनुभवों को धीरे - धीरे भावों और विचारों की भट्टी में पकाकर, परिमार्जित एवं परिष्कृत कर अभिव्यक्त करने के पक्षधर तेजेंद्र शर्मा का मानना है कि साहित्यकार कभी भी उल्टी नहीं करता वरन् जुगाली करता है। वह जुगाली करके उन क्षणों और अनुभवों को दोबारा जीता है, फिर अभिव्यक्त करता है। (तेजेन्द्र शर्मा- वक्तव्य, अंतरराष्ट्रीयय वेबिनार ' कोरोना, साहित्य और समाज, 24 मई, 2020, डॉ . बी. आर. अम्बेडकर विवि., आगरा) यह जुगाली साहित्यकार को उन परिस्थितियों और घटनाओं को भली -भांति समझकर प्रतिक्रिया देने का अवसर प्रदान करती है। यह वैचारिक प्रौढ़ता उनके वृहद अनुभव - संसार, वैचारिक परिपक्वता, गहन अनुभूति के क्षणों को अंतस में उतार उन्हें जीने के पश्चात पककर तप जाने पर कुंदन - सी मँजी हुई पूर्ण यथार्थ के साथ उत्कृष्ट कहानियों के रूप में अभिव्यक्त होती है । तेजेंद्र शर्मा की इसी कथ्य विशेषता पर

प्रकाश डालते हुए धीरेंद्र आस्थाना ने भी लिखा है, " तेजेन्द्र बहुत संयमी कथाकार हैं। वह खिलवाड़ नहीं करते। न भाषा के साथ, न भावों के साथ न ही पात्रों के साथ। इसका एक लाभ उन्हें यह मिलता है कि उनके चरित्र सहज, सरल, विश्वसनीय और प्राणवान हो उठते हैं। जैसे काला सागर, उड़ान, ग्रीन कार्ड और ईटों का जंगल। (धीरेंद्र आस्थाना - जिंदगी में एक दोस्त रहता था, रचनाकार) 1

तेजेंद्र शर्मा जी द्वारा सृजित ऐसा ही चरित्र है ' एक बार फिर होली ' कहानी की नायिका नजमा। इस कहानी में हिंदू - मुस्लिम लड़के - लड़की का प्रेम बाहरी रूप से धर्मांधता की बलि चढ़ जाता है, पर हृदय में कोमल अहसासात के रूप में धड़कता रहता है। नजमा के परिजन पाकिस्तानी आमी में कैप्टन इमरान से नजमा का निकाह कर उसे कराची भेज देते हैं। वहाँ हर लम्हा टुकड़ों में बँटकर उसका व्यक्तित्व कुंठाओं और वर्जनाओं में कैद कर दिया जाता है। हिंदुस्तानी पासपोर्ट रद्द कर जबरदस्ती पाकिस्तानी पासपोर्ट बनवाना, कविताओं का बेवजह मखौल उड़ाना, हिंदी में लिखने पर पाबंदी, कश्मीर को पाकिस्तान का अंग बताया जाना ऐसे अनेक अंतहीन अपमान झेलते हुए भी नजमा दिल से हिंदुस्तानी ही रहती है, " नजमा की समस्या यही थी कि उसका शरीर, आत्मा पूरी तरह से भारतीयता में रंगे थे। उसे पाकिस्तान की मिट्टी पर बारिश की हल्की फुहारे पड़ने के बाद मिट्टी से वैसी भीनी - भीनी खुशबू नहीं महसूस होती थी जैसी कि अपने गाँव में। " तमाम तरक्की के बावजूद भारतीय समाज का अभभन्द्र अंग और कड़वी सच्चाई है जाति और धर्म की अलंघ्य दीवारें। इन दीवारों में कैद परिजनों द्वारा विधर्मी से प्रेम की सजा नजमा को दी जाती है, " मम्मी और अब्बा के इंतकाल का दुख भी उसने पाकिस्तान में अकेले ही सह लिया था। वह एक ओर पाकिस्तान में अपने अकेलेपन से लड़ते हुए अपने वतन की याद में तड़पती, वहीं वह यह नहीं भूली थी कि उसे कराची एक सजा के तौर पर भेजा गया था। इमरान उसकी सजा था, ईनाम नहीं। छब्बीस साल की कैद हुई थी उसे, बामुशक्कत। जेल से छूटकर घर आई थी नजमा। "

कारगिल युद्ध में इमरान की शहादत के बाद छब्बीस वर्ष के सुदीर्घ अंतराल के पश्चात घर लौटी नजमा को जब यह पता चलता है कि उसके पूर्व प्रेमी चंदन ने शादी नहीं की तो प्रेमप्रेम का कोमल लाल संसार उसके गालों पर होली के रंग बन खिल उठता है, " अपना कुछ और सुनाई नहीं दे रहा था। उसके चंदर ने शादी नहीं की। वो आज भी नजमा का है। चाहे नजमा उसकी हो या नहीं, वह बस नजमा का है, केवल नजमा का। नजमा का चेहरा आज किर ठीक लाल हो गया जैसे छब्बीस साल पहले हुआ था। " 2

अपनी सेवा अवधि में विश्व के विविध देशों की यात्राओं, नागरिकों से संवाद और वहृद मानवीय सरोकारों से जुड़ाव के कारण तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों में विषय - वैविध्य दृष्टिगोचर होता है। उनकी कहाननयों की इसी विषयगत वैवीध्य पर प्रकाश डालते हुए धीरेंद्र अस्थाना लिखते हैं, " तेजेंद्र की दूसरी विशेषता है विषय - वैविध्य और अनुभव के एक नए द्वार पर पड़ी थाप। इसलिए संसार के कुछ ऐसे अनुभव उनके यहां आज उठे हैं जो हिंदी कथा परिदृश्य में अब तक शायद अनुपस्थित ही थे। इस दृष्टि से उड़ान, काला सागर और ग्रीन कार्ड तेजेंद्र की अविस्मरणीय कहानियां हैं, अद्भुत भी। मानवीय संवेदना के सूखते हुए तंतु और रिश्तों की गर्माहट पर छाता हुआ स्वार्थ का अंधेरा इन तीनों कहानियों में उसी पीली अवसाद की तरह मौजूद है जिसकी बात ऊपर की गई है।" (धीरेन्द्र आस्थाना - जिंदगी में एक दोस्त रहता था)3

समय के त्रासद करुण सच को भाव की लड़ियों में पिरोती तेजेंद्र शर्मा की कहानियाँ समय और रिश्तों की कड़वी सच्चाइयों को इतने यथार्थ रूप में अनावतृ करती हैं कि पाठक उसकी कड़वाहट को महसूस करता हुआ भी स्वयं को निरुत्तर महसूस करता है। ' देह की कीमत ' कहानी में पैसों और इंपोर्टेड सामान की चमक के पीछे भागते भारतीय युवाओं की मानसिकता का रेशा - रेशा खोलते हुए कहानीकार ने अवैध तरीके से विदेश जाने वाले हरदीप की मौत से उपजे हृदय विदारक सच का भी चित्रण किया है, " अवैध लाश ! लावारिस ! ...उसे लेने कौन जाए ?... हरदीप के दसों दोस्त भी तो अवैध थे - लावारिस

ज़िदा लाशें ! ...जो भी लाश लेने जाएगा , वही धर लिया जाएगा। ...पर सतनाम के पास तो वैध वीज़ा था।... वो तो हरदीप की दोस्ती के कारण सबके साथ रहता था।... फिर गुजारा भी सस्ते में हो जाता था।सतनाम ने जाकर लाश को पहचाना। ... पर अब लाश का करें क्या ?" 4 भारत में भरे - पूरे परिवार के बावजूद विदेशी धरती पर अवैध आव्रजन से हरदीप की पहचान अब मात्र एक अवैध लाश की रह जाती है। विदेश प्रवास की चमक में अंधे युवाओं को अवैध प्रवास के कितने गम्भीर परिणाम भुगतने पड़ते हैं, इसका खुलासा इस कहानी में हुआ है।

अंततः उसका एक मित्र हरदीप की मृत देह को लेकर भारत भेजने के लिए दूतावास के अधिकारी से मिलता है। लेकिन जीवन के व्यावहारिक धरातल पर भारतीय दूतावास के एक नए अधिकारी की बात मान उसका दाह संस्कार वहीं कर लाश को भारत न भेजने से बचे तीन लाख रुपयों के लिए उसके दार जी को फोन कर पूछते हैं कि किसके खाते में रुपये डालें। हरदीप की माँ और दोनों भाई यह तीन लाख रुपये हड़प जाना चाहते हैं, " दार जी अपने परिवार को देखकर हैरान थे, क्षुब्ध थे..... अपने ही पुत्र या भाई के कफ़न के पैसों की चाह इस परिवार को कहां तक गिराएगी, उन्हें समझ नहीं आ रहा था। "5 दार जी द्वारा अपनी बहू और पोते के सुरक्षित भविष्य के लिए बहू के नाम से ड्राफ्ट बनवा दिए जाने पर हरदीप की माँ परमजीत का विवाह अपने छोटे बेटे से कर देने का कहती है ताकि रुपये घर में ही रह जाए, " अगर कुलदीप पम्मी पर चादर डाल दे, तो कैसा रहे ? घर की इज्जत भी घर में रह जाएगी और..." स्वार्थ का कितना घिनौना सच छिपा है इस ' और...' में। व्यक्ति को कितना स्वार्थान्ध बना देता है रुपयों का लालच। बेटे की मौत पर करुण विलाप करने के बजाय अपने कोख जाए की देह की कीमत तक वसूल लेना चाहती है एक माँ। समय का ऐसा निर्मम सच सोचने को विवश कर देता है कि रिश्तों के किस विघटनकारी नृशंस दौर में जी रहे हैं हम और आँखें बंद किए इन्हें पोष भी रहे हैं। गिरीश पंकज ने तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, " तेजेंद्र शर्मा के लेखन में गहरी करुणा है। उनकी तमाम कहानियों में मनुष्य की प्रवृत्तियों की गहरी पड़ताल

करते हैंऔर पाठक को सोचने पर विवश कर देते हैं। विदेश में रह रहे भारतवंशियों की समस्याओं को लेकर या फिर यहाँ से विदेश जाने की ललक रखने वाले रिश्तेदारों के स्वार्थी की कहानियां भी तेजेंद्र शर्मा नेखूब लिखी हैं। " भारत से विदेश जाने की ललक ' ढिबरी टाइट ', ' ग्रीन कार्ड ', ' देह की कीमत ', ' काला सागर ' आदि कहानियों में वर्णित हुई है।' भारतीय नागरिक सिर्फ़ योरोपियन देश या कनाडा व यूएसए ही नहीं जाते बल्कि अरब देश, जापान आदि देश भी जाते हैं। वहाँ उनके सतरंगे सपनों और जीवन की कठोर पथरीली जमीन से साक्षात्कार और भिड़ंत होती है। उस भिड़ंत से उपजती है त्रासद मौत और हृदयविदारक त्रास। जो उनके तन और मन दोनों को तोड़ देता है। ' ढिबरी टाइट ' कहानी में कुवैत के परिवेश की असंवेदनशीलता, सपनों के पंखों पर सवार गुरमीत की परवशता, असहायवस्था और उसके तले रौंदे गए परिजनों के करुण मौत से उपजता है सन्नाटा और चुप्पी," पर सब कुछ सह जाने और कुछ न कर पाने की अपनी असमर्थता के कारण गुरमीत भीतर - ही - भीतर घुटता रहा - एक भयानक चुप्पी ओढ़े हुए। " बेटी, पत्नी और नवजात पुत्र की मृत्यु से मूक और स्तब्ध गुरमीत को टीवी पर कुवैत पर ईराकी सेना के आक्रमण की खबर सुन दो वर्षों से हृदय में टीसते विवश प्रतिकार को नई आवाज मिलती है। इस कहानी में कहानीकार द्वारा उठाया गया यह प्रश्न सोचने को बाध्य करता है, " अधिक पाने की चाह में जो कुछ था वह भी लुट गया। मनुष्य संतुष्ट क्यों नहीं रह पाता ? क्यों अधिक से अधिक पा लेना चाहता है। " 6 इस अंतहीन महत्वाकांक्षा की बलि चढ़ते हैं गुरमीत जैसे जोशीले युवाओं के परिवार।

मुस्लिम देश सऊदी अरब के शहर जेद्दाह में लैंगिक भेदभाव तथा धर्म के आधार पर स्थानीय और विदेशी नागरिकों के साथ होने वाले भेदभाव, दोहरे कानून और दोहरी व कठोर दंड - प्रक्रिया का भयावह चित्रण पूर्ण यथार्थ के साथ ' चरमराहट ' कहानी में हुआ है, " नौकरी मिली भी तो जेद्दाह में। वहां तो धर्म का दूसरा ही रूप था। औरतों पर पाबंदियां। उनके चेहरे बुर्के और नकाबों में ढके नज़र आते। ग़ैर – मुस्लिम औरतों को भी आजाया पहनना पड़ता था। दिन में

पांच बार नमाज़ के समय पूरा शहर जैसे जड़ हो जाता था। नमाज़ के दौरान सभी दुकानें बंद।

वहां उसने विभिन्न स्तरों पर भेदभाव देखा। पहला फ़र्क तो मुस्लिम और ग़ैर - मुस्लिमों में था। मुस्लिमों में सऊदी और ग़ैर - सऊदी का फ़र्क था। अरबी और ग़ैर - अरबी मुसलमानों में अंतर था। अमीर और गरीब देशों के मुसलमानों में अंतर था। ग़ैर - मुस्लिमों में चमड़ी का अंतर था - यानी गोरा और काला। " 7 वहाँ हर देश का नागरिक स्वयं को दहशतजदा और असुरक्षित महसूस करता है, " हिंदुस्तानी को जेद्दाह में सदा दहशत का माहौल ही दिखाई देता था। बिना किसी युद्ध - स्थिति के भी वहां डर का वातावरण बना रहता था। पुलिस में भी मुतव्वा यानी के ' धार्मिक पुलिस ' का आतंक सर्वोपरि था। मुतव्वा से तो सऊदी नागरिक भी डरते हैं। प्रवासी तो उन्हें देखकर घबरा ही जाते हैं। "8 वहाँ काम करने वाले लोगों का इकामा ' ' वर्क परमिट ' तक का रंग अलग - अलग होता है। मुसलमानों के लिए वर्क परमिट हरा व अन्य लोगों के लिए भूरा। इस कहानी में बाबरी मस्जिद विध्वंस की घटना की प्रतिक्रिया भारत में ही नहीं बल्कि विश्व के विभिन्न देशों में बसे प्रवासी भारतीयों को भी झेलनी पड़ती है। जेद्दाह में कार्यरत भारतीयों को वहाँ के मुतव्वे (धार्मिक पुलिस) ने जो भी हिंदू पकड़ में आया, उसे बिना किसी गुनाह के पकड़कर उसके इकामे पर ' एक्जिट ' की लाल मोहर लगाकर उसे ' डिपार्टी कैम्प ' में डालना शुरू कर दिया। अपनी मेहनत की कमाई खाता और धार्मिक विद्वेष से सदा दूर रहने वाला आई. के. हिंदुस्तानी भी इसकी भेंट चढ़ जाता है। लुटा -पिटा जबर्दस्ती भारत भेज दिया जाता है।

' काला सागर ' तेजेंद्र शर्मा जी की प्रतिनिधि कहानियों में से एक कही जा सकती है। यह विषय के स्तर पर बहुआयामी कहानी है। जिसमें स्थानीय समस्याओं से लेकर समसामयिक वैश्विक समस्याओं को व्यापक परिप्रेक्ष्य में उठाया गया है। जो उनकी लेखकीय प्रतिबद्धता, व्यापक दृष्टिकोण, सूक्ष्म पर्यवेक्षण और विशद चिंतनशीलता का प्रमाण है। इस कहानी में देश की भीतरी सुरक्षा के लिए चुनौती बनी क्षेत्रवाद की विघटनकारी प्रवृत्तियों तले पिसते आम

नागरिक, भूख की त्रासदी, आतंकवाद, नस्लवाद, मरती संवेदनाओं और लाशों के सौदागर रिश्तों को बखूबी बेपरदा किया गया है। कहानीकार समय और समाज की भयावह सच्चाइयों पर तल्ख तंज भी कसा है। भूख की आग से त्रस्त आदमी कितना निर्मम और खुदगर्ज़ बन जाता है, इसकी एक बानगी दृष्टव्य है, " दो दिनों से फाका करते, सड़क के किनारे पर बैठे ननकू को भी कहीं से ख़बर लग गई थी। पोलियो ग्रस्त हाथ से सींगदाना चबाते हुए उसने अपने साथी पीटर को ख़बर सुनाई थी, " यार, यह विमान अगर गिरना ही था, साला समुद्र में क्यों गिरा ? सोच, कितना बढ़िया - बढ़िया चीज़ें - वी. सी. आर., टी.वी., सोना, साड़ियां सब - के - सब बेकार। यहीं कहीं अपने शहर के आसपास गिरता तो कुछ तो अपने हाथ भी लगता। " 9

भारतीय प्लेन क्रेश होने की जिम्मेदारी लेने की कई आतंकवादी संगठनों की होड़ लेखक को बेतरह खलती है और पाठक को टीसती है। लेकिन यह भी इस दौर का एक कड़वा सच है, " विदेश के कई आतंकवादी गुटों ने इस दुर्घटना का उत्तरदायित्व ओढ़ा। जैसे कोई बहुत महान् कार्य किया गया हो और वे उसका श्रेय लेना चाहते हों। बीमार, विकृत मानसिकता के लोग, जो निर्दोष लोगों को मौत की नींद सुला कर गर्वान्वित अनुभव कर रहे हैं। " 10 इस दुर्घटना में मृत लोगों के स्वार्थी रिश्तेदारों की मुफ्त हवाई यात्रा, अलाउंस आदि मांगे मृत संवेदनाओं की गिरहें खोल आँखों को नम हो विवश कर देती हैं, " विमल महाजन की इच्छा हुई कि सब काम - धाम छोड़कर वापस चले जाएं। इंसान इतना स्वार्थी भी हो सकता है ! यह भावनाविहीन लोग इस हादसे से अपना - अपना स्वार्थ सिद्ध करने की कोशिश में लगे हैं। " 11 ' ब्लैक सी ' के ऊपर उड़ान भरते समय विमान में लग रहे झटकों का बड़ा प्रभावी प्रतीकात्मक प्रयोग हुआ है।

तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों के अध्ययन से भारतेतर देशों में बसे भारतीयों की जीवन - शैली, जीवन - संघर्षों, पीढ़ियों के अंतराल से नस्लों और विचारों के टकराव, परदेस में स्वदेश की दूरी से उपजी पीड़ा,विवशता आदि के विविध

रूप और उनके पीछे अंतरनिहित कारण पता चलते हैं। ' गंदगी का बक्सा ' कहानी में पीढ़ियों के अंतराल से जीवन - मूल्यों, मान्यताओं और वैचारिक टकराव से उपजे तनाव को देखा जा सकता है। कई वर्षों से ब्रिटेन में निवास कर रही जया के माध्यम से कहानीकार ने बताया है कि धर्म और हिंदुस्तान - पाकिस्तानियों के मनों में रची -बसी घृणा और असुरक्षाबोध विदेश जाकर भी खत्म नहीं होती। पति दिलीप से तनावपूर्ण दांपत्य - संबंधों से दुखी जया अपनी बेटी पलक के एक मुस्लिम लड़के इमरान से प्रेम - सम्बन्ध की जानकारी मिलने पर विचलित हो जाती है, " पलक एक मुसलमान लड़के से प्रेम कर बैठी थी। जया का तो समस्त संसार डगमगा - सा गया था। जया के दिमाग में मुसलमानों को लेकर बहुत - सी गांठें थीं। लंदन के सनराइज रेडियो पर भी जब कभी अपराध के समाचार आते तो अधिकतर उनमें मुसलमान लड़कों के ही नाम सुनाई देते थे। जया की अपनी ममेरी बहन मुंबई में एक मुसलमान लड़के से विवाह कर घर से भाग गई थी।सारा परिवार सकते में आ गया। उनके क्षेत्र में दंगा होते-होते बचा। शिवसेना और मुस्लिम संस्थाओं के बीच ठन गई थी। राजनीतिज्ञों के बीच बचाव से ही दंगा रुक पाया था। " 12 युवावस्था में अंतरधार्मिक विवाह के कारण भयंकर तनाव को झेल चुकी जया एक आम भारतीय माँ की भाँति ही अपनी बेटी पलक को लेकर बहुत चिंतित हो जाती है। उसे इस रिश्ते से हिंदू धर्म और भारतीय संस्कृति पर खतरा मंडराता नज़र आता है, " यह पाकिस्तानी भी न जाने कब तक हमारी ज़िंदगी में कड़वाहट घोलते रहेंगे। भगवान में विश्वास रखने वाले परिवार की बेटी को नमाज़ पढ़ाना सिखा देंगे। भारत के टुकड़े करवाकर भी यह कहां चुप बैठने वाले हैं। हमारी बेहटयों पर नज़रें गड़ाए बैठे हैं। जया के दिमाग में मंथन जारी है। उसे डर है कि भारतीय सभ्यता नहीं बचने वाली। यहां पैदा हुए बच्चे भला कहां भारतीय संस्कृति का बोझ ढो पाएंगे। "13 जया इमरान के विधर्मी होने के साथ पाकिस्तानी होने के कारण इस सम्बन्ध को नहीं स्वीकार पाती और बेटी को समझाने का प्रयास करती है तो बिटेन में जन्मी, पली -बढ़ी पलक मां के तकों को सिरे से नकार देती है, " पर मम्मी, इमरान पाकिस्तानी कैसे हो सकता है ? वह तो यहीं लंदन में पैदा हुआ था। जैसे मैं कैसे इंडियन हो

सकती हूं। मैं भी ब्रिटिश हूं और इमरान भी ब्रिटिश है। तो जब दो ब्रिटिश शादी करना चाहते हैं तो प्रॉब्लम क्या है ? आई डोंट केयर कि इमरान किस धर्म को मानता है। ही इज नॉट आस्किंग मी टू चेंज माय रिलीजन। "

' पासपोर्ट का रंग ' कहानी में अपने देश से दूरी के दर्द और उसे दूरी से उपजे मानसिक व सांस्कृतिक द्वंद्व को अभिव्यक्त किया है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में अंग्रेज सिपाही की गोली खाने और अनेक बार जेल - यात्रा करने वाले बाऊजी को ब्रिटिश नागरिकता लेना बहुत आहत करता है, " मेरे लिए बिटेन की नागरिकता लेने से मर जाना कहीं बेहतर है। मैंने अपनी सारी जवानी इन गोरे साहबों से लड़ने में बिता दी। जेल में रहा। मुझे फाँसी की सजा हो गई थी। लेकिन...." और ब्रिटिश नागरिकता से आहत स्वाभिमानी बाऊजी हताश हो बेटे के सामने गिड़गिड़ाने लगते हैं, " बेटा तू मुझे वापस भारत भेज दे। मैं किसी तरह अपनी जिंदगी बिता लूंगा वहां। तुझसे कभी किसी चीज की शिकायत नहीं करूंगा। मुझे ऐसी मौत मत मार। मैं हिंदुस्तानी पैदा हुआ था और हिंदुस्तानी ही मरना चाहता हूं। मैं ऊपर जाकर तेरे दादाजी और देश पर मर मिटने वाले अपने साथियों को क्या मुंह दिखाऊंगा बेटा ? तेरी मां को यह सब पता चलेगा तो उसे कितना खराब लगेगा ? " भारतीयभारतीय प्रधानमंत्री की प्रवासी भारतीयों की दोहरी नागरिकता के झुनझने से दोबारा भारतीय नागरिक कहलाने की आस झूठे आश्वासनों की दुरूह प्रकियाओं की भेंट चढ़ बाऊजी को निराश कर देती है। लम्बे संघर्ष से हताश बाऊजी दो रंग के पासपोर्ट थामे इस दुनिया से सदा के लिए विदा हो जाते हैं।

निष्कर्ष - उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तेजेन्द्र शर्मा ने जीवन की समस्याओं से दो -चार होते हुए प्रवासी जीवन की त्रासद विडम्बनाओं, इच्छा - आकांक्षाओं, तनावों, दम तोड़ते खोखले रिश्तों, तनावों, नस्लवाद, आतंकवाद, धर्मांधता, गरीबी, लाचारी आदि अनेक विद्रूपताओं का यथार्थ के धरातल पर चित्रण करने में सफल रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. धीरेंद्र आस्थाना - जिंदगी में एक दोस्त रहता था - रचनाकार 26 अक्टूबर, 2012 (https://www.rachanakar.org/2012/10/blog-post_5155.html)
2. तेजेन्द्र शर्मा - एक बार फिर होली - तेजेन्द्र शर्मा की दस कहानियाँ, पृ. 13
3. धीरेंद्र आस्थाना - जिंदगी में एक दोस्त रहता था – रचनाकार 26 अक्टूबर,2012 (https://www.rachanakar.org/2012/10/blog-post_5155.html)
4. तेजेन्द्र शर्मा - देह की कीमत - स्मृतियों के घेरे (समग्र कहानियाँ - 1), पृ.30, यश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स,
5. दिल्ली - 110032 (भारत), प्रथम संस्करण : 2019
6. वही, पृ. 33
7. तेजेन्द्र शर्मा - ढिबरी टाइट - स्मृतियों के घेरे (समग्र कहानियाँ - 1), पृ. 142, यश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
8. दिल्ली - 110032 (भारत), प्रथम संस्करण : 2019
9. तेजेन्द्र शर्मा - चरमराहट - स्मृतियों के घेरे (समग्र कहानियाँ - 1), पृ. 132, यश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
10. दिल्ली - 110032 (भारत), प्रथम संस्करण : 2019
11. वही, पृ. 133
12. तेजेन्द्र शर्मा - काला सागर - स्मृतियों के घेरे (समग्र कहानियाँ - 1), पृ. 276, यश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
13. दिल्ली - 110032 (भारत), प्रथम संस्करण : 2019
14. वही, पृ. 276
15. वही, पृ . 278

16. तेजेन्द्र शर्मा - गंदगी का बक्सा - सपने मरते नहीं, पृ. 116, सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2015
17. वही, पृ. 118

मेटाफिक्शन और उदयप्रकाश की कहानियाँ

डॉ. मीनू गेरा
एसोसिएट प्रोफेसर
श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
दूरभाष : 9999030018
ईमेल:meenugera64@yahoo.com

सारांश

उत्तरआधुनिक दौर की हिन्दी कहानियों में उदयप्रकाश की कहानियाँ वैचारिक और संरचनात्मक स्तर पर पाठक के अनुभव को व्यापक विस्तार देने का कार्य करती हैं। आधुनिक कहानी विधा के स्वरूप में विषयवस्तु और अभिव्यक्ति के स्तर पर जो मानक तय हो चुके हैं, पाठक उसी परिपाटी का अभ्यस्त हो चुका है। पाठक की विश्लेषण पद्धति झट उन्हीं घटकों के आधार पर रचना को ग्रहण करने में प्रयासरत रहती है। उदयप्रकाश की कहानियाँ रसास्वादन की इस रूढ़ हो गई परिपाटी को तोड़ने का जोखिम उठाती हैं। उनकी कहानी 'थर्ड डिग्री' हो या 'और अंत में प्रार्थना', वॉरन हेस्टिंग का सांड को या पॉल गोमरा का स्कूटर, आचार्य की कराह हो या टेपचू पाठक की पठन शैली को निश्चित रूप से आंदोलित करती हैं। साठ और सत्तर के दशक में अमेरिकी कथा साहित्य में जॉन बार्थ, सॉल बैलो और नार्मन मेलर आदि रचनाकारों ने कथा संरचना की परम्परागत टेकनीक का खंडन कर एक्सपैरिमेण्टल नॉवल की अवधारणा को स्थापित किया। इसी प्रक्रिया में मेटाफिक्शन की पद्धति उभर कर सामने आई। उदय प्रकाश की कहानियाँ भी मेटाफिक्शन के स्वरूप को गढ़ती हैं और कथा संरचना को पुन: विन्यस्त करती हैं।

बीज शब्द- *मेटाफिक्शन, प्रविधि, संरचना, प्रयोगात्मक, विखंडन, विसंगति*

शोध आलेख

उत्तर आधुनिक काल में अमेरिकी लेखक जॉन बार्थ ने कथा के स्वरुप को फिर से परखने का आह्वान किया। जॉन बार्थ का मानना था कि साहित्य की

रचनात्मक क्षमता क्षीण हो रही है क्योंकि साहित्य आधुनिकता की संभावनाओं और साहित्यिक संरचनाओं को खत्म कर चुका है। बॉर्थ ने इसे श्रांत संभावनाओं का साहित्य कहा है ‘‘The literature of exhausted possibility or the literature of exhaustion., सन् 1967 में प्रकाशित निबंध 'The literature of Exhaustion' में जॉन बार्थ लिखते हैं "A good many current novelists write turn-of-the century- type novels, only in more or less mid twentieth century language and about contemporary people and topics, this makes them less interesting.”1

इसी कारण जॉन बॉर्थ और उनके समकालीन रचनाकार सॉल बैलो व नार्मन मेलर कथा संरचना की परम्परागत टेकनीक का खंडन कर नए प्रयोगों की ओर उन्मुख होते हैं। सन् 60-70 के दशक के इन अमेरिकी लेखकों ने 'Experimental Novel' की अवधारणा को स्थापित किया। इस प्रयोगात्मक प्रक्रिया में मेटाफिक्शन की पद्धति उभर कर सामने आई। जॉन बार्थ के उपन्यास ‘लॉस्ट इन द फनहॉउस’, द फ्लोटिंग ऑपरा’ इसके सशक्त उदाहरण हैं। ‘लॉस्ट इन द फनहॉउस’ का बालक अम्बरोज़ फनहॉउस में खो गया है और बार्थ को एहसास है कि वे वर्तमान परिस्थितियों में मनुष्य के अस्तित्व को रेखांकित नहीं कर पा रहे हैं। जॉन बार्थ जीवन और कथा साहित्य दोनों में आकारहीनता का अनुभव करते हैं? इसलिए वे इस मेटाफिक्शन को रचते हैं। मेटाफिक्शन का रचनाकार जीवन से रचना का संचरण न देखकर रचना से जीवन की अभिव्यक्ति का प्रयास करता है। उनका उपन्यास ‘लॉस्ट इन द फनहॉउस’ कल्पना और वास्तविकता के तनाव बिन्दु पर स्थित है जिसमें विसंगतियाँ बेलौस खड़ी हैं। जॉन बार्थ के उपन्यास ‘द फ्लोटिंग ऑपरा’ के रचना विधान में भी कथाकार कथा रचते हुए उसी के भीतर कहानी की एक और पृष्ठभूमि तैयार करता है। इस रचना प्रविधि में विखंडन का रोल सबसे बड़ा है। जीवन सूत्रात्मक शैली में प्रगति या अवनति की व्याख्या नहीं है, खण्डित होती हुई अनुभूतियों की तस्वीरें, जो क्रमबद्धता को तोड़ती भी हैं और अपनाती भी। ‘द फ्लोटिंग ऑपरा’ उपन्यास

में मनुष्य के जीवन को 'फ्लोटिंग ऑपरा' के रूप में देखा गया है जिसमें सभी तथ्य लगातार रूपांतरित होते चलते हैं, वर्तमान की विश्वसनीयता खो चुकी है और विचारों और मूल्यों का विधान अस्थायी है। व्यक्ति बराबर जीने की वजह ढूँढता है और रचनाकार लेखन की। यह उपन्यास जीवन और शैली के स्तर पर खण्डित यथार्थ को बोध तो कराता ही है एक संश्लिष्ट यथार्थ की खोज भी करता है।

इस प्रकार उत्तर आधुनिक रचनाकार कृति को परम्परागत रचना विधान में फिट होते नहीं देख पाते और मेटाफिक्शन के विधान को गढ़ते हैं "Metafiction often employs intertextual references and allusions by examining fictional systems, incorporating aspects of both theory and criticism, creating biographies of imaginary writers, presenting and discussing fictional works of an imaginary character." 2

समानान्तर स्तर पर हिन्दी साहित्य में उदयप्रकाश की कहानियाँ कहानी की प्रविधि को बदलने का सार्थक प्रयास है। उनकी कहानियाँ भी मेटाफिक्शन के स्वरूप को गढ़ती हुई विचारों, मूल्यों, लेखन पद्धतियों के विखण्डन का विमर्श रचती हैं। वे कहानियाँ परम्परागत कहानी के ढाँचे को तोड़ती हैं और कहानी में लेखक और पात्र एक ही कैनवस का हिस्सा हो जाते हैं। उनकी कहानी 'थर्ड डिग्री' हो या 'और अंत में प्रार्थना', 'वॉरेन हेस्टिंग का सांड' हो या 'पॉल गोमरा का स्कूटर', ये सभी उत्तर आधुनिक दौर के सशक्त उदाहरण हैं।

'थर्ड डिग्री' कहानी के आरंभ में ही कहानीकार कहानी को प्लॉट से बाहर घटित होते देखता है। कहानी के ढाँचे, कहानी के भाष्य को लेकर एक लम्बी भूमिका को बाँधते हुए उदयप्रकाश एक ऐसी घटना का ब्यौरा प्रस्तुत करते हैं जो घटना और कहानी के मूलपाठ के अंतर को भेदता है। ''मैं सबसे पहले स्पष्ट कर दूँ कि इस कहानी का मूल घटनातत्त्व ही नहीं, बल्कि समूची घटना

कहानी के मूल पाठ के बाहर घटित हुई है। ऐसा कुछ कहानियों में होता है। वैसे ज्यादातर कहानियों में घटनाएँ कहानी के मूल पाठ के भीतर भाषा के माध्यम से और भाषा के शरीर में ही घटित होती हैं।'' 3

'थर्ड डिग्री' कहानी के सुरेश की कहानी एक ट्रक डाईवर की जीवंत गाथा है इसलिए उसके जीवन को घटित होने वाला पल असल जीवन का आकलन है जो कहानी के मूलपाठ से बाहर है। वस्तुत: कहानी पदार्थ और मूलपाठ के द्वन्द्व को भेदती है मानो बाह्य जगत ही मूलपाठ का हिस्सा हो गया हो। इसी कारण सुरेश के संबंधों को पकड़ने में किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं है। रचनाकार स्त्री पुरुष की मानसिकताओं की बारीक से बारीक पर्तों को खुलते देखता है और व्यक्ति और समाज पर टिप्पणी भी करता चलता है। कहानी के प्रस्तुतीकरण के अंतर्गत कल्पना और यथार्थ में, पत्नी के शारीरिक गठन के संदर्भ में या दैहिक संसर्ग कहीं कोई व्यवधान नहीं है।

सुरेश की कथा एक ऐसे मिडिल क्लास व्यक्ति की गाथा है जो अपने ही घर में चोरी करने वाले फकीरा की जमानत देता है, हिफाज़त करता है, सेवा-सुश्रूषा करता है और चूँ तक नहीं कर पाता। पुलिस,न्यायपालिका, सरकार, सभी शक्तिशाली संस्थानों और यहाँ तक की घर में चोरी करने वाले फकीरा, सभी के आगे वह हाथ जोड़ता मिमियाता दिखता है। संभवत: इसीलिए इस पूरे प्रकरण में सुरेश अपने मित्र अमरीक सिंह की पुलिस, जज आदि से मिलीभगत देख उसकी पत्नी के साथ दैहिक संबंध बनाता है जो उसे परपीड़क आनंद प्रदान करता है। उदयप्रकाश न तो किसी मूल्य व्यवस्था का गठन करने के पक्षधर है और न ही मूल्य संबंधी अवधारणाओं को खण्डित करने का प्रयास कर रहे हैं। आलोचक शंभु गुप्त उदयप्रकाश की कहानी 'आचार्य की कराह' की चर्चा करते हुए लिखते हैं ''यहाँ लेखक और पाठक के बीच कोई तीसरा व्यक्ति या तत्व नहीं है। वह बीच में ऐसा कोई पात्र या एजेंट नहीं लाता तो उसकी मूल्य चिंता की वकालत करता हो या उसका दम भरत हो। दूसरे शब्दों में वह यथार्थ का सरलीकरण नहीं करता। उसे खण्डित या टुकड़े टुकड़े करके प्रस्तुत नहीं करता।

यथार्थ अपने पूरे समूचेपन के साथ, अपनी समूची संश्लिष्टता के साथ हमारे सामने खुलकर आता है।'' 4

उदयप्रकाश रचना और जीवन के द्वैत को तोड़ना चाहते हैं। इसी प्रकार 'थर्ड डिग्री' कहानी की भाषा कहानी के भाष्य संबंधी स्वरुप को भी तोड़ रही है। कथावाचक जिस कथा को पाठ का हिस्सा बना रहा है उसमें केवल ड्राइवर सुरेश की भाषा है, फकीरा की भाषा नहीं, पुलिस, मित्र, पत्नी, माँ, किसी की भी भाषा नहीं सुरेश की भाषा है। यह एक ऐसा आम आदमी है जो मध्यम वर्ग का है और किसी वर्ग का नहीं है।

उदयप्रकाश कहानी कहते हुए लगातार टिप्पणी करते चलते हैं। जैसे ''इस कहानी से कथा के विशेषज्ञों और सिद्ध कथाकारों को निराशा होगी''5 ''यानी किल्लते हैं। किल्लतों में पत्नी प्रताड़ित नज़र आती है। यह समाजशास्त्र के बाहर का नियम है।''6 ''वास्तविकता यह है कि किसी ट्रक चलाने वाले, सब्जी या अखबार बेचने वाले या खेती-किसानी करने वाले यानी असली दुनिया के किसी भी असली आदमी के साथ घटने वाली घटनाएँ भाषा की परवाह किए बिना घटती है।''7 इत्यादि। ये चर्चाएँ रचनाकार और पाठक के बीच बराबर संबंध बनाए रखती हैं। उदयप्रकाश कभी भी पाठक को अकेला नहीं छोड़ते, वे बराबर उसे सम्मिलित किए रहते हैं। उदयप्रकाश की कहानी 'और अंत में प्रार्थना' का प्रारंभ भी रचनाकार और पाठक की engagement की सूचना है। ''अब इसका क्या किया जाए कि डॉक्टर दिनेश मनोहर वाकणकर किसी कहानी या उपन्यास के पात्र नहीं हैं। उन्हें किसी कहानीकार की कल्पना ने नहीं पैदा किया है। डॉ. वाकणकर किसी कहानीकार या रचना के होने या न होने के बावजूद है। कुछ-कुछ उसी तरह जैसे हम और आप हैं। क्या हमें होने के लिए किसी लेखक या किसी रचना के होने की ज़रुरत है?''8

तथ्य यह है कि उदयप्रकाश 'और अंत में प्रार्थना' कहानी का प्रारंभ कोष्ठक में दिए का वाक्य 'इस कहानी के सभी पात्र काल्पनिक हैं' से करते हैं।

तत्पश्चात मार्क ट्वेन को उद्धृत करते हुए वे लिखते हैं ''कर्फ्यू लागू है। जो कोई प्लॉट की खोज में निकलेगा, उसे गोली मार दी जाएगी'', और फिर डॉ. वाकणकर को किसी कहानी का पात्र नहीं होने देने की जद्दोजहद है।

वस्तुत: 'और अंत में प्रार्थना' कहानी पात्र और प्लॉट की बंधी बंधाई परिपाटी से निकलने का अथक प्रयास है, जो रचना के मुद्दों को बदलना चाहती है और आलोचना के घटकों का पुनरावलोकन करना चाहती है। 'पेबुलेशन और मेटाफिक्शन' पुस्तक के लेखक रॉबर्ट शोल्स लिखते हैं - 'Metafiction assimilates all the perspectives of criticism into fictional process itself." 9

'और अंत में प्रार्थना' कहानी के डॉ. वाकणकर और जॉन बार्थ के 'फ्लोटिंग ऑपरा' उपन्यास का पात्र टॉड दोनों एकबारगी अपने पूरे जीवन का आकलन करना चाहते हैं। 'द फ्लोटिंग ऑपरा' उपन्यास के विभिन्न खण्ड यथा Turning my piano, The Law, The judge lunch, The floating opera आदि जीवन और मृत्यु के बीच के विभिन्न पड़ाव हैं। जो जीवन की सार्थकता और निरर्थकता को साथ गढ़ते नज़र आते हैं। इसी प्रकार डॉ. दिनेश मनोहर वाकणकर का परिचय, उनके पुटकर विचार, हरवंश पंडित उर्प थुकरा महाराज से मुलाकात, उलझन और दुविधा, हरवंश पंडित उर्प थुकरा महाराज की मृत्यु या हत्या इत्यादि सभी खंड यथार्थ का जो स्वरूप खड़ा करते हैं उसमें किसी रचनागत कोशिश की दरकार नहीं है।

इस कहानी के पाठ (text) में डॉ. वाकणकर संस्थाओं और विचारधाराओं के आदर्श स्वरूप पर विश्वास करने के अपराधी हैं। कहानी के प्रत्येक प्रसंग में वह सब कुछ को सही और ठीकठाक करने के प्रयास में है। चाहे हर बार उनके विश्वास खण्डित होते चले जाते हैं। कितनी ही स्थितियों में मुख्य पात्र को लगता है कि वे कितना चतुर हैं जो शक्तिशाली संस्थानों यथा प्रशासन, पुलिस, चिकित्सा क्षेत्र, सभी को बदल सकता है, उनको डरा सकता है, धमका

सकता है। लेकिन हर बार स्वयं को पराजित महसूस करता है चाहे थुकरा महाराज की मृत्यु हो या आदिवासी क्षेत्र में प्रशासनिक लापरवाही से पैले हैजे की समस्या। अंतत: पुलिस, प्रशासन की षडयंत्रकारी नीतियों के कारण तौफीक अहमद की हत्या और पोस्टमार्टम की रिपोर्ट में उसे दुर्घटना के स्थान पर हत्या ही करार देना चाहे स्वयं ब्रेन हेमरेज के कारण कोमा में चले जाना डॉ. वाकणकर का प्रतिशोध है। डॉ. वाकणकर की दृढ़ता पाठक को आशान्वित करती है या निराश उदयप्रकाश इस पेर में नहीं पड़ते। वे निश्चित रूप से पाठक को वही परपीड़क आनंद प्रदान करते हैं जब वह पढ़ता है ''ही इज अ ग्रेट मिसचीफ....। इतना घाघ चालबाज इस शातिरपने की खातिर उसने अपनी जान दाँव पर लगा दी।''10 'और अंत में प्रार्थना' कहानी का रचना विधान उत्तर आधुनिक दौर की चिंताओं को उठाता है। आलोचक शंभु गुप्त लिखते हैं ''उदय प्रकाश ने यह कहानी लिखकर हिन्दी कहानी के सन्दर्भ में यथार्थवादी रचना प्रणाली को नए सिरे से परिभाषित किया है।'' 11

उदयप्रकाश का कथा साहित्य अपने समय की अभिव्यक्ति भी है और अपने समय से आगे वैचारिक और कलात्मक मानदंडों को पुन: विन्यस्त करने का प्रयास भी। उनकी किस्सागोई शैली कहानी को अनुभूति का हिस्सा भी नहीं होने देती और अखबार की खबर होने से भी बचाती है।

संदर्भ सूची:

1. Essay - The literature of Exhaustion - John Barth, www.csvs.edu, Pg. 66
2. www.genesco.edu/johannes/Metafiction
3. और अंत में प्रार्थना, उदयप्रकाश, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2006, Pg. 78
4. डिबिया में धूप : उदय प्रकाश एक अध्ययन, लेखक शंभु गुप्ता, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण-2018, पृष्ठ-41

5. और अंत में प्रार्थना, उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2006, पृष्ठ 80
6. और अंत में प्रार्थना, उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2006, पृष्ठ 83
7. और अंत में प्रार्थना, उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2006, पृष्ठ 84
8. और अंत में प्रार्थना, उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2006, पृष्ठ 102
9. Fabulaton and Metafiction - Robert Seholes, Publication - 1979, University of Illinois Press, Pg. 114
10. और अंत में प्रार्थना - उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2006, पृष्ठ 201
11. डिबिया में धूप : उदय प्रकाश एक अध्ययन - शंभु गुप्ता, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2018, पृष्ठ 100

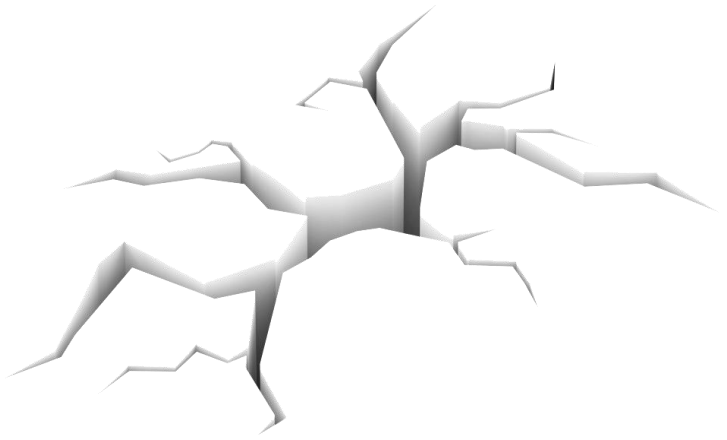

हरिशंकर परसाई की कहानियों के जानवर पात्र

चन्द्रशेखर कुशवाहा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश
ई-मेल : kuswahachandrashekhar@gmail.com

सारांश

हरिशंकर परसाई स्वातंत्र्योत्तर भारत के प्रमुख यथार्थवादी कथाकार हैं। वह व्यंग्य को स्पिरिट मानते थे जो किसी भी विधा में आ सकता है। परंतु उनके लेखन ने व्यंग्य को विधा का गौरव प्रदान किया। कहानी लिखते समय वह सर्वत्र व्यंग्यात्मक शैली का ही प्रयोग करते थे। पहले जो व्यंग्य कहानी में यत्र तत्र उसके सहायक के रूप में आता था, वह परसाई के यहाँ पहुँचकर सर्वत्र व्याप्त हो गया। इस तरह व्यंग्य विधा की स्थापना हुई और उनकी कहानी को 'व्यंग्य कथा' कहा जाने लगा। अपने कथ्य को व्यापक बनाने और व्यंग्य को अधिक तीक्ष्ण करने के लिए उन्होंने जानवरों को भी पात्र के रूप में प्रयोग किया है। उनके यहाँ कुत्ता, बैल, मोर, गधा, चूहा, भेड़े और भेड़िए तथा बंदर आदि भिन्न भिन्न रूपों में कथ्य की व्यंजकता बढ़ाने के लिए आए हैं। उनके यह पात्र कभी कभी बिल्कुल मनुष्य की तरह व्यवहार करते हैं तो कभी मनुष्य से भी अधिक क्रांतिकारी कार्य करके उसके लिए प्रेरणास्त्रोत बन जाते हैं और कभी प्रतीक के रूप में सामने आते हैं। प्रस्तुत शोध आलेख में इसी प्रकार के पात्रों और उनकी विशेषताओं का विश्लेषण किया गया है।

बीज शब्द : *जानवर, कुत्ता, साहित्य, कला, पूँजीवाद, सर्वहारा, क्रांति*

शोध आलेख :

हरिशंकर परसाई एक ही साथ अनेक विषयों पर कलम चलाने वाले बहु आयामी लेखक थे। वह अपने निबंधों, स्तंभों अथवा कहानियों में एक से अधिक विषयों को गूथकर लिखते थे। सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक आदि विषय उनके लिए अलग-अलग महत्व नहीं रखते थे। इसलिए, कथ्य में परिवर्तन होते ही नए शिल्प का निर्माण अथवा नए प्रतीकों का चुनाव

उनके लिए कोई मुश्किल कार्य नहीं था। वह जानवरों का प्रयोग भी पात्र के रूप में साधिकार कर लेते थे और उन्हें नए-नए अर्थ प्रदान करते थे। उनकी कहानी 'भेड़ें और भेड़िए' पहली बार जून, 1956 में प्रकाशित उनके कहानी संग्रह 'तब की बात और थी' में संकलित है। यह कहानी लोकतंत्र स्थापित होने के बाद चुनाव प्रक्रिया और शोषक सत्ता के फिर से राजा बनने की कहानी है। 'भेड़ें' और 'भेड़िए' तो शीर्षक में ही दिखाई देते हैं परंतु इसमें 'सियार' भी अपनी विशेष पहचान के रूप में उपस्थित हैं। यह कहानी पूरी तरह से प्रतीकात्मक है। कहानी वन प्रदेश से आरंभ होती है जो खुद ही एक देश का प्रतीक है। भेड़ें देश की आम भोली भाली जनता की प्रतीक हैं जो निहायत नेक, ईमानदार, कोमल, विनयी, दयालु, निर्दोष थी। भेड़िया शोषक वर्ग का प्रतीक है, जो हमेशा से सत्ता पर काबिज रहा और शोषण करता रहा। दूसरों के शोषण से ही उसका पेट भरता। तीन रंगे सियारों में पीला वाला सियार विद्वान, विचारक, कवि और लेखक है। नीला सियार नेता और पत्रकार तथा हरा वाला धर्म गुरु है। यह तीनों मिलकर उस हिंसक भेड़िए को संत के रूप में आम जनता के सामने प्रस्तुत करते हैं और प्रजातन्त्र में फिर से उसी को सत्ता मिल जाती है। सत्ता मिलने के बाद उसका पहले वाला रूप खुलकर सामने आता है और जनता का शोषण संसदीय तरीके से चलने लगता है।

इस विषय पर हरिशंकर परसाई की दूसरी कहानी 'गधा और मोर' है। यह कहानी भी 'तब की बात और थी' में संकलित है। यह कहानी भी प्रतीकात्मक है। 'भेड़ें और भेड़िए' के प्रतीक राजनीतिक हैं जबकि 'गधा और मोर' के प्रतीक कलात्मक और साहित्यिक हैं। गधा एक खास तरह की पुरानी, रूढ़िवादी कला या रचना का तथा मोर नई कला या रचना का प्रतीक है। इस कहानी में पाठक, आलोचक या दर्शक के रूप में कुत्ता को प्रतीक के रूप में लिया गया है। उसे गधों का रेंकना और चिल्लाना पसंद है जबकि मोर का नृत्य उसे बिल्कुल पसंद नहीं आता। उसे समझ में ही नहीं आता कि यह नया चीज क्या है और वह उसे भगा देता है। परसाई लिखते हैं -"नगर के बाहरी हरे मैदान

के बीच एक खंडहर में कुछ गधे निवास करते थे। वही आकर कुछ कुत्ते रहने लगे। गधों से उनका खूब परिचय बढ़ गया। गधों के लंबे कान उन्हें खूब अच्छे लगते थे। जब गधे घास चरकर उल्लास से चीपों – चीपों करते, तो कुत्तों को ध्रुपद राग का मजा आता। जब वे धूल में लोटते, तो कुत्ते उसे कलामय नृत्य समझकर आनंदित होते। जब वे आपस में दुलत्ती झाड़ते, तो कुत्ते उस शौर्य पर बलि बलि जाते। जब वे पेट भर घास चरकर खंडहर के कोने में अपने अधखुले नयन भूमि में गड़ाये, समाधि मुद्रा में निश्चल खड़े हो जाते, तो कुत्ते उन्हें गंभीर चिंतन में रत जान मौन बैठे रहते। गधों को वे खूब जानते थे। वे उनके अपने थे। प्राणियों में गधा उनके लिए आदर्श था।"[1] कुत्ते गधों को ही जानते थे। उनके रेंकने और दुलत्ती झाड़ने के अलावा वह और किसी चीज से आनंदित नहीं होते थे। एक दिन मौसम बदला और वही पास में ही रहने वाले एक मयूर का मन नाच उठा। उसने सोचा, "ये कुत्ते बेचारे, बड़ा नीरस और उदास जीवन जीते हैं। इन्हें गर्दभों की संगति भुगतनी पड़ती है। आज जब सम्पूर्ण प्रकृति खिलखिला रही है, मैं तनिक इनके पास जाकर नृत्य करके इनका मन रिझाऊँ।"[2] जब वह मोर उन कुत्तों के पास जाता है तभी वह लोग इसे देखकर शंका व्यक्त करते हैं कि इसे तो कभी देखा ही नहीं है। यह क्या कर रहा है। दो कुत्तों ने पहले कहा तो तीसरे ने भी उसकी हाँ में हाँ मिलायी। तीसरे ने कहा, "भों -भों –भों। ठीक कहा। गधे का रंग एक होता है। यह बहुरंगी है। यह कपटी मालूम होता है। यह तो हमारा जाना -पहचाना नहीं है। यह विचित्र है। अद्भुत है।"[3] बाद में जब मोर ने नाचने से पहले की किलकारी मारी तो सब कुत्ते उसे देखकर बात करने लगे कि यह तो गधे की तरह नहीं रेंकता, यह तो गधे की तरह दुलत्ती नहीं मारता, यह तो गधे की तरह धूल में नहीं लोटता। गधे को हम जानते हैं। वह अच्छा है। यह जरूर खराब है। इसे यहा से भगा देना चाहिए। और अंत में सब कुत्ते मिलकर मोर को वहाँ से

[1]परसाई, हरिशंकर, 'तब की बात और थी', ज्ञान मंदिर दीक्षितपुरा प्रकाशन, जबलपुर, प्रथम संस्करण : जून 1956, पृ. 56

[2]वही

[3]वही, पृ. 57

भगा देते हैं। इस प्रकार यह कहानी गधा, कुत्ते और मोर के प्रतीक के माध्यम से साहित्य- कला, उसके पाठक या आलोचक पर व्यंग्य के रूप में सामने आती है। एक रूढ़ विचार जब समाज में मान्यता प्राप्त कर लेता है तो नए विचार को अपनी मान्यता प्राप्त करवाने में बहुत परिश्रम करना पड़ता है। कई बार उसे पलायन के रास्ते से भी होकर गुजरना पड़ता है। यही बात साहित्य और अन्य कलाओं पर भी लागू होती है। इस रूप में इस कहानी की प्रतीक योजना बहुत ही सटीक है।

हरिशंकर परसाई की अगली कहानी 'चूहा और मैं' है। यह उनके संग्रह 'वैष्णव की फिसलन' में संकलित है। शीर्षक के नामकरण के विषय में वह शुरू में ही अपना स्पष्टीकरण दे देते हैं कि, "चाहता तो लेख का शीर्षक 'मैं और चूहा' रख सकता था, पर मेरा अहंकार इस चूहे ने नीचे कर दिया है। जो मैं नहीं कर सकता, वह मेरे घर का यह चूहा कर लेता है। जो इस देश का सामान्य आदमी नहीं कर पाता, वह इस चूहे ने मेरे साथ करके बता दिया।"[1] कहानी यही से रोचक हो जाती है कि आखिर चूहे ने ऐसा कौन सा कार्य कर दिया जो आम आदमी भी नहीं कर पा रहा है। इस कहानी के नैरेटर का घर कई दिन तक बंद रहा तो एक चूहा आकर रहने लगा। उस घर को चूहे ने अपना घर समझकर सारा खाद्य पदार्थ खाना शुरू कर दिया। नैरेटर के आने के बाद भी वह इसी तरह अपना काम करता रहा। अब तक वह घर पर अधिकार कर चुका था। भूख लगने पर पेट भरना पहला धर्म होता है। वह चूहा उसके सिर पर चढ़कर भी अपना भोजन तलाश कर लेता है। कुछ दिन बाद वह अपने साथ एक और चूहे को ले आता है। परसाई (नैरेटर) उसके इस व्यवहार पर देश के आम आदमी से तुलना करते हुए कहते हैं कि, "मगर मैं सोचता हूँ – आदमी क्या चूहे से भी बदतर हो गया है? चूहा तो अपनी रोटी के हक के लिए मेरे सिर पर चढ़ जाता है, मेरी नींद हराम

[1]परसाई, हरिशंकर, 'वैष्णव की फिसलन', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवाँ संस्करण : 2016, पृ. 35

कर देता है – इस देश का आदमी कब चूहे की तरह आचरण करेगा?"[1] इस प्रश्न के साथ ही कहानी खत्म हो जाती है। यही बात आगे चलकर जब वह 'तुलसीदास चंदन घिसैं' नामक स्तम्भ 'सारिका' पत्रिका में लिखते हैं तो गोस्वामी तुलसीदास जी के मुँह से यह कहलवाते हैं कि मैं भूखे लोगों के लिए गोदाम लुटवा देने को सांस्कृतिक कर्म मानता हूँ। परसाई अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए किसी भी कथा का सहारा लेने से नहीं चूकते। इसके लिए वह नए नए पात्रों का सृजन करते हैं, चाहे वह जानवर ही क्यों न हो।

उनका एक कुत्ता तो 'गधा और मोर' में था जो पाठक, आलोचक या दर्शक के प्रतीक रूप में सामने आता है। दूसरा कुत्ता उनकी कहानी 'मैं नरक से बोल रहा हूँ' में दिखायी देता है। यह भी चूहे की तरह क्रांतिकारी के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी में एक गरीब मनुष्य और उसका कुत्ता दोनों भूख से पीड़ित होते हैं। कुत्ता बगल में घुसकर खाने की कोशिश करता है और मारा जाता है। वह मरकर स्वर्ग को प्राप्त होता है। ठीक उसी समय वह आदमी भी पेट की अंतिम मरोड़ के साथ शरीर का पिंजरा खाली कर देता है। मरने के बाद उसे नरक में धकेल दिया जाता है। वह आदमी नरक से ही पृथ्वीवासियों को आवाज लगाता है- "हे पत्थर पूजने वालों! तुम्हें जिंदा आदमी की बात सुनने का अभ्यास नहीं: इसलिए मैं मरकर बोल रहा हूँ। जीवित अवस्था में तुम जिसकी ओर आँख उठाकर नहीं देखते उसकी सड़ी लाश के पीछे जुलूस बनाकर चलते हो। जिंदगी भर तुम जिससे नफरत करते हो उसकी कब्र पर चिराग जलाने जाते हो। मरते वक्त तक जिसे तुमने चुल्लू भर पानी नहीं दिया, उसके हाड़ गंगाजी ले जाते हो। अरे! तुम जीवन का तिरस्कार और मरण का सत्कार करते हो। इसीलिए मैं मरकर बोल रहा हूँ। मैं नर्क से बोल रहा हूँ।"[2] विषयों को आपस में गूँथने की कला में परसाई को महारत हासिल है। वह भुखमरी, पाखंड, देश की संसद और

[1]वही, पृ. 37

[2]कमला प्रसाद एवं अन्य, 'परसाई रचनावली-2', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवाँ संस्करण : 2019, पृ. 238

उसके एक गैर जिम्मेदार नेता का बयान तथा वाचक और कुत्ते की मौत की कहानी एक साथ ही रचते हैं। वाचक अपनी और कुत्ते की कहानी कहते हुए अंत में कुत्ते को इसका नायक बना देता है। कुत्ता, जो पात्र के रूप में उपस्थित तो नहीं है, उसकी कहानी कही जा रही है। मंत्री देश की संसद में झूठ बोलता है कि वाचक ने आत्महत्या की है। इसी गलत सूचना के निवारण के लिए वह विधाता को अपनी सच्चाई बताता है। सच्चाई बताने के बाद भी विधाता उसे नर्क में तथा उसके कुत्ते को स्वर्ग में डाल देते हैं। उन दोनों की मौत ऐसे हुई कि –"मौत के जरा पहले मेरा प्यारा कुत्ता बरबस दीवाल के उस पार घुस गया और पकवान खा गया। मालिक ने खींचकर एक डंडा मारा और वह कराहता हुआ मेरे पास आकर पड़ गया। चीखता रहा, चीखता रहा। मेरे भी प्राण निकल रहे थे। पर मुझे इस जानवर के सामने चीखने में लज्जा आयी। इधर मेरे पेट में आखिरी ऐंठ आयी और पंछी ने पिंजरा खाली किया, उधर मेरे कुत्ते की भी दम टूटी। डंडे की चोट बड़े मर्म कि थी। दोनों मरे; एक साथ मरे- फरक इतना कि वह खाकर मरा और मैं बिना खाए।"[1] वाचक बिना खाए मरकर जब नीति की दुहाई देता है तब भगवान कहते हैं –"मूर्ख कायर; तू कुत्ते से भी हीन है! बेचारा कुत्ता दीवाल को लांघकर घुस गया और खाना खा आया। और तू आदमी कहलाने वाला, हाय हाय करके मार गया। तू दीवाल लांघ नहीं सकता था? दीवाल तोड़ नहीं सकता था?"[2] भगवान के यह कहने पर वाचक पाप और पुण्य के बारे में कहता है कि किसी की दीवाल लांघना पाप नहीं है। तब भगवान क्रोध में आकर कहते हैं – "पाप-पुण्य के झमेले में पड़ने वाले कायर! वह दीवाल क्या मेरी बनायी हुई है? तमाम दीवालें आदमियों ने खड़ी की हैं, और तू उन्हें तोड़ने में पाप -पुण्य देखता है? मूर्ख! तेरा कुत्ता तुझसे ज्यादा समझदार है। वह घुस गया, खाया और डंडे की मार से मारकर यहाँ आ गया। उसमें मनुष्यत्व है, तुझमें पशुत्व भी नहीं! मैंने तुम्हें बुद्धि दी है; हाथ पैर दिए हैं, कार्य शक्ति दी है – और तू अकर्मण्य; बुजदिल कीड़े

[1]वही, पृ. 240

[2]वही

सा मर गया। मनुष्यों ने मुझे बहुत निराश किया, अब मैं कुत्ते ही कुत्ते निर्माण करने का विचार कर रहा हूँ। तुम जैसे अकर्मण्य, कायर, भीरू, मूर्ख को नर्क नहीं तो क्या इंद्रासन मिलेगा?"[1] और यह कहकर वाचक को नर्क में ढकेल दिया गया। कहानी का अंत वाचक के इस आह्वान के साथ होता है कि – "मेरे देशवासियों! मेरी जैसी मौत न मरना, मेरे कुत्ते की तरह मरना।"[2] यहाँ पर आकर पहली बार ऐसा होता है कि कोई रचनाकार 'कुत्ते की मौत मरने' का मुहावरा नए अर्थ में प्रयोग करता है। इस तरह मरने में गर्व का अनुभव है। चूहे की तरह आचरण करने और कुत्ते की तरह मरने का मतलब ही यही है कि अपने हकों के प्रति जागरूक रहना चाहिए और उन्हें छीनने वालों से लड़कर अपना हक ले लेना चाहिए।

परसाई जी की एक कहानी का शीर्षक है –'कचहरी जाने वाला जानवर।' लेकिन उसमें कोई जानवर पात्र नहीं है। उस कहानी में सिर्फ व्यंग्य के रूप में आदमी को ही दो पैरों से चलने वाला ऐसा जानवर बताया गया है, जो कचहरी जाता है बाकी कोई भी जानवर कोर्ट कचहरी का चक्कर नहीं लगाता। 'विकलांग श्रद्धा का दौर' (1980) संग्रह में भी कुत्तों को पात्र बनाकर परसाई जी ने एक कहानी 'एक मध्यवर्गीय कुत्ता' का सृजन किया है। यह कुत्ते पहले की दो कहानियों में आए कुत्तों के प्रतीकों से अलग प्रतीक के रूप में प्रयोग किए गए हैं। वास्तव में परसाई जी जानवरों के माध्यम से मनुष्य की ही कहानी कहते हैं। इन प्रतीकों के माध्यम से वह मनुष्य की अनेक प्रवृत्तियों का उद्घाटन करते हैं। इस कहानी में कुछ कुत्तों को, जो सड़क छाप आवारा कुत्ते हैं, सर्वहारा वर्ग के रूप में चित्रित किया गया है। तथा एक कुत्ता, जो बड़े ही ठाट बाट से रहता है, जंजीर में रहता है, सुविधाभोगी है, मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। लगता तो उच्च वर्ग का है पर वाचक को इसके उच्चवर्गीय कुत्ता होने में संदेह था। वह कहता है –"यह उच्चवर्गीय कुत्ता नहीं है। मेरे पड़ोस में ही एक साहब के पास थे दो कुत्ते। उनका रोब ही निराला! मैंने उन्हें कभी भोंकते नहीं सुना। आसपास कुत्ते

[1]वही

[2]वही

भोंकते रहते, पर वे ध्यान नहीं देते थे। लोग निकलते, पर वे झपटते भी नहीं थे। कभी मैंने उनकी एक धीमी गुर्राहट ही सुनी होगी। वे बैठे रहते या घूमते रहते। फाटक खुला होता तब भी बाहर नहीं निलकते थे। बड़े रोबीले, अहंकारी और आत्मतुष्ट।"[1] यानी जिस कुत्ते के बारे में बात की जा रही है वह उच्चवर्गीय कुत्ता नहीं है, बल्कि मध्यवर्गीय कुत्ता है। क्योंकि मधवर्गीय कुत्ता इतना रोबीला, अहंकारी और आत्मतुष्ट नहीं होता। इस कुत्ते की विशेषता बताते हुए परसाई लिखते हैं –"यह कुत्ता उन सर्वहारा कुत्तों पर भौंकता भी है और उनकी आवाज में आवाज भी मिलाता है। कहता है –'मैं तुममे शामिल हूँ।' उच्चवर्गीय झूठा रोब भी और संकट के आभास पर सर्वहारा के साथ भी –यह चरित्र है इस कुत्ते का। यह मध्यवर्गीय चरित्र है। यह मध्यवर्गीय कुत्ता है। उच्चवर्गीय होने का ढोंग भी करता है और सर्वहारा के साथ मिलकर भौंकता भी है।"[2] ऐसा कहकर वह उच्च वर्ग एवं मध्यवर्ग दोनों वर्ग के मानव समूह की विशेषता बताते हुए व्यंग्य करते हैं। उच्च वर्ग की आलसी, अहंकारी और समाज में क्या हो रहा है, राजनीति की क्या दशा है, इससे कोई मतलब न रखने वाली विलासी वृत्ति का चित्रण करते हैं। दूसरी तरफ मध्यवर्ग का व्यक्ति ऐसा व्यक्ति होता है जो सर्वहारा वर्ग में शामिल होकर शोषण के विरुद्ध होने वाले विभिन्न आंदोलनों में भाग तो लेता है परंतु उसके मन में वहीं उच्च वर्ग के वैभव और विलासपूर्ण जीवन जीने की इच्छा बनी रहती है। उसकी इस इच्छा को परसाई जी ने मध्यवर्गीय कुत्ते के माध्यम से चित्रित किया है। वह महल में भी रहता है और संकट के समय सर्वहारा कुत्तों के साथ मिलकर भोंकता भी है। उच्च वर्गीय झूठा रोब भी और संकट के आभास पर सर्वहारा के साथ भी – यह चरित्र है इस कुत्ते का। यह मध्यवर्गीय चरित्र है। एक दिन इस कुत्ते को घायल देखकर परसाई (वाचक) कहते हैं- "हुआ यों होगा। यह अकड़ से फाटक से बाहर निकला होगा। उन कुत्तों ने कहा होगा – 'अबे अपना वर्ग नहीं पहचानता। ढोंग रचता है। ये पट्टा और जंजीर लगाये है।

[1]परसाई, हरिशंकर, 'विकलांग श्रद्धा का दौर', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौदहवाँ संस्करण : 2022, पृ. 11

[2]वही

मुफ़्त का खाता है। लॉन पर टहलता है। हमें ठसक दिखाता है। पर रात को जब किसी आसन्न संकट पर हम भौंकते हैं, तो तू भी हमारे साथ हो जाता है। संकट में हमारे साथ है, मगर यों हम पर भोंकेगा। हममे से है तो निकाल बाहर। छोड़ यह पट्टा और जंजीर। छोड़ यह आराम। घूरे पर पड़ा अन्न खा या चुराकर रोटी खा। धूल में लोट।'

यह फिर भोंका होगा। इस पर वे कुत्ते झपटे होंगे। यह कहकर- अच्छा ढोंगी, दगाबाज, अभी तेरे झूठे वर्ग का अहंकार नष्ट किए देते हैं।'

इसे रगेदा, पटका, काटा और धूल खिलायी।

कुत्ता चुपचाप पड़ा अपने सही वर्ग के बारे में चिंतन कर रहा है।"[1]

'मैं नर्क से बोल रहा हूँ' का कुत्ता रोटी चुराकर खाता है और मारा जाता है। लेकिन इस मध्यवर्गीय कुत्ते को खुद सर्वहारा कुत्ते घायल करते हैं। रोटी चुराकर खाने की बात उसे समझाते हैं। अगर तुम मेरे वर्ग में शामिल हो तो मेरी तरह रोटी चुराकर खाओ। अर्थात सच्चे अर्थों में संघर्ष में शामिल हो जाओ।

हरिशंकर परसाई की कहानियों में जानवर कई रूपों में सामने आते हैं। उनकी दो कहानियाँ 'पड़ोसी के बच्चे' और 'भूख के स्वर' मई 1953 में ही आ गई थी। 'पड़ोसी के बच्चे' में एक गाय रामा की पत्नी से तुलना करने के लिए आती है, वह कोई पात्र नहीं है। रामा की पत्नी को जुड़वा बच्चे होते हैं और घर में खाने के लिए कुछ नहीं है। पड़ोसन की गाय ने एक बछड़ा जना था इसलिए उसने रामा को वही गुड़ सोंठ दे दिया जो गाय के लिए बनाया था। परसाई लिखते हैं – "पशु की माँ के खाने से जो बच जाए, वह आदमी की माँ खाये! चाची की गाय को जितना गुड़ सोंठ प्राप्त हुआ उतना इस रामा की स्त्री को भी नहीं। लोग समानाधिकार की बात करते रहते हैं। आदमी आदमी की समानता की बात तो

[1]वही, पृ. 12

दूर है, पशु के समान अधिकार मिल जाएं आदमी को!"[1] 'भूख के स्वर' कहानी में रघुनाथ नौकरी के अभाव में अपनी पत्नी और बच्चों को एक गाड़ीवान के माध्यम से मायके पहुंचवा देता है। पानी बरसने, ठण्ड लग जाने और बुखार के कारण एक बच्चा मर जाता है। तीसरे दिन गाड़ीवान लौटकर यह सूचना देता है। फिर गाड़ीवान रघुनाथ से अपने किराये के पैसे माँगता है पर उसके पास फूटी कौड़ी नहीं होती। नौकरी मिली नहीं थी। कोई काम मिला नहीं था। दोनों में लट्ठ चलती है और रघुनाथ का सिर फूट जाता है। उसके सिर का रक्त कुरते पर चूने लगता है। गाड़ीवान भी रोने लगता है। बड़ा विचित्र दृश्य था। जिसने पीटा, वह भी और जो पिटा वह भी, दोनों रो रहे थे। दोनों भूखे थे। यह दोनों आदमी थे तो भूख से रो रहे थे। पर रघुनाथ के बैल आदमी नहीं जानवर थे। चूहे और कुत्ते की तरह उन्हें भी भूख बर्दाश्त नहीं थी। भूख शांत करने के लिए अपना पराया पाप पुण्य उन्हें नहीं देखना था। वह दोनों रात को रस्सी तुड़ाकर सेठ बदामीलाल के खेत में काँटों की बाड़ तोड़कर घुस गए। पहले अपनी रस्सी तोड़ी फिर खेत के काँटों की बाड़। खूब पेट भर अनाज और घास चरा। सुबह चौराहे पर बदामीलाल दोनों बैलों को लिए काँजीहौस की धमकी दे रहा था। अब कहानी का अंत करते हुए परसाई लिखते हैं –

"दोनों बैल बैठे थे। चेहरे से तृप्ति झलक रही थी। पेट खूब भरे थे। आनंद से जुगाली कर रहे थे।

दोनों बैल बैठे हँस रहे थे।

ये दोनों मनुष्य खड़े खड़े रो रहे थे!"[2] एक तरह से इस कहानी का नायक तो नैरेटर को कहा जा सकता है। लेकिन अंत तक जाते जाते स्थिति बदल जाती है।

[1]कमला प्रसाद एवं अन्य, 'परसाई रचनावली-2', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवाँ संस्करण : 2019, पृ. 228
[2]वही, पृ. 232

नायकत्व का निर्धारण करना कठिन हो जाता है। परसाई की किसी भी कहानी में नायक की ठीक ठीक पहचान करना कठिन है। वस्तुत: वह नायक विहीन समाज की रचना करना चाहते हैं। कोई एक व्यक्ति विशिष्ट हो और बाकी सब गौड़ हों, यह ठीक नहीं है। 'लंका विजय के बाद' कहानी में रामकथा के मिथक और वानरों के माध्यम से आजादी के बाद स्वतंत्रता संग्राम के उन सेनानियों पर व्यंग्य किया गया है जो वास्तव में आंदोलन में भाग नहीं लिए थे परंतु आजादी के बाद उन्हें ऊंचा पद चाहिए था। वह नारा लगा देने के बाद अपने को ही सर्वे सर्वा समझ रहे थे। इसमें कोई विशिष्ट जानवर पात्र नहीं है लेकिन यह कहानी अपने कथ्य को कहने में पूरी तरह सफल हुई है। इसकी प्रतीक योजना भिन्न है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार हरिशंकर परसाई की कहानियों में जानवर पात्र भिन्न भिन्न रूपों में आए हैं। कभी प्रतीक रूप में तो कभी पात्र रूप में। इन दोनों ही रूपों में वह परसाई की भाव संवेदना और उनके कथ्य को पाठकों तक पहुंचाने में पूरी तरह समर्थ होते हैं। चूहा, कुत्ता, बैल, गधा, मोर, भेड़, भेड़िए, सियार, वानर आदि के माध्यम से उन्होंने कथा का सृजन किया और कहानी संसार को नवीनता प्रदान करके समृद्ध किया।

संदर्भ सूची :

1. परसाई, हरिशंकर, 'तब की बात और थी', ज्ञान मंदिर दीक्षितपुरा प्रकाशन, जबलपुर, प्रथम संस्करण : जून 1956, पृ. 56
2. वही
3. वही, पृ. 57
4. परसाई, हरिशंकर, 'वैष्णव की फिसलन', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवाँ संस्करण : 2016, पृ. 35
5. वही, पृ. 37
6. कमला प्रसाद एवं अन्य, 'परसाई रचनावली-2', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवाँ संस्करण : 2019, पृ. 238
7. वही, पृ. 240

8. वही
9. वही
10. वही
11. परसाई, हरिशंकर, 'विकलांग श्रद्धा का दौर', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौदहवाँ संस्करण : 2022, पृ. 11
12. वही
13. वही, पृ. 12
14. कमला प्रसाद एवं अन्य, 'परसाई रचनावली-2', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवाँ संस्करण : 2019, पृ. 228
15. वही, पृ. 232

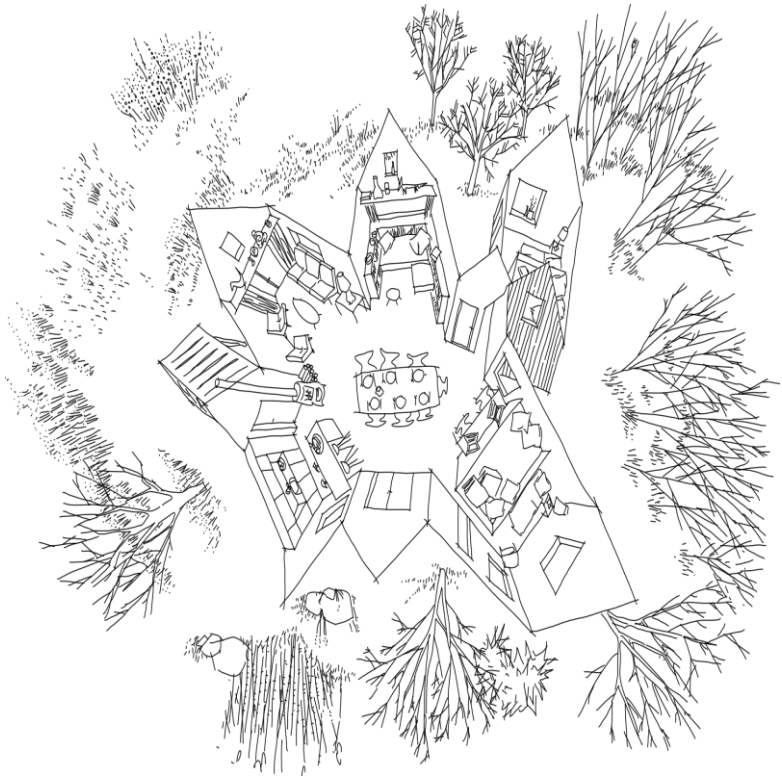

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियों में मानवतावादी चेतना

डॉ. पुरुषोत्तम पाटील
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
भाषा अध्ययन प्रशाला एवं अनुसंधान केंद्र
कवयित्री बहिणाबाई चौधरी उत्तर महाराष्ट्र विश्वविद्यालय, जलगाँव, महाराष्ट्र - 425001
मोबाईल – 9326203277
ईमेल - drpbpatil73@gmail.com

सारांश

साहित्य समाज का दर्पण होता है जिसमें समाज में व्याप्त अच्छाई-बुराई, सुख-दुख, वेदना आदि का यथातथ्य चित्र हमारे समक्ष उभरकर आता है। समाज की इन समस्त स्थितियों को दर्शानें का माध्यम है मानव, क्योंकि मानव वह इकाई है जो इन समस्त स्थितियों से गुजरता है। इस प्रकार सामान्य अर्थ में देखें तो मानव जीवन की समस्त अच्छी-बुरी स्थितियों का समाजशास्त्रीय विवेचन ही 'मानवतावाद' है, तथा "पारंपरिक रुप से 'मानवतावाद' की परिकल्पना मानव के वर्तमान, भविष्य एवं उसका विश्व में स्थान इत्यादि प्रश्नों से जुडी हुई है। हिंदी कहानी साहित्य में देश की स्वतंत्रता के साथ ही मानवतावाद प्रखर रुप में उभरकर सामने आया क्योंकि स्वतंत्रता मानवतावाद की स्थापना की प्रथम सीढी है।

बीज शब्द: *साहित्य, समाज, चित्रण, मानवता, पारंपरिक, कहानी*

शोध आलेख

"जब साहित्य सृजित होता है तो उसमे मनुष्य निर्विवाद रूप से केंद्र में होना चाहिए जिसके अंतर्गत समकालीन सामाजिक गतिविधियों का मानव केंद्रित युगानुरूप अंकन अपेक्षित होता है। साहित्यकार द्वारा देखा और अनुभव किया गया सामाजिक व्यवहार मनुष्य एवं मानवतावाद संसार की समस्त गतिविधियों का केंद्र होना चाहिए क्योंकि साहित्य का परम ध्येय समाज का हित होता है

जिसकी प्राथमिक इकाई मनुष्य और उसका सामाजिक जीवन ही है। इस परिप्रेक्ष्य में साहित्य में मानवतावाद की अवधारणा अपना एक विशेष महत्त्व रखती है"।

हम जानते हैं कि साहित्य समाज का दर्पण होता है जिसमें समाज में व्याप्त अच्छाई-बुराई, सुख-दुख, वेदना आदि का यथातथ्य चित्र हमारे समक्ष उभरकर आता है। समाज की इन समस्त स्थितियों को दर्शानें का माध्यम है मानव, क्योंकि मानव वह इकाई है जो इन समस्त स्थितियों से गुजरता है। इस प्रकार सामान्य अर्थ में देखें तो मानव जीवन की समस्त अच्छी-बुरी स्थितियों का समाजशास्त्रीय विवेचन ही 'मानवतावाद' है, तथा "पारंपरिक रुप से 'मानवतावाद' की परिकल्पना मानव के वर्तमान, भविष्य एवं उसका विश्व में स्थान इत्यादि प्रश्नों से जुडी हुई है।"(1)

समग्र रुप में देखें तो 'मानवता' समस्त मूल्यों का आधार है। और "जब मनुष्य में किसी अन्य मनुष्य के प्रति मंगल की या हित की भावना जागृत होती है, तो यह अवस्था मानवता कही जाएगी।"(2) जब यह हितभावना साहित्य की विधाओं में निर्झर सी बहने लगे तो वह साहित्य सच्चे अर्थो में 'मानवतावादी' हो जाता है। हिंदी साहित्य में भी मानवतावाद हर विधा में स्थापित हुआ दृष्टिगोचर होता है।

हिंदी कहानी साहित्य में देश की स्वतंत्रता के साथ ही मानवतावाद प्रखर रुप में उभरकर सामने आया क्योंकि स्वतंत्रता मानवतावाद की स्थापना की प्रथम सीढी है। साहित्यकार "अज्ञेय नें भी स्वतंत्रता को मानव संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण मूल्य माना है, क्योंकि यही उसे पशुत्व से मुक्ति दिलाती है।"(3) और इस प्रकार पशुता से मुक्ति ही मानवतावाद है जिसकी स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में सर्वत्र स्थापना हुई है।

प्रेमचंद के उत्तराधिकारी कहलाने वाले मार्कण्डेय नें अपनी कई कहानियों में मानवतावाद के स्वर को बुलंद किया है। इस दृष्टि से जहाँ "उनके कहानी संग्रह

'पान फूल' की कहानियाँ उनकी गहरी अर्न्तदृष्टि एवं प्रखर मानवीय संवेदना का परिचय देती है ।"(4) तो अन्य कहानी संग्रह 'महुए का पेड' की कई कहानियों में शोषित मनुष्यता के प्रति गहरी सहानुभूति की भावना हमें दिखाई देती है। इन संग्रहों की उनकी कहानियों 'आदमी के बच्चे' जहाँ उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग पर होने वाले अमानवीय अत्याचारों के विरोध में उठने वाली प्रखर मानवतावादी चेतना को रेखांकित करती है, तो 'महुए का पेड' एवं 'कल्यानमन' जैसी कहानियाँ सामान्य-असहाय वर्ग पर होने वाले अत्याचारों एवं शोषण को उभार कर एक गहरी मानवीय संवदेना को मुखर करती जान पडती हैं।

कहानीकार अमरकांत की कहानियों में भी "वही मानवीय संवेदनशीलता है ।" जिसका आभास उनकी 'जिन्दगी और जोंक' तथा 'दोपहर का भोजन' जैसी कहानियों में मिलता है, जिसके पात्र जीवन के भँवर में डूबते-उतराते एक मानवतावादी संघर्ष को बखूबी चित्रित करते हैं। उन्होंनें अपनी अधिकांश कहानियों को मानवतावादी भंगिमा से प्रस्तुत किया है, समग्रतः "भौतिकवादी मूल्यों का उनकी कहानियों में विरोध और मानवतावादी मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयत्न है ।"(5) फणीश्वरनाथ 'रेणू' की 'रसप्रिया', 'तीसरी कसम' इत्यादि कहानियाँ भी मानवीय संवेदना की सशक्त कहानियाँ हैं। उनकी 'रसप्रिया' कहानी का यह कथन इस बात की पुष्टि करता है- "मिरदंगिया अप्रतिभ हो जाता है। उसकी आँखे फिर सजल हो जाती हैं। मिरदंगिया ने मोहना जैसे दर्जनों सुकुमार बालकों की सेवा की है।" यहाँ उसका गहन मानवतावाद हिलोरे लेने लगता है।

धर्मवीर भारती भी यथार्थ का सटीक अंकन करने वाले कहानीकार हैं, वे मानव संवेदना के कहानीकार है। विपरीत एवं विकट स्थितियों में जब मानवता क्षीण होती नजर आती है तब धर्मवीरजी की कहानियों में वे "दुर्गतियों में भी सोई हुई मानवता जगाते हैं।"(6) फिर चाहे वह 'गुलकी बन्नो' हो, 'धुआँ' हो, 'हरिनाकुश का बेटा' हो या 'सावित्री नं. दो' उनकी सभी कहानियाँ इस बात का प्रमाण देती हैं। कहानी 'गुलकी बन्नों' की अनाथ गुलकी की जब वर्षों बाद बिदाई होती है तो मुहल्ले वालों के मन में मानवता का सैलाब उमड पडता है। मुन्ना की माँ

कहती है- "मुहल्ले की बिटिया तो सारे मुहल्ले की बिटिया होती है। ... माँ बाप नहीं हैं तो मुहल्ला तो है।" यह कथन मानवीय संवेदना की चेतना को ही बयान करता है।

कमलेश्वर की कई कहानियों यथा 'नीली झील', 'नागमणि', 'आसक्ति', 'तलाश' आदि में "कोमल संवेदना की पकड़ है, जो प्रेमचंद वाली मानववादी परंपरा को अपनाए हुए है।"(7) सुरेश सिनहा की 'कई कुहरे', 'उदासी के टुकडे', 'तट से छूटे हुए' इत्यादि कहानियाँ "मानवीय संवेदनशीलता, यथार्थपरक परिवेश में मानवमूल्यों को पहचानने तथा चित्रित करने की क्षमता की ही कहानियाँ हैं। कहानी 'कई आवाजों के बीच' का पात्र मित्रा अपने दोस्त रामभद्रन से कहता है- "यार जिन्दगी में अब कुछ रहा नहीं..." तब रामभद्रन ने अत्यन्त भावुक होकर मेज पर रखे हुए मित्रा के हाथ को कसकर दाब दिया।" यह बात एक दुसरे के दुःख में गहन माननीय संवेदना को सजीव कर देती है। इसी तरह शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ भी गहन मानवीय संवेदनाओं से ओत-प्रोत हैं। इस बात का प्रमाण उनकी 'अन्धकूप', 'खैरा पीपल कभी ना डोले' एवं 'इन्हें भी इंतजार है' जैसी कहानियाँ हैं। कहानी 'इन्हें भी इंतजार है' तो समाज के निचले तबके के हाशिए से भी बाहर फेंक दिए गए उन इंसानो के मानवीय अहसासों की व्यथा है जो घनी मानवीय संवेदना की आस लगाए हुए है।

मुंशी प्रेमचंद के पुत्र श्री अमृतराय की कहानी 'नंगा आदमी नंखा जख्म' एक व्यक्ति के जीवन के मानवीय पहलुओं को चित्रित करती है, तो 'एक सांवली लडकी की कहानी' में नारी की मानवीय संवेदनाओं का चित्रण हुआ है। उनकी अन्य कहानियाँ 'भोर से पहले', 'सावनी समाँ', 'डाक मुंशी की एक शाम' आदि कहानियाँ भी इसी परंपरा की हैं जो अमृतराय को मुंशीजी द्वारा दाय में मिली गहरी मानवीय जीवनदृष्टि को प्रदर्शित करती है। कृष्णा सोबती की कहानी 'डरो मत, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा' में भयंकर मारकाट और मानवीय मूल्यों को रौंदते पिशाचों के झुंड से सहमें मानव को "... मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा" यह वाक्य ही बडा मानवीय संबल प्रदान करता है।

निष्कर्ष:

यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज को विरासत में मिली लहु-लुहान मानवता को स्वातंत्र्योत्तर कहानियों ने गहरी मानवीय संवदेना एवं मानवतावादी दृष्टिकोण से चित्रित किया है। जिसके चलते "इन कहानियों का उद्देश्य मानव, मानव जीवन और मानवीय संस्कृति की सौंदर्य चेतना के लिए नई संभावनाएँ खोजना ही है।"(8) जो इस बात की पुष्टि करता है कि स्वतंत्रता के साथ मिले विभाजन के घाव पर गहरी मानवीय संवेदना से संपृक्त इन कहानियों नें प्रभावशाली मरहम का काम किया है।

साहित्यकार राजेन्द्र यादव के इस उध्दरण से इस विवेचन को, ना कि इस प्रखर चेतना को विराम देना चाहता हूँ कि, हम में से हर किसी "को व्यापक मानवता के प्रति प्रतिबध्द होना चाहिए। लेकिन कौन-सी मानवता ? दीन-दुःखी, भूखे-भिखारियों को दया और भीख देना मानवता है या दुःखी और भिखारी होने की स्थिति के विरुध्द प्रयत्न करना मानवता है ? मरनेवालों के लिए रोना मानवता है या मारनेवाले हाथ को पकड लेना ?..... और जो अर्थ अचानक ही अपनी ओर ध्यान खींचता है वह है; सामान्य जन के लिए, सामान्य जन द्वारा समान सुविधाएँ और अवसर। स्वतंत्रता,बंधुत्व और समता दर्शन। मनुष्य का आत्म विस्तार और राष्ट्रों के पार मनुष्य के प्रति प्यार। ईसा और बुध्द-पश्चिम और पूर्व के उन उदात्त संदेशों का प्रसार, जो मानवमात्र के लिए हितकर रहे हैं।"(9)

इस प्रकार मानवमात्र को केन्द्र में रखकर उसके सुख-दुख के साथ ही उसके जीवन के समस्त पहलुओं को बडे ही सूक्ष्म मानवीय दृष्टिकोण से चित्रित कर स्वातंत्र्योत्तर कहानी मानवतावाद को साहित्य में स्थापित करने में पूर्णतः सफल रही है।

संदर्भ सूची

1. मानवतावाद - एम. पेत्रोसियान (अनु. डॉ. सदा कर्हाळे), लोकवाड्मय प्रकाशन, मुंबई- 1977, पृ.8

2. भाषा (द्वैमासिक)- संपा. शशि भारद्वाज, केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, दिल्ली। मार्च-अप्रैल-2007, पृ.75
3. वही- पृ.75
4. मार्कण्डेय का रचना संसार- डॉ. सुरेन्द्र प्रसाद, क्वालिटी बुक्स, कानपुर 2001, पृ-24
5. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का विकास- सूबेदार राय, अनुभव प्रकाशन, कानपुर, पृ.-143
6. समकालीन कहानी की भूमिका- सं. मंजुल उपाध्याय, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद - 1977, पृ.13
7. वही- पृ.10
8. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का समाज सापेक्ष अध्ययन- किर्ती केसर, नचिकेता प्रकाशन, दिल्ली, 1982, पृ.-103
9. एक दुनिया समानांतर - राजेंन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली - पृ.22

आधार ग्रंथ

1. श्रेष्ठ हिंदी कहानियाँ - संपा. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद – 1977
2. बादलों के घेरे - कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 1980.

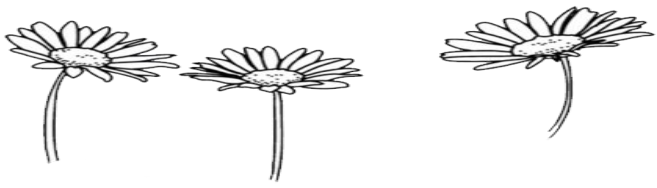

समकालीन हिंदी कविता में वर्तमान गीत-ग़ज़ल की अहमियत

डॉ॰ सोमाभाई पटेल
हिंदी विभागाध्यक्ष
नीमा गर्ल्स आर्ट्स कॉलेज, गोझारिया-384470, जिला : मेहसाना (उ॰ गुजरात)
चलभाष : 9429226037
ईमेल: somtraswadi77@gmail.com

सारांश

हिन्दी में समकालीन कविता अपनी पूर्ववर्ती कविता की तुलना में पूर्ण रूप से मानव जीवन के प्रति समर्पित कविता है। उसका असली आधार यथार्थ है। सपाटबयानी में जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करना समकालीन कविता का महत्वपूर्ण कार्य है। समकालीन कविता को सर्वांगी रूप से देखें तो अकविता के साथ-साथ चलने वाले अन्य नाम भूखी पीढ़ी, श्मशानी पीढ़ी, प्रतिश्रुत कविता, आदि पीढ़ियाँ समाप्त हो गयीं। लेकिन गीत-गज़ल ने अनेक ऊँचाइयाँ प्राप्त की। वैसे तो गज़ल आदिकाल के कवि अमीर खुसरो से लेकर आज तक अनवरत चलता काव्य-रूप है। लेकिन गज़ल के सही मिज़ाज से परिचित करने वाले तो शमशेर बहादुर सिंह को माना जाता है। गज़ल परंपरा के निर्वाह में सूर्यभानु गुप्त, कुमार रवीन्द्र, डॉ. हनुमंत नायडू, महेश अनघ, शलभ श्री राम, निदां फ़ाज़ली, डॉ. कुंवर बेचैन, राहत इंदौरी, वसीम बरेलवी, आदम गौंडवी, डॉ. कुमार विश्वास, भगवानदास जैन आदि का नाम आदर के साथ लिया जाता है। महानगरीय खोखलापन, राजनैतिक क्रियाकलाप, आक्रोश और अनास्था की अभिव्यक्ति, मानवतावादी दृष्टि, भारतीय लोक-संस्कृति का प्रतिबिंब, प्रकृति के प्रति तादात्म्य, विस्थापन की व्यथा जैसे विषय वर्तमान गीत-गज़ल के केंद्र में हैं। समग्रत: वर्तमान ग़ज़लें गतिविधियों से प्रभावित देश के राजनैतिक-आर्थिक-सामाजिक स्वर का ऐसा चित्रण कर रही हैं कि उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि कविता की वापसी हुई है।

बीज शब्द: *समकालीन, परिदृश्य, संवेदना, युगबोध, सपाटबयानी, प्रयोगवाद*

शोध आलेख

हिंदी कविता समयान्तर अनेक पड़ावों से गुजरी है। वह अपने अंतर्बाहय स्वरूप का सतत विस्तार कर रही है। हर जमाने का जीवन पहले के जीवन की अपेक्षा ज्यादा जटिल और कठिन महसूस होता है। परिवर्तन के साथ-साथ समय और स्थितियों से कविता टकराती हुई आगे बढ़ती है। वह नये काव्यानुभावों, वस्तु और कथन की नई भंगिमा के साथ अपने समकालीन काव्य परिदृश्य पर एक नई दस्तक दे रही है। हिन्दी में समकालीन कविता अपनी पूर्ववर्ती कविता की तुलना में पूर्ण रूप से मानव जीवन के प्रति समर्पित कविता है। वह वर्तमान जीवन की विसंगतियों, विकृतियों और जटिलताओं पर तीखा प्रहार करते हुए वास्तविक जीवन की अनेक परतें खोलती है। अत: युग संदर्भ से जुडने वाली इस कविता में निरंतर परिवर्तन होते रहना स्वाभाविक है। इसी कारण डॉ॰ विश्वंभरनाथ उपाध्याय ने इसे 'वर्तमान से अंकित कविता' कहा है। वैसे भी 'समकालीन कविता' की पहचान करना समीक्षा का भी जोखिम है।

हिन्दी काव्य-जगत में 'समकालीन' शब्द काफी विवादास्पद रहा है। किसी भी रचनाकार को समकालीन परिवेश में परखना अत्यंत सूक्ष्म एवं जटिल कार्य होगा। हम 'समकालीन कविता' की पहचान करने जा रहे हैं तब हमारे सामने सवाल उठता है कि उसका अर्थ कितना सार्थक है ? इसकी परिधि कहाँ तक है ? इसके पुरोधा कौन हैं ? पोशाक कौन हैं ? किसने इस कविता को परिवर्धित किया है ? इतना ही नहीं; नवोदित रचनाकारों का लेखा-जोखा भी करना आवश्यक है। नई कलम की पहचान भी अनिवार्य है। तब जाकर 'समकालीन कविता' का परिदृश्य स्पष्ट हो सकता है।

समकालीन का सतही अर्थ है – अपने समय का। इसके पर्याय शब्द हैं - समसामयिक, अद्यतन, युगीन। आज उसे 'वर्तमान' के रूप में पहचाना जाता है। अर्थात 'जो वर्तमान संदर्भ में मौजूद और सार्थक होता है, वह 'समकालीन' है। डॉ॰ परमानंद श्रीवास्तव, डॉ॰ संतोषकुमार तिवारी, रघुवीर सहाय, डॉ॰

राहुल, नंदकिशोर नवल जैसे विद्वानों ने 'समकालीन कविता' को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखकर उसे परिभाषित किया है। उन सबका स्वर मिलाते हुए कह सकते हैं कि 'समकालीन कविता अपने समय की प्रवृत्तियों को पहचानकर और व्यक्ति एवं समाज की विषम स्थितियों से अवगत होकर गहरी संवेदना के साथ युगबोध को अभिव्यक्त करती है। समकालीन कविता का असली आधार यथार्थ है। जीवन की विसंगतियों को इसने विशेष महत्व दिया है। सपाटबयानी में जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करना समकालीन कविता का महत्वपूर्ण कार्य है। समकालीन कविता पढ़कर हमें वर्तमान समय का बोध होता है।'

इस कविता ने अपने पूर्व की कविताधारा के भाव और भाषा दोनों को नकार कर खुले शब्दों में व्यक्त होने का साहस किया है। इस संदर्भ में धूमिल ने खूब लिखा है, 'छायावाद के कवि शब्दों को तोल कर रखते थे, प्रयोगवाद के कवि शब्दों को टटोल कर रखते थे, नई कविता के कवि शब्दों को गोल कर रखते थे, सन साठ के बाद के कवि शब्दों को खोल कर रखते हैं।' 'साठोत्तरी कविता' समकालीन कविता का दूसरा समप्रचलित नाम है। हिंदी में समकालीन कविता एक लंबी विकास-प्रक्रिया की परिणति है। समकालीन कवि विभिन्न समस्याओं से गुजरकर सही और सार्थक मूल्यों की तलाश करता है। वर्तमान बोध समकालीनता को व्याप्ति प्रदान करता है|

जन-सामान्य की पीड़ा घनीभूत होती गई। कविता स्थान-काल-पात्र के करीब बनी रही। समकालीन कविता का लंबा अंतराल राष्ट्रीय स्तर की आपदाओं और सामान्य जन के आहत शब्दों का साक्षी बनी। वर्तमान काल में आते-आते एक बात स्पष्ट हो जाती है कि नयी कविता का सरोकार समकालीन कविता से कदापि नहीं है| सातवें दशक में नवगीत ने भी भावबोध और अभिव्यक्ति को लेकर सक्षम लेखन किया। नवगीत क्षेत्र में नईम, रमेश रंजक, दुष्यंत कुमार, ओम प्रभाकर, उमाकांत मालवीय, नरेश सक्सेना, अदम गोंडवी सफल-सक्षम हस्ताक्षर हैं। लेकिन करुणता यह कि इस दौर की कविता की अधिकांश चर्चाओं में नवगीत हांशिये पर रहा। इसके पीछे यह दृष्टि-संकोच बलवत्तर रहा होगा कि

गीत की विधा नवगीत को समकालीन कविता की विधा में समाविष्ट नहीं किया जा सकता। इस दशक में एक-साथ चार अंतर्धाराएँ प्रवाहित हुई। 1॰ मृत्युबोध से पीड़ित कवि, 2. प्रतिश्रुत कवि, 3. अस्तित्व की बेहूदगियों के कवि और 4. नवगीत धारा। सातवें दशक की कविता को सर्वांगी रूप से देखें तो अकविता के साथ-साथ चलने वाले अन्य नाम भूखी पीढ़ी, श्मशानी पीढ़ी, सनातनी-सूर्योदयी कविता, प्रतिश्रुत कविता, सहज कविता, युयुत्सुवादी कविता, आज की कविता, गुरिल्ला कविता आदि पीढ़ियाँ समाप्त हो गयीं। लेकिन गीत-गज़ल ने अनेक ऊँचाइयाँ प्राप्त की। वैसे तो गज़ल आदिकाल के कवि अमीर खुसरो से लेकर आज तक अनवरत चलता काव्य-रूप है। आगे चलकर प्यारेलाल शोकी, मीरा, गिरधर दास, भारतेंदु, प्रसाद, निराला द्वारा गज़ल की एक परंपरा चली। लेकिन गज़ल के सही मिज़ाज से परिचित करने वाले तो शमशेर बहादुर सिंह को माना जाता है। उनमें उर्दू का असर और रूमानी स्वर मिलता है। "शमशेर के बाद हिंदी की ग़ज़लों में एक नये युग की शुरूआत होती है, जिसे हम सामाजिक यथार्थ का युग कह सकते हैं। हिंदी के गजलकारों ने बदलते परिवेश को अपनी ग़ज़लों के माध्यम से व्यक्त किया है। हिंदी की ये गजलें आम आदमी की समस्याओं से जुड़ गयी है। ये ग़ज़लें समयगत सच्चाइयों का एक अनूठा दस्तावेज बनकर सामने आती हैं। शमशेर बहादुर सिंह से प्रेरणा पाकर जो कवि हिंदी में चमक उठा वह है – दुष्यंत कुमार त्यागी|"1 गज़ल शब्द कानों पर पड़ते ही हमारे दिलोदिमाग में दुष्यंत कुमार का नाम गूंजने लगता है। दुष्यंत कुमार से पूर्व गज़ल की परंपरा मुखरित थी, लेकिन "दुष्यंत कुमार की ग़जलें प्रकाश में आई तो निश्चित तौर पर नया तेवर, नया आक्रोश, व्यंग्य था, आम आदमी की व्यथा थी, अतृप्ति थी, असंतोष था, सुगबुगाहट, छटपटाहट और नयेपन का शंखनाद था। काव्य की दुनिया में परिवर्तन की मशाल थी।"2 उनकी चीख देखिए,

"सिर्फ़ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं। / मेरी कोशिश है कि सूरत
बदलनी चाहिए।|

मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में ही सही। / हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए।|"3

दुष्यंत कुमार ने वर्षों से त्रस्त, ठगी जनता को आत्मविश्वास का भाव जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। गज़ल खूब ताक़तवर है, इस बात का साक्ष्य एक घटना देखें, 'सारिका' पत्रिका में जब 'दुष्यंत स्मृति-विशेषांक' छपा तो पत्रिका को चाहने वालों की संख्या एक दिन में एक लाख से अधिक हो चुकी थी। साहित्य-जगत ही नहीं; आम जनता में भी गज़ल रमने लगी। समकालीन हिंदी गज़ल की शुरूआत इस घटना-बिंदु से माना जाने लगा। जो कि हिंदी गज़ल लिखने की प्रेरणा दुष्यंत कुमार को उनके गुरू शमशेर बहादुर सिंह से मिली थी। वैसे भी हिंदी काव्य-यात्रा के सभी पडावों पर गज़ल ने अपना अस्तित्व कायम बनाए रखा है। उसका सफ़र करने पर पता चलता है कि यदि हिंदी गज़लकारों का नाम लें तो भी लम्बी फेहरिश्त बन जाती है। किस-किस का नाम लें। गज़ल परंपरा के निर्वाह में गोपालदास सक्सेना 'नीरज', त्रिलोचन शास्त्री, चंद्रसेन विराट, सूर्यभानु गुप्त, भवानी शंकर, जहीर कुरेशी, कुमार रवीन्द्र, रामकुमार कृषक, देवेन्द्र शर्मा 'इंद्र', डॉ. गणेशदत्त सारवत, डॉ. हनुमंत नायडू, बी.के. जौहरी, अंसार कंबरी, डॉ. उर्मिलेश, अशोक 'अंजुम', विजय कुमार सिंघल, दीनेश शुक्ल, महेश अनघ, ज्ञान प्रकास विवेक, राजेंद्र तिवारी, डॉ. अनंत राम मिश्र 'अनंत', डॉ. रमा सिंह, डॉ. भारत गौड़, डॉ. प्रसाद 'निष्काम', राधेश्याम शुक्ल, मनोज तोमर, नीतीश्वर शर्मा 'नीरज', निर्दोष हिसारी, राजकुमारी 'रश्मि', हितेश व्यास शलभ श्री राम, राजेश रेड्डी, निदां फ़ाज़ली, मुनव्वर राणा, डॉ. कुंवर बेचैन, राहत इंदौरी, वसीम बरेलवी, आदम गौंडवी, डॉ. कुमार विश्वास, भगवानदास जैन आदि का नाम आदर के साथ लिया जाता है।

पिछले 50 वर्षों में "हिंदी गज़ल के प्रति जो अनुराग उत्पन्न हुआ है वह वर्णनातीत है। आज की हिंदी गज़ल का सम्बन्ध आज के भयानक और निर्लज्ज यथार्थ से है, अमूर्त और वायवीय कल्पनाओं से नहीं मसलन भूमंडलीकरण के विभिन्न रूपों, प्रभावों और दुष्प्रभावों से उपजे विमर्श को अपने शब्द देते हुए

आज के गज़लकार जीवन के श्रेष्ठतम मूल्यों का समर्थन कर रहे हैं। आज के गज़लकार समानधर्मा हैं इसलिए इनकी ग़ज़लों में भाषा और चेतना के नए आयाम प्रस्तुत हो रहे हैं, उन्हें आज समझने की आवश्यकता है।"4 बदलते परिदृश्य के साक्षात्कार से हमें विविध संदर्भों में मजबूत एवं प्रभावक स्वर मिलते हैं। समकालीन हिंदी गीत-गज़ल का परिदृश्य देखते हैं तो पता चलता है कि इसमें सामाजिक-धार्मिक-राजनैतिक-आर्थिक-सांस्कृतिक सरोकार व्यक्त हैं। मतलब इसमें आज की विकराल स्थिति और सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति है। इसने समय के भयावह परिवेश को उसकी समग्रता के साथ व्यक्त करने की कोशिश की है। हर क्षेत्र में उसका स्वर पूरेपन के साथ उभरा है। महानगरीय सभ्यता का खोखलापन, प्रदूषण के प्रति चिंता, राजनैतिक क्रियाकलाप, आक्रोश और अनास्था की अभिव्यक्ति, दलित चेतना, मानवतावादी दृष्टि, भारतीय लोक-संस्कृति का प्रतिबिंब, नारीत्व एवं ममत्व, प्रकृति के प्रति तादात्म्य, विस्थापन की व्यथा जैसे विषय वर्तमान गीत-गज़ल के केंद्र में हैं।

वर्तमान गीत-गज़ल मानव मुक्ति की चाहत है। इसने हिंदी साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है| पिछले पाँच दशक के कवियों ने तो अपने महत्वपूर्ण विषयों द्वारा हिंदी गीत-गज़ल के घनत्व और स्थायित्व को रेखांकित किया है, सौंदर्यबोध को मानवबोध से जोड़कर संवेदना व्यक्त की है। उनमें रामदरश मिश्र का नाम भी हिंदी गज़लकार के रूप में ख्यात है। जब उनके कविता संग्रह 'आग की हंसी' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार देने की घोषणा सुर्खियों में आई तो सोशल मीडिया में उनकी गजल के इस शेर की याद बहुधा लोगों को आई थी : 'जहां आप पहुंचे छलांगे लगाकर, वहां मैं भी पहुंचा मगर धीरे-धीरे।' मिश्र जी ने अनेक विधाओं में अपनी कलम का परिचय दिया है; लेकिन "साहित्य-जगत में उन्होंने अपनी पहली पहचान एक कवि के रूप में – नए कवि के रूप में बनाई थी।"5 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ', 'बाजार को निकले हैं लोग' एवं 'हँसी ओठ पर आँखें नम हैं' रामदरश मिश्र के महत्वपूर्ण गज़ल-संग्रह हैं।

'बाजार को निकले हैं लोग' में जीवन का यथार्थ बख़ूबी निरुपित हुआ है। शीर्षक ही संकेत देता है कि इसमें शहरी जीवन की विषमता व्यक्त हुई है। एक तरफ, शहरी जीवन की स्वार्थपरकता, अमानवीयता, अकेलापन जैसे विषयों पर प्रकाश डाला गया है तो दूसरी ओर, ग्राम्य जीवन की सुकुमारता, सहजता, सरलता प्रकट हुई है। "एक ठेठ देहाती मन यंत्रविज्ञान के शिकंजे में जीने को अभिशप्त है। यह व्यथा-कथा केवल रामदरश मिश्र की नहीं है, प्रकृति की गोद गँवा चुके अनेक नगरजीवी बौद्धिकों की है।"6 मिश्र जी ने मूर्त और मुखर दुनिया में प्रवेश किया है। वे हमेशा अपने अनुभव की जमीन पर खड़े मिलेंगे। इसी स्तर पर वे अनुभति और अभिव्यक्ति दोनों पक्षों में अपने समकालीन रचनाकारों से भिन्न और विशिष्ट हो जाते हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश का यथार्थ चित्रण करने में कथा-साहित्य को माध्यम बनाकर भले ही 'रेणु' ने श्रेय पाया हो; लेकिन कविता के माध्यम से परिवेशगत जीवन के यथार्थ रूपांकन में मिश्रजी अधिक सफल रहे हैं, यह हम सब जानते हैं। स्वयं मिश्र जी का कथन है, "मैंने अपनी इन कविताओं में अपने परिवेश को जी कर प्राप्त किये गये अनुभव सत्यों को परिवेश के ही बिम्बों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। मेरे अनुभवों की यात्रा अत्यंत अन्तरंग स्व से लेकर बृहत्तर सामाजिक यथार्थ तक है, मन की एकांत सौंदर्य प्रतीतियों से लेकर सामाजिक विघटन, मूल्य-मूढ़ता और मानव-यातना की उद्विग्नताओं तक है, धुप की तरह एक फूल से लेकर आकाश के आंदोलित विस्तार तक है।"7 'हँसी ओठ पर आँखें नम हैं' में मिश्र जी ने 101 ग़जलों में व्यक्ति, समाज और देश के बहिर्जगत और अंतर्जगत पर फ़ोकस किया है। यहाँ हमें कवि की तुलनात्मक दृष्टि का परिचय यहाँ मिलता है। देश की व्यवस्था का परिचय संकेतात्मक शैली में देखिए,

"रोशनी में बड़ा अँधेरा है / आज यह कौन सा सवेरा है /
रात भर साथ हम चले जिसके / दिन में देखा कि वह लूटेरा है|"8

कवि ने महानगरीय जीवन पर व्यंग्य किया है। यांत्रिक नगर जीवन में भीड़ बहुत है लेकिन व्यक्ति ख़ुद अकेला है। प्रत्येक आदमी शहरी जीवन से संत्रस्त है। ऐसे

में "मिश्रजी के लिए मनुष्य ही साहित्य, कला आदि सारी चीजों के लिए कसौटी है। वे अपने गाँव की प्रकृति की रम्य लीलाओं में हों या गाँव से मिलों दूर दिल्ली में, उनकी तलाश मनुष्य की होती है। वे मनुष्य को देख लेना चाहते हैं, छूना चाहते हैं। वे शरीर से दिल्ली में तो मन से गाँव में रहते हैं।... वे उन लोगों में नहीं हैं जो साहित्य और जीवन में अलग-अलग नजर आते हैं।"9 मिश्रजी की गज़लें सामान्य जन के निकट हैं। उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रकट करने वाली गज़ल देखें,

"बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे / खुले मेरे ख़्वाबों के पर धीरे-धीरे /
किसी को गिराया न, खुद को उछाला / कटा जिंदगी का सफ़र धीरे-धीरे /
जहाँ आप पहुँचे छलांगें लगाकर / वहाँ मैं भी पहुंचा मगर धीरे-धीरे।"10

आज व्यक्ति किसी भी कीमत पर धनिक बनना चाहता है। बाजारवाद की यह प्रवृत्ति बड़ी खतरनाक है। कवि ने कहा है,

"बाज़ार को निकले हैं लोग बेच के घर को / क्या हो गया है जाने आज मेरे शहर को / कितने हैं मेहरबान यहाँ के बहेलिए / कहते हैं परिंदों को 'ऊडो' पर को काट के।"11 दुष्यंत कुमार और रामदरश मिश्र की कविता के बिना कवि-सम्मेलन अधूरा होगा। वस्तु और शिल्प की दृष्टि से भी उनकी कविता बेनमून है।

वर्तमान हिंदी काव्य पर दृष्टिपात करने पर अवश्य "हम देखते हैं कि काव्य की धारा फिर से अपने आदर्श-काव्य की ओर मुड़ रही है। कवियों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई है। नए-नए कवि और उस्ताद पैदा हो गए हैं। छंद-बद्ध रचना का चक्र फिर से चलने लगा है। गीत, सवैया, घनाक्षरी और दोहे जैसी विधाओं की तूंती बोलने लगी है। यह वर्तमान की काव्यधारा है जिसे अदृष्टिगत नहीं किया जा सकता।"12 इस धारा में अनगिनत गज़लकार उभरे हैं। उनमें डॉ. चंद्रपालसिंह यादव कविता के मर्म, अभिप्राय एवं मानकों को ध्यान में रखकर लिखने वाले एक ऐसे कवि हैं जो मानवीय संवेदनाओं और समसामयिक संदर्भों को अपने गीतों व ग़ज़लों के माध्यम से एक अनूठे अंदाज में कह देने की क्षमता

रखते हैं। ... उनकी ग़जलें सांचे में ढल कर एक दिलकश अंदाज में अपने रंग बिखेरते हुए परिलक्षित हो रही हैं।"13 डॉ. चंद्रपालसिंह यादव सामाजिक विद्रूपता, नए रचनाकारों की नई शैली, लोकमंगल की भावना, वर्तमान अवसरवादिता जैसे विषयों पर खुलकर लिखते हैं। देखिए,

"निश्छलता की नर्म रुई से नातों की वर्तिका बनाएँ।/सद्भावों का स्नेह डालकर चलो दिलों के दिये जलाएँ।...
ध्येय एक हो यही हमारा सभी सुखी हों सभी स्वस्थ हों,/मानवता की डगर पर चलना सीखें और सिखाएँ।
जाति मनुष्य एक है सबकी यही दिवाली का उजियारा,/ऊँच-नीच के अन्धकार को चलो दिलों से आज मिटाएँ।
सारी दुनिया ही कुटुंब है यही हमारा अभिज्ञान है, / एक नवीन उमंग हर्ष में आओ दीपावली मनाएँ।"14

यहाँ कवि ने सर्व-धर्म समभाव और लोकमंगल की कामना की है। गज़ल में प्रस्तुत विचार हमें तुलसीदास, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर की याद दिलाता है। कवि ने सच्चा मनुष्य धर्म निभाने और सार्थक जीवन जीने की गुरुचाभी दी है। डॉ. चंद्रपालसिंह यादव ने वर्तमान जीवन की त्रासदी बताकर व्यक्ति को हर कदम पर संभलकर चलने की सीख दी है। जगत इतना मौकापरस्त, स्वार्थी हो गया है कि वह अपने छोटे से लाभ के लिए हद से गुज़रने में हिचकिचाता नहीं है। ऐसे में कवि कहते हैं,

"दर्द अपना किसी को बताना नहीं, / आजकल रहवरों का ठिकाना नहीं।
हर तरफ़ साँप की बाँबियाँ हैं यहाँ, / बीन तुम भूलकर भी बजाना नहीं।...
दौलतें सब धरी की धरी रह गईं / प्रेम से बढकर ख़जाना नहीं।
साँच पर जान देना भी सौभाग्य है / झूठ के सामने सर झुकाना नहीं।"15

कवि ने 'अभी वक्त है कुछ सुधर जाइएगा' नामक गज़ल में समाज को नेक पथ पर चलने का, वादा निभाने का, शुभ मार्ग अपनाने का, जमीन से जुड़े रहने का, एकता बनाए रखने का, पुरखों के संस्कारों को बनाये रखने का अनुरोध

किया है, सन्देश दिया है। वर्तमान कविता को गहरी मानवीय चिंता है। उसे सम्पूर्ण विश्व की मानवता के प्रति चिंता है, ऐसा कहें तो अतिशयोक्ति नहीं है। क्योंकि 'समकालीनता' गुण की सार्थकता मानवतावाद की स्थापना है। समकालीन कवि विभिन्न समस्याओं से गुजरकर सही और सार्थक मूल्यों की तलाश करता है। वर्तमान बोध समकालीनता को व्याप्ति प्रदान करता है। मानव-मूल्यों की स्थापना और उनका जतन समकालीन कविता का उद्देश्य रहा है। सशक्त हस्ताक्षर धूमिल कहते हैं, 'कविता भाषा में आदमी होने की तमीज है।' सूर्यभानू गुप्त ने ठीक ही लिखा है, "हिंदी गज़ल की सबसे बड़ी खूबी है उसकी भारतीयता। वह उर्दू की तरह फारसी के मोह-जाल में नहीं फँसी और इसीलिए उसकी जेरोक्ष कापी बनने से बच गई। वह अपने देश की जमीन से पूरी तौर पर जुड़ी हुई है। उसके काव्य-संस्कार, उसका चिंतन, उसकी उपमाएँ, उसके प्रतीक, उसकी संपूर्ण काव्य-भंगिमा भारतीय है। हिंदी की गज़ल हिंदी कविता के अभ्यस्त पाठकों के दिमाग में गज़ल के प्रति वर्षों की जमी हुई रूपवादी, लिजलिजी रूढ़ धारणा को बहुत कुछ ध्वस्त ही नहीं करती, बल्कि आधुनिकता के नाम पर एक बौद्धिक छद्म में जकड़ी हुई कविता से विमुख पाठकों की दिलचस्पी फिर से कविता में जगाती है| हिंदी की ग़जल अपने देश-काल की सामाजिक, राजनैतिक विसंगतियों को बड़े ही सूक्ष्म और सटीक ढंग से उजागर करती है। आज की हिंदी गज़ल अपने समय की सच्चाइयों से अन्तरंग साक्षात्कार कराती हैं, इसीलिए हिंदी में कोई काव्य-शैली इतनी लोकप्रिय कभी नहीं हुई जितनी आज गज़ल हो चुकी है।"16

वर्तमान गीत-ग़ज़लों में डॉ. भावना सावलिया का नाम लिया जा सकता है। भावना जी ने अपने 'बहा दिया पानी में लाल', 'अमर तिरंगे की है शान', 'मनुज क्यों करता है अभिमान' नामक गीतों में राष्ट्रप्रेम, मानवधर्म जैसे विषयों पर प्रकाश डाला है। उनका स्वर है कि,

> "'मनुष्य क्यों करता है अभिमान, जिंदगी को क्षण भंगुर जान।
> भला रख सबसे ही व्यवहार, पहन मानवता का परिधान।|"17

भावना जी ने शुभ कर्म रूपी फूल बांटने, द्वेष-ईर्ष्या त्यागने, दान-पुन्य करने, अहंकार मिटाने का सन्देश देकर मनुष्य-जीवन को स्वर्णिम बनाने पर मजबूर किया है।

डॉ. ऋषिपाल धीमान 'ऋषि' ने भी हिंदी ग़ज़लों में सिद्धि प्राप्त की है। "ऋषिपाल धीमान की ग़ज़लें अधिकांश सामाजिक और मानवीय सरोकारों की ग़जलें होती हैं। इनकी दृष्टि समकालीनता शाश्वती दोनों पर बराबर रहती है। जहाँ एक ओर अपने समय की विसंगतियों, समस्याओं पर इनकी पैनी नजर है वहीँ जीवन-मूल्यों के स्थापन में भी ये प्रयासरत रहते हैं। यह जीवन को सम्पूर्णता के साथ अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करते हैं।"18 हमारी राजनीतिक विसंगतियों पर उनकी वाणी धारदार बनी है। देखिए,

"विषैला कर दिया वातावरण जिन कालियाओं ने / यही अब देखना है उनका मर्दन कौन करता है ?
जहाँ रावण के अनुगामी मुखर हों और सम्मानित / वहां फिर रामलीलाओं का मंचन कौन करता है?"19

कवि होली चली जाने पर भी आशावादी बने रहते हैं। उनकी कलम ने सांप्रदायिक सद्भाव, स्वार्थ-वृत्ति, भौतिकतावाद जैसे विषयों पर प्रकाश डाला है। अभिव्यक्ति पक्ष को लेकर धीमान के बारे में डॉ. विनोदकुमार वर्मा लिखते हैं, "इनकी ग़ज़लों की भाषा एकदम सरल, सुबोध और सहज होती है। इनकी ग़ज़लों में आलंकारिकता उतनी ही होती है जितनी कथ्य को सम्प्रेषण में आवश्यक है। मुहावरेदार भाषा इनकी पहचान है| नये-नये विषय, नये-नये प्रतीक, नई-नई रदीफ़ों का प्रयोग इनको एक प्रयोगधर्मी गज़लकार सिद्ध करता है|"20

मीना भट्ट 'सिद्धार्थ' कविता को सैद्धांतिक रूप में प्रस्तुत करने में माहिर हैं। 'भाग्यविधाता', 'सागर की उत्ताल तरंगें हतभागी हैं तट सारे', गुलसिताँ अपना हमेशा ही हरा रक्खेंगे हम', 'खोजता फिरता हूँ पर मिलता नहीं दिल का

पता', गैरों ने समाअत किया जब प्यार का लहजा' नामक रचनाओं में रहस्यात्मक रूप से वर्तमान वैश्विक परिदृश्य को प्रस्तुत किया है। देखिए,

"मौन हुई अब साँसें-धड़कन, भंग शांति है मरघट की।
दहक रहा है सूर्य आज तो, मृत्यु निकट है पनघट की।|
छाई धुंध अनाचारों की खंडित हैं भोले तारे।
क्रूर काल ने डाका डाला, पुष्पविहीन हुई डाली।
जीवन की क्षण भंगुरता में, खोई ओठों की लाली।|
पीड़ित है मानवता सारी, मूक-बधिर भाईचारे।"21

हमारा देश विकास की अंधी दौड़ में विनाश की सुनामी लेकर आगे बढ़ रहा है, इस बात से गज़लकार बहुत चिंतित हैं। ग़ज़लों के अलावा कविता, गीत, दोहों में भी उन्होंने नाम बनाया है।

बहुमुखी प्रतिभा की धनी अर्चना शुक्ला भी हिंदी गज़ल क्षेत्र में पदचिह्न हैं। उनकी ग़ज़लों में मोटे तौर पर प्रेम का सन्देश है। यह प्रेम वैयक्तिक तो है ही; राष्ट्र के और पर्यावरण के प्रति भी उनका प्रेम व्यक्त हुआ है। प्रदूषण आज हमारा अहम सवाल है। औद्योगिकीकरण, पैसे के पीछे स्वार्थन्ध दौड़ आदि ने जल-वायु-ध्वनि प्रदूषण की समस्या खड़ी कर दी है। प्रदूषण की अनेक विभीषिकाओं ने मनुष्य जीवन को आक्रांत कर दिया है। प्रदूषण के कारण प्रकृति ही नहीं; मानव जाति ख़तरे में आ गयी है। एक ओर दल निष्ठता के विरुद्ध जन-निष्ठता की ओर सैद्धान्तिक जड़सूत्रवादिता की जगह स्वतंत्र चिंतन की प्रवृत्ति प्रखरता से सामने आयी तो दूसरी ओर परमाणु शक्ति के दुष्प्रभाव के प्रति, मनुष्य के ही दुष्कृत्यों द्वारा इस विश्व में मनुष्य के एक मात्र आवास-पृथ्वी और उसके पर्यावरण के विनाश के परिणामस्वरूप प्रकृति के प्रति विनम्रता, एक नयी रागात्मकता भी दिखाई देती है। आज-कल प्रकृति में मनुष्य के जो अतिरिक्त हस्तक्षेप हैं, उनसे उत्पन्न समस्याओं के प्रति भी हिंदी कवि सचेत हैं। ख़ासकर समकालीन कवियों ने पर्यावरण-प्रदूषण से उत्पन्न चिंता व्यक्त की है साथ-साथ दूरगामी दुष्परिणाम के प्रति इशारा किया है। तकनीकी सभ्यता धरती के स्नायुतंत्र को छिन्न-भिन्न

करेगी। इस विषय को लेकर अर्चना शुक्ला जी का स्वर उभरा है। 'दिल मेरा भी रोता है', 'जिंदगी', 'मित्र' जैसे शीर्षक ही बहुत कुछ कह देते हैं । इश्क़ में सबकुछ लुटा कर देखें; काली रात भी चाँदनी बनेगी। चाह परस्पर बनी रहनी चाहिए। प्रिय को चोट लगे तो मरहम बनना चाह है। प्रिय दर्द सहते-सहते टूट जायें तो उसका हाथ थामना चाह है। कवयित्री कहती है,

"चाह मेरी सदा तुम रहो। / साथ मेरे सदा हर जनम तुम रहो।...
टूट जाऊं कभी दर्द सहते हुये' / हाथ थामे मेरा हर क़दम तुम रहो।"22

आज की ग़ज़लों में केवल नाजुक भावों की अभिव्यक्ति नहीं होती, बल्कि ज़िंदगी के कड़ुवे अनुभवों की भी सशक्त अभिव्यक्ति होती है। 'दिल मेरा भी रोता है' गीत की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं,

"कैसे देखूँ रोते तरु को, दिल मेरा भी रोता है।
जीवन माला तोड़ रहा क्यों, जिसको स्वयं पिरोता है।|...
नई सड़क की ख़ातिर देखो, / राह पुरानी भूल गए।
हरियाली जिस पथ पर कल थी, / उस से सारे फूल गए।|
काट रहा क्यों निर्दयता से, जिसको मानव बोता है।
जीवन माला तोड़ रहा क्यों, जिसको स्वयं पिरोता है।|"23

यहाँ अधुनातन की धुन में पागल मनुष्य अपने अस्तित्व को खतरे में डाल रहा है। वह अपने बच्चों को फिर क्या दे पायेगा ? इस प्रकार सो रहे मनुज को जगाने का कार्य रचना जी ने अपनी लेखनी द्वारा किया है। "महानगरीय दौड़धूप और औद्योगिकता से कटकर कवि प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करना चाहता है। प्राकृतिक उपादानों से सीधा जुड़ाव रखने के पीछे कवि का आशय समाज में जीवन का स्पंदन भरने का है। कवि चाहता है कि मनुष्य सही अर्थ में सहज, स्वर्णिम जीवन को चुनें। प्रकृति के सानिध्य में रहकर आदमी मानसिक-शारीरिक अनेक समस्याओं से बच सकता है, नारकीय जीवन से पर रह सकता है।"24

आशावादी कवि शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय 'असीम' प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करने में माहिर हैं। वे लिखते हैं,

"आओ मेरे साथ उड़ चलो, / केसर का मकरन्द चखाऊं।
सागर की उद्दाम लहर जब, / सरगम छेड़े, गीत सुनाऊं।...
रेत की भरी मुट्ठी – सा जीवन, / रिस कर रीता हो जायेगा।
जिस पर है अभिमान तुम्हें, वह, / सब कुछ इक दिन खो जायेगा।"25

यहाँ पृथ्वीलोक-वासी के लिए सही और सार्थक जीवन का सन्देश है; साथ-साथ नासमझ व्यक्ति को मीठी-मधुर भाषा में सलाह भी है। कहें कि अपनी भावनाओं एवं विचारों को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने के लिए गज़ल ही बड़ा सशक्त माध्यम है।

कृष्ण कुमार श्रीवास्तव 'कृष्णा' ने अपने गीत-ग़ज़लों में ज़िंदगी का सार एवं जीवन-मूल्यों के प्रति समर्पण की भावना व्यक्त की है। 'ज़िंदगी का सार' गीत हमें हरिवंशराय बच्चन के दर्शन की प्रतीति कराता है। वे कहते हैं,

"जीत है गर कभी तो कभी हार है। / अस्ल में ज़िंदगी का यही सार है।
आदमी जो भयाक्रांत होता नहीं। / घोर दुख में सहज धैर्य खोता नहीं।
सामने हो समस्या भले ही कठिन - / कर पलायन कभी किन्तु रोता नहीं।
हर सफलता विफलता के उस पार है।"26

निष्कर्ष

इस प्रकार गज़ल सागर में गागर भर देने की अपूर्व क्षमता रखती है। वर्तमान हिंदी गीत-ग़ज़लों का सफ़र करने पर कह सकते हैं कि "सभी कवि व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के विकास और उत्थान के लिए सच्चा प्रहरी बनकर कविताओं के माध्यम से सर्वजनहिताय की भावना को लेकर अपना कर्तव्य निभाते दिख रहे हैं।... कविताएँ वर्तमान समय की सामाजिक, राजनीति, आर्थिक, धार्मिक आदि कोई-न-कोई बात या समस्या को उठा रही हैं, इतना ही नहीं समस्याओं का समाधान देने का प्रयास भी कर रही हैं। तदुपरान्त राष्ट्र या भारत की महिमा का

गान इन रचनाओं द्वारा करके देश का गौरव बढाया गया है। माँ भारती के वीर सपूतों के नि:स्वार्थ बलिदानों की यशगाथा गाकर उसको सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित की गई है। महान वीर पुरूषों की संघर्ष गाथा व्यक्त करके आज के नव-युवकों को प्रेरणा दी गई है, भारत को स्वस्थ और समृद्ध बनाने के लिए पर्यावरण का महत्त्व बताया गया है... सभी रचनाएँ आज के निजी स्वार्थ में अंधे बने आदमी को सही रास्ता दिखाती है और आपा-धापा की ज़िंदगी से छुटकारा दिलाने के लिए प्रेम-सौहार्द का सन्देश देकर समाज और राष्ट्र को नई रोशनी प्रदान करती है।"27 समग्रत: वर्तमान ग़ज़लें गतिविधियों से प्रभावित देश के राजनैतिक-आर्थिक-सामाजिक स्वर का ऐसा चित्रण कर रही हैं कि उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि कविता की वापसी हुई है।

संदर्भ सूची

1. सरदार मुजावर, हिंदी गज़ल गज़लकारों की नज़र में, पृ. 19
2. वही, 51
3. वही, 51
4. वही, 50
5. डॉ. गुंजन ए. शाह, रामदरश मिश्र के उपन्यास : चेतना के स्वर, पृ. 4
6. रामदरश मिश्र, दिन एक नदी बन गया, पृ. 493
7. रघुवीर चौधरी (सं.), रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. 2
8. रामदरश मिश्र, हँसी ओठ पर आँखें नम हैं, पृ. 266
9. रामदरश मिश्र के उपन्यासों में समाज-जीवन, डॉ. प्रकाश शंकरराव, पृ. 48
10. रामदरश मिश्र, हँसी ओठ पर आँखें नम हैं, पृ. 24
11. वही, पृ. 24
12. डॉ. चंद्रपाल सिंह यादव (सं.), समकालीन विमर्श में वर्तमान हिंदी काव्य, पृ. 14
13. वही, पृ. 25
14. वही, पृ. 33

15. वही, पृ. 34
16. सरदार मुजावर, हिंदी गज़ल गज़लकारों की नज़र में, पृ. फ्लैप से
17. डॉ. चंद्रपाल सिंह यादव (सं.), समकालीन विमर्श में वर्तमान हिंदी काव्य, पृ. 14
18. वही, पृ. 26
19. वही, पृ. 46
20. वही, पृ. 26
21. वही, पृ. 51
22. वही, पृ. 59-60
23. वही, पृ. 56
24. वही, पृ. स्वर
25. वही, पृ. 63
26. वही, पृ. 68
27. वही, पृ. 17

हरिशंकर परसाई का व्यंग्य साहित्य

एम एस सरस्वती दुबे
हिंदी विभाग, किरोड़ीमल महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
ईमेल- dubeymss2131@gmail.com
मोबाइल नंबर-7354463467

सारांश

हिन्दी व्यंग्य को शिखर तक लाने व साहित्यिक प्रतिष्ठा दिलवाने में परसाई जी का अद्वितीय स्थान है। व्यंग्य लेखन जैसे गम्भीर कर्म के लिए परसाई जी सदैव स्मरण किए जाएंगे। परसाई जी सिर्फ जनता की समस्याओं को अपने लेखन की विषयवस्तु बनाने मात्र तक सीमित नहीं रहे हैं वे उनके साथ समाधान प्राप्त होने व लेखनी के माध्यम से न्याय दिलाने तक खड़े रहे हैं। इस लेख के माध्यम से परसाई के व्यंग्य साहित्य से परिचय कराने का प्रयास किया गया है।

बीजशब्द- *व्यंग्य, संरचना, भ्रष्टाचार, कुप्रथा, विसंगति, हँसी, अधरोष्ठ*

शोध आलेख

चढ़ी आँखे और माथे में उपस्थित बल रेखाएँ, विचार मग्न भंगिमा की छवि हमारे मन मष्तिष्क में हरिशंकर परसाई जी का नाम आते ही बन जाती है। किसी भी कुव्यवस्था, कुप्रथा, भ्रष्टाचार निहायती कार्य को अपने व्यंग्य कौशल से पूरी शक्ति के साथ पछाड़ देने की प्रबल क्षमता परसाई में मौजूद थी। जो व्यक्ति और संस्थानों की ठीक-ठाक ख़बर अपनी लेखनी से लेते थे ।

आपका जन्म 22 अगस्त, 1924 को जमानी गाँव (इटारसी के पास) जिला-होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) में हुआ। आपकी जन्मतिथि को लेकर भ्रम व विवाद दोनों है। ''इस तरह गुजरा जन्मदिन' शीर्षक प्रकाशित वैचारिक लेख में वास्तविक स्थिति को परसाई जी स्पष्ट करते हैं-"मेरी जन्म तारीख 22 अगस्त 1924 छपती है। यह भूल है। तारीख ठीक है। सन् गलत है। सही सन् 1922 है। मुझे पता नहीं मैट्रिक के सर्टिफिकेट में क्या है। मेरे पिता ने स्कूल में मेरी उम्र दो साल कम लिखाई थी, इस कारण कि सरकारी नौकरी के लिए मैं जल्दी

'ओव्हरएज' नहीं हो जाऊँ। "1 परसाई ने नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. फिर 'डिप्लोमा इन टीचिंग करने के बाबजूद किसी भी प्रकार की नौकरी नहीं की स्वतंत्र लेखन को ही जीवनचर्या के रूप में चुना। जबलपुर से 'वसुधा' नाम की साहित्यिक मासिक पत्रिका निकाली, घाटे के बावजूद कई वर्षों तक उसे चलाया, अंत में परिस्थितियों ने बंद करने के लिए विवश कर दिया। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में वर्षों तक नियमित स्तंभ लिखे - 'नई दुनिया' में 'सुनो भई साधो'; 'नई कहानियाँ' में 'पाँचवाँ कालम', और 'उलझी-उलझी; 'कल्पना' में 'और अंत में' आदि, जिनकी लोकप्रियता के बारे में दो मत नही हैं। परसाई ने दो दर्जन से अधिक पुस्तकों की रचना की है, जिनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं- हँसते हैं रोते हैं, जैसे उनके दिन फिरे (कहानी संग्रह); रानी नागफनी की कहानी, तट की खोज (उपन्यास); तब की बात और थी, भूत के पाँव पीछे, बेईमानी की परत, पगडंडियों का जमाना, सदाचार की तावीज़, शिकायत मुझे भी है, और अंत में (निबंध-संग्रह); वैष्णव की फिसलन, तिरछी रेखाएँ, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, विकलांग श्रद्धा का दौर (व्यंग्य-लेख संग्रह)। उनका समग्र साहित्य परसाई रचनावली के रूप में छह भागों में प्रकाशित है। आपको महत्त्वपूर्ण साहित्यिक अवदान के लिए जबलपुर विश्वविद्यालय से डी. लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की गयी। कई अन्य पुरस्कारों के अतिरिक्त 1982 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। विश्व शान्ति सम्मेलन (1962) में भारतीय प्रतिनिधि मंडल के एक सदस्य के नाते सोवियत रूस की यात्रा भी की।

हिन्दी में व्यंग्य की परम्परा बहुत प्राचीन है। वैदिक साहित्य से लेकर रामायण, महाभारत में भी व्यंग्य के प्रसंग मिलते हैं। नाथ-सिद्ध साहित्य में धर्म और छद्म आचरण पर व्यंग्य किया गया है। आदिकाल में कबीर एक ऐसे कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं जिनमें व्यंग्यात्मकता की अद्भुत क्षमता है। उन्होंने छुआछूत, पाखण्ड, पूजा और धर्म के प्रति व्यंग्य किया है। कबीर के व्यंग्य में तिलमिला देने वाली आक्रामकता है। लेकिन कबीर के बाद इस व्यंग्य की परम्परा को

निर्बाध रूप से आगे तक ले जाने का प्रयास नहीं हो पाया जिससे बीच में अंतर देखने को मिलता है। रीतिकाल में दरबारी जीवन और श्रृंगारिकता की प्रवृत्ति ही सर्वाधिक मिलती है। रीतिकाल तक व्यंग्य अत्यल्प रूप में मिलता है। आधुनिक युग में व्यंग्य की महत्ता और व्यापकता ने अपना रूप विस्तार किया भारतेन्दु युग से व्यंग्य-परम्परा का अनेकानेक (काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध) विधाओं में श्रीगणेश हुआ। भारतेन्दु और उस युग के अन्य साहित्यकारों ने पश्चिमी सभ्यता, रूढ़िवादिता और अन्धविश्वास पर मार्मिक व्यंग्य किया है। इसका परिणाम यह हुआ कि व्यंग्य एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित हुआ।

व्यंग्य यथार्थ की ऐसी अभिव्यक्ति है जिसमें व्यक्ति और समाज की विसंगतियाँ, विद्रूपताएँ उधड़ आती हैं। कथनी-करनी के सच को सही रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करता है। व्यंग्य आक्रामक होने के साथ ही नैतिक, सामाजिक और सोद्देश्य होता है व्यंग्यकार जीवन के छल-छद्,पाखण्ड-विडम्बना, विसंगति-विद्रूपता पर व्यंग्य करता है। व्यंग्य की मार मीठी होती है। वह सामने वाले को लाचार कर देती है। व्यंग्य को विभिन्न विद्वान निम्न रूप से परिभाषित करते हैं।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार "व्यंग्य वह है जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठे और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने आप को उपहासास्पद बना लेना हो जाता है।" 2

डॉ० रामकुमार वर्मा के अनुसार "आक्रमण करने की दृष्टि से वस्तु-स्थिति को विकृत कर, उससे हास्य उत्पन्न करना ही व्यंग्य है।" 3

हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य के बारे में कहा है- "व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार कराता है,जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफाश करता है।" 4

व्यंग्य के प्रयोजन के विषय में परसाई कहते हैं कि "मैं सुधार के लिए नहीं, बदलने के लिए लिखना चाहता हूँ, यानि कोशिश करता हूँ कि चेतना में हलचल हो जाये, कोई विसंगति नजर के सामने आ जाय, इतना काफी है।" 5

प्रसिद्ध सौन्दर्यशास्त्री वाल्टर पेटर ने सौन्दर्य का लक्षण बताया है कि "जो उचित से ज्यादा है, उससे सौन्दर्य कम हो जाता है। (Beauty removes surpluses)" अर्थात् अच्छे सौंदर्य के लिए संतुलन अत्यावश्यक होता है अन्यथा भड़कीला होने पर आँख में चुभेगा सौंदर्य तो दूर की बात होगी। परसाई जी के व्यंग्य में इस प्रकार के समन्वय के अनेकानेक उदाहरण देखने को मिलते हैं।

उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द कहते हैं- "हमारी कसौटी पर वह साहित्यकार खरा उतरेगा जिसमें चिन्तन हो, स्वाधीनता का भार हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष की बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं।" 6

हिंदी-साहित्य में व्यंग्य विधा को लेकर सर्वाधिक विवाद हुआ है। इस मत से प्रायः सभी आलोचक सहमत हैं कि व्यंग्य प्राचीन काल से ही साहित्य में उपस्थित रहा है। लेकिन जब व्यंग्य को विधा के रूप में मान्यता प्राप्त करने की बात आती है तो उसे बहुत संघर्ष करना पड़ा। स्वतंत्रता के बाद खास तौर पर 60 के दशक में व्यंग्य को विधा के रूप में मानने वालों की संख्या काफी बढ़ी। जिसके परिणामस्वरूप व्यंग्य को विधा के रूप में मान्यता मिली। व्यंग्य को विधा के रूप में मानने वालों ने जो तर्क दिये उनसे ज्ञात होता है कि व्यंग्य पूरी तरह अपने पैरों पर खड़ी हुई विधा है उसे अन्य किसी विधा को अपने लिए बैसाखी बनाने की आवश्यकता नही है अतः व्यंग्य साहित्य में अब स्वतंत्र रूप में आने भी लगा है। अब ऐसी अनेक रचनाएँ मिलती हैं जिनको हम केवल 'व्यंग्य' ही कह सकते हैं, वह कहानी या अन्य विधा के चौखटे में नहीं रखी जा सकती। इसके अलावा वर्तमान समय में अनेक ऐसी पत्रिकाएँ हैं जिनमें व्यंग्य ने अनिवार्य रूप से स्थान बना लिया है, जिनमें से एक राजस्थान से निकलने वाली 'मधुमती

पत्रिका' है। जो व्यंग्य को विधा के रूप में सिद्ध करने का प्रमाण है। अधिकांश पत्रिकाएँ एवं हिन्दी दैनिक पत्रों में व्यंग्य को कॉलमों के रूप में जगह मिली है उससे व्यंग्य विधा के रूप में स्थापित हुआ है इसमें कोई संदेह नहीं। डा० बालेंदुशेखर तिवारी व्यंग्य को विधा मानते हुए कहते हैं कि, "जब किसी विशेष शिल्प एवं प्रविधि की रचनाएँ पर्याप्त संख्या में लिखी जाने लगती हैं एवं उस पर किसी विशिष्ट लेखक के स्थान पर परंपरा का आधिपत्य हो जाता है, तब उक्त शिल्प-प्रविधि विधा के रूप में स्वीकार किया जाता है।"

सुरेश कान्त ने व्यंग्य की संरचना के विषय में कहा है कि "व्यंग्य की जो उपेक्षा हमारे आलोचकों ने अब तक की है, उसके रहते व्यंग्य का कोई स्टक्चर सामने नहीं आ पाया तो इसका यह मतलब तो नहीं कि व्यंग्य का कोई स्ट्रक्चर है ही नहीं। कमी व्यंग्य के स्ट्रक्चर की नहीं, उसे निर्दिष्ट करने वाले की है। समीक्षा वैसे भी सृजन से पीछे रहती है। जब कोई विवेकशील आलोचक इस काम को हाथ लेगा तो व्यंग्य का स्ट्रक्चर सामने आ जाएगा। "

हरिशंकर परसाई व्यंग्य की संरचना पर विचार करते हुए कहते हैं- "व्यंग्य का कोई 'स्ट्रक्चर' नहीं है। वह निबन्ध, कहानी, नाटक सब विधाओं में लिखा जाता है। व्यंग्य इस कारण 'स्पिरिट' है। व्यंग्य-लेखक को यह शिकायत नहीं होनी चाहिए कि विश्वविद्यालय व्यंग्य को विधा क्यों नहीं मानते। उन्हें सन्तोष करना चाहिए कि व्यंग्य का दायरा इतना विस्तृत है कि वह सब विधाओं को ओढ़ लेता है।"7

परसाई जी पर वैचारिकदृष्टि से निम्न प्रभाव दिखते हैं। प्रथमतः व्यक्ति के तौर पर कबीर से बहुत प्रभावित थे। कबीर के फक्कड़ाना अन्दाज, घर-फूँक मस्ती और अखण्ड विश्वास ने परसाई को विसंगतियों, अन्याय से लड़ने की क्षमता दी "तुलसी के रामायण ने जहाँ परसाई को मर्यादा का पाठ पढ़ाया, वहीं कबीर और सुकरात ने उन्हें मिथ्या तत्व पर प्रहार करने का जोरदार सम्बल दिया।"8 सजग दृष्टि, बिना किसी लाग-लपेट के निर्भय होकर पाखण्ड अनीति पर प्रहार,

तिलमिला देने वाला धारदार व्यंग्य, आमजन की भाषा और मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था कबीर की इन विशेषताओं ने परसाई को बहुत प्रभावित किया। उनमें कबीर जैसे तेवर और सरोकार हैं- परसाई साहित्य के दूसरे कबीर हैं, जो धर्म, राजनीति और व्यवस्था की विद्रूपता को बिना खटके समाज के समक्ष रखते हैं।

प्रायः कबीर की पंक्तियों का प्रयोग 'सुनो भाई साधो', 'कबिरा खड़ा बाजार में', 'माटी कहे कुम्हार से' शीर्षक से स्तम्भ लेखन, छद्म नाम (जैसे- 'आदमी और कबीर') का प्रयोग आदि बातें परसाई पर कबीर के गहरे प्रभाव को बतलाती हैं। एक ठोस यथार्थवादी समझ और जनवादी प्रतिबद्धता के साथ परसाई कबीर की परम्परा को आगे बढ़ाते हैं।

दूसरा प्रभाव मार्क्सवाद का परसाई जी की रचना पर देखने को मिलता है। समाज की रचना व उसके विकास क्रम को परसाई कार्ल मार्क्स की वैज्ञानिक दृष्टि (द्वंद्वात्मक भौतिकवाद) से देखते हैं। मार्क्स सुधार में नहीं, क्रांति में विश्वास करते हैं। मनुष्य के श्रम को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं इसी से उत्पादन सम्भव है। उत्पादन कभी भी अकेले नहीं किया जा सकता। यह आपसी सहयोग पर निर्भर है। परसाई जी 'चूहा और मैं' नामक कहानी में इसी तरह की क्रांति का आह्वान करते हैं। उन्होंने संकेत किया है- "तुम जिसे अपने हक का समझते हो, उसे सत्ताधीशों के सिर पर सवार होकर वसूल कर लो।" इसी तरह वे सामाजिक भावना के समर्थक हैं। वे कहते हैं, 'मुक्ति कभी अकेले की नहीं होती।"

वे सर्वहारा श्रमजीवी वर्ग से आये हैं और जीवन के हर संघर्ष में उस वर्ग के साथ हैं। वे समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझते हैं। उनका प्रयत्न हमेशा यही रहा है कि आम आदमी भी परिस्थितियों के प्रति सचेत हो समाज में फैले बेईमानी और आडम्बरों के प्रति उनके मन में रोष उत्पन्न हो। ज्ञानरंजन को दिए गए एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा है- "आरम्भ से ही राजनैतिक लोगों के साथ

जुड़े रहने के कारण राजनैतिक चेतना मुझमें थी वे लोकतांत्रिक, समाजवादी लोग थे, जिनके नेता जयप्रकाश नारायण थे। पहले आम चुनाव में इनका सफाया हो गया। इनमें खीझ आई, फ्रस्टेशन आया और ये टूट-फूट गये संयोग से तभी मेरा सम्पर्क कम्युनिस्ट पार्टी से हुआ और मार्क्सवादी दर्शन तथा साहित्य से मेरा परिचय हुआ..... मेरा अनुमान है कि सन् 1953-54 में मैं मार्क्सवाद के प्रभाव में आ गया। तभी मेरा सम्पर्क मुक्तिबोध जी से हुआ और उन्होंने मेरे मार्क्सवादी विश्वासों को मजबूत किया तथा दृष्टि को बिल्कुल साफ और सही कर दिया।"

मार्क्सवाद के अनुसार साहित्य सोद्देश्य होता है व्यक्ति को समझदार और संवेदनशील बनाकर क्रांति के लिए तैयार करना ही साहित्य का उद्देश्य है समझदार और संवेदनशील आदमी ही शोषण का विरोध और अत्याचार का प्रतिकार करने के लिए प्रतिबद्ध हो सकता है। परसाई भी अत्याचार का प्रतिकार करने के लिए पूरी तरह से सन्नद्ध और प्रतिबद्ध हैं। उन्होंने भारतीय दर्शन, इतिहास का गहन अध्ययन किया और इसके साथ ही पश्चिमी लेखकों की रचनाएँ भी पढ़ी और उनसे प्रभावित भी हुए। उन्हें प्रगतिशील लेखकों- -डा० रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान और अमृतराय, मुक्तिबोध ने प्रभावित किया तो उधर रूसी और अन्य पाश्चात्य लेखकों ने भी उनकी साम्यवादी विचारधारा को मजबूत किया। दास्तोवस्की, टालस्टाय, चेखव, गोर्की और शोलोखोव ने सबसे अधिक प्रभावित किया। फ्रांस के लेखकों में मोपासा, अनातोले फ्रांस, बालजक और लुई एरांगा, कामू, सार्त्र और अंग्रेजी के लेखकों में शेक्सपियर, डिकिन्स, बर्नार्ड शॉ वेल्स और जेन आस्टिन, टामस हार्डी, ओ० हेनरी, सिन्क्लेयर, लुईस, हेमिंग्वे पेब्लो नेरुडा, माइकोवस्की ने उन्हें प्रभावित किया।

हरिशंकर परसाई का व्यंग्य साहित्य-

'वैष्णव की फिसलन' संग्रह के अंतिम तीन लेखों में परम्परागत भिन्नता है। एक निबन्ध होशंगाबाद के जल-प्रलय पर लिखा है वे कहते हैं- मैं नर्मदा-पुत्र हूँ। इस नदी के किनारे पैदा हुआ। वहीं मेरा ननिहाल है। 1926 के भयंकर डूब में, जब

मैं दो साल का था, लगभग डूब गया था, पर मेरी माँ एकदम पानी में घुसी और बेहोशी को हालत में मुझे किनारे ले आई। वह भी डूबने से बचीं। वह प्रसिद्ध केवट-लड़की सरस्वती जिसने अपनी डोंगी से दो सौ पचास मनुष्यों को बचाया, उसमें यह संकल्प और बल इसी मातृ-भाव से आया होगा। उसका सम्मान हो रहा है। रुपये भी मिल रहे हैं। इस आज की मत्स्यगन्धा को कोई बूढ़ा शान्तनु नहीं मिला रहा था पर बैंक में काफी रुपये हो जाने पर कोई जवान शान्तनु मिल जाएगा। दूसरा लेख में 'लेखक, संरक्षण और असहमति' विषय में हरिशंकर परिसाई एक परिचर्चा शुरू की थी, जिसमें बारह लेखकों ने भाग लिया। तीसरा लेख 'मानस चतुश्शती' पर उठे विवाद पर मेरी प्रतिक्रिया है। ये गम्भीर, विचारणीय लेख हैं- परन्तु परसाई जी के स्वभाव के कारण जगह-जगह व्यंग्य भी आ गया है। इस संग्रह में 'अकाल-उत्सव' रचना में संसदीय लोकतंत्र पर से उठते हुए विश्वास को प्रस्तुत किया गया होगा। परसाई जी विचार करते हैं कि संसदीय लोकतंत्र से न्यायपूर्ण, समतावादी समाज की स्थापना नहीं होगी-तभी आप उस कहानी में भूखे लोगों को संसद भवन के पत्थर उखाड़कर खिलवाते हैं।

परसाई जी व्यंग्य की शब्दावली को भी लेकर प्रश्न खड़े करते हैं। वे लिखते हैं "मैं व्यंग्य लेखक माना जाता हूँ। व्यंग्य को लेकर जितना भ्रम हिन्दी में है, उतना किसी और विधा को लेकर नहीं। समीक्षकों ने भी इसकी लगातार उपेक्षा की है।" अभी तक व्यंग्य की समीक्षा की भाषा ही नहीं बनी। 'मजा आ गया' से लेकर 'बखिया उधेड़ दी' तक कुछ फ़िकरे इस पर चिपका कर समीक्षा की इतिश्री समझ ली जाती है। अकसर विनोद, हास्य मखौल से व्यंग्य को अलग करके नहीं देखा जाता। मेरी ही कोई रचना पढ़कर प्रबुद्ध पाठक भी कह देता है-बड़ा मजा आया, जब कि मैंने खिजाने के लिए वह चीज़ लिखी है।"10

आदमी कब हँसता है ? इस सम्बन्ध में अनेक धारणाएं हैं। मनुष्य की निश्चल हँसी के विषय में परसाई जी कहते हैं कि "जब आदमी हँसता है, तब उसके मन में मैल नहीं होता। हँसने के क्षणभर पहले उसके मन में मैल हो सकता है और

हँसी के क्षणभर बाद भी। पर जिस क्षण वह हँसता है, उसके मन में किसी के प्रति मैल नहीं होता। फिर जिसका हाज़मा अच्छा हो वही हँस सकता है। कब्ज का मरीज़ मुश्किल से हँसता है।" 11 आदमी हँसता क्यों है ? परम्परा से हर समाज की कुछ संगतियाँ होती हैं, सामंजस्य होते हैं, अनुपात होते हैं। ये व्यक्ति और समाज दोनों के होते हैं। जब यह संगति गड़बड़ होती है तब चेतना में चमक पैदा होती है। इस चमक से हँसी भी आ सकती है और चेतना में हलचल भी पैदा हो सकती है।

हँसी व व्यंग्य के में अंतर स्पष्ट करते हुए मार्क ट्वेन ने लिखा है-"यदि कोई भूखे कुत्ते को रोटी खिलाए तो वह उसे काटेगा नहीं। मनुष्य और कुत्ते में यही खास फ़र्क है।“ इस कथन से हँसी नहीं आती पर व्यंग्य की यह करारी चोट चेतना पर करता है कि पाठक पहले तो भौंचक रह जाता है और फिर सोचने लगता है। व्यंग्य के साथ हँसी भी आती है, पर वह दूसरे प्रकार की होती है। परसाई जी की लघु कथा से उदा. "संसद में एक सदस्य ने कहा कि अमुक जगह पुलिस की गोली से ग्यारह आदमी मारे गये। गृहमन्त्री इसका जवाब दें।... गृहमन्त्री ने जवाब दिया-गोली का कारखाना जनता के पैसे से चलता है। जनता के पैसे से जो सामान बनता है, उसे जनता के ही काम आना चाहिए। अब जनतान्त्रिक असूल में यह बात पूरी तरह संगत है। पर यह बात कितनी बड़ी विडम्बना पैदा करती है और संसदीय प्रणाली पर चोट करती है। इस लघुकथा से हँसी जरूर आती है पर यह हँसी और किस्म की होती है और सोचने को बाध्य करती है।

कुछ लोग व्यंग्यकार को निंदक की दृष्टि से देखते हैं। व्यंग्य लेखक को निर्मम, कठोर और मनुष्य विरोधी मानते हैं, उन्हें उसकी बुराई ही बुराई दिखती है, जैसे नीम कड़वी होती पर स्वास्थ्य लाभ के लिए गुणकारी है। उसी प्रकार से सामाजिक कुरीतियों का डॉक्टर व्यंग्यकार होता है। वह कुरीतियों, कमियों को प्रकट करता है। तो क्या व्यंग्य कठोर है ? अमानवीय है ? इसी प्रकार अगर डॉक्टर रोग का निदान न कर और अच्छा ही अच्छा कहे तो रोगी मर जायेगा। साहित्यजगत में यही भूमिका व्यंग्यकार की होती है।

जनभाषा में एक कवि कबीर है, जिसने राह के बटुमारों की गतिविधियों को खूब पहचाना। उसने जासूसी की। कपट को पारदर्शी आँखों से चीरने का काम उसने जीवनपर्यन्त किया। ऐसा ही दूसरा लेखक उसकी बिरादरी में हुआ परसाई। हरिशंकर परसाई की मनोरचना विचारक की है। वे इस दृष्टि से बहुज्ञ हैं। सहज भाषा में विचारों के भार को हल्का कर वे निबन्ध लिखते रहे हैं। मंथन की प्रक्रिया में परसाई उन लोगों पर गहरी निगाह रखते हैं जो उन सिद्धान्तों के प्रवक्ता हैं। उनके यहाँ अन्तर्विरोधों की पड़ताल निर्मम होती है। अपने समय की ज्वलन्त समस्याओं के प्रति शासन, स्वयंसेवी संस्थाओं, राजनीतिक दलों का जो नकली रवैया रहा आया है, उसकी फोटोग्राफी स्वतंत्र भारत में इतनी संजीदगी के साथ और कहाँ है? धर्म के नकली रूप ने साम्प्रदायिकता विकसित की, राजनीति के दुरुपयोग ने भ्रष्टाचार और विज्ञान के दुरुपयोग ने उपभोक्तावाद और यंत्रवाद बढ़ाया। इससे धर्म, राजनीति और विज्ञान बदनाम हुए।

'शिकायत मुझे भी है' में हरिशंकर परसाई के लगभग दो दर्जन निबन्ध संगृहीत हैं और इनमें से हर निबन्ध आज की वास्तविकता के किसी न किसी पक्ष पर चुटीला व्यंग्य करता है। परसाई के लेखन की यह विशेषता है कि वे केवल विनोद या परिहास के लिए नहीं लिखते। उनका सारा लेखन सोद्देश्य है और सभी रचनाओं के पीछे एक साफ-सुलझी हुई वैज्ञानिक जीवनदृष्टि है, जो समाज में फैले हुए भ्रष्टाचार, ढोंग, अवसरवादिता, अन्धविश्वास, साम्प्रदायिकता आदि कुप्रवृत्तियों पर तेज रोशनी डालने के लिए हर समय सतर्क रहती है। कहने का ढंग चाहे जितना हल्का-फुल्का हो, किन्तु हर व्यंग्य आज की जटिल परिस्थितियों को समझने के लिए एक अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है।

परसाई जैसा बड़ा रचनाकार जब 'हम इक उस से वाकिफ हैं' होने की बात करता है तो उसका मतलब सिर्फ उतना ही नहीं होता, क्योंकि उसकी 'उम्र' एक युग का पर्याय बन चुकी होती है। इसलिए यह कृति परसाई जी के जीवनालेख के साथ-साथ एक लम्बे रचनात्मक दौर का भी अंकन है। परसाई जी ने इस पुस्तक में अपने जीवन की उन विभिन्न स्थितियों और घटनाओं का वर्णन किया है, जिनमें

न केवल उनके रचनाकार व्यक्तित्व का निर्माण हुआ, बल्कि उनकी लेखनी को भी एक नई धार मिल सकी। उनका समूचा जीवन एक सक्रिय बुद्धिजीवी का जीवन रहा। वे सदा सिद्धान्त को कर्म से जोड़कर चले और अपनी रचनात्मकता पर काल्पनिक यथार्थवाद की छाया तक नहीं पड़ने दी। हम उन्हें विभिन्न आन्दोलनरत संगठनों के कुशल संगठनकर्ता के रूप में भी देख पाते हैं।

परसाई पाठक को देवता नहीं मानते, न ग्राहक, सिर्फ एक नागरिक मानते हैं, वह भी उस देश का जिसका स्वतंत्रता दिवस बारिश के मौसम में पड़ता है और गणतंत्र दिवस कड़ाके की ठंड में।" परसाई की निगाह से यह बात नहीं बच सकी तो सिर्फ इसलिए कि ये दोनों पर्व उनके लिए सिर्फ उत्सव नहीं, सोचने-विचारने के भी दिन हैं। वे नहीं चाहते कि इन दिनों को सिर्फ थोथी राष्ट्र-श्रद्धा में व्यर्थ कर दिया जाए, जैसा कि आम तौर पर होता है। देखने का यही नज़रिया परसाई को परसाई बनाता है और हिन्दी व्यंग्य की परम्परा में उन्हें अलग स्थान पर प्रतिष्ठित करता है। प्रचलित, स्वीकृत और उत्स्वीकृत की ये बहुत निर्मम ढंग से चीर-फाड़ करते हैं। इसी संग्रह में 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' शीर्षक निबंध लिखते हुए उन्होंने भारतीय लोकतंत्र की प्रमुख खामियों से अवगत कराया है। गणतंत्र दिवस के मौके पर देश के तीव्रगामी विकास को झाँकियों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। वे राजधानी दिल्ली में प्रदर्शित झाँकियों की प्रासंगिकता और सच्चाई पर सवाल उठाते हुए कहते हैं- 'सत्यमेव जयते' हमारा ध्येय वाक्य है किन्तु गणतंत्र दिवस की झाँकियाँ झूठ बोलती हैं क्योंकि प्रस्तुत से इतर सच्चाई होती है। प्रचलित कहावत में कहें तो 'खाने के दाँत और दिखाने के दाँत और'। परसाई को राजनीतिक व्यंग्य के लिए विशेष तौर पर जाना जाता है लेकिन इस संग्रह में उनके सामाजिक व्यंग्य ज़्यादा रखे गए हैं।

'पगडंडियों का जमाना' संग्रह में निबंधों के माध्यम से व्यंग्यों को प्रस्तुत किया गया है। प्रायः सभी निबन्ध 'नई कहानियाँ', 'धर्मयुग', 'ज्ञानोदय' आदि प्रमुख पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। उदाहरणतः 'पगडंडियों का जमाना' शीर्षक निबन्ध में पगडंडियों से तात्पर्य शॉर्टकट रास्तों से है और वह वर्तमान समय में

इसके प्रभाव पर भी प्रकाश डालता है लेखक कहता है पहले लोग सिफारिश के लिए कहते हुए संकोच करते थे, बड़ी झिझक के साथ कहते थे। लुक-छिपकर। कहीं इस बात की भनक किसी अन्य को न लग जाए कि शर्मिंदा होना पड़े। लेकिन आजकल लोग "बेझिझक, निस्संकोच और निर्लज्जता के साथ सिफारिश करने के लिए कहते हैं। यह अधोपतन की पराकाष्ठा है। लेखक का कहना है कि लोगों ने मान लिया है कि आम रास्ते पर चलने में बुद्धिमानी नहीं है। पगडंडियों पर चलने में ही समझदारी है। पगडंडी यानी नंबर बढ़वाने और पेपर आउट करवाने का शार्टकट ताकि परीक्षा में अच्छे नंबर बिना मेहनत किये हासिल हो सकें। मेहनत का रास्ता लोगों को कठिन लगता है। आजकल पगडंडियों पर चलने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है और इसीलिए लेखक आजकल के जमाने को पगडंडियों का जमाना कहता है। निबंध का शीर्षक भी अत्यंत सार्थक है।

परसाई के लेखन की विशेषता है कि वे केवल विनोद या परिहास के लिए नहीं लिखते। उनका सारा लेखन सोद्देश्य है और सभी रचनाओं के पीछे एक साफ-सुलझी हुई वैज्ञानिक जीवन दृष्टि है जो समाज में फैले हुए भ्रष्टाचार, ढोंग, अवसरवादिता, अन्धविश्वास, साम्प्रदायिकता आदि कुप्रवृत्तियों पर तेज रोशनी डालने के लिए हर समय सतर्क रहती है, परसाई जी के व्यंग्य आज की जटिल परिस्थितियों को समझने व सुलझाने के लिए अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

निष्कर्ष:-

हिन्दी व्यंग्य को शिखर तक व साहित्यिक प्रतिष्ठा दिलवाने में परसाई जी का अद्वितीय स्थान है। व्यंग्य लेखन जैसे गम्भीर कर्म के लिए परसाई जी सदैव स्मरण किए जाएंगे। आपने व्यक्ति की ऊपरी विसंगति पर ही नहीं बल्कि व्यक्ति तथा समाज के जीवन की भीतरी तहों में जाकर विसंगतियों को खोजने उन्हें अर्थ देने का कार्य किया है। सच्चा व्यंग्य जीवन की समीक्षा होता है। हरिशंकर परसाई समाज की पटरी से उतरती गाड़ी को व्यंग्य के माध्यम से सीधे रास्ते में लाने का प्रयत्न करते हैं। हरिशंकर परसाई का लेखन लेखकों की जमात में शामिल होने

वालों में से नहीं हैं। उन्होंने जनता की गरीबी, सामाजिक विसंगतियाँ और विपदाओं को न केवल देखकर आँखे घूमा लीं बल्कि अपनी लेखनी से सबके सामने लाने व न्याय दिलाने का प्रयास भी किया है।

हम कह सकते हैं 'हरिशंकर परसाई और व्यंग्य' एक-दूसरे के पर्याय हैं। आप में शब्द चयन की प्रतिभा अद्वितीय है। इतना सजग, तीव्र, तीखा, चेतन व्यंग्य-लेखक देश का गौरव है। जिसके कारण एक बड़ा पाठक वर्ग आपका कायल है।

सन्दर्भ सूची

1. परसाई ,हरिशंकर; ऐसा भी सोचा जाता है, वाणी प्रकाशन
2. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 154
3. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य शेरजंग गर्ग, पृ0 24
4. रचनावली भाग-6, पृ0 248
5. रचनावली भाग-6, पृ0 243
6. काग भगोड़ा, हरिशंकर परसाई, कांति कुमार का लेख, भूमिका, पृ० 8
7. प्रेमचंद,'साहित्य का उद्देश्य', प्रथम प्रगतिशील लेखक सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण में।
8. युगसाक्षी, कमला प्रसाद, पृ० 52
9. आँखिन देखी, सं० कमला प्रसाद, पृ0 64
10. परसाई, हरिशंकर; तिरछी रेखाएँ, वाणी प्रकाशन 2001
11. परसाई, हरिशंकर; तिरछी रेखाएँ, वाणी प्रकाशन 2001

मजदूरों की 'तालाबंदी'

मनोजकुमार सुभाष शर्मा
सहायक प्राध्यापक,
हिंदी विभाग, एम डी शाह महिला महाविद्यालय,
मालाड (प.), मुंबई, महाराष्ट्र.
संपर्क :- 9769068306
ईमेल: smanoj475@gmail.com

सारांश

प्राचीन समय में मजदूरों को 'दास' और 'गुलाम' की श्रेणी में रखा जाता था इसीलिए उस समय मजदूरों को 'दास', 'गुलाम', 'सेवक' आदि संबोधन शब्द दिये जाते थे किंतु आधुनिक समय में मजदूरों के कार्य क्षेत्र में बदलाव के साथ-साथ उनके नामों में भी परिवर्तन हुआ ; जैसे 'करखनदार', 'श्रमिक', 'श्रमजीवी', 'मिल मजदूर' आदि। इस प्रकार औद्योगिकीकरण के बाद मजदूर के नाम के साथ -साथ उनके स्वरुप में भी परिवर्तन हुआ किंतु समयानुसार उनकी समस्या कम होने के बजाये और विक्राल होती गयी। अतः विश्वभर में जितने प्रकार के मजदूर हैं, उतनी ही प्रकार की उनकी समस्याएं। लेकिन सर्वप्रथम 19वीं शताब्दी में जन्मे कार्ल हेनरिख मार्क्स ने मजदूरों को संगठित कर, उनके अधिकार की माँग की। इस प्रकार मजदूर समाज संगठित रूप में कार्य करने लगा। सभी मजदूरों, उनकी समस्याओं तथा उनके समाधान का इस शोध आलेख में अध्ययन करना लगभग असंभव है इसलिए इस शोध आलेख में रचनाकार 'प्रभा खेतान' के उपन्यास 'तालाबंदी' को केंद्र में रखते हुए कलकत्ता के कपड़ा मिल मजदूर की समस्या और उसके समाधान का अध्ययन किया गया है।

बीज शब्द : *बेरोजगारी, सर्वहारा, करखनदार, मोटिया, कारीगर, मजदूर*

शोध आलेख

विश्व में बहुसामाजिक व्यवस्था का चलन है। उदाहरणस्वरूप स्त्रियों का समाज, पुरुषों का समाज, उद्योगपतियों का समाज, हिन्दूओं का समाज, मुस्लिमों का समाज, राजनेताओं का समाज आदि। इस तरह संपूर्ण समाज लिंग, धर्म, जाति, संप्रदाय, कार्य आदि व्यवस्थाओं में विभक्त है। समाज की यह व्यवस्था प्राचीन काल से चली आ रही है। इस सामाजिक व्यवस्था में मजदूर का समाज भी शामिल है। मजदूर शब्द मूलतः फारसी भाषा से आया हुआ शब्द है, जिसे "मोटिया"[1], "मजूर"[2], "कामगार"[3], "कामकर"[4] एवं "श्रमिक"[5] शब्द से भी संज्ञानवित किया जाता है। साथ ही भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले मजदूरों को और भी विभिन्न नामों से जाना जाता है ; जैसे फैक्टरी में काम करने वाले को "फैक्टरी वर्कर"[6] या "करखनदार"[7] आदि। वहीं जब मजदूर समाज का व्यक्ति साहित्य के क्षेत्र में मजदूरों के जीवन संबंधित रचनाएँ करने लगा, तब उसने मजदूरों को 'सर्वहारा' नाम से अभिहित किया।

विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से मजदूर वर्ग सबसे आगे है, वहीं पूँजीपति वर्ग का समाज सबसे कम जनसंख्यावाला है किंतु आज भी पूँजीपति वर्ग मजदूरों के समाज पर राज कर रहा है। अर्थात् कम जनसंख्यावाला समाज अधिक जनसंख्यावाले समाज पर राज कर रहा है। क्योंकि आज भी मजदूरों ने अपनी ताकत को कम ही आँका है और इसी वजह से आज भी उनका शोषण बड़े पैमाने पर हो रहा है। आज भी मजदूर अपनी गुण एवं विशेषता को देखने में असक्षम है। वहीं आज से 100 वर्ष पूर्व ही मजदूरों के गुण एवं विशेषता को देखते हुए स्वामी विवेकानंद जी ने कहा था कि "कलकत्ते में यदि मेहतर लोग एक दिन के लिए काम बंद कर देते हैं तो 'हाय-तोबा' मच जाती है।"[8] यानी मार्क्स की तरह उन्होंने भी मजदूरों की शक्ति को पहचान था। हम मजदूरों के इतिहास को देखते हैं तो हम पाते है कि प्राचीन काल में मजदूरों को 'करारनामा' बनाकर अपना दास बना लिया जाता था और उनका क्रय एवं विक्रय भी किया जाता था। इस प्रकार प्राचीन समय में 'मजदूर' और 'दास' प्रायः एक-दूसरे के

पर्यायी समझे जाते थे। उस समय सर्वप्रथम ग्रीक के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू ने मजदूरों के हितों की रक्षा के लिए अपना पहला पैगाम दिया। उन्होंने अपनी रचना 'वसीयतनामा' लिखने के साथ-साथ अपने सभी 'दास' यानी 'मजदूर' को गुलामी यानी उनके कर्तव्यों से उन्हें मुक्त कर दिया। भारत में भी मजदूरों का अस्तित्व हड़प्पा के काल से मिलता है। अतः हड़प्पा "नगर के निचले भाग में एक कक्षीय छोटे भवन पाए जाए हैं। इनका उपयोग संभवत: श्रमिक वर्ग के लोगों द्वारा आवास रूप में किया जाता था।"[9] मजदूरों का अंश हड़प्पाई संस्कृति में भी दिखायी देती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जब से मानव सभ्यता का उदय हुआ, तब से मजदूर वर्ग का भी उद्भव हुआ है।

प्राचीन काल से मजदूरों के स्वरूप तथा विशेषता में बदलाव दिखायी देता है और इन्हीं कारणों से समय-दर-समय मजदूरों की परिभाषा में भी बदलाव देखा गया है। प्रारंभिक काल में किसी व्यक्ति विशेष के यहाँ काम करनेवाले व्यक्तियों को 'दास' या 'नौकर' कहा जाता था किंतु औद्योगिक करण के कारण उसे 'सर्वहारा वर्ग' नाम दे दिया गया। अतः "सर्वहारा वर्ग मजदूरी करने वाले आधुनिक मजदूरों का एक ऐसा वर्ग है, जिनके पास खुद का कोई साधन नहीं है, उनके पास जीने के लिए अपनी श्रम शक्ति को बेचने के अलावा कोई उपाय नहीं है।"[10] जैसा की हम जानते हैं कि मजदूरों का समाज बहुत ही व्यापक है और इसी वजह से उसे स्वरूप एवं प्रकार के स्तर पर भी विभक्त किया जाता है। उदाहरण के तौर पर गिरमिटिया मजदूर, प्रवासी मजदूर, खेतिहर मजदूर, नमक मजदूर, रेत मजदूर, बुनकर मजदूर, बाल मजदूर, औद्योगिक (मिल मजदूर), दिहाड़ी मजदूर, घुम्मकड़ मजदूर, खदान या (खान / खनन / उत्खनन) मजदूर, कुली महिला मजदूर, बँधुआ मजदूर, गटई मजदूर, खोमचा या ठेला मजदूर, फेरी मजदूर आदि को हम देखते हैं। इस प्रकार समय के साथ-साथ मजदूरों के स्वरूप में बढ़ोतरी हुई और साथ ही उनके समस्याओं में भी वृद्धि हुई है। वस्तुतः मजदूरों की ये सभी समस्याएँ साहित्य में भी दिखायी देती है।

हिंदी साहित्य मजदूर वर्ग के जीवन की व्यथा, संस्कृति अतएव उनकी समस्याओं से अछूता नहीं है। 'प्रेमचंद' कृत 'गोदान' (उपन्यास), 'भैरवप्रसाद गुप्त' द्वारा रचित 'बांदी' (उपन्यास), 'जगदीशचंद्र माथुर' द्वारा विरचित 'धरती धन न अपना', 'घास गोदाम', 'जमीन अपनी तो थी' क्रमशः उपन्यास विधा है। 'रामशरण जोशी' की 'आदमी, बैल और सपने' (संस्मरण), 'अलका सरावगी' का उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद', 'अश्विनी कुमार पंकज' की 'माटी माटी अरकाटी' (उपन्यास), 'कमल कुमार' द्वारा रचित 'पासवर्ड' (उपन्यास), 'संतोष चौबे' द्वारा रचित 'क्या पता कॉमरेड मोहन' (उपन्यास), 'मधु कांकरिया' का उपन्यास 'पत्ताखोर', 'सुनील प्रसाद शर्मा' की 'लॉकडाउन रोज़नामचा : मौत मिले, पर माटी में' (उपन्यास), 'उदय प्रकाश' द्वारा रचित 'मोहनदास' (लंबी कहानी) आदि। इस प्रकार हिंदी साहित्य में अनगिनत रचनाकार है, जिन्होंने मजदूरों की समस्या एवं उनके वर्ग पर अपनी कलम चलायी है। फलतः हिंदी साहित्य में ऐसे रचनाकार भी है, जो स्वयं मजदूर के पेशे से जुड़े हैं ; जैसे 'प्रभा खेतान' की रचना 'तालाबन्दी' (उपन्यास), कात्यायनी आदि। जिस प्रकार हिंदी साहित्य में मजदूर के जीवन की झलक दिखायी देती है, ठीक उसी प्रकार हिंदी सिनेमा भी मजदूरों के जीवन को प्रदर्शित करता है। उदाहरणस्वरूप 'मिल मजदूर' (1934), 'पैगाम' (1959), 'रोटी कपड़ा और मकान' (1974), 'मजदूर' (1983) आदि फिल्मों को हम देख सकते हैं।

'प्रभा खेतान' हिंदी की बहुचर्चित रचनाकारों में से एक है। कॉरपोरेट जगत से जुड़ी होने के कारण उनकी अधिकांश रचनाओं में मजदूर जीवन की समस्याओं का चित्रण मिलता है। उनके द्वारा रचित 'तालाबंदी' उपन्यास के नायक श्यामबाबू एक छोटे व्यापारी थे और उन्होंने अपनी मेहनत और लगन से कलकत्ता में कपड़ा मिल की शुरुआत की लेकिन मिल में राजनीतिक षड्यंत्रों और स्वार्थी यूनियनबाजी के कारण उन्हें तरह-तरह के संकट का सामना करना पड़ता है। उपन्यास में जहाँ श्यामबाबू मिल मालिक की भूमिका में है, वहीं शेखर दा (शेखर मुखर्जी) यूनियन नेता का मोर्चा संभाले हुए है। इस प्रकार पूरा उपन्यास

नायक श्यामबाबू और शेखर मुखर्जी (कम्युनिस्ट पार्टी नेता) के इर्द-गिर्द ही बुना गया है। कथा के अंत में राजनीतिक षड्यंत्रों से थक-हार कर श्यामबाबू अपना कपड़ा मिल बंद कर देते हैं और इस तरह वहाँ काम करने वाले सारे मजदूर बेरोजगारी का दंश झेलने के लिए विवश हो जाते हैं। पूरा उपन्यास वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है और इसमें राजस्थानी (मारवाडी), बंगाली एवं अंग्रेजी भाषा के शब्दों का भी समावेश है। इस कृति में 'प्रभा खेतान' ने मूल रुप से कार्ल मार्क्स के वर्ग संघर्ष के सिद्धांत को केंद्र में रखा है। उपन्यास की कथा में पात्र मास्टर चट्टोपाध्याय श्यामबाबू को समाझाते हुए कहते हैं कि "यूनियन की भूमिका है संघर्ष बनाये रखना।"[11] वस्तुतः पात्र चट्टोपाध्याय के माध्यम से मार्क्स के वर्ग संघर्ष की बात स्पष्ट होती है। कथा में सीटू पार्टी, हिंद मजदूर, बिहारी ग्रुप, हावड़ा ग्रुप इस प्रकार से कुल चार मजदूर यूनियन पार्टियों का नाम उल्लेखित है। इसमें नायक श्यामबाबू, सुमित्रा (श्यामबाबू की पत्नी), घोषबाबू, अजित (मैनेजर), परिमल (लोकल गुंडा), शेखर मुखर्जी (मजदूरों का नेता), विक्रम (श्याम का भांजा) आदि छोटे-बड़े लगभग अडतालिस (48) पात्रों के नाम आये हैं। प्रस्तुत कृति में भारत के कुल 19 स्थानों का भी वर्णन हुआ है, जिसमें मुख्य रूप से बंगाल के सरावगी एक्सपोर्ट, अलीपुर (श्यामबाबू का निवास स्थान), हावड़ा आदि का नाम विशेष रुप से आया है। साथ ही मोमिनपुर, हरीसपुर, बजोरिया, खिदिरपुर, मध्यमग्राम, सीतागढ़ी, जादबपुर, शाहजहाँपुर, मटियाबुर्ज, फुजफ्फरपुर आदि।

भारत कपड़ा उत्पादन में जहाँ विश्वभर में सबसे आगे है, वहीं उससे कहीं अधिक भारत के कपड़ा मिलों में ताले लगे हैं। अतः निम्नलिखित आँकडा भारत, चीन, यूएसए, ब्राजील, पाकिस्तान आदि देशों के कपड़ा उद्योग को दर्शाता है।

Countries	2016-17	2017-18	2018-19	2019-20	2020-21	2021-22
India	5.87	6.29	5.66	6.21	6.02	6.16
China	4.90	5.89	6.04	5.80	5.91	5.73
USA	3.74	4.56	4.00	4.34	3.18	3.84
Brazil	1.53	2.01	2.78	3.00	2.36	2.71
Pakistan	1.66	1.80	1.67	1.32	0.89	0.98

(प्रमुख https://shorturl.at/fxB26 [12] लिंक की सहायता से भारत में कपड़ा उत्पादन का आलेख तैयार किया गया है।)

भारत के कपड़ा मिल मजदूरों की स्थिति जानने और समझने के लिए उपर्युक्त डाटा का सहारा लिया गया है। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आज भारत के कपड़ा मिल और वहाँ काम करने वाले मजदूरों में विकासवाद के नाम पर एक लंबी खाई बन चुकी है।

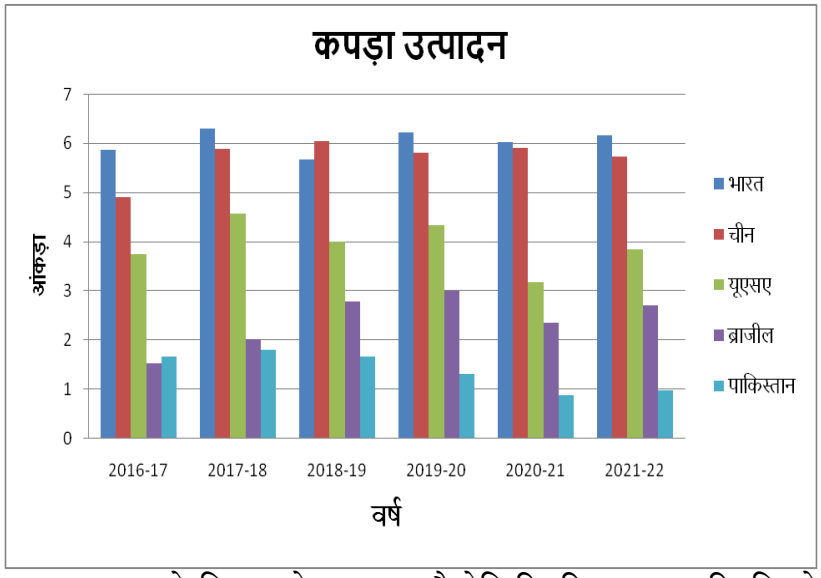

मनुष्य ने विकास के नाम पर प्रौद्योगिकी की शुरुआत की, जिसके कारण बाजार में मशीनों ने धीरे-धीरे अपना अस्तित्व स्थापित कर लिया और इसी मशीनीकरण के कारण समयानुसार दिन-ब-दिन मजदूरों की माँग में कमी आने लगी। फलत: "मशीनरी के व्यापक उपयोग और श्रम विभाजन के कारण, सर्वहारा वर्ग ने अपनी पहचान खो दी थी। धीरे-धीरे कामगारों के लिए भी इनका आकर्षण कम हो रहा था। वह मशीन पर पूरी तरह निर्भर हो चुका था। और यह सबसे सरल, सबसे नीरस और सबसे आसानी से हासिल की जा सकने वाली निपुणता थी, जो उसके लिए जरूरी था। इसलिए कामगार के उत्पादन की लागत पूरी तरह से सीमित हो गई थी। उसे उतना ही मिलता था, जिसमें उसका गुजर-बसर हो सके। अपने लोगों के अस्तित्व की रक्षा कर सके। जिस तरह, किसी वस्तु की कीमत, मजदूरी और उत्पादन लागत की जोड़ के बराबर होती है, उसी अनुपात में जैसे-जैसे काम से दूरी बढ़ती है, मजदूरी कम हो जाती है।"[13] अतः केवल मशीन संचालित करने के लिए ही मिलों में मजदूर रखे जाने लगे। इस प्रकार मशीनीकरण के कारण मिलों में मजदूरों का अनुपात घटकर 3:1 पर आ गया है। मशीनीकरण की वजह से उत्पादन में बढ़ोतरी हुई लेकिन मजदूरों के

रोजगारी में कमी आयी है। अत: कपड़ा मिल में छोटे-छोटे कामों में जहाँ मजदूरों को रखा जाता था, वहीं अब मशीनों को उपयोग में लिया जा रहा है, जिसकी वजह से मिल मालिकों की आधे से अधिक मजदूरी बच जाती है लेकिन वही आधे से अधिक मजदूर बेरोजगारी का शिकार हो जाते हैं। कपड़ा मिल में मशीनीकरण की समस्या को स्पष्ट करते हुए 'प्रभा खेतान' उपन्यास 'तालाबंदी' में लिखती हैं कि "क्यों नहीं बिजली वाली कैंची से कमीजें काटी जातीं ? उत्पादन चार गुना हो जायेगा।"[14] मशीनीकरण के कारण एक तरफ जहां मिल मालिक का मुनाफ़ा है वही दूसरी तरफ मजदूरों का नुकसान है। किन्तु आज के इस बाजावादी एवं अमानवीय समय में मालिकों को नाफा से अधिक और कुछ रुचिकर नहीं है और इसीलिए सभी कपड़ा मिल मालिक अब मशीनीकरण की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

राजनीति में पूँजीपतियों का आधिपत्य होने के कारण मजदूर अशिक्षित एवं अप्रशिक्षित होने पर विवश हो गया। इस प्रकार पूँजीवाद समाज और पूँजीपति वर्ग एक तरफ मिल (फैक्टरी) में मशीने बैठाकर मजदूरों को बेरोजगार कर रहा है, वहीं दूसरी ओर उन्हें अशिक्षित कर मानसिक रूप से गुलाम बना रहा है। 'तालाबदी' उपन्यास में मजदूरों की शिक्षा की समस्या का चित्रण किया गया है। उपन्यास का नायक 'श्यामबाबू' मजदूरों की शिक्षा के विषय में कहते हैं कि "ये जो मेरी फैक्टरी के मजदूर हैं, इन्होंने कितने पोथे पढ़े हैं ? हाँ, शेखर बाबू ने तो जरूर पढ़ा होगा, पर ये सारे मजदूर...?"[15] शिक्षा ही मनुष्य के विकास का मूल आधा है। शिक्षा के कारण मनुष्य कौशल का निर्माण करता है और कौशल के आधार पर ही मनुष्य अपने कार्य को सुव्यवस्थित ढंग से कर पाता है। अशिक्षित होने के कारण मजदूर के अंदर कौशल का अभाव देखा जाता है। जिसकी वजह से आधुनिक समय में प्रायः मजदूरों को बेरोजगारी का सामना करना पड़ रहा है। वस्तुतः बेरोजगारी और अशिक्षा के कारण संपूर्ण मजदूर समाज एक दिन बुर्जुआ वर्ग के अधीन हो जाएगा और फिर से पूरे समाज में तानाशाही विचारधारा कार्य करने लगेगी। पूँजीपति वर्ग पूरे समाज में अपना

आधिपत्य जमाने के लिए एवं लोगों को अपना गुलाम बनाने के लिए तानाशाही विचार फैला रहा है। इन्हीं कारणों की वजह से "बुर्जुआ वर्ग ने अब तक सम्मानित और श्रद्धा के साथ देखे जाने वाले हर पेशे से लोगों के जुड़ाव को खत्म कर दिया। इसने चिकित्सक, वकील, पुजारी, कवि, वैज्ञानिकों आदि को एक वेतनभोगी मजदूर के रूप में बदल दिया।"[16] वैचारिक रूप से देखा जाए तो पूँजीपति वर्ग को छोड़कर समाज का प्रत्येक वर्ग अब मजदूर बन गया है और अंततः पूँजीपति वर्ग चाहता है कि संपूर्ण समाज उसकी गुलामी करें।

कार्ल मार्क्स एक दीर्घ दृष्टा थे, उन्होंने 19वीं शताब्दी में ही मजदूरों की स्थिति को जान लिया था। उन्होंने मजदूरों को संघटित कर मजदूर यूनियन बनाने का बीड़ा उठाया। ताकि मजदूरों के हितों की रक्षा की जा सके और उनका अधिकार उन्हें प्राप्त हो सके। 'प्रभा खेतान' के उपन्यास 'तालाबंदी' में भी मजदूर यूनियन के कार्य का विशेष प्रसंग वर्णित है। यूनियन के कार्य क्षेत्र को स्पष्ट करते हुए प्रभा खेतान लिखती हैं कि "यूनियन मालिक और मजदूर को एक मेज पर बैठाकर समझौता कराती है, जैसे तुम बोलोगे, इस श्रम का मूल्य मैं आठ रूपये दूँगा। श्रमिक बोलेगा, दस। यूनियन बीच में दखल देकर नौ या साढ़े नौ पर रेट कायम करती है।"[17] यूनियन का काम है मजदूर और मालिक के बीच समन्वय स्थापित करना ताकि दोनों से संयोग से उद्योग व्यवस्था ठीक से संचालित हो सके। उपन्यास में ही वर्णित है कि "यूनियन यूनाइट करती है। मालिक और मजदूर के बीच संवाद स्थापित करती है ताकि दोनों के सहयोग से काम होता रहे।"[18] परिणामत: यूनियन मजदूर और पूँजीपति दोनों पर लगाम लगाकर उन्हें अपने प्रतिबंध में रखती है। जिससे दोनों में समन्वय स्थापित रहे और दोनों एक-दूसरे का शोषण न कर सके और इस प्रकार दोनों का संघर्ष समन्वित होकर चलता रहे।

आधुनिकता के इस दौर में राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में सिद्धांतों और विचारधारों का चलन बहुत जोरों-शोरों से चल रहा है। आज भी छुट्भैये

राजनेता से लेकर बड़े-बड़े राजनेता तक सभी कार्ल मार्क्स के विचारों को अपने अनुसार उपयोगी बना रहे हैं। उपन्यास में द्रष्टव्य है कि "कम्यूनिस्ट होने के लिए सिद्धांतों की जरुरत है, मगर कम्युनिस्ट होना एक बात है और सिद्धांतों को रटना दूसरी बात। भूखा मजदूर आज की लड़ाई नहीं लड़ सकता, कभी नहीं।"[19] अत: राजनेता इतने धूर्त एवं लालची हो गये हैं कि वे विचारों और सिद्धांतों को अपने अनुकूल तोड़-मरोडकर अपने हित के अनुकूल बना लेते हैं। इसी तरह मजदूर यूनियन के नेता भी मजदूरों का शोषण करते हुए अपना घर भरने में लगे हुए है। उपन्यास में इस समस्या को दर्शाते हुए प्रभा खेतान लिखती हैं कि "खूब माल खा रहा है ना ? साला एक तरफ मंच पर खड़ा होकर लेक्चर देता है और दूसरी ओर चेहरा बता रहा है कि असली माल खाता है।"[20] भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था के हस्तक्षेप से मजदूर यूनियन पूँजीपति वर्ग के अधीन हो गयी है तथा पूँजीपति वर्ग अपने लाभ हेतु नये-नये नियम बनाकर मजदूरों का शोषण कर रही हैं। इस प्रकार आज की भ्रष्ट, लालची एवं स्वार्थी राजनीति व्यवस्था से मजदूर यूनियन के नेता भी अछूता नहीं रह पाये है और वे अपने अधिकारों का दुरूपयोग कर मजदूरों का ही शोषण करने में लगे हैं। उपन्यास में इसी शोषणवादी मानसिकता को वर्णित करते हुए 'प्रभा खेतान' लिखती हैं कि "विशेसर सिंह, मुइनद्दीन, करीम मियाँ और मास्टर, चारों पाण्डों ने जोरों का हल्ला मचाया। कहा, मैनेजमेंट गला काट रहा है और यूनियन पॉलिसी एंटी लेबर है। समझ में नहीं आया ये लोग तो यूनियन के लोग है, फिर यूनियन के खिलाफ क्यों बोले?"[21] वस्तुतः मजदूर यूनियन को खंडित कर पूँजीपति वर्ग उन्हें फिर से अपना गुलाम बनाना चाहता है। आज का पूँजीपति वर्ग अंग्रेजों की कूटनीति 'फूट डालो और राज करो' के विचारधारा पर चलकर मजदूर यूनियन को तोड़ने की चाहत रख रहा है ताकि वह मजदूर वर्ग पर शासन कर सके। फलतः इस शोषक और रूढ़िवादी मानसिकता के कारण भारत का मजदूर वर्ग विकसित नहीं हो पा रहा है। मजदूरों के अवस्था से परिचित होने के लिए मिल मालिक कुछ मिल मजदूरों को अपना शागिर्द बना लेते हैं ताकि उन्हें मिल के मजदूर यूनियन की हर हलचल का पता चलता रहे। पूँजीपति की इस मानसिकता का जीवंत उदाहरण 'तालाबंदी' में भी

चित्रित है। नायक 'श्यामबाबू' भी मजदूर यूनियन में अपने शागिर्द रखने की बात को स्पष्ट करते हुए अपने मैनेजर से कहते हैं कि "बस, एक काम करो। महीने में पाँच सौ रुपये मुझसे अलग ले लिया करो। किसी को पता न चले और मजदूरों को चाय-पानी पिलाया करो। यानी छुट्टी के बाद थोड़ा समय इन लोगों के साथ गुजारो।"[22]

भ्रष्ट और दोहरी राजनीति प्रणाली के कारण मजदूर वर्ग शोषित और पीड़ित हो है। एक तरफ मजदूर यूनियन मजदूरों के विकास के नारे लगाती है, वही दूसरी ओर पूँजीपति वर्ग से मिलकर मजदूरों के हितों का हनन करती है। इस दोहरी राजनीतिक व्यवस्था का चित्रण 'तालाबंदी' उपन्यास में भी किया गया है। उपन्यास में पात्र अजित को केंद्र में रखकर प्रभा खेतान लिखती हैं कि "'अजित, राजनीति में भी अब न कोई वामपंथी है और न कोई दक्षिणपंथी।' तब मैंने कहा था, फिर आप लोग जो रात-दिन नारे लगाते हैं ? सर्वहारा की बातें करते हैं ?' 'यह हम लोगों की सड़ी हुई आदत है रे, और क्या तू ही बता, यदि उद्योग नहीं चलेगा, तो नौकरी कहाँ से मिलेगी ?'"[23] अर्थात् आज बाजार व्यवस्था पूंजीवाद व्यवस्था के अधीन हो गयी है और इसी वजह से अब मजदूर यूनियन में वामपंथियों के साथ-साथ दक्षिणपंथी भी सक्रीय हो गये हैं। इससे अभिप्राय यह है कि आज के दौर में मिल मालिक अपनी कंपनियों में अपने ही द्वारा बनाये मजदूर यूनियन की चाहत रखता है ताकि उसके कंपनी के मजदूर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से उनके ही संकेतों पर कार्य करें।

मिलों और फैक्टरियों में मजदूर को एक वस्तु के समान समझा जाता है। मिल मालिक अपने यहाँ काम करनेवाले हर मजदूर के प्रत्येक क्षण का हिसाब रखता है। अतः मिल मालिक काम में थोड़ी-सी भी गड़बड़ी होने पर मजदूरों के वेतन से सीधे कटौती कर लेता है। 'तालाबंदी' उपन्यास का पात्र 'श्यामबाबू' अपने मैंनेजर से कहता है कि "पिछले साल हमारी कंपनी ने कैरेसा को खराब क्वालिटी की वजह से दो लाख का क्लेम दिया। इस घाटे को हमें मजदूरी में

जोड़ना होगा।"[24] इस प्रकार मिल मालिक माल की खराबी का भुगतान मजदूरों की मजदूरी काटकर कर लेता हैं किंतु मुनाफ़े का हिस्सा मजदूरों को देने के लिए वह कभी आगे नहीं आता। और तो और मिलों या फैक्टियों में "विकसित मजदूरों का एक वर्ग तभी तक अस्तित्व में रहता है जब तक उन्हें काम मिल जाता है। जिन लोगों को काम मिला, उनकी पूंजी भी बढ़ी। ये मजदूर, जिन्हें खुद को टुकड़े-टुकड़े में बेचना होता है, हर दूसरे बिकने वाले वस्तु की तरह एक सामान हो गये थे। वे प्रतिस्पर्धा के सभी उतार-चढ़ावों और बाजार की अस्थिरता सभी के संपर्क में आये।"[25] अतः बाजारवाद और मजदूरों की स्थिति प्रायः एक-दूसरे के पर्यायी बन गयी है। जब तक बाजार में मजदूरों को वस्तु के रूप में आँका जाएगा, तब तक मजदूरों का शोषण होता रहेगा। उपन्यास में मजदूरों की अवस्था को दर्शाते हुए लेखिका लिखती हैं कि "कल जब संजय कपड़े का थान कटर लोगों को देगा, उस समय 'कपड़े की क्वालिटी खराब है' कहकर आधे थान जी. आर. के पास भिजवा देना परसों कटर लोगों के से डबल काम करने को कहना।"[26] फलतः मालिक श्यामबाबू और मैनेजर के संवाद से मिल मालिक (पूँजीपति वर्ग) की शोषणवादी मानसिकता का पर्दापण होता है। मिल मालिक फैक्टरी के मजदूरों से एक दिन में ही दो दिन का काम करवाना चाहता है ताकि उसके एक दिन की मजदूरी बच सके। इस तरह मिल मालिक मजदूरों के वेतन की कटौती के लिए नये-नये तरकीब लगाते रहते हैं। इन्हीं सब षड्यंत्रों और शोषणवादी मनोवृत्ति के कारण मजदूरों को शोषित एवं प्रताड़ित होना पड़ता है।

बाजारवादी व्यवस्था के कारण पूँजीपतियों का हृदय कठोर हो चुका है। लोभ और लालच में वे इस कदर कठोर और निर्मम हो चुके हैं कि उन्हें अपने परिवार का दुःख-दर्द भी दिखाई नहीं देता। 'तालाबंदी' उपन्यास का नायक 'श्यामबाबू' अपनी फैक्टरी के कामों में व्यस्त होने के कारण इसी अमानवीय व्यवहार से जूझ रहा है। उपन्यास में 'श्यामबाबू' का बेटा उनसे कहता है कि "पापा, आप ह्युमन नहीं। आपके लिए घर, परिवार किसी का कोई महत्त्व नहीं। मम्मी बोलतीं नहीं। उनको आपसे डर लगता है, पर आप ? आप तो अपने

व्यवसाय के अलावा कुछ और सोच ही नहीं पाते।"[27] सत्ता और पैसे के लोभ के कारण पूंजीपति वर्ग अपने परिवार की सुध भी खो बैठता है। अपनी फैक्टरी में मजदूरों का शोषण करते-करते मिल मालिक का हृदय वज्र-सा कठोर हो गया है और उनके अंदर की मानवीय भावना खत्म हो चुकी है। इस प्रकार "बुर्जुआ वर्ग ने परिवार से भावनात्मक जुड़ाव को भी खत्म कर दिया और पारिवारिक संबंधों को केवल पैसों तक सीमित कर दिया।"[28]

समाधान :

आज भी भारत के बहुत से शहरों में कपड़ा मिल सक्रिय है, जिसमें महाराष्ट्र का मुंबई, गुजरात का सूरत और बंगला का कलकत्ता बहुचर्चित है। कलकत्ता का कपड़ा मिल भारत के कपड़ा मिल में तृतीय स्थान पर है। इस प्रकार भारत के कुछ बचे हुए क्षेत्रों में ही कपड़ा मिल पूर्णरूप से कार्यरत है। लेकिन मिल मालिक अर्थात पूँजीपति वर्ग मशीनीकरणवादी मानसिकता के कारण समाज के मजदूरों का शोषण कर रहा है। इसी वजह से भारत के सभी कपड़े उद्योग पर धीरे-धीरे ताला लग रहा है। भारत में कपड़े उद्योग पर लगे ताले का जीता-जागता उदाहरण महाराष्ट्र का मुंबई शहर ही है। अतः आज के दौर में शोषणवादी मानसिकता के कारण मुंबई शहर की तरह भारत के सभी कपड़ा उद्योग पर ताला लग रहा है। चूँकि रोटी, कपड़ा और मकान मनुष्य की मूलभूत जरूरते हैं अतएव मनुष्य के इन मूल जरूरतों में कपड़ा भी एक अहम वस्तु की भूमिका अदा करता है। अर्थात् अगर भारत के कपड़ा मिल उद्योग में इसी तरह ताला लगने लगा तो, हमें अपनी मूलभूत जरूरत को पूरा करने हेतु विदेशों के समान हाथ फैलाना पड़ेगा। अतः उन्हें जीवित रखने के लिए भारत सरकार को कपड़ा मिल मजदूरों के हितों की रक्षा करनी चाहिए। उन्हें एक सुनिचित वेतन देने के साथ-साथ कंपनी द्वारा स्वास्थ्य व्यवस्था, महिला मजदूर को प्रसूति व्यवस्था, परिवार पेन्शन योजना और कर्मचारी पेंशन योजना, सामाजिक सुरक्षा योजना की सुविधा भी मुहैया कराया जाना चाहिए। उपर्युक्त इन सभी सुविधाओं में बहुत-सी सुविधाएँ ऐसी भी हैं, जो सरकार एवं कुछ प्रसिद्ध कंपनियों द्वारा उनके मजदूरों को लाभान्वित कर

रही हैं किंतु आज भी छोटा एवं पिछड़ा मजदूर इन सभी सुविधाओं से वंचित है। चूँकि मजदूरों का विकास करने हेतु सभी मजदूरों को एक ही धरातल पर लाना होगा और इस प्रकार कपड़ा मिल मजदूरों को अच्छी सुविधा देकर ही हम कपड़ा मिल को बंद होने से बचा सकते हैं। अंततः मिल मालिक एवं पूँजीपति वर्ग की मानसिकता को बदल कर ही हम भारत के कपड़ा मिल का संरक्षण कर सकते हैं।

निष्कर्ष :

कार्ल मार्क्स हमेशा से ही वर्ग संघर्ष की चाह रखते थे। वे अचेतन मजदूरों में चेतना जगाकर उन्हें जागरूक एवं जीवित करने का काम करते थे। अतः यही उनके वर्ग संघर्ष सिद्धांत का मूल सार है। मशीनीकरण, अशिक्षा, अकौशल, पूँजीपति मानसिकता, तानाशाही मानसिकता एवं मार्क्स के विचारों का राजनैतिक दुरुपयोग होने के कारण संपूर्ण मजदूर वर्ग (समाज) पूँजीपति वर्ग का शिकार हो रहा है। आज भी समाज में अपने अस्तित्व को स्थापित करने के लिए हम मनुष्यों को सर्वप्रथम पूँजी का सहारा लेना पड़ता है तथा पूँजी के आधार पर ही मनुष्य के सामाजिक स्तर एवं प्रतिष्ठा को आँका जाता है। सामाजिक धरातल पर प्रतिष्ठित स्तर न प्राप्त होने के कारण मजदूर को समाज की अन्य सुविधाएँ से भी वंचित रखा जाता है ; जैसे शिक्षा, रोजगार, सरकारी योजनाएँ, स्वास्थ्य योजना आदि। साथ ही राजनीतिक षड्यत्रों के कारण मजदूर वर्ग पूँजीपति वर्ग का गुलाम होता जा रहा है। प्रस्तुत उपन्यास तालाबंदी में मजदूर वर्ग के इन्हीं विषम समस्याओं का वर्णन किया गया है। फलतः इन्हीं कारणों से भारत के कपड़ा मिल में दिन-ब-दिन ताले लगते जा रहे हैं और साथ ही अधिकांश मात्रा में कपड़ा मिल के मजदूर बेरोजगारी का शिकार हो रहे हैं।

संदर्भ सूची :

1. सं. रामचंद्र वर्मा, लोकभारती प्रामाणिक हिंदी कोश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संशोधन संस्करण : 1996, पुनर्मुद्रण-2002, पृ 639

2. सं. रामचंद्र वर्मा, लोकभारती प्रामाणिक हिंदी कोश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संशोधन संस्करण : 1996, पुनर्मुद्रण-2002, पृ 639
3. भोलानाथ तिवारी ; हिंदी पर्यायवाची कोश ; प्रभात प्रकाशन, दिल्ली ; संस्करण : 1994 ; पृ 474
4. भोलानाथ तिवारी ; हिंदी पर्यायवाची कोश ; प्रभात प्रकाशन, दिल्ली ; संस्करण : 1994 ; पृ 474
5. भोलानाथ तिवारी ; हिंदी पर्यायवाची कोश ; प्रभात प्रकाशन, दिल्ली ; संस्करण : 1994 ; पृ 474
6. अरविंद कुमार, कुसुम कुमार ; समांतर कोश हिंदी थिसारस ; नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया ; पहला संस्करण : 1996 ; पृ 350
7. अरविंद कुमार, कुसुम कुमार ; समांतर कोश हिंदी थिसारस ; नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया ; पहला संस्करण : 1996 ; पृ 350
8. स्वामी विवेकानंद, नया भारत गढ़ो, स्वामी ब्रह्मास्थानंद प्रकाशन, नागपुर, चौदहवाँ पुनर्मुद्रण-2015, पृ 2
9. नितिन सिंहानिया, भारतीय कला एवं संस्कृति, MC Gras hill education, द्वितीय संस्करण-2017, पृ 1.4
10. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, दि कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो (साम्यवादी घोषणा-पत्र), Sanage publishing house, संस्करण-2020, पृ 28
11. प्रभा खेतान, तालाबंदी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2020, पृ 43
12. https://shorturl.at/fxB26, दिनांक 02 मई, 2023 को लिंक देखा गया।
13. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, दि कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो (साम्यवादी घोषणा-पत्र), Sanage publishing house, संस्करण-2020, पृ 35 और 36

14. प्रभा खेतान, तालाबंदी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2020, पृ 55
15. प्रभा खेतान, तालाबंदी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2020, पृ 33
16. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, दि कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो (साम्यवादी घोषणा-पत्र), Sanage publishing house, संस्करण-2020, पृ 31
17. प्रभा खेतान, तालाबंदी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2020, पृ 43
18. वही से ; पृ 42
19. वही से ; पृ 124
20. वही से ; पृ 34
21. वही से ; पृ 49
22. वही से ; पृ 16
23. वही से ; पृ 102
24. वही से ; पृ 45
25. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, दि कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो (साम्यवादी घोषणा-पत्र), Sanage publishing house, संस्करण-2020, पृ 35
26. प्रभा खेतान, तालाबंदी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2020, पृ 58
27. वही से ; पृ 87
28. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, दि कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो (साम्यवादी घोषणा-पत्र), Sanage publishing house, संस्करण-2020, पृ 31

बंजारा स्त्री अलंकार

डॉ. कुशावती आमनर
हिंदी विभाग, डॉ बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय,
औरंगाबाद,महाराष्ट्र (431004)
मो.8329835774

सारांश

मनुष्य सदियों से शृंगार प्रिय रहा है। वह अपनी शृंगारिकता के लिए वेशभूषा, अलंकार केश-विन्यास तथा अन्य प्रसाधनों को महत्व देता रहा है। उसकी यह शृंगार प्रियता आज भी हमे दृष्टिगोचर होती है। इस कारण ही हर देश के प्रसार माध्यम श्रृंगार प्रसाधनों के विज्ञापनों से भरे पडे हैं। हर देश एवं जनजाति की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है। इस कारण ही मनुष्य को देखकर ही बताया जा सकता है कि वह कहाँ का निवासी है? कौन-सी जनजाति का है? श्रृंगार प्रसाधन में अलंकार मनुष्य को सर्वाधिक प्रिय रहा है, विशेषतः नारी जाति को। नारी के इस गुण से बंजारा स्त्री भी अछुति नहीं रही है। बंजारा स्त्रियों को अलंकारों के प्रति सर्वाधिक आकर्षण रहा है। बंजारा बोली में अलंकारों को 'गेळों कहा जाता है। अलंकार बनाती है। हम समाज में देखते हैं विविध जनजातियों की स्त्रियाँ विशेष अवसरों पर ही अलंकार धारण करती है, लेकिन बंजारा 'गेळों यह शब्द 'गहना' इस शब्द का अपभ्रंश रुप है। बंजारा स्त्रियों अपने आर्थिक परिस्थिति के अनुरुप सोना, चाँदी, पितल, ताँबा आदि धातुओं से स्त्रियों अपने आप से अलंकारों को अलग ही नहीं करती है। अलंकारों के शिवाय बंजारा स्त्री की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इससे स्पष्ट होता है कि बंजारा स्त्रियों को अलंकार कितने प्रिय है।

बीज शब्द: *शब्द, अलंकार, स्त्री, आभूषण, मनुष्य, विन्यास*

शोध आलेख

मनुष्य सदियों से शृंगार प्रिय रहा है। वह अपनी शृंगारिकता के लिए वेशभूषा, अलंकार केश-विन्यास तथा अन्य प्रसाधनों को महत्व देता रहा है। उसकी यह

शृंगार प्रियता आज भी हमे दृष्टिगोचर होती है। इस कारण ही हर देश के प्रसार माध्यम श्रृंगार प्रसाधनों के विज्ञापनों से भरे पडे हैं। हर देश एवं जनजाति की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है। इस कारण ही मनुष्य को देखकर ही बताया जा सकता है कि वह कहाँ का निवासी है? कौन-सी जनजाति का है? श्रृंगार प्रसाधन में अलंकार मनुष्य को सर्वाधिक प्रिय रहा है, विशेषतः नारी जाति को। नारी के इस गुण से बंजारा स्त्री भी अछुति नहीं रही है।

अलंकार शब्द 'कृ' धातु में 'अलम्' उपसर्ग जोडने से व्युत्पन्न होता है। "अलंकार का शाब्दिक अर्थ है, सुशोभित करनेवाला या फिर वह जिससे सुशोभित हुआ जाता है।"1 अतः इससे स्पष्ट होता है कि जिस साधन से सुशोभित हुआ जाता है, उसे अलंकार कहते हैं। वस्त्र, अलंकार एवं अन्य श्रृंगार प्रसाधन वैदिक काल से ही मानव के आकर्षण केंद्र में रहे हैं। "आभूषण पहनने का शौक स्त्री-पुरुष दोनों को था। कर्ण शोभन (कर्ण फूल या बाली), निष्क ग्रीव (कंठहार), खादि (कंगण), रुक्म वक्ष (छातीपर लटकने वाला आभूषण), मणिग्रीव (मोती का हार) आदि गहनों के नाम वैदिक साहित्य में मिलते हैं।"2 विविध जनजातियों की स्त्रियों में अलंकारों का आकर्षण उच्च समाज की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक दिखाई देता है। वैदिक काल में मयूर पंख, कौडी, शंख, आस्थि आदि वस्तुओं को अलंकार के रुप में धारण किया जाता था। समय के साथ-साथ इन अलंकारों में परिवर्तन आया है। आज सोने, चाँदी, हीरे मोती के अलंकारों का प्रचलन हुआ है। अलंकार महिलाएँ हाथ-पैर, गला, सिर और कानों में धारण करती है।

बंजारा स्त्रियों को अलंकारों के प्रति सर्वाधिक आकर्षण रहा है। बंजारा बोली में अलंकारों को 'गेळों कहा जाता है। अलंकार बनाती है। हम समाज में देखते हैं विविध जनजातियों की स्त्रियाँ विशेष अवसरों पर ही अलंकार धारण करती है, लेकिन बंजारा 'गेळों यह शब्द 'गहना' इस शब्द का अपभ्रंश रुप है। बंजारा स्त्रियों अपने आर्थिक परिस्थिति के अनुरुप सोना, चाँदी, पितल, ताँबा आदि धातुओं से स्त्रियों अपने आप से अलंकारों को अलग ही नहीं करती है।

अलंकारों के शिवाय बंजारा स्त्री की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इससे स्पष्ट होता है कि बंजारा स्त्रियों को अलंकार कितने प्रिय है। बंजारों के अलंकारों के प्रति इसी आकर्षण के बारे में श्रीराम शर्मा लिखते हैं, "बनजारिन वस्त्रों की भाँति आभूषणों के मामले में भी विशेष रुचि रखती है। व्यवस्थित समाज की स्त्रियाँ अधिकांश आभूषणों को विशेष अवसरों पर धारण करती है, किंतु बनजारिन अपने अलंकारों को देह से अलग करना नहीं चाहती। अन्य आदिम जातियों की महिलाओं की तरह बनजारा स्त्री भी कौडी, सीप, दुवन्नी, चवन्नी आदि से अपने आभूषण तैयार करा लेती है। रॉगे-कॉसे जैसी साधारण धातुओं से बने गहने ही उसके लिए सौभाग्य चिन्ह बन जाते हैं।"3

बंजारा स्त्री अलंकारों में साधारणतः सुहाग संबंधी अलंकार, कँवारी लडकी के अलंकार, और अन्य अलंकार आदि प्रकार दिखाई देते हैं। सुहाग संबंधी अलंकार सिर्फ सुहागिण स्त्रियों ही धारण करती है। अन्य अलंकार सभी स्त्रियाँ धारण करती है। कुछ अलंकार केवल कुँवारी लडकियों ही धारण करती है, जैसे- काली पोत। जिसे गोर बोली में लालडी या पटडी कहा जाता है। काली पोत की बनी माला को 'गरतणी' कहा जाता है। विवाह के समय गरतणी हटाकर अन्य अलंकार पहनायें जाते हैं। इसके साथ-साथ नाक में बाली, माथे पर टीकी आदि अलंकार कँवारी लडकियों पहनती है। स्त्रियों के अलंकार संबंध में मोतीराज राठोड ने लिखा है, "बंजारा नारी के शरीर पर पाँच किलो तक गहनों का बोझ दिखाई देता है। हर गहना अपना महत्व रखता है। सर से पाँव तक गहने पहनती है।

कान – कनिया (कान का गहना),
गले में– हासली, मुंगार हार, साकळी,
छाती पर– आरसी (दर्पन से सजी चोली),
बाहु पर – बादली, कन्या, कलडा,
हाथ में- हस्तीदंत की चूडियों,
अगुलियों में - फुलेवा, हटी,

पाँव में वाकडी, कस
पाँव की अंगुलियों में चटकी, विटी।
सौभाग्य गहने घुघरी नामक गहना अपने मॉग के बालों से गालों पर बांधती है। उनके साथ दो-दो टोपली नामक अलंकार भी वह पहनती है।"4

अ) सुहाग संबंधी अलंकार-

सुहाग संबंधी अलंकार सिर्फ सुहागण स्त्रियों ही पहनती है। यह अलंकार उसे विवाह के अवसर पर ससुराल की ओर से दिये जाते हैं, जिसे घुगरी घालनों कहते हैं। सुहागिण स्त्री घुगरी और टोपली को अपने माथे के दानों ओर भौहों और कानों के बीच बाल में लटकाती है, जिसे गोर बोली में चोटला बांधळों कहते हैं। सुहागिण स्त्री का दूसरा अलंकार है- चूडा। यह अलंकार स्त्रियाँ भुजदंड पर धारण करती है। बंजारा स्त्रियों हाथिदाँत का चूडा धारण करना अधिक पसंद करती है। तिसरा अलंकार है- चटकी। चटकी यह अलंकार चोंदी इस धातू से बनाई जाती है। स्त्रियाँ इसे दायें पैर की कनिष्ठ अंगुली में पहनती है। इसके साथ-साथ सुहागिण स्त्रियाँ अन्य अलंकार भी परिधान करती है।

ब) अन्य अलंकार-

बंजारा स्त्रियों साज-श्रृंगार करते समय विविध अलंकार परिधान करती है, जैसे कनिया, हासली, तरोटी, बादली, हातफुल, विटी, आरसी, वाकडी, चटकी आदि।

1. कान के अलंकार -

बंजारा स्त्रियों में कान के अलंकारों का आकर्षण दिखाई देता है। कान के अलंकारों को गोरबोली में कनिया कहा जाता है। जिसे कान के उहुपरी हिस्से में पहनते हैं। जो चाँदी इस धातू से बनाया जाता है। कान के निचले भाग के छेद में बाली नामक गहना धारण किया जाता है। बंजारा स्त्रियों के कान के गहनों के संदर्भ में आत्माराम राठोड लिखते हैं, "बंजारा स्त्री कानात चांदीची कर्णफुले ही

घालत असे, लदेळी काळी या कर्णफुलांना कनिया हा फुलासाठी असलेला शब्द आता लोप पावू लागला असून त्याऐवजी बीरिया हा शब्द रुढ होतोय।"5 अर्थात् बंजारा स्त्री अपने कानों में चाँदी के कर्णफूल पहनती थी। लदेनी काल में इन कर्णफूलों को 'कनिया' यह शब्द था जो अब लुप्त होकर उसकी जगह बीरिया यह शब्द रुढ़ हो रहा है।

2. नाक में परिधान करने के अलंकार –

बंजारा स्त्रियों में नाक के अलंकारों के प्रति आकर्षण रहा है। नाक के अलंकार दो प्रकार के होते है- भूरीया, फूली। यह अलंकार सोना इस धातू से बनाया जाता है। भूरीया इस अलंकार का आकार बडा एवं गोलाकार होता है। फूली का आकार भूरीया से छोटा होता है। बंजारा स्त्रियों में भूरीया यह अलंकार पहनने की इच्छा होती है। इनकी यह इच्छा उनके गितों में भी व्यक्त होती है।

3. गले में परिधान करने के अलंकार

अन्य अलंकारों की तरह बंजारा स्त्रियों को गले के अलंकारों का भी आकर्षण होता है। जिसमें 'हासली' और 'मुंगार माळ' यह प्रमुख अलंकार है। यह अलंकार सोने से बनाये जाते हैं। स्त्रियों इसे विवाह के पश्चात परिधान करती है। इसके साथ 'गोप' यह अलंकार भी स्त्रियों परिधान करती है। 'मुंगार माळ' को बंजारा स्त्रियों पवित्र मानती है। स्त्रियों मुंगे को धागे में पिरोकर गले में बांधती है। इसके अलावा रपियार माळ' भी स्त्रियाँ परिधान करती है। यह हार रुपयों के सिक्कों पर कुंदा लगवाकर एक डोरी में पिरोकर बनाया जाता है। इसमें चौदा या सोलह सिक्के जोडे जाते हैं। इसके साथ-साथ लाल रंग की लालडी भी स्त्रियों परिधान करना पसंद करती है। इन सारे अलंकारों में हासली इस अलंकार को सर्वाधिक पसंद किया जाता है। हासली के प्रति बंजारा स्त्रियों का यही भाव प्रस्तुत गीत में दिखाई देता है-

"याडी हासली द ये रमेन जायद।

जरा दम खो बेटा सनार घडरों च।
याडी हासली घालन नाचू काइ ये।
याडी हासली द ये रमेन जायदा।"6

4. भुजाओं के अलंकार –

बंजारा स्त्रियों में भुजाओं के अलंकार भी प्रिय है। इसमें 'चूडो', 'कोपरिया' और 'कलडा' आदि अलंकार महत्वपूर्ण है। समाज में चुडा सौभग्य का प्रतीक माना जाता है। विवाह के समय ससुराल जाते समय लडकियों नया चुडा परिधान करती है। प्रसव के पश्चात भी औरतों को नया चुडा पहनाया जाता है। इस पश्चात कोपरिया यह अलंकार पहना जाता है। यह अलंकार सघनता का प्रतीक माना जाता है। कहीं-कही स्थानों पर स्त्रियों 'बलियों' नामक अलंकार पहनना भी पसंद करती है।

5. अंगुलियों के अलंकार –

अंगुलियों का प्रमुख अलंकार 'फूला' है, जो चार दुवन्नियों को जोड़कर बनाया जाता है। इस अलंकार को स्त्रियों त्यौहार एवं विवाह के अवसरों पर धारण करती है। फूला इस अलंकार के प्रति बंजारा स्त्रियाँ विशेष रुचि रखती है। स्त्रियों का यही भाव प्रस्तुत गीत में दिखाई देता है –

"फूला लारे लाल नंदलाल।
फूला बिना अंगुठी सोबेनी नंदलाल।
फूला लारे लाल नंदलाल ।"7

6. कमर के अलंकार –

आदिकाल से ही उच्च जाति की स्त्रियों में कमर के अलंकारों के प्रति आकर्षण रहा है। जिसे 'कमरपट्टा' कहा जाता है। बंजारा स्त्रियों भी इस आकर्षण से अछूती नहीं रही है। यह कमरपट्टा चाँदी इस धातू से बनाया जाता है। साथ ही

साथ इसमें चवन्नी, अट्ठनी, पारा आदि धातू जोडे जाते हैं। इस अलंकार को स्त्रियाँ उत्सव, विवाह और विशेष अवसरों पर ही परिधान करती है।

7. पैरों के अलंकार –

बंजारा स्त्रियों अपने पैरों में भी अलंकार धारण करने की इच्छा रखती है। पैरों के अलंकार के दो जगह पहने जाते हैं दृ पैरों के अंगुलियों में और एडी में। स्त्रियों पैरों के एडी में 'वाकडी और 'कस नामक अलंकार पहनती है। जो सुहागिण का चिन्ह है। वाकडी परिधान करने से पैरों को कोई कष्ट न हो इस कारण कस उसके साथ ही पहना जाता है। जो स्त्रियों वाकडी नहीं पहनती वे स्त्रियों पायल पहनती है। जिसे गोर बोली में चईन' कहते हैं। यह अलंकार चाँदी इस धातू से बनाया जाता है। इसके साथ-साथ बंजारा स्त्रियों पैरों के अंगुलियों में भी अलंकार पहनती है। स्त्रियों दाये पैर की छोटी अंगुली में 'चटकी' नामक अलंकार पहनती है। यह अलंकार चाँदी इस धातू से बनाया जाता है। यह अलंकार सुहाग का सूचक है। विवाह में वधु को ससुरालवाले यह अलंकार देते हैं। इसके अलावा बजारा स्त्रियों पैरों के दोनों अंगुठों में अंगुतला' नामक अलंकार धारण करती हैं।

अतः स्पष्ट है कि शृंगार करते समय स्त्रियों अलंकारों को विशेष महत्व देती है। जिससे बंजारा स्त्रियों भी अछुति नहीं रही है। बजारा स्त्रियों में अलंकारों के प्रति यह आकर्षण आज भी देखा जा सकता है। ये सभी अलंकार अन्य जनजातियों के स्त्रियों के अलंकारों से भिन्न है। यह अलंकार बंजारा संस्कृति एवं बंजारा स्त्री की अपनी एक अलग पहचान है। ग्रामीण क्षेत्र की बंजारा स्त्रियों आज भी यह सभी अलंकार परिधान करती हुई दिखाई देती है। किंतु अलंकारों के प्रति यह आकर्षण शहर मे बसे हुए बंजारा स्त्री एवं उच्च विद्याविभूषित स्त्रियों में दिखाई नहीं देता। समय के साथ-साथ उपर्युक्त अलंकार कम-अधिक मात्रा में परिधान किया जा रहा है। इतना ही नहीं हाथीदाँत तथा अन्य धातुओं की जगह अब सोना एवं चॉदी इसी धातुओं में अलंकार बनवाए जा रहे हैं। जिस कारण हॉथीदाँत जैसे विविध चीजों से बनने वाले अलंकार समाप्त होने के कगार पर है।

अतः आज वैज्ञानिक युग में आवश्यकता है. ऐसे लुप्त होते हुए अलंकारों का संरक्षण किया जाए और संवर्धण के लिए प्रोत्साहित किया जाए। ताकि बंजारा ही नहीं, बंजारा जैसी अन्य जनजाति की संस्कृति को लुप्त होने से रोखा जा सके। जिस कारण आनेवाली पीढि भी इस संस्कृति एवं उसके महत्व को समझा सके। सस्कृति के इसी महत्व को ध्यान में रखते हुए सांस्कृतिक मंत्रालय, जपान सरकार ने बंजारा संस्कृति के संवर्धण के लिए ग्राम चनइ, तह. अंबाजोगाई, जिला- बीड में केंद्र का निर्माण किया है। जपान सरकार अन्य देश की संस्कृति के संवर्धण के लिए इतना कर सकता है, तो लोकतंत्र प्रेरित अपने देश एवं राज्य का सांस्कृतिक मंत्रालय यह क्यो नहीं कर सकता? इससे स्पष्ट पता चलता है कि देश एवं राज्य का सांस्कृतिक मंत्रालय लुप्त होती हुई जनजातियों, बोली भाषा एवं संस्कृति के प्रति कितना सजग है? इसी कारण देश एवं राज्य के सांस्कृतिक मंत्रालय के विचारधारा एवं कार्यप्रणाली पर प्रश्नचिन्ह निर्माण होता है।

संदर्भ सूची

1. गणपतिचंद्र गुप्त, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांत, पृ. 99
2. डॉ. राजबली पांडेय, प्राचीन भारत, पृ. 66,67
3. श्रीराम शर्मा, बनजारा समाज, पृ. 205
4. प्रा. मोतिराज राठोड, बंजारा लोकसाहित्य और संस्कृति, पृ. 80
5. आत्माराम राठोड, गोर बंजारा इतिहास व लोकजीवन, पृ.258
6. संकलीत गीत, सौ. कोंडाबाई पवार, ग्राम- शिराढोण टाँडा, तह. कलम
7. संकलीत गीत, सौ. शांताबाई जाधव, ग्राम- कानडी बोरगांव टॉडा, तह. लातुर

पूस की रात : स्त्री किसान की कथा

डॉ. उमा मीणा
एसोसिएट प्रोफेसर, मिरांडा हाउस कॉलेज
हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश

आदिवासी साहित्य लेखन के क्षेत्र में वंदना टेटे एक जाना माना नाम है जिन्होंने निरंतर अपनी रचनाशीलता से आदिवासी साहित्य को समृद्ध किया है। सन् 2017 में लोकप्रिय आदिवासी कहानियाँ शीर्षक से प्रकाशित कहानी संग्रह में वंदना टेटे ने लगभग दो दर्जन आदिवासी लेखकों की कहानियों को प्रस्तुत किया है । 'पूस की रात' उसी संकलन की एक कहानी है जो ग्रामीण कृषि-व्यवस्था और उसमें स्त्रियों के योगदान को रेखांकित करती है। लहलहाते हरे भरे खेत बरबस मन को आकर्षित करते हैं लेकिन वे एक किसान की लगभग पूरे वर्ष की गई मेहनत का परिणाम होते हैं। पूस माह के भयंकर जाड़े में भी किसान अपने खेतों में श्रम करता रहता है जब उसकी मेहनत का प्रतिफल पाने वाले शहरी नागरिक गर्म बिस्तरों में आराम फरमाते हैं। ऐसे ही एक पूस के जाड़े में अपने खेतों में जाड़े की परवाह न करते हुए अनवरत श्रम करती स्त्री को गंगा सहाय मीणा अपनी कहानी में प्रस्तुत करते हैं।

बीज शब्द: *पूस, किसान, ज़मींदारी, आदिवासी, मजदूरी, खेत*

शोध आलेख

प्रेमचंद जी की कहानी 'पूस की रात' वर्षों पहले पढ़ी थी। आज फिर से उसी शीर्षक से लिखी आदिवासी लेखक और आलोचक गंगा सहाय मीणा की कहानी ने एक बार फिर जबरा के साथ पूस की रात में ठंड से बेचैन हल्कू की स्मृति ताजा कर दी।

हल्कू के माध्यम से कृषिप्रधान देश में रह रहे अरबों लोगों का पेट भरने वाले उस अन्नदाता किसान की हृदयविदारक कथा को प्रेमचंद जी ने कहा है जो दिन-

रात मेहनत करने के बाद भी अपने जीवन की सामान्य जरूरतों को पूरा करने में असमर्थ है l आज भी किसान की स्थिति बहुत बदली नहीं है l उसके पास खेती ही जीवनयापन का एकमात्र साधन है। बैंको या स्थानीय सम्पन्न लोगों से कर्ज लेकर और दिन रात परिश्रम करके वह फसल उगाता है जो असामयिक आंधी, वर्षा और ओलों का शिकार हो जाती है और कभी वह अपनी लहलहाती फसल को पा लेता है तो किसी तरह उस फसल के साथ जब मंडी पहुंचता है तो उसे अपनी फसल का उचित मूल्य नहीं प्राप्त होता। कर्ज ली गई धनराशि फसल को बेचकर प्राप्त की गई राशि से कई गुना अधिक होती है। उस पर कृषि सम्बन्धी नई-नई योजनाएं उनके संकटों को और बढ़ा देती हैं l खेतीबाड़ी छोड़कर वह अपने हक की लड़ाई लड़ने के लिए सड़कों पर उतरता है।

प्रेमचंद जी की कहानी का किसान यह सोचकर संतोष कर लेता है कि फसल बर्बाद हुई तो क्या हुआ मजूरी करके महाजन के पैसे चुका देंगे। "हल्कू किसानी से मुक्त हुआ या नहीं, यह हमें नहीं मालूम। पर अपनी दयनीयता से मानसिक मुक्ति पाकर उसे उस क्षण अपरिमित संतोष हुआ था। सहना और उसकी संपूर्ण व्यवस्था को उसने ठोकर मारकर अपने जीवन से अलग कर दिया था। अब खोने के लिए उसके पास कुछ भी न था।"1 हल्कू की गरीबी 'प्राकृतिक गरीबी' नहीं है जो उत्पादन की कमी से पैदा होती है बल्कि यह शोषण और संसाधनों के असमान वितरण से उत्पन्न 'कृत्रिम गरीबी' है। यहाँ तक आते आते प्रेमचंद जिम्मेदार व्यवस्था के खिलाफ़ किसानों की मानसिकता तैयार कर रहे थे l वे किसानों को शोषण से मुक्त कराना चाहते थे l कहानी का अंत इसी नाटकीय मोड़ पर हुआ है जहाँ हल्कू किसानी छूटने से खुश नज़र आता है। "वह सीमांत पैमाने पर किसान द्वारा किए जाने वाले आर्थिक उत्पादन की उस प्राचीन प्रणाली को भी नष्ट कर देगा जिसे सामंतवाद घसीटता हुआ, कृषि-क्रांति के अभाव में विनाश के द्वार पर ले आया है।"2 असल में, 'पूस की रात' में हल्कू का जीवन संघर्ष 'गोदान' के होरी से ज्यादा कठिन है क्योंकि होरी के सामने गरीबी, ऋणग्रस्तता और सर्द रात में फसल की रक्षा करने जैसी तमाम समस्याएँ तो हैं

लेकिन खेती को लेकर उसके मन में एक सम्मान का भाव है जो उसे मजदूर बनने से रोकता है। वह कहता है- "जो दस रु. महीने का भी नौकर है, वह भी हमसे अच्छा खाता-पहनता है,लेकिन खेतों को छोड़ा तो नहीं जाता। ... खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है।"3 किन्तु 'पूस की रात' का हल्कू जिन कठिन स्थितियों से गुजर रहा है उसमें मरजाद का विचार निरर्थक हो गया है। हल्कू की पत्नी मुन्नी उससे कहती है –"तुम छोड़ दो अबकी से खेती। मजूरी में सुख से एक रोटी तो खाने को मिलेंगी। किसी की धौंस तो न रहेगी। अच्छी खेती है! मजदूरी करके लाओ, वह भी उसी में झोंक दो, उस पर से धौंस।"4 "स्थिति से मुक्ति का यह मार्ग कितना भयानक है। कोई किसान जमीन छोड़ दें इसकी कल्पना भी उसके लिए असह्य है। यह संपत्ति का मोह उतना नहीं है, जितना भूमि से श्रम के नैसर्गिक संबंध का संस्कार है। सहस्राब्दियों से किसान इस नैसर्गिक संबंध से जुड़ा रहा है। उनके सारे जीवनकाल में यह संबंध व्याप्त है।"5

प्रेमचंद द्वारा रचित कहानी 'पूस की रात' 1921 में लिखी गयी थी। आज गंगा सहाय मीणा की किसान जीवन पर लिखी कहानी "21वीं सदी का पहला दशक बीत जाने के बाद के एक बरस का पूस का महीना'6 की कहानी है। इस लंबे दौर में हमारा समाज कितने ही परिवर्तनों से गुजरा है। यहाँ दोनों कहानियों की तुलना करना मेरा उद्देश्य नहीं क्योंकि दोनों कहानियों का उद्देश्य और परिस्थितियां भिन्न-भिन्न हैं । प्रेमचंद जी एक बड़े साहित्यकार हैं जो बदलते समय के साथ किसानों की बदलती स्थिति को बड़ी बारीकी से पकड़ते हैं और उसे उस स्थिति से निकलने का रास्ता भी दिखाते हैं।

आदिवासी समाज जो अपने जल -जंगल -जमीन से हमेशा जुड़ा रहा है, आज शिक्षा और अपनी प्रतिभा के बल पर तकनीकी विकास और रोजगार के नए अवसरों का लाभ उठाते हुए विभिन्न क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज कर रहा है। लेकिन गांव, खेती-बाड़ी और अपनी पुरानी जीवनशैली को उसने पूर्ण रूप से छोड़ नहीं दिया। आज भी गांव देहात के आदिवासी युवक नौकरी के लिए अपने गांव से दूर जाते हैं लेकिन परिवार के अन्य सदस्य उसकी अनुपस्थिति में भी

घर-परिवार और कृषि की जिम्मेदारियों को सँभालते हैं। आदिवासी समाज में स्त्रियां भी पुरुष के साथ सभी तरह की जिम्मेदारियों को साझा करती हैं, कृषि जैसे कठिन कार्य में भी उनका योगदान होता है।

रिस्पॉन्सिबिलिटी शेयरिंग अगर देखे तो वह आदिवासी समाज में फीमेल के पास ज्यादा है। जब भी हम किसान की बात करते हैं या किसान का नाम लेते हैं तब एक पुरुष की तस्वीर दिमाग में बनती है। किसान स्त्री कहीं दिखती ही नहीं जबकि किसानी का काम तब तक हो ही नहीं सकता जब तक की पूरा परिवार उसमें लगा ना हो।

आदिवासी लेखक गंगा सहाय मीणा, गांव और किसानी जीवन के प्रामाणिक चित्र अपनी कहानियों में प्रस्तुत करते हैं। कहानी की शुरुआत जिस ढंग से की है उससे कहानी का देशकाल ज्ञात होता है ।

किसानों के लिए अपने खेतों में अच्छी उपज के लिए समय पर सिंचाई करना आवश्यक होता है। भूरी भी चाहती है कि उसके खेतों की सिचाई समय पर हो और इसलिए हफ्तेभर तक प्रयास करती है कि उसकी अपने खेतों में पानी भरने की बारी आ जाए। और आखिरकार उसकी सरसों भराने की बारी आती है जिसकी सूचना रामजीलाल पटेल उसके पति हरकेश मास्टर को देता है।

रामजीलाल पटेल किस मिज़ाज का इंसान है यह इस बात से पता चलता है कि वह 'मिस्ड कॉल करके' हरकेश मास्टर को इस बात की सूचना देता है कि उनके खेत भराने की बारी आ गई है। इसीलिए उससे अन्य किसी प्रकार की उदारता की उम्मीद नहीं की जा सकती और इसी कारण उनकी बारी आने पर वे किसी भी प्रकार इस अवसर को गंवाना नहीं चाहते। झम्मन के पिताजी ने रामजी लाल पटेल से अपनी बेटी की शादी और छोटे बेटे को बी.एड कराने के लिए कर्ज लिया था जो अभी तक चुका नहीं था जिसकी एवज में उसने झम्मन को काम पर रख लिया था। यहाँ रामजी लाल पटेल उस जमींदार का प्रतीक ही है जिससे लिया गया कर्ज किसान चुका ही नहीं पाता और उस कर्ज का बोझ उसकी

पीढ़ियां ढोती रहती हैं l समय परिवर्तन के साथ समाज की व्यवस्थाएँ तो बदलती रहीं लेकिन शोषक और शोषित के रिश्ते वही रहे, हाँ पहचान बदल गई।

कहानी में सबसे बड़ी समस्या यह है कि घर के पुरुष अभी गांव से बाहर हैं l घर का बड़ा बेटा हरकेश अपने गांव गंगापुर से दो सौ किलोमीटर से अधिक दूर किसी गांव में शिक्षामित्र के रूप में काम कर रहा है ओर उसके समक्ष छुट्टी की समस्या है। छोटा भाई जयपुर में पढ़ रहा है l रामजीलाल पटेल के प्रस्ताव पर 'हाँ' कहे या 'ना' इस द्वंद से निकलने के लिए हरकेश अपनी पत्नी और माँ से राय लेता है। वह जानता है कि खेतों में समय पर पानी दिया जाना आवश्यक है और उसकी छुट्टियाँ अभी दस दिन बाद होनी हैं , तब तक देर हो जाएगी।

पति की बात सुनकर भूरी थोड़े संकोच के साथ हाँ कर देती है। यूँ तो आदिवासी समाज में स्त्रियां खेतीबाड़ी के काम करती ही हैं किंतु यहाँ भूरि के संकोच का कारण संभवत रात में कूड मोड़ने जाने का है और इस काम में उसे किसी के सहयोग की आवश्यकता भी है। उसके बच्चे छोटे हैं और वह जानती है कि बूढ़ी सास इस काम में सहयोग नहीं कर सकती, फिर यह बेहद सर्द रात है जिसके बर्फीले थपेड़ों को सहना भी आसान नहीं होगा। बहू की आशंका के विरुद्ध हरकेश की जीजी यहाँ सशक्त भूमिका में दिखाई देती है। बेटे से बात करते हुए वह इस निर्णय पर पहुंचती है कि 'सरसो आज ही भराएंगे, लेकिन कूड मोड़ने (खेतों की पटवन) के लिए एक मजदूर भी कर लेंगे।"7

प्रायः आदिवासी स्त्रियों के संदर्भ में यह सुनने को मिलता है कि आदिवासी स्त्रियों को बहुत आजादी है , वे घर से बाहर जा सकती हैं, उन पर उतनी पाबंदी नहीं जितनी कि मुख्यधारा की स्त्रियों पर होती है लेकिन वे नहीं जानते कि इस आजादी की कीमत क्या है। उनका बाहर निकलना आजादी का प्रतीक है या उनकी मजबूरी। हमें यह देखना चाहिए कि वे घर से क्यों निकलती हैं , किस लिए जा रही हैं और परिवार के द्वारा उन्हें क्यों जाने दिया जा रहा है। उन पर दोहरा बोझ होता है, उन्हें घर की व्यवस्था भी देखनी होती है और खेत खलियान

संभालने की या जंगल से लकड़ी आदि इकट्ठा करके लाने की जिम्मेदारी भी होती है।

आदिवासियों का इतिहास उठाकर देखें तो हम पाएंगे कि आदिवासी स्त्री न तो देवी बनाकर पूजी गई और न ही घर की चारदीवारी में कैद करके घर की शोभा बनाई गई। "आदिवासी समाज की महिलाएं अपने पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलती रही हैं। पुरुष अगर शिकार जैसे कठिन काम करते तो वे घर के भीतर और बाहर के पशुपालन और खेती से जुड़े सभी काम संभालतीं, 'दिसोम सेन्द्रा' जैसे बड़े शिकार उत्सवों के अलावा छोटे-छोटे शिकार में महिलाएं भी कभी कभार सहायक बनतीं।"8

पहले जब सभी खेती किसानी से जुड़े थे तो गांव के पुरुष और महिलाएं मिलकर इन सब कामों को करते थे। महिलाएं घर की समस्त जिम्मेदारियों, अपने पशुओं का चारा-पानी और खेती के समस्त कामों में भी अपनी भूमिका अदा करती थी किंतु अब जब गांव के पुरुष पढ़ लिख कर नौकरी करने शहर की ओर निकल गए हैं तो खेती की समस्त जिम्मेदारी स्त्रियों पर ही आ गई है जिसे वे बखूबी निभाती हैं। भूरी को आज सरसो भराने जाना है इसलिए "भूरी ने दोनों बच्चों को खाना खिलाकर सुलाया। भैस और पड़िया को साँदी -पाणी दिया। दोनों, सास-बहू ने खाना खाया।' और भूरी एक शॉल तथा सास एक पुराना कंबल तथा एक टॉर्च और गैस लेकर खेतों की ओर निकल गईं। यद्यपि सास खेती के किसी काम में भूरी का हाथ नहीं बंटाती लेकिन वह जानती है कि भूरी के साथ रात में उसकी वहाँ उपस्थिति भूरी को बल प्रदान करेगी। वह बूढ़ी माँ अपनी जितनी जिम्मेदारी निभा सकती है उसे निभाने की कोशिश करती है।

लेखक किसानी जीवन और उसकी समस्याओं को प्रस्तुत करता है। यह किस्से कहानियों का विषय नहीं है और न ही कल्पना से बना लिए गए मनगढ़ंत चरित्रों के साहसिक कारनामे। ये साधारण किसान चरित्र हैं पर विकट परिस्थितियों में भी अपनी श्रमशीलता और कर्मठता से अपराजेयता सिद्ध करते योद्धा हैं।

लेखक पाठक को उस गांव की कृषि परंपरा से परिचित करवाता है। वह बताता है कि चार-पांच साल पहले तक बगीचे वाले कुएं में काम लायक पानी हो जाता था। बारह साल पहले तो यहाँ पानी की कोई कमी नहीं थी।... ज्यादातर गांवों में बड़े तालाब थे, जो लगभग हर साल भर जाया करते थे। सूखे और पानी की किल्लत के लिए जाने जाने वाले राजस्थान के सवाई माधोपुर के करौली जिले में पानी की किल्लत नहीं रही क्योंकि यहाँ पांचना बांध से कई नहरें निकलती थीं।

पहले जब कुओं में पानी हुआ करता था तो लोग कुओं पर ही नहाने जाते थे और ये कुएँ खेतों में बने होते थे इसलिए बहने वाला पानी फसलों में चला जाता था किंतु "अब गांव में नल लग गए और कुंडे खुद गए। सब घर पर ही नहाते हैं। पूरा गांव कीचड़ भरी नाली में तब्दील हो गया है।"9 और जिनकी वजह से गांव की स्वच्छता प्रभावित हुई है। नई जीवनशैली और सुविधाओं ने जहाँ जिंदगी को आसान बनाया है वहीं कई अन्य तरह की समस्याएं उत्पन्न की हैं।

पहले जब कुओं में पानी हुआ करता था तो सिंचाई भी आसान थी। इन लोगों ने खुद खोदकर कुँए बनाए थे। कुओं में ऊपर तक पानी होने के कारण सिंचाई आसान और किफायती थी। किसी भी खेत में मेड़ ना होने के कारण पहले पहाड़, डूंगर, गांव और खेतों से निकलने वाला बारिश का पानी निर्बाध बहते हुए तालाब तक पहुँच जाता था।

आदिवासी समाज को उसकी सामूहिकता के लिए जाना जाता है लेकिन परिवर्तन की संधि में, संस्कृतीकरण के प्रभावस्वरूप आदिवासी समाज की यह सामूहिकता संकट में आ गई है। मगर "धीरे धीरे आदिवासी बहुल इस गांव में लोगों में स्वार्थपरता घर करती गई और उन्होंने अपने खेत के पास से गुज़रने वाले बरसाती नाले की तरफ अपने अपने खेतों को बढ़ाना शुरू किया। अपने खेतों का पानी मजबूत डौड़ बनाकर अपने खेतों में ही रोक लिया तथा जिन लोगों के खेतों में होकर पानी बड़े तालाब तक पहुंचता था, उन्होंने भी डौड़ कर

दी। फलस्वरूप तालाब का भरना बंद हो गया, जिससे पूरे गांव में जलस्तर नीचे जाता रहा और एक दशक से भी कम समय में भरे रहने वाले कुएं हमेशा के लिए सूख गए।"10

विकास और तकनीक के नए उपकरणों ने गांव के जनजीवन को प्रभावित किया है। गांव में बड़े किसानों ने बोरिंग करना शुरू किया जिससे सिंचाई महंगी और मुश्किल हो गई। बोर कराने पर आने वाली लागत की भरपाई के लिए ये बोर मालिक दूसरे किसानों के खेतों में सिंचाई करके इस खर्च को निकालने लगे। यानी उनकी व्यवसायी बुद्धि ने धन उपार्जन के नए तरीके और छोटे किसानों के शोषण के रास्ते तैयार किए। 'हरकेश और रामजीलाल के बीच चार रूपये प्रति घंटे की रेट तय हुई थी।"11

हरकेश के पिता ने बगीचे वाले कुएं को खोदने और बांधने में सबसे ज्यादा श्रम किया था लेकिन उनके गुजर जाने के बाद जीजी ने सारी गृहस्थी संभाली। बेटों को पढ़ाया, बेटी की शादी की। बेटी की शादी में लिया गया चार लाख रूपये से ऊपर का कर्ज चक्र वृद्धि ब्याज में बढ़ता ही चला गया। जमीन से गुज़ारा संभव नहीं था। जहाँ अपने परिवार से दूर शिक्षामित्र के रूप में नौकरी कर हरकेश गृहस्थी को सहारा दे रहा था वहीँ जीजी और भूरी मिस्ड कॉल (मास्टर रोल) पर काम करके सहयोग कर गृहस्थी के चक्के को गति दे रही थीं।

जनजातीय अर्थव्यवस्था में भूमि का स्वामित्व उनकी आजीविका और संस्कृति का द्योतक है और इससे उनकी एक पहचान बनती है। खेती में रोपनी, कटाई-भराई जैसे तमाम तरह के काम होते हैं। कृषि में घर के पुरुषों के न रहने के कारण कृषि के श्रमशील और कठिन कार्य के लिए कभी कभी मजदूर की जरूरत पड़ जाती थी।

कहानी में घर के सभी काम निपटाकर भूरी और उसकी सास खेतों पर पहुंचते हैं। भूरी झम्मन को पानी चालू करने के लिए कह आती है। भूरी की सास खेत के

किनारे बगीचे की डौड़ पर कंबल ओढकर बैठ जाती है और भूरी तथा किराए पर लाया गया मजदूर रमेश सरसों के खेत में कूड़ मोड़ने लगते हैं।

पूस की रात में ठंड ज़ोर पर थी और कोहरा छाया हुआ था, पुरवैया हवा ठंड को और बढ़ा रही थी। ऐसे भयानक जाड़े में भूरी पानी में उतरती है जिससे उसकी सलवार घुटने से थोड़ा ऊपर तक भीग जाती है। "यह पूस की रात की हवा है, जो हार में हाड़ तक को गला डालती है। किसान से ज्यादा इन हवाओं की मार को कौन जान सकता है"12 भूरी की सास बीच बीच में खखार कर अपनी उपस्थिति दर्ज करती है। यह शब्दहीन संवाद है और एक आश्वासन भी कि वह जाग रही है।

कूड मोड़ते हुए भूरी ये महसूस करती है कि क्यारी भरने में कुछ ज्यादा वक्त लग रहा है। उसे अंदेशा होता है कि पाइप से आता हुआ पानी कहीं बीच में फूट तो नहीं गया है। रमेश आधी रात के लिए तीन सौ रूपये में आया हुआ मजदूर है इसलिए उसे इस बात की कोई विशेष चिंता नहीं है। भूरी को यह झम्मन की शरारत भी लगी और इसीलिए रमेश को काम पर लगा कर वह बोर की ओर दौड़ गई किंतु झम्मन उस समय तिवारे में सोया हुआ था। इस बात से आश्वस्त होकर कि यह काम झम्मन का नहीं है वह पाइप के साथ साथ खेत की ओर चलना शुरू करती है और समस्या का कारण खोज निकालती है। "भैरो के खेत में पानी भरा हुआ था। उसको समझते देर नहीं लगी।"13 लेकिन अब पानी को कैसे रोका जाए यह एक नई समस्या थी। पानी बंद करवा देने का अर्थ था फिर एक लंबे समय तक अपनी बारी का इंतजार जो खेतों के लिए नुकसानदायक हो सकता था इसलिए "उसने सिर और कानों को ढक कर ओढा हुआ शॉल उतारा और टूटा पाइप बांधने में जुट गई।"14 पाइप तो बंध गया लेकिन ऐसा करने के प्रयास में वह पूरी तरह से भीग गई थी। वातावरण की कसमसाहट और भयंकरता कहानी के विकास के साथ बढ़ती दिखाई देती है।

इस असहनीय ठंड में वह आग जलाकर बैठी हुई बूढ़ी सास के पास जा बैठी जो अभी भी जागते हुए मीणावाटी गीत गुनगुना रही थी।'15 सास के पास सुलगती आग में उसे सुकून महसूस होने लगा। उसे याद आईं वे तमाम रातें, जो उसने और हरकेश ने खेतों पर कूड मोड़ते हुए बिताई थी, दोनों ने एक दूसरे को गर्म किया था पर सुबह संतुष्ट होकर घर लौटे थे।"16 उसके शरीर में ठंड इतनी बुरी तरह समाई हुई थी कि उसने आग में अपने हाथ पैर इतने करीब से सेके कि ऊपर से खाल जलने को हो गई। प्रेमचंद की कहानी का का 'हल्कू' भी पूस की ठंड से बचने के लिए कभी सूखे पत्तों को इकट्ठा करके जलाता है तो कभी अपने गंधाते कुत्ते से लिपटकर सोने की कोशिश करता है।

भीगे कपड़ों में अपने आप को ठंड से बचाने के लिए भूरी जो कुछ देर आग के पास बैठी तो रमेश भी कुछ अवकाश पा गया। भूरी ने देखा कि रमेश बीडी पी रहा था। "उसे रमेश पर गुस्सा आया कि पैसे तो पूरे ले लेगा, लेकिन ठीक से कूड नहीं मोड़ रहा।"17 यह ठीक है कि जो लगाव भूरी को अपने खेतों से है वैसा लगाव उस मजदूर को नहीं हो सकता। वह निर्धारित समय के लिए एक निर्धारित मजदूरी पर आया है। लेकिन भूरी को यह अपने पैसों की बर्बादी लग रही थी। प्रेमचन्द के हल्कू को जोड़े गए तीन रूपये सोहना को देने पड़ते हैं। 'हल्कू ने रुपए लिए और इस तरह बाहर चला मानो अपना हृदय निकालकर देने जा रहा हो' यहाँ भी आधीरात के लिए तीन सौ रूपये में मंजूर हुआ था।

खेतीबाड़ी के प्रश्न पर किसान अपने जीवन का मोह भी नहीं रखता। हम जानते हैं कि प्रेमचंद द्वारा 'पूस की रात' एक खास उद्देश्य से लिखी गई कहानी थी। वहाँ कृषि में अपना पूरा श्रम निचोड़ देने के बाद हार चुका किसान था।

हल्कू में जहाँ गर्मी के सुख के अनुभव को न त्यागने का लालच था वहीँ भूरी में खेत बचाने की कोशिश और मेहनत से कमाए हुए पैसे को बचाने का लालच अधिक है। एक बार आग के करीब बैठ लेने के बाद भूरी को "दोबारा पानी में उतरने का साहस नहीं हो रहा था, लेकिन जैसे ही उसे चार सौ रूपये घंटे का

अहसास हुआ, वह पानी में उतर गई और किसी युद्ध में अपने पक्ष के बचे आखिरी योद्धा की भाँति तब तक कूड मोड़ती रही, जब तक खेत भर नहीं गया। "18

आदिवासी स्त्री के श्रम, उसकी कर्मठता का बेहद सुन्दर प्रस्तुतीकरण इस कहानी में हुआ है। किसान का जीवन, इससे जुड़ी समस्याएं, विकास के साथ ग्रामीण जीवन में आये परिवर्तन, ग्रामीण जीवन में कृषि कार्यो में स्त्री की भूमिका , विपरीत परिस्थितियों में भी एक योद्धा की भाँति डटे रहने वाले किसान के यथार्थ को बेहद संजीदगी के साथ कहानी में प्रस्तुत किया गया है।

संदर्भ सूची

1. पूस की रात: नाम हीन आतंक और निरीह किसान चरित्र की अपराजिता, हिंदी कहानी: रचना और परिस्थिति-दमयंती चौधरी, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, संस्करण 2009, पृष्ठ182
2. वही , पृष्ठ 178
3. गोदान-प्रेमचन्द, वाणी प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2011, पृष्ठ 19
4. पूस की रात,मानसरोवर भाग 1 -प्रेमचन्द, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1991, पृष्ठ 152
5. पूस की रात: नाम हीन आतंक और निरीह किसान चरित्र की अपराजिता, हिंदी कहानी: रचना और परिस्थिति-दमयंती चौधरी, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, संस्करण 2009,पृष्ठ 179
6. लोकप्रिय आदिवासी कहानियाँ-संपादक वंदना टेटे, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ234
7. वही , पृष्ठ 235
8. आदिवासी प्रतिरोध -मीणा, केदार प्रसाद, प्रथम संस्करण 2017, अनुज्ञा बुक्स दिल्ली,पृ.20
9. लोकप्रिय आदिवासी कहानियाँ-संपादक वंदना टेटे, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ235

10. वही , पृष्ठ 236
11. वही , पृष्ठ 237
12. पूस की रात: नाम हीन आतंक और निरीह किसान चरित्र की अपराजिता, हिंदी कहानी: रचना और परिस्थिति-दमयंती चौधरी, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, संस्करण 2009,पृष्ठ 179
13. लोकप्रिय आदिवासी कहानियाँ-संपादक वंदना टेटे, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ238
14. वही , पृष्ठ 239
15. वही , पृष्ठ 239
16. वही , पृष्ठ 239
17. वही , पृष्ठ 239
18. वही , पृष्ठ240

'डार्क हॉर्स' : सिविल सर्विस की एक अनकही दास्तान..

डॉ. प्रियंका
सहायक प्राध्यापक
हिन्दी विभाग, माउंट कार्मल कॉलेज, स्वायत्त, बैंगलोर
दूरभाष : 7290859844
ईमेल : prix3030@gmail.com

सारांश

रोचक शैली में लिखित उपन्यास 'डार्क हॉर्स' देश के उन युवाओं की भावनाओं को उजागर करता है जिनके भीतर यू.पी.एस.सी. की परीक्षा उत्तीर्ण कर समाज के लिए कुछ कर दिखाने का जज्बा होता है। देशभर के छोटे-बड़े प्रांतों से अभिलाषी दिल्ली के मुखर्जी नगर में आकर यू.पी.एस.सी. के परिणाम में अपना नाम टंकित करने की हर संभव कोशिश में जी जान से जुट जाते हैं। जैसे-जैसे वर्ष बीतते हैं तो पता लगता है कि कौन उस रेस का डार्क हॉर्स था। साथ ही, उपन्यास में यू.पी.एस.सी. की परीक्षा में बैठने वाले अभ्यर्थियों की मानसिक स्थिति, उनके समाज को देखने के नजरिए में आम जन से भिन्नता भी दृष्टिगोचर होती है। लेखक स्वयं मुखर्जी नगर की दुनिया को जिए हैं, जिस कारण उपन्यास में मुखर्जी नगर की तस्वीर आँखों के सामने सजीव रूप में पूरे उपन्यास के दौरान बनी रहती है, वहीं दूर प्रांत से आए यू.पी.एस.सी. अभिलाषी की मनःस्थिती के अनेकों पटल लेखक ने केंद्रित पात्र संतोष के अलावा सहायक पात्रों के माध्यम से बड़ी ही सुगठित, चुटीली एवं चित्रात्मक भाषा के माध्यम से उजागर किए हैं।

बीज शब्द : *यू.पी.एस.सी., लालबत्ती, कलेक्टर, अभ्यर्थी, जीवन, उपन्यास*

शोध आलेख

साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार से पुरस्कृत उपन्यास 'डार्क हॉर्स' के केंद्र में लेखक नीलोत्पल मृणाल एक ऐसी कहानी को केंद्र में रखते हैं जिसका सपना देश के ज्यादातर युवाओं ने एक बार अवश्य देखा होगा। आमतौर पर यह देखा गया है कि जिस धारा या व्यक्ति विशेष का परचम लहरा रहा हो उसी पर सबकी

दृष्टि केंद्रित हो जाती है। वही, श्रेष्ठ भी मान लिया जाता है। पाठक वर्ग भी बनी बनाई परिपाटी पर अंधभक्त की तरह चलना अपना परम कर्तव्य मान लेता है। शायद लेखक पाठक की इस मनःस्थिति को भांपते हुए ही भूमिका में स्पष्ट लिखते हैं-"अंत में यही चाहूँगा कि इस उपन्यास को इस कसौटी पर ना कसा जाए कि इसे किसने लिखा है और क्यों लिखा है, बल्कि इसलिए पढ़ा जाए कि इसे किस विषय पर लिखा गया है और कितना सच लिखा गया है।"1 यह बात तो स्पष्ट है कि यह उभरते कथाकार द्वारा लिखित उपन्यास है। किस विषय पर लिखा गया है? यह विषय है उत्साहित उम्र में युवा पीढ़ी द्वारा स्वयं को कलेक्टर बनते देखना। 'यू.पी.एस.सी.' की परीक्षा पास कर समाज और देश का भविष्य सुधारने की प्रक्रिया में जुट जाना। आई.ए.एस. बन जाने का सपना तो सबकी आँखें देख लेती हैं लेकिन साकार उन्हीं का हो पाता है जो रणक्षेत्र की पूरी बारीकियों और शस्त्रों को चलाने के सही अंदाज को समझ पाते हैं। जाहिर सी बात है कि यह एक ऐसा विषय है जो पाठक को अपना सा लगेगा। चाहे, वे जिन्होंने आँखों में हजारों सपने सँजोकर फॉर्म भरा हो लेकिन कभी परीक्षा भवन में प्रवेश कर परीक्षा ना दी हो, या वे जो कई बार प्रीलियम्स, मेंस या साक्षात्कार तक पहुंचकर वापिस अपने किताब भवन में लौट आए हों और फिर से एम. लक्ष्मीकांत, विपिन चंद्रा, नितिन सिंघानिया को गले लगाकर उनसे छोड़कर जाने की माफी मांगी हो। खैर, हारे हुए को बाजीगर तो नहीं कह सकते भले ही वो साक्षात्कार में विराजित पैनल मेम्बर के दर्शन कर चुका हो। बाजीगर तो वही है जिसने इतनी लंबी छलांग लगाई हो जो प्रीलियम्स, मेंस और साक्षात्कार की सीमा को पार कर सीधे लालबत्ती की गाड़ी का सुख प्राप्त कर सके। इस लालबत्ती तक पहुँचने का सफर आसान नहीं है बल्कि मानसिक स्तर के कई ऐसे पड़ाव हैं जिनसे हर क्षण जूझते हुए फिर से स्वयं को एक नए सिरे से मैदान के लिए तैयार करने की प्रक्रिया है।

उपन्यास का केन्द्रिय पात्र संतोष भागलपुर से दिल्ली के मुखर्जी नगर में आई.ए.एस. बनने के सपने लिए आया था। रायसाहब और मनोहर ने संतोष को

वजीराबाद में गुरूभाई की ही इमारत के दूसरे तल्ले में रहने के लिए पचपन सौ भाड़े में एक कमरे की जुगाड़ करवाई। बसेरा जैसे ही बसा वैसे ही रंग-बिरंगी पार्टी के फरमान भी मनोहर द्वारा पेश कर दिए गए। संतोष वैष्णव था कभी मांस-मदिरा को उसने छुआ तक नहीं था, लेकिन सवाल रंग-बिरंगी पार्टी का था, जीवन में नए-नए दोस्तों के स्वागत को कैसे किसी अभाव के जरिए ठेस पहुंचाने की कल्पना की जा सकती थी। "दोनों जांघों के बीच रखे बीयर-दारू भरे कार्टन और हाथ में चिकिन की पॉलिथीन उसके शरीर में अजीब सी सिहरन पैदा कर रहे थे।"2 यानी यू.पी.एस.सी. की तैयारी के लिए खरीदी गईं किताबें ऑटो में पीछे की तरफ ठकेली गई, गोद में रंग-बिरंगी सामग्री सहेजे संतोष बाजार से खरीददारी कर ऑटो में बैठा चला आ रहा था।

आप अपने गाँव से दिल्ली के मुखर्जी नगर तक पहुँच गए लेकिन कोचिंग को कोई अहमियत नहीं दी गई, यह तो सरासर उस क्षेत्र की तोहीन है। संतोष की भी चिंता का कारण विषय और कोचिंग के सही चुनाव का था। संतोष के दिमाग में इतिहास विषय का चुनाव तो लगभग निन्यानवे प्रतिशत कन्फर्म ही था, लेकिन 'लोकसेवक मेकर' कोचिंग सेंटर के रीसेप्शन पर बैठी देवी मनमोहिनी वर्मा की मोहक मुस्कान के आगे संतोष के निन्यानवे प्रतिशत कान्फिडन्स का तो जैसे स्वाहा हो गया, यहाँ तो देवी मनमोहिनी वर्मा ही सभी दुखों की हरता थीं। उन्हीं की सलाह पर पब्लिक ऐड और सोसियोलॉजी के कॉमबिनेशन पर संतोष ने अपनी सहमती का ठप्पा लगा दिया। पहले ही दिन कोचिंग सेंटर में प्रवेश करते ही मनमोहिनी जी ने अपनी सुषम रबड़ी मुस्कान के साथ 'मोस्ट बेलकम' कहकर संतोष के हृदय में सीधी एंट्री ली। संतोष जिस मनमोहक मुस्कान के साथ जुड़ा जा रहा था, वह भ्रम मानमिहिनी जी के इस वाक्य से तो जैसे चकनाचूर हो गया- "अरे भाँड़ में जाए विश! देखिए हमारा काम होता है हर स्टूडेंट का बेवजह उत्साह बढ़ाना समझे आप? वरना हम भी जानते हैं कि सौ में से दस ही सिलेक्ट होते हैं बाकी गधे ही होते हैं पर हमें सबको घोड़ा कहना पड़ता है।"3 संतोष नकाबों के पीछे छिपे मनमोहिनी जी के चेहरे को देख दंग रह गया। एक व्यक्ति

के कम से कम नौ चेहरे होते हैं, यह संतोष को आज पता चला था। भई, बिजनेस नाम की भी तो कोई चीज होती है कि नहीं, यह बात भोला संतोष भला क्या जनता!

कलेक्टर जब बन गए तो कहना ही क्या। भई, आगे आने वाली तीन पीढ़ियों की भी तो किस्मत चमक उठी। लेकिन क्या यू.पी.एस.सी. की तैयारी का रुतबा कम होता है! लक्ष्मीकांत हाथ में लेते ही कलेक्टर वाली फीलिंग आ ही जाती है, अगर एक बार ध्यान से थोड़ा पढ़ गए तो समझो कि मन ने तो फिर स्वयं को कलेक्टर मान ही लिया। अब मन में खुद को कलेक्टर की उपाधि से नवाज दिया तो रहन-सहन भी कलेक्टर वाला ही होना चाहिए। "मुखर्जी नगर में खाना बनाने के लिए कुक रखने का चलन खास था। असल में कुक के द्वारा खाना बनाने से खुद के अंदर एक अधिकारी वाली फीलिंग आती थी।"4 मन से जब स्वयं को कलेक्टर मान लिया तो दुनिया क्यों न माने! एक यू.पी.एस.सी. अभ्यर्थी जब ट्रेनों में सफर करे तो बुग्गी में बैठे बाकी सभी यात्रियों का फर्ज बनता ही है कि उसकी बातें ध्यान एवं सम्मानपूर्वक सुनें । आखिर अभ्यर्थी यू.पी.एस.सी. की तैयारी कर रहा है, थोड़ी ना एस.एस.सी., बैंक पीओ या रेलवे की। भई, रेपोटेशन नाम की कोई चीज है जो बरकरार रहनी चाहिए। यू.पी.एस.सी. के अभ्यर्थी के लिए बात ये ठीक ही तो बैठती है-"फ्री-फोकट में बिना कुछ किए इतनी इज्जत और कुछ करके नहीं मिल सकती थी।"5 बिल्कुल, कुछ शब्दों का वजन ही इतना होता है कि उससे दबके ही आदमी खत्म हो जाए। फिर आम व्यक्ति कैसे अहमियत ना दे! अगर कल के दिन लिस्ट में आई.ए.एस. नाम टंग गया फिर उस आम इंसान को भी तो कहने में प्राउड फ़ील होगा न, कि ये तो हमारा ही जानने वाला व्यक्ति है। उस आम इंसान को भी कितने सलाम देने लगेंगे कि ये आई.ए.एस. अधिकारी के परिचित हैं।

मुखर्जी नगर में कलेक्टर बनने वाले युवाओं के कंधों पर एक यह जिम्मेदारी भी रहती कि गाँव से कोई भी सज्जन आए तो सारी अतिथि सेवा का भार यू.पी.एस.सी. अभ्यर्थी के कंधों पर आन पड़ता। मनोहर के चाचा एम्स में किडनी

इलाज के लिए दिल्ली आते हैं। यहाँ उनके ठहरने, खाने-पीने, घुमाने की जुगाड़ करने वाला एक मनोहर ही था, सो चाचा आन पड़े मनोहर के दरबार में। मनोहर ने भी चाचा के स्वागत में कमरे की रूपरेखा बदलने में कोई कसर नहीं छोड़ी। अरे, जब चाचा अंग्रेजी अखबार 'द हिन्दू' को पढ़ते देखेंगे तभी इंप्रेसन पड़ेगा जिसका प्रभाव घर-गाँव तक पहुँचेगा। कमरे की रूपरेखा बदलने से लेकर कमरे में 'दैनिक भास्कर' की जगह अखवार वाले को 'द हिन्दू' डालने का हुक्म झट से दे दिया गए। अखबार वाले को भी समझने में पल भर की देरी न लगी कि आखिर माजरा क्या हो सकता है। चाचा जी द्वारा दीवारों पर लगे लेडी गागा, शकीरा, ब्रिटनी स्पीयर्स के पोस्टरों को देखे जाने पर एक यू.पी.एस.सी. का विद्यार्थी कुछ इस प्रकार समझाता है-"वो तो यहाँ तैयारी करने आए तो इन लोगों के बारे में पता चला नहीं तो गाँव-देहात में तो लोग ई सबका नाम भी नहीं सुने होंगे। आर्ट और कल्चर में इससे प्रश्न भी पूछ देता है कभी-कभी, ऐसे थोड़े लगाए हैं।"6 इतनी सार्थकता एवं उपयोगीता जब उन पोस्टरों की हो, फिर भला चाचा उन्हें दीवार से हटाने की कल्पना भी कैसे कर सकते! यह बुद्धिमत्ता और किस परीक्षा के प्रतिभागियों में देखने को मिल सकती है। चाचा जी का एम्स में किडनी दिखाना तो कुछ ही घंटों का काम था प्रोग्राम तो तीन दिन तक रहकर दिल्ली दर्शन का था। यू.पी.एस.सी. के प्रतिभागी से अच्छा कोई और टूरिस्ट गाइड हो सकता है भला! चाचा जी तो वैसे भी मन में दिल्ली में चप्पा-चप्पा के दर्शन करने की मुराद लिए आए थे। एक-एक चीज को बारीकी से परीक्षण कर प्रश्नों की मानों बोझार लगा देते। लाल किला, कुतुब मीनार, इंडिया गेट, राजघाट, शक्ति स्थल, किसान घाट, एकता स्थल, समता स्थल, वीरभूमि को दिखाने के बाद भी जब चाचा जी का दिल्ली दर्शन पूरा नहीं हुआ तो यही कहते बनेगा- "चाचा अब जितना कब्बर और समाधि था दिल्ली में, आप सब देख लिए, कुछ छूटा नहीं है, सोनिया जी या मनमोहन जी तऽ अभी खैर ठीक हैं, दस-पंद्रह साल में फेर कभी आइएगा तऽ घुमा देंगे।"7

प्रिलियम्स के इम्तिहान के बाद ही अभ्यर्थियों को समय मिलता है कि घर-गाँव घूम आयें। रायसाहब और जावेद भी प्री के बाद मुखर्जी नगर की गलियों को कुछ समय के लिए अलविदा कह अपने गाँव के लिए रवाना हुए। एक आम व्यक्ति द्वारा समाज को देखे जाने का नजरिया यू.पी.एस.सी. अभ्यर्थी के नजरिए से संभवतः भिन्न ही होगा। "नहीं, बताइए सीधे बोर्ड देखने को कह दिया फिर पूछताछ काउन्टर का औचित्य ही क्या है? क्या जंगलराज है यहाँ, अरे जब हम लोग को ऐसा जवाब मिलता है तो बताइए आम आदमी का क्या होता होगा?"8 बेचारे इनक्वायरी मास्टर को कहाँ पता था कि जो पूछताछ के लिए महोदय आए थे वे ऐसे ही ऐरे-गेरे थोड़े ही न थे बल्कि वे कलेक्टर की पढ़ाई करने वाले छात्र हैं। बस एक बार अगर किस्मत साथ दे जाए तो सीधे कलेक्टर बने आएंगे और तुम्हारा तबादला ऐसे सुदूर प्रांत में कर देंगे जहाँ भिनभिनाती मक्खियों के बीच में बुत बने बैठे रहोगे। अभी तो रायसाहब अपना मन मसोसकर रह गए, क्योंकि अभी प्री की ही परीक्षा हुई थी, मेंस और इंटरव्यू तो बाकी था। लेकिन सारे ही क्षण एक जैसे ही थोड़े ही न होते हैं, ट्रेन की स्लीपर क्लास की बुग्गी में बैठते ही सारे यात्रियों की दृष्टि के केंद्र बिन्दु तो अब यही थे। खूब अपना ज्ञान इन अज्ञानी यात्रियों को रास्ते भर सुनाते रहे। जब उतरने का समय आया तो यात्रियों को यूँ लगा जैसे उनका पालनहार उन्हें छोड़ कहीं दूर जा रहा हो-"एक आदमी ने झट मोबाइल निकालकर तस्वीर खींच ली और वहीं के वहीं उसको अपना वॉलपेपर बना लिया।"9 अरे इसमें अचंभव होने की क्या बात, यू.पी.एस.सी. के सिलेबस को देखा है कभी! उसे देखकर कितनों का तो कलेजा मानों हाथ में आ जाता है। कुछ ही तो योद्धा इस मैदान में उतरने का हौसला करते हैं। "इस सूर्य की रोशनी में जितनी भी चीजें दिखाई दे रही हैं, वो सब यू.पी.एस.सी. का सिलेबस है।"10 जहाँ चार किताबें देखकर पसीना छूट जाता है, वहाँ सूरज की रोशनी तक की चीजों में ज्ञान को बटोरने का साहस किसी-किसी बलवान में ही होता है।

बैचलर डिग्री के बाद घर का चिरंजीवी यह ऐलान कर दे कि हम कलेक्टर बनेंगे, तो ये सुनते ही पिता का सीना चार इंच और चौड़ा हो ही जाएगा। यही वह समय

है जब वह अपने पुत्र को दिए संस्कारों पर गर्व कर सके। पहले साल घर की ओर से बिन मांगे जरूरतें पूरी कर कर दी ही जाती हैं, बढ़ते सालों में घर वाले भी धीरज खोने लगते हैं । रायसहब भले ही दो-तीन सालों बाद घर के दर्शन करने गए हों, लेकिन अब आव-भगत के लिए पिता के शब्दों का रूप भी अपेक्षा से बदला हुआ मिला-"सुनो अभी दस दिन बढ़िया से खाओ-पिओ, छोड़ो एकदम पढ़ाई का चिंता, देख नहीं रहे हो बाप के उम्र का दिखने लगे हो।"11 अब पिता ने ऐसी बात भी नहीं बोली जो पूर्णतः असत्य हो। बात तो ठीक ही है कि जब गए थे तब लड़के दिखते थे लेकिन अब तक तो पूरे आदमी जैसे ही दिखने लगे। अरे, पिता की और भी दूसरी चिंताएँ होती हैं, बेटे की शादी-ब्याह भी तो सही समय पर करना है कि नहीं! लेकिन अब करें तो क्या करें ये यू.पी.एस.सी. अपने उम्मीदवार से इम्तिहान बहुत लेती है। किसी को तो एक या दो प्रयासों में ही सफलता अपनी झोली में मिल जाती है और कुछ बेचारे इतने वर्षों तक घिसते रहते हैं कि अपनी पुरानी फोटो देखने पर जैसे खुद को ही न पहचान पा रहे हों। "लोग 24-25 की उम्र में आते हैं तब लड़के होते हैं, पर जाते हैं 35-37 की उम्र में आदमी बन के।"12 अब ये 24-25 की उम्र में आना कलेक्टर की ट्रेनिंग के लिए जाना नहीं बल्कि तैयारी के लिए यू.पी.एस.सी. के गढ़ मुखर्जी नगर में जाने से है, 35-37 की उम्र में जाने से अभिप्राय है जब तक यू.पी.एस.सी. का इम्तिहान देने की आयु सीमा बने रहे तब तक मुखर्जी नगर में रहकर प्रयास करते रहो। किस्मत आज नहीं तो कल बदलेगी ही। लेकिन जब किस्मत बेईमानी पर उतर आए तो कहा ही क्या जाए! उम्मीदवार जो अब उम्मीदवार की श्रेणी में ही नहीं रहा, तब तो उसका अंतिम विकल्प मुखर्जी नगर से इजाजत ले घर की ओर मुड़ना ही बेहतर है।

दो बार की असफलता के बाद संतोष सभी मित्रों की नजरों से ओझल हो गया। एक बार दोस्तों के मन में तो यहाँ तक आ गया कि संतोष सुसाइड तो नहीं कर लिया, कुछ को लगा कि वह वापिस अपने गाँव चला गया, लेकिन कोई यह नहीं जान पाया कि संतोष ने उस ज्योतिषी द्वारा देखी रेखाओं को स्याही पोतकर

मिटा दिया था जिसे देखकर उसने संतोष की भविष्यवाणी कर दी थी कि वो कभी यू.पी.एस.सी. क्लीयर ही नहीं कर पाएगा। उसकी भविष्यवाणी को झूठा साबित करने के लिए संतोष ने सबसे कटकर अपना प्रयास जारी रखा। अभी मुखर्जी नगर का सदस्य बने संतोष का तीसरा साल चल रहा था, फिर दस-दस वर्षों से जमे योद्धाओं के सामने उसका भला क्या स्थान था! गुरु, रायसाहब विदिशा अपनी किस्मत अंतिम समय तक अपनाते रहे जब कुछ हाथ नहीं लगा तो किस्मत को दोष देते हुए घर जाने की ट्रेन में जा बैठे। मित्र मंडली की नजरों में संतोष तो इस रेस का नया घोड़ा था जिसे मैदान में जमने में समय लगेगा। लेकिन कौन जाने कि यही यू.पी.एस.सी. परीक्षा का उम्मीदवार डार्क हॉर्स था- "डार्क हॉर्स मतलब, रेस में दौड़ता ऐसा घोड़ा जिस पर किसी ने भी दाँव नहीं लगाया हो, जिससे किसी ने जीतने की उम्मीद न की हो और वही घोड़ा सबको पीछे छोड़ आगे निकाल जाए, तो वही 'डार्क हॉर्स' है मेरे दोस्त।"13 जिसने भाग्य को ठेंगा दिखाकर बत्रा सिनेमा की सबसे ऊपरी वाली छत पर आई.पी.एस. संतोष की फोटो लगवा ली हो, वो 'डार्क हॉर्स'।

बहुत खूब, मित्र मंडली में से एक और मित्र आई.पी.एस. की बाजी मार ले गया। रायसाहब, गुरूभाई, विदिशा जैसे अभ्यर्थियों का क्या, जो बिना बाजी मारे अपने-अपने घरों की ओर रवाना हुए! क्या उनको कमजोर अभ्यर्थियों की श्रेणी में रखना उचित होगा! नहीं, क्योंकि हर एक के अंदर एक अलग प्रतिभा होती है। बस, जरूरी यह है कि वह अपनी उस प्रतिभा को पहचान ले। जरूरी नहीं कि यू.पी.एस.सी. में अपना नाम लाकर ही काबिल होंगे, बल्कि जिस काम को कुशलतापूर्वक एवं मन से कर सको वही एक काबिल आदमी बनने के लिए काफी है। "जिंदगी आदमी को दौड़ने के लिए कई रास्ते देती है, जरूरी नहीं कि सब एक ही रास्ते दौड़ें। जरूरत है कि कोई एक रास्ता चुन लो और उस ट्रैक पर दौड़ पड़ो। रुको नहीं.. दौड़ते रहो। क्या पता किस दौड़ के डार्क हॉर्स साबित हो जाओ।"14

निष्कर्ष : यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उपन्यास 'डार्क हॉर्स' जैसे एक बार हाथ में आ जाने के बाद पूरा हो जाने के बाद ही हाथ से छूटता है यानि कहीं भी ठहराव की कोई गुंजाइश नहीं रहती, ठीक वैसे ही उपन्यास के बारे में लिखते हुए भी कलम पूरा होने के बाद ही छूटती है। ऐसा इसलिए, क्योंकि उपन्यास का ऐसा विषय है जो प्रतिदिन किसी न किसी युवा के चेहरे से जुड़ा हुआ मिल जाता है, एक परिचित विषय। वहीं, लेखक ने उस विषय को बड़ी ही रोचक, व्यंग्यात्मक, मनोरंजक भाषा में गूँथा कि वह भाषा उपन्यास के बारे में लिखते हुए भी कहीं न कहीं मन-मस्तिष्क में चढ़ सी जाती है। वर्तमान में आई फिल्म 'टवेल्थ फेल' इसी विषय को केंद्र में रखकर बनी फिल्म है, जो यू.पी.एस.सी. अभ्यर्थी की जर्नी को उजागर करती है।

संदर्भ सूची

1. नीलोत्पल मृणाल, संस्करण-2017, डार्क हॉर्स, एक अनकही दास्तान, हिन्दी युग्म प्रकाशन, दिल्ली, डब्ल्यू डब्लू पीडीएफ शाला डॉट कॉम, पृष्ठ-10, भूमिका से।
2. वही, पृष्ठ-45
3. वही, पृष्ठ-82
4. वही, पृष्ठ-104
5. वही, पृष्ठ-110
6. वही, पृष्ठ-66
7. वही, पृष्ठ-46
8. वही, पृष्ठ-109
9. वही, पृष्ठ-110
10. वही, पृष्ठ-120
11. वही, पृष्ठ-139
12. वही, पृष्ठ-140

उदय प्रकाश की कहानियों में उत्तर-आधुनिकतावाद

कोमल कुमारी
शोधार्थी, हिंदी विभाग, मानविकी संकाय
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
ईमेल: komal7152@gmail.com

सारांश

आज का दौर वैश्वीकरण का युग है। इस दौर में नवीन विचारधारा,नवीन सोच पनप रही है,जिसे उत्तर-आधुनिकतावाद नाम दिया जाता है। वैश्वीकरण एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है,जो समय-समय पर बदलती नजर आती है। यह बदलाव कहीं-कहीं पर भविष्य को देखते हुए ठीक है तो कहीं-कहीं पर आशंकित और भयभीत भी करते नजर आते हैं। ऐसे ही अचानक हुए परिवर्तन या बदलाव का यथार्थ परक विश्लेषण उदय प्रकाश जी ने अपनी रचनाओं में किया हैं। उदय प्रकाश जी ने अपनी कहानियों में सामाजिक बदलाव की विसंगतियों एवं विडंबनाओं को चित्रित किया है।

बीज शब्द: *भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण, विज्ञापन, आधुनिकतावाद*

शोध आलेख :

उत्तर-आधुनिकता एक प्रवृत्ति का नाम है,जिसका जन्म मुख्यतः बीसवीं सदी के रूप में यूरोप में हुआ है। 'उत्तर-आधुनिकता' शब्द एक काल के रूप में तथा एक विचारधारा के रूप में अपना अर्थ प्रकट करता है। कृष्णदत्त पालीवाल के हिसाब से-"पोस्ट' के लिए 'उत्तर' शब्द चल पड़ा है जिसकी मूल अर्थ ध्वनि है कि हम एक ऐसे काल-विशेष में जी रहे हैं जिसमें सबकुछ 'पोस्ट' हो चुका है या होने की तैयारी कर उठा है।"1 इस दृष्टि से 'उत्तर-आधुनिकता' शब्द एक प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है। उदय प्रकाश जी ने अपनी कहानियों में उत्तर आधुनिक परिवेश का जिस तरह से चित्रण किया है,वैसा चित्रण अन्य कथाकारों की रचनाओं मे देखने को बहुत कम मिलता है। 'विनायक का अकेलापन', 'अभिनय', 'पॉल गोमरा का स्कूटर', 'छप्पन तोले का करधन', 'दिल्ली की दीवार'

आदि कहानियों के माध्यम से उदय प्रकाश ने उत्तर - आधुनिक विसंगतियों को हमारे समक्ष लाकर रख दिया है।

उत्तर-आधुनिकता में समाज एक उपभोक्तावादी बाजार में बदल रहा है, जिसके कारण मानवीय संबंधों में give and take की संस्कृति हावी हो रही है, बाजारवाद आदि की प्रवृत्तियों के कारण परिवार और समाज पूरी तरह खण्डित होने लगा। 'पॉल गोमरा का स्कूटर' कहानी में उदय प्रकाश जी ने बढ़ते बाजार की चिंता को व्यक्त किया है। बाजार के मोहजाल मे फँसे निम्न मध्यवर्गीय लोगों का जीवन चित्रित हुआ है। आजकल तेजी से ग्लोबलाइजेशन,बदलते जीवन मूल्य,पश्चिमी रहन-सहन की ललक बढ़ रही है। उदय प्रकाश 'पॉल गोमरा का स्कूटर' कहानी में इस चिंता को व्यक्त करते हैं "बाजार अब सभी चीजों का विकल्प बन चुका था। शहर, गाँव, कस्बे बड़ी तेजी से बाजार में बदल रहे थे। हर घर दुकान में तब्दील हो रहा था। बाप अपने बेटे को इसलिए घर से निकालकर भगा रहा था कि वह बाजार में कहीं फिट नहीं बैठ रहा था। पलियाँ अपने पतियों को छोड़-छोड़कर भाग रही थीं क्योंकि बाजार में उनके पतियों की कोई खास माँग नहीं थी। औरत बिकाऊ और मर्द कमाऊ का महान चकाचक युग आ गया था।"2 चरम उपभोक्तावाद के इस दौर में बाजार का जादू सब पर पूरी तरह से छाया हुआ है। दिल्ली की चकाचौंध एवं बाजारवाद के प्रभाव में पड़कर राम गोपाल सर्वप्रथम अपना नाम बदलकर 'पॉलगोमरा' कर लेता है। वह एक स्कूटर खरीदता है,जहाँ से उसका अच्छा समय बदलकर बुरा समय में परिणित हो जाता है।

विज्ञापन हमारे सामने चकाचौंध भरी-दुनिया तो दिखाता है, पर उसके पीछे के सच को नहीं दिखाता है। 'पॉल गोमारा का स्कूटर' कहानी में आशा मिश्रा नाम की लड़की प्राइमरी स्कूल की टीचरी का काम छोड़कर, 'द ब्लैक हॉर्स' नामक बियर की बोतल का प्रचार-प्रसार करती है और विज्ञापन की दुनिया में कदम रखती है। विज्ञापन की दुनिया में स्त्री को सामग्री बनाकर प्रस्तुत करने से फायदा केवल विज्ञापन कंपनियों को ही होता है और कहानी में होता भी यही

है, 'द ब्लैक हॉर्स' नामक बियर की बिक्री 27 प्रतिशत से ज्यादा दर्ज कराई जाती है। व्यवसाय चलाना है तो, स्त्री चाहिए ही और वह भी सुन्दर और स्वतन्त्र स्त्री, जो राष्ट्रीय-बहुराष्ट्रीय निगमों का माल, ब्राण्ड और उपभोक्ता सामग्री बेच सके। मालिकों के लिए ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाकर दे सके। जाहिर है मीडिया,विज्ञापन द्वारा प्रचारित नारी की यह छवि सकारात्मक मानवीय मूल्य के पक्ष में नहीं है।

उत्तर-आधुनिक और पूंजीवादी संस्कृति ने मनुष्य की तार्किक क्षमता को नष्ट किया है। दिमाग को अपने अनुरूप बनाया है। मध्यवर्गीय समाज इस षडयंत्र से ज्यादा प्रभावित हुआ है। 'दिल्ली की दीवार' कहानी के माध्यम से लेखक ने महानगरों में जीविकोपार्जन हेतु संघर्षरत जनसाधारण की समस्याओं का चित्रण किया है। प्रस्तुत कहानी में उदय प्रकाश जी ने यह साबित करने का प्रयास किया कि आज के भौतिकवादी संसार में पैसे पर मनुष्य के क्रियाकलाप हावी है,सभी रिश्तों का आधार केवल पैसा है। सुषमा के आत्मसमर्पण करने पर रामनिवास सोचने लगा-"हर खुशी की जड़ नोटों में ही छुपी होती है, वहीं से मजेदारी का पेड़ पनपता है, जिसमें सुख और मस्ती के फल लगते हैं। नोटों की गड्डियों में ही शायद आदमी की सारी अच्छाइयाँ भी बन्द होती हैं।"3 अर्थात पैसा मिलने के बाद ही सुषमा का रामनिवास के प्रति प्रेम उमड़ता है।

उत्तर-आधुनिकतावाद एक व्यापक अवधारणा है,जिसके कारण परिवर्तन अनेक दिशाओं में देखने को मिलता है। परिवर्तन की गति इतनी तीव्र है,जिससे इतिहास,संस्कृति,समाज के चिंतन को पूरी तरह बदलकर रख दिया है। उत्तर-आधुनिकता को समझाते हुए कृष्णदत्त पालीवाल कहते हैं कि-"बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध उत्तर-औद्योगिक क्रांति का अद्भुत युग है। इस युग में समाज, संस्कृति, राजनीति, कला, साहित्य, दर्शन, संगीत, इतिहास, अर्थव्यवस्था और पूरे मानव-चिंतन में जो परिवर्तन-चक्र तीव्रगति से घूमा है-उस स्थिति-परिस्थिति की ओर ध्यान दिलाने वाला नाम है-'उत्तर-

आधुनिकतावाद'।"4 उत्तर-आधुनिकता वर्तमान में आए परिवर्तनों को व्याख्यायित करता है।

मनुष्य जीवन के तनाव,चिंता,वैचारिक टकराहट आदि उत्तर आधुनिकता की सामाजिक विडंबना है। 'अभिनय' कहानी कलाकार की दर्द भरी गाथा है। फकीर मोहन सेन भारतीय अभिनय के इतिहास का जाना-पहचाना नाम है। फकीर जानते थे कि अगर किसी को इसका पता चल जाए कि उनके दाहिने पैर में इतना पुराना नासूर है,तो उन्हें कोई काम नहीं मिलेगा। इसलिए वे लगातार उसे छिपाते रहते हैं-"अपने चेहरे पर वे यही भाव रखते जैसे उन्हें कुछ नहीं हुआ है, वे स्वस्थ हैं। जबकि वास्तविकता यह थी कि जैसे ही वे अपना दाहिना पाँव जमीन पर रखते और उनके शरीर का बोझ उस पर पड़ता, लगता जैसे कई लाख बिच्छुओं ने वहाँ एक साथ डंक मार दिया है। बहुत कठिन अभ्यास के बाद उन्होंने अपने चेहरे को पहले निर्विकार, और बाद में प्रसन्न रखना सीख लिया था।"5 प्रस्तुत कहानी में यह दिखाया गया है कि उत्तरआधुनिक मानव के आपसी संबंध सिर्फ बाहरी है। वर्तमान समय में मनुष्य एक दूसरे के चेहरे में खुशी-गम को मानने के अभ्यासी हैं,परंतु उसे एक-दूसरे के आंतरिक दर्द, वेदना, संघर्ष जैसे संवेदनाओं को पहचानने की क्षमता नहीं है।

उत्तर-आधुनिकता का लक्ष्य केन्द्र को हाशिए पर धकेलना तथा हाशिए को केन्द्र में लाना रहा है। दमित,दलित,नारी,अल्पसंख्यक जो परिधि पर थे,केंद्र में आ रहे हैं। परिधि से केंद्र की यात्रा में यह मुक्ति का नवीन दर्शन है । उत्तर-आधुनिकता में विकेन्द्रीयता को समझाते हुए कृष्णदत्त पालीवाल कहते हैं कि-"उत्तर-आधुनिकतावाद हर तरह के 'केंद्रवाद' का निषेध करता है। उसकी यात्रा केंद्र से परिधि की ओर है। समाज के विभिन्न समूह जो अभी तक हाशिए पर रहे हैं, जिनकी अस्मिता और आवाज को निरंतर दबाया गया है या जिन्हें आभिजात्यवादी वर्चस्ववाद शक्तियों ने हाशिए पर धकेल दिया है-वे दमित और दलित समुदाय उत्तर-आधुनिक चिंतन में महत्त्वपूर्ण हो गए हैं।"6 इस प्रकार उत्तर

आधुनिकता का 'विकेन्द्रीयता' नामक तत्त्व हर तरह के 'केन्द्रवाद' को तोड़ता है, ध्वस्त करता है।

आज उत्तर-आधुनिकता के कारण भारत में सांस्कृतिक संक्रमण की स्थिति है, जिससे न केवल लोगो के खान-पान,वेश-भूषा और जीवन-शैली में परिवर्तन आया है,बल्कि उनके आचार-विचार और संस्कार मे भी बदलाव दिखने लगा है। 'छप्पन तोले का करधन' कहानी के माध्यम से निम्न मध्यवर्गीय परिवारवालों के बीच हुई अमानवीयता का चित्रण किया गया है। धन के प्रति लालसा मनुष्य को दानव बना देता है। खून, खून को पहचानता नहीं-"यही वक्त है। अभी बुढ़िया बता दे तो बता दे, वरना पता नहीं कब ये साँस छोड़कर चल बसे। चाची ने, कहते हैं, दादी को बीमारी में भी बहुत डराया-धमकाया। छुरा चमकाती रहीं, दादी का गला दबाया और नाक और मुँह बन्द करके उनकी साँस भी देर तक रोकी। साँस रुकने से दादी का शरीर गुब्बारे की तरह फूल गया, लेकिन उन्होंने तब भी नहीं बताया कि करधन कहाँ है। एक बार एक महीने तक दादी को अन्न का एक दाना भी नहीं दिया गया।"7 मानवीय संबंधों का कोई मूल्य नहीं है। सब रिश्तों को मापने का एकमात्र साधन केवल धन ही है।

उत्तर आधुनिकता की उपभोक्तावाद संस्कृति ने मनुष्य को स्वयं से अलग कर दिया l उत्तर आधुनिक संस्कृति ने हमारे अंदर की चेतना को पूरी तरह जकड़ लिया है 1 उदय प्रकाश जी अपनी कहानियों में व्यर्थता और अकेलेपन का शिकार हुए पात्रों की स्थिति का वर्णन करते हैं 1 'विनायक का अकेलापन' कहानी इसका सफल उदाहरण है- "जो भी दुर्दिनों में घिरता है, दिल्ली उसे त्याग देती है। विनायक दत्तात्रेय भी दुर्दिनों में थे। दिल्ली ने उन्हें त्याग दिया था। न उनके पास कोई आता था, न कोई उनका हाल पूछता था। टेलीफोन कभी बजता नहीं था। वे अकेले रह गये थे। अकेलापन और दुर्दिन के दिन बिताने का तरीका विनायक दत्तात्रेय ने खोज निकाला था। वे अपने कमरे के एक कोने में जाकर खड़े हो जाते और पुकारकर पूछते, "विनायक, कैसे हो?" फिर दूसरे कोने पर खड़े होकर मुस्कराते हुए कहते, "मैं ठीक हूँ, विनायक। अपनी सुनाओ। कभी-

कभार आ जाया करो यार!"8 वास्तव में उदय प्रकाश जी समाज में फैल रहे उपभोक्तावादी संस्कृति, भूमंडलीकरण, पूंजीवाद ,उदारवाद का जिस तरह से चित्रण किया हैं, वैसा अन्यत्र बहुत कम है 1 इस कहानी में उत्तर आधुनिक संवेदना को सही मायनों में शब्दबद्ध करके दिखाया गया है।

आज भूमंडलीकरण,बाजारीकरण और उपभोक्तावाद ने व्यक्ति, समाज, परिवार, धर्म, राजनीति तथा शिक्षा-साहित्य को अपनी चपेट मे ले लिया है। उदय प्रकाश जी युगीन यथार्थ को अपनी रचनाओं में बखूबी चित्रित करते है।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि उदय प्रकाश एक ऐसे युगसंचालक कहानीकार है जिनकी कहानियों में नवीन परिवर्तन की झांकी परिलक्षित होती है। इन्होंने अपनी कहानियों में आधुनिक युग की जीवंत दास्तां को अभिव्यक्त किया है और इसके माध्यम से पाठकों के मन को प्रभावित किया है। अपनी कहानियों के माध्यम से उत्तर-आधुनिकतावाद की विभिन्न पहलुओं को, उसकी विशेषताओं को आधार बनाकर वर्तमान समय के जटिल मानवीय संबंधों को चित्रित किया है। उदय प्रकाश को उत्तर-आधुनिक हिंदी कथा साहित्य का प्रतिष्ठापक कहानीकार कहना सर्वथा उचित लगता है।

संदर्भ सूची :

1. कृष्णदत्त पालीवाल, 2008, उत्तर-आधुनिकतावाद और दलित साहित्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ-83
2. उदय प्रकाश, 2023, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल पेपरबैक्स,नयी दिल्ली, पृ-147
3. वही, पृ-127
4. कृष्णदत्त पालीवाल, 2008, उत्तर-आधुनिकतावाद और दलित साहित्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ-13
5. उदय प्रकाश, 2023, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल पेपरबैक्स,नयी दिल्ली, पृ-185

6. कृष्णदत्त पालीवाल, 2008, उत्तर-आधुनिकतावाद और दलित साहित्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ-29
7. उदय प्रकाश, 2023, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल पेपरबैक्स,नयी दिल्ली, पृ-81
8. उदय प्रकाश, 2020,दत्तात्रेय के दुःख, वाणी प्रकाशन ,नयी दिल्ली, पृ-43

संस्कृति एवं साहित्य

डॉ. सजीथा
सहायक प्रोफेसर, श्री रामकृष्ण कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड कॉमर्स, कोयंबटूर, तमिलनाडू
डॉ. रेखा आर. एस.
सहायक प्रोफेसर, प्रोविडेंस कॉलेज ऑफ वुमेन, नीलगिरी, तमिलनाडू

सारांश

भारतीय संस्कृति कर्मप्रधान संस्कृति है। इसके साथ-साथ इसकी दूसरी विशेषता अमरता है। भारतीय संस्कृति कई हज़ार वर्ष तक काल के क्रूर थपेडों को हुई आज तक जीवित है। यह सर्वांगीणता, विशालता, उदारता, प्रेम और सहिष्णुता की दृष्टि से अन्य संस्कृतियों की अपेक्षा अग्रधी स्थान रखती है। लंका या सिंहल ने धर्म, भाषा, कला और स्थापत्य में भारत से कुछ पाया है। इतिहास में लिखा था अशोक ने अपने दूसरे शिलालेख में लंका का जिक्र किया है जहाँ उन्होंने बौद्ध प्रचारक भेजे थे। लंका में बौद्ध धर्म फेलाने का काम अशोक का पुत्र महेन्द्र और कन्या संघमित्रा ने किया। दूसरे देशों में अपना धर्म एवं संस्कृति फेलाने की जो परंपरा शुरु हुई वह कम से कम पंद्रह सौ वर्षों तक चलती रही। भारतीय प्रचारक जिन देशों में गए उनमें लंका, मध्य एशिया, चीन, जापान, बर्मा, मलया आदि हैं। तिबत और नेपाल से भारत का संबंध बहुत पुराना है। नेपाल की भाषा, साहित्य, धर्म और कला पर भारत का गहरा प्रभाव है। भारतीय संस्कृति के आधार पर ही भारतीय साहित्य विकसित हुआ है। साहित्य और संस्कृति हमारे जीवन के अंश बन गए हैं। भारत में साहित्य और संस्कृति को समान महत्व है। संस्कृति स्थापित रखने में साहित्य का योगदान बहुत बड़ा है। साहित्य मानव की संस्कृति और जिन्दगी को दर्शाता है, अच्छा-बुरा, पाप-पुण्य आदि को समझाता है। साहित्य के माध्यम से ही हमारी संस्कृति को पहचान सकता है। जिन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में पुरानी संस्कृति का वर्णन की थी, उन रचनाओं के माध्यम से हम पुरानी संस्कृति समझ सकते हैं। इन सभी कारणों से साहित्य और संस्कृति का वर्णन की थी, उन रचनाओं के माध्यम से

हम पुरानी संस्कृति समझ सकते हैं। इन सभी कारणों से साहित्य और संस्कृति का अटूटा संबंध है।

बीज शब्द: *भारत, संस्कृति, साहित्य, शक्ति, प्राचीन*

शोध आलेख

किसी भी संस्कृति का साहित्य उसके वर्षों के चिंतन का फल होता है। साहित्य पर भिन्न-भिन्न कालों की संस्कृति का प्रभाव अनिवार्य है। इसीलिए किसी भी जाति में साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए उसकी संस्कृति के इतिहास का अध्ययन आवश्यक है। इसी तरह साहित्य की स्पष्ट समझ के लिए उसका सांस्कृतिक अध्ययन ही काफी मूल्यवान हो सकता है। संस्कृति अपने जातीय साहित्य में अभिव्यक्त होती हैं, क्योंकि साहित्यकार के व्यक्तित्व का निर्माण उस सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, राजनीतिक और भौगोलिक परिस्थितियों के बीच होता है, जिसका वह एक अंग है। उस समाज में ही विभिन्न प्रकार के संस्कारों से उसका बाह्य और अन्तर पुष्ट होता है। फिर व्यक्तित्व और कृतित्व का गहरा लगाव है, क्योंकि साहित्य का कर्ता वह व्यक्तित्व ही है। इसीलिए व्यक्तित्व की विशेषताएँ साहित्य में अनिवार्य रूप से उजागर हो उठती है। इस प्रकार संस्कृति एक ओर तो स्वयं युग-युग की अक्षय निधि बन जाती है और दूसरी और साहित्य को भी अमर बना देती है। महान साहित्यकार अपने साहित्य में संस्कृति को यथारूप प्रस्तुत करता है। इस अर्थ में संस्कृति ही साहित्य की प्राणधारा है क्योंकि समूचा साहित्य मनुष्य के उन्नत एवं परिष्कृत संस्कारों द्वारा ही निर्मित होता है। साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन इस स्थिति में बहुमूल्य होता है।

साहित्य मानव की सर्वोत्तम सृष्टि है। मानव के व्यक्तित्व का निर्माण एवं संस्कृति द्वारा ही होता है। मनुष्य जिस समाज में पलता है उसके वातावरण का उसके व्यक्तित्व पर अनिवार्य रूप से प्रभाव पड़ता है। समाज केवल कुछ व्यक्तियों का एकत्रीकरण मात्र नहीं, वरन् एक जीवन संघात है। इसीलिए साहित्यकार के व्यक्तित्व में संस्कृति की विशेषताएँ गुंथी रहती हैं। व्यक्तित्व की

ये विशेषताएँ ही उसके साहित्य में प्रतिफलित होती हैं। अतः साहित्य एवं संस्कृति का अनिवार्य और अटूट संबंध है। महान साहित्यकार अपने साहित्य में संस्कृति को भव्य रूप में प्रस्तुत करता है जिससे वह आगामी पीढ़ियों का मार्गदर्शन कर सके। ''हमारी प्राचीन संस्कृति महान थी और कालिदास जैसे महान साहित्यकार ने उसे अपने साहित्य में पिरोया ही नहीं, अपनी लेखनी की कला और कौशल से उसे भव्य रूप देकर विश्वव्यापी भी बना दिया।''

साहित्य में कवि या लेखक के व्यक्तिगत तथा सामाजिक अनुभवों, दार्शनिक-आध्यात्मिक विचारों, प्रेम-भावना और सौन्दर्यबोध आदि की अभिव्यक्ति होती है। इन सबसे संस्कृति का गहन सम्बन्ध है क्योंकि सांस्कृतिक चेतना कला तथा चिन्तनपरक कृतियों में अधिक स्पष्ट रूप से प्रकाश पाती है। किसी भी जाति के साहित्य के द्वारा उसकी संस्कृति का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। जिस देश की संस्कृति जितनी समुन्नत होगा उस देश का साहित्य भी उतना ही उज्ज्वल होगा। साहित्य और समाज के अनिवार्य सम्बन्ध की तरह संस्कृति एवं साहित्य का सम्बन्ध भी बड़ा संश्लिष्ट होता है। यदि सूक्ष्म रूप से देखें तो पता चलता है कि साहित्य का आधार पाकर ही संस्कृति स्थायी एवं शाश्वत रह सकती है। साहित्य के द्वारा सस्कृति को नई पीढ़ियों तक पहुँचाया जा सकता है। मानव जाति के इतिहास में होने वाली सांस्कृतिक प्रगति मुख्यधारा श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियों के रूप में सुरक्षित रहती है।

दुःख की बात यह है कि आधुनिक पीढ़ी के विचारधारा ने मानवीय संवेदना और भारतीय संस्कृति को मृतप्राय बना दिया है। इस विचारधारा ने हमारे पारंपरिक मूल्य और परिवार बिखर रखे हैं। आज हमारे देश पर पाश्चात्य संस्कृति साफ-साफ दिखाई पड रहा है। बाज़ार के माध्यम से भारतीय संस्कृति पर निरंतर हमले हो रहे हैं। साहित्य समाज का दर्पण है। आधुनिक भारत और समाज के कई ज्वलंत समस्याओं को कई साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से अभिव्यक्ति दी। उदाहरण के लिए आधुनिक साहित्यकार उदय प्रकाश 'एक भाषा हुआ करती है' नामक काव्य संग्रह में आज के समय में हो

रहे उथल-पुथल को रेखांकित करता है। आज के भागदौड भरे जीवन में ईमानदारी से जीना कठिन हो गया है। सभी और झूठ का साम्राज्य फेलता जा रहा है। समाज में चारों ओर असुरक्षा, घृणा, भय, भूख, निर्लज्जता फेली हुई है। इस कविता संग्रह के माध्यम से रचनाकार देश में फेल रही नव-संस्कृति पर चिंता व्यक्त करते हुए देश में उग रही मॉल संस्कृति की निन्दा करता है जिससे हमारे परंपरागत रीति-रिवाज हमसे छिनते चले जा रहे हैं। उदय प्रकाश के समान कई साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से उस आयातित संस्कृति का विरोध करते हैं जो हमारे परंपरागत रीति-रिवाजों को गहरा आघात पहूँचा रही है। हमारी पवित्र भारतीय संस्कृति यूरोपीय विचारधारा के आवरण में ढकती जा रही हैं जिससे भारतीय संस्कृति और परंपरा को गहरा आघात पहुँचा है। हमारा आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान, आथित्य-संस्कार आदि सबकुछ नष्ट होता जा रहा है। भारतीय संस्कृति के अनुसार 'सत्यम शिवम सुन्दरम्' में विश्वास करनेवाले लोगों की सुन्दरता के मानदण्ड मुंबई में बैठे ऐसे कुछ लोग निर्धारित करते हैं जिनके हाथ में देश की चालीस प्रतिशत पूँजी है।

स्वतंत्रता से पहले ही भारतीय समाज में आधुनिक होने की प्रक्रिया प्रारंभ हो गयी थी। यदि भारतीय समाज को ग्रामीण समाज और गहरी समाज के रूप में देखा जाए तो परिवर्तन दोनों ही जगहों पर दिखाई देता है। आज़ादी मिलने के बाद सामाजिक जीवन मूल्य बदले हैं और यहाँ के जाति-व्यवस्था में भी परिवर्तन आया है। आधुनिकरण, नगरीकरण आर्थिक अभाव आदि कारणों से यहाँ के लोगों ने जातीय व्यवस्थायें तोडकर विभिन्न व्यवसाय अपनाये हैं। इसके कारण रूढ़ियों और रहन-सहन में भी परिवर्तन आया हैं। आधुनिक समाज में नारी की स्थिति में भी सर्वाधिक परिवर्तन आया है। पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव भारतीय समाज में उदार, प्रजातान्त्रिक तथा धर्म निरपेक्ष मानसिकता को जन्म दिया है। प्रेम विवाह, यौन संबंध, संस्कृति, सभ्यता आदि सभी में परिवर्तन आया है। समाज में आए व्यापक परिवर्तनों ने परिवार और समाज के परंपरागत

संबंधों पर प्रश्न-चिह्न लगा दिए हैं। विघटित जीवन-मूल्यों के कारण परंपरागत स्थापनाओं एवं आदर्शों का खण्डन भी हुआ।

निष्कर्ष

आज समाज के हर क्षेत्र में विशेषकर शिक्षा के क्षेत्र में अपसंस्कृति का निरंतर प्रचार हो रहा है। यहाँ वही लोग सम्मिलित हैं जिन्हें हमने देश को शिक्षित करने का उत्तरदायित्व सौंपा है। आजकल हम देख सकते हैं विश्वविद्यार्थियों या कॉलेजों में सौंदर्य प्रतियोगिताओं के नाम पर भारतीय संस्कृति को घटिया और दकियानूसी बताकर यूरोपीय संस्कृति का प्रसार किया जा रही है। भारतीय संस्कृति में माता-पिता को देव तुल्य माने जाते हैं। हमारी संस्कृति के अनुसार माँ ईश्वर का प्रतिरूप है। पिताजी वे है संपूर्ण परिवार के संरक्षक का दायित्व निर्वाहन करते हैं। लेकिन आजकल पैसों की चमक ने सभी संस्कारों को विलुप्त कर दिया। पुराने ज़माने में परिवार में बाल-बच्चे बडे-बूढ़ों का आदर-सत्कार करते थे। लेकिन आजकल के युवा पीढ़ी आधुनिक संतान या दमू हमदमतंजपवद कहनेवाले माता-पिता को वृद्धाश्रम में छोडकर गर्व का अनुभव करती है और माता-पिता को याने जीवित ईश्वर को देखे बिना अपनी इच्छा पूर्ति केलिए पत्थर के भगवान को पूजती हैं। इन सब समस्याओं का हल हमें केवल साहित्य सृष्टियों से ही मिलते हैं।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि साहित्य संस्कृति का संवाहक भी हैं और संवर्द्धक तथा सम्पोषक भी। साहित्य हमारी रागात्मिकता वृत्ति का प्रसार करता है। डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने लिखा है 'साहित्य भाषा के माध्यम से रचित वह सौन्दर्य आकर्षणयुक्त रचना है जिसके अर्थ-बोध से सामान्य व्यक्ति को आनन्द की अनुभूति होती हैं। इस प्रकार एक ओर जहाँ हमारी रागात्मिका वृत्ति का संस्कार एवं सम्प्रसार करता है वहाँ सांस्कृतिक उद्देश्य की सम्पूर्ति भी करता है।

संदर्भ सूची

1. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, 1956, अहमदाबाद, 2006

2. प्रसाद, डॉ. राजेन्द्र, नूतन गद्य संग्रह, भारतीय संस्कृति, सुमित्रा प्रकाशन, 2012, अलहबाद-13
3. डॉ. राजेन्द्रप्रसाद पत्र, भारतीय संस्कृति, पृ. 2
4. अग्रवाल, पृथ्वी कुमार, भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, साप्ताहिक हिन्दुस्थान, 1996, नई दिल्ली।
5. वर्मा, महेन्द्र कुमार, भारतीय संस्कृति के मूलाधार, प्रत्युष प्रकाशन, 1966, कानपुर-27.

ग्रामीण संस्कृति के आईने में विवेकी राय की कहानियाँ

हर्ष सिंह
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
ईश्वर शरण डिग्री कालेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
संपर्क सूत्र -7852888860
ईमेल-harshsingh23011998@gmail.com

सारांश

साहित्य एक माध्यम है जो समाज के स्पंदनों को प्रकट करता है और सामाजिक जागरूकता को बढ़ाता है। साहित्यकार द्वारा रचित कहानियाँ, कविताएं और नाटक समाज के विभिन्न पहलुओं को दर्शाकर लोगों की सोच और दृष्टिकोण को परिवर्तित करने में मदद करती हैं। ग्रामीण संस्कृति भारतीय समाज की पहचान है और संस्कृति के महत्वपूर्ण अंशों को साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। विवेकी राय की कहानियों में ग्रामीण जीवन के महत्वपूर्ण तत्वों का चित्रण किया गया है और उन्होंने ग्रामीण संस्कृति को मजबूती से प्रतिष्ठित किया है।

बीज शब्द – *ग्रामीण, समाज, संस्कृति, कहानी, लोकगीत*

शोध आलेख

साहित्य एक ऐसा माध्यम है जो समाज के स्पंदनो को प्रकट करता है। साहित्य में समाज की अखण्ड जीवन धारा का रूपान्तर होना आवश्यक है। साहित्यकार के द्वारा रचित कहानियाँ, कविताएं और नाटक सामाजिक जागरुकता प्रोत्साहित करती है और लोगों की सोच और दृष्टिकोण को परिवर्तित करने में मदद करती है। समाज को विकासशील बनाने वाली महत्वपूर्ण प्रक्रिया है सांस्कृतिक प्रक्रिया। जीवन जैसा है उसे अधिक सुन्दर उदात्त और मंगलमय बनाने की इच्छा आरम्भ से ही मनुष्य में रही है और यहीं इच्छा जब सामाजिक स्तर पर रूप लेती है, तब वह सँस्कृति कहलाती है। भारत की आत्मा गांवो में बसती है और आज भी यहाँ की 68.04% आबादी गांवो में निवास करती है। भारत की पारम्परिक

और समृद्ध संस्कृति गाँव में रहने वाले लोगो की संस्कृति है जिसे हम ग्रामीण संस्कृति कहते है। संस्कृति समाज की मूल जीवनदायिनी शक्ति है, राजनैतिक शक्ति से भी अधिक।

संस्कृति मूलतः ग्राम जीवन से सम्बंधित है और विकृति के इस युग में भी गांवो में वह अंशत: सुरक्षित है। ग्रामीण संस्कृति भारतीय समाज की समृद्ध विरासत को प्रदर्शित करती है और यह संस्कृति भारतीय ग्रामीण समुदाय की पहचान है और देश की सांस्कृतिक विविधता का अभिन्न हिस्सा है। भारतीय सँस्कृति का मूल एवं उसका सच्चा स्वरुप हमें ग्राम जीवन में ही प्राप्त है। ग्राम जीवन की बुनियादी गहराइयों के आधार को जाने बिना इस विशाल भारत के बहुविध रुप और उसकी आंतरिक एकता को नहीं समझा जा सकता है।

'ग्रामीण कलाएँ, पर्व त्योहार, संस्कार, रूढ़ियाँ, प्रथाएं रीतिरिवाज, खेलकूद, लोककला, लोकगीत, विवाह, धर्म आदि विभिन्न के योग से सँस्कृति बनती है। ये अवयव ग्राम जीवन और ग्रामीण सँस्कृति में व्यवस्था और अनुशासन के आवश्यक तत्व हैं, तथा ग्रामीणों में घुले मिले हैं।1

स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज और साहित्य के प्रति एक नया आकर्षण उत्पन्न हुआ, जिसने ग्रामीण संस्कृति के महत्व को पुन: प्रमुखता दी। लेखको ने ग्रामीण जीवन के अनुभवों, समस्याओ और सांस्कृतिक मूल्यों को गहराई से व्यक्त किया। इस आंदोलन ने भारतीय साहित्य को ग्रामीण जीवन, जनता के मुद्दो, सांस्कृतिक विरासत और सामाजिक परिवर्तन के साथ गहनतापूर्वक जोड़ा

"1951 का दशक भारतीय जीवन और साहित्य दोनों के लिए ऐतिहासिक बदलाव का समय है। साहित्यिक विधाओं में कहानी कदाचित अपने समय के प्रति सबसे अधिक संवेदन शील होती है"।2

"प्रेमचन्द के बाद हिंदी में ग्रामीण जीवन पर कहानियाँ लिखने वाले विरल हो गये, इस दशक के लगभग 68 कहानीकारों में ग्रामीण जीवन को अपनी

कहानियों का विषय बनाने वाले कहानीकारों की संख्या 10% से अधिक नहीं है। पांचवे दशक में ही हिन्दी कहानी गांव छोड़कर नगर में आ गयी। इस दशक में मुझे केवल एक ही कहानीकार विवेकी राय दिखायी देता है, जिसने गांव को अपनी कहानियों का विषय बनाया।"3

विवेकी राय हिन्दी के 'किसान-कथाकार' हैं। वे ग्रामीण मन और जीवन के कथावाचक है। वे आंचलिक है पर इस आंचलिकता में देश की सुगन्ध है। आजादी के बाद भारत के विकास में गांव उपेक्षित रह गया और आज भी उपेक्षा का शिकार बना हुआ है। विवेकी राय इसी उपेक्षित ग्रामीण संसार के ऊर्जस्वित कथाकार हैं।

विवेकी राय की पहली कहानी 'पाकिस्तानी 1945 में आज (वाराणसी) अखबार में छपी थी। उनका पहला कहानी संग्रह जीवन परिधि (1952) में प्रकाशित हुआ। इसमें चौदह कहानियाँ संगृहीत है। इसके बाद नयी कोयल (1978), गूंगा जहाज (1977) बेटे की बिक्री (1977) कालातीत (1982),चित्रकूट के घाट पर (2005) में प्रकाशित हुआ । 2011 में विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी से विवेकी राय की सम्पूर्ण कहानियों का संकलन सामलगमला नाम से प्रकाशित हुआ। इससे 131 कहानियाँ संकलित है।

विवेकी राय ने ग्रामीण जीवन से गहरा लगाव होने के कारण और गांव मे पले बढ़े होने के कारण छोटी-छोटी घटनाओं को बड़े ही मार्मिकता के साथ व्यक्त किया है। कहानी की भाषा में गंवई गन्ध की महक रची बसी है।

इसी के सम्बन्ध में विष्णु प्रभाकर' ने लिखा है कि "भारत के असंख्य अविकसित गांव में अनपढ, पर सरल प्राण धरती पुत्रों की कहानियाँ सम्पूर्ण चित्र भले ही न प्रस्तुत करती हो, पर है उसी धरती से जुड़ी हुई। जहां टूटन के कगार पर खड़े इन गांवो की धड़कन इनमें सुनी जा सकती है। वहाँ आधुनिकता के अन्तर्विरोध की

टकराहट के स्वर भी मुखर होते प्रतीत होते है। भारतीय ग्राम्य-मानस और ग्राम्य ग्रन्थ की पहचान के लिए ये कहानियां अभिनंदनीय है।"4

आधुनिकता के प्रभाव से रहित मूल्यनिष्ठ ग्राम व्यक्तित्व में एक सांस्कृतिक स्तर होता है जो कहानी के पात्रों की भीड़भाड़ में पृथक से पहचान में आ जाता है।

'मरछिया' कहानी में एक ऐसी ही, स्नेहशील, प्रेमवात्सल्य, मातृत्व और सेवापरायणता सांस्कृतिक ग्राम नारी व्यक्तित्व का चित्रण मिला है।

"जब कोई छोटा लड़का जान-अनजान में 'मरछिया' शब्द का उच्चारण कर लेता है तो बड़े लोग डाँटते है- "मूर्ख कहीं का। ऐसे बोला जाता है? कहो मराछो फुआ।"5

कहानी में जब 'मरछिया' को गांव के लड़के परेशान कर रहे थे और जमीदार मंजू बाबू कहते हैं "शैतान भाग जाओ नहीं तो फैर कर देंगे। बेचारी का मूलधन भी नहीं लौटेगा।" फिर क्या था?

छाती पीटती मरछिया कूदकर आ गई बंदूक के सामने बोली "फैर क्या कर दोगे? क्या ये सब लड़के इमली के खोडरें में से काढ़कर आए है ? वाह रे वाह।"6

'झगड़ा' कहानी में लम्पट और आवारा पति को बर्दाश्त करने वाली रोती, कलपती, निराश, हताश पत्नी द्वारा अपने पति के खिलाफ खड़ी होना उस पर वार करना एक सशक्त ग्रामीण संस्कृति के नारी पात्र का चित्रण करती है।

"कुसुमी की माई, पागल यह बनो। सुनों मैं तुमसे कह रहा हूँ। यह नगरनाच बन्द करो। तुम हमें समझो और हमारी भूख को समझो।"

" बहुत भूख है तो हमें ही कच्चे चबा जाओ।" हाथ छटक कर चाची चिल्ला उठी और आंचल फ़ेंक तनकर खड़ी हो गयी। यह एक अदभूत कल्पित रूप था।

गोरा, दिप-दिप, चौड़ा मुख, बड़ी-बड़ी सतेज आँखे, फड़कते से लाल-लाल होठ वह आहत सिंहनी।7

धर्म, पारम्परिक मान्यताएं, रीति रिवाज, ग्रामीण समाज और उसकी संस्कृति को समझने के प्रमुख अवयव में से एक है। विवेकी राय ही कहानियों में जिस रूप में यह चित्रित हुआ है उसे देखकर लगता है कि गांव में धर्म, पाखण्ड अथवा अन्धविश्वास बनकर शेष रह गया है। लेखक ने अपनी कहानी 'अंचल में दीप छिपाये' में बताया है की इन मान्यताओं का कैसे-कैसे हास हो रहा है

"ऐसा नहीं होगा। माना कि गाँव-घर में भी अब लट्टू जलेगा, पर गंगा मैया को तो लट्टू नहीं चढ़ाया जा सकता। ठाकुरजी की आरती लट्टू से कैसी होगी? "

"देखो भाई, इस प्रकार ग्राम मन को तहस-नहस मत करो। उसमें बड़ी मिठास और शान्ति है। उसमें सिधाई और सरलता है। उसकी टहनी पर फूल खिलने दो। उसकी जड़ में कीड़े मत लगने दो। उस ग्राम-मन की देहली पर बिजली का लट्टू नहीं, स्नेह भरा दीपक जलने दो।"8

'समाजवादी सुबह में एक दिन' कहानी में लेखक ने गांव में पीपल, गूलर आदि वृक्षों ही खत्म होती मान्यताओं पर तीखा व्यंग्य किया है और दिन-प्रतिदिन इन नष्ट हो रहे वृक्ष पर गहरा क्षोभ व्यक्त किया है।

'लाटरी के रुपये' कहानी में ग्रामीण समाज में मन्नत मांगने की परम्परा का चित्रण है।

"गंगा माई को साड़ी शिरनी चढ़ाई जाती हैं और देखा जाता है, सारी वस्तुएं सही-सलामत वापस आ जाती है। एक बताशा और साड़ी का दो सूत तोड़कर जल में छोड़ दिया जाता है।"9

'सुरानी भवानी का फेर' कहानी का आरम्भ कुछ इस तरह से होता है।

"शिवधनी भूत उतारता है। ठीक अपने घर के आंगन में जमता है और आर्त्त लोग चारों ओर से घेर कर बैठ जाते है।..... जब शिवधनी हकड़-हकड़ कर नट बाबा, जीन बाबा, और डीह बाबा को गुहारता है तो एकदम खामोशी छायी रहती है।"10

विवेकी राय की कहानियों में ग्रामीण समाज के वैवाहिक संदर्भ और उसकी परिस्थितियों का जो चित्रांकन है वह बहुत ही प्रभावशाली है। विवाह प्रथा और संस्था से जुड़ी अनेक कुप्रवृत्तियों पर अपनी कहानियों में विवेकी राय बार-बार प्रहार करते है। बेटे की बिक्री, परंतु, कच्चा गुलाब, अखण्ड व्यर्थताओं की बंजर बारात, में जैसी कहानियों में इसका चित्रण मिलता है।

"बेईमान, विवाह यदि तिजारत है तो नेट प्राइज बोलो पैसा लो और लड़का भेजकर लड़की मँगा लो। यह भारी हंगामा क्यों? यह हर्षोल्लास का नाटक क्यो?"11

'कच्चा गुलाब' कहानी में -"लड़का एक सौदा है। पढ़ाई-लिखाई उस सौदे को चौखे बताने का एक बहाना है। पढ़ाई लिखाई मुख्य नहीं और शादी भी मुख्य नही। मुख्य है उस लड़के को प्राप्त होने वाला तिलक।"12

क्रीड़ाशीलता की प्रवृत्ति ग्रामीण जन के चरित का एक अंग है। ग्रामीण समाज में बच्चों द्वारा खेले जाने वाले खेल वहाँ की संस्कृति का अंग है। 'खेल' कहानी में गांव में बच्चो द्वारा खेले जाने खेल का चित्रण कुछ इस तरह है- "टोले भर की छोटी -छोटी लड़कियाँ गुदिया, मुअली, बचमुनिया, सरली, सांती, सोमरिया और गौरी आदि दो - दो गोल मे, एक दूसरे की बगल में विमुख खड़ी होकर परस्पर गले में हाथ डाले, धीरे-धीरे घूमते हुए सवाल-जवाब करती है-
"भात बनाया है?"
"हाँ!"
"दाल बनाया है?"

"हाँ!"
भैया को खिलाया है?"
"हाँ!"
"आपने खाया है?"
"हां!"
"हमको रखा है?"
"नहीं।"
"क्यों?"
"बिल्ली खा गई।"
बस अब क्या ? खेल का चरम बिन्दु आ जाता है। लड़कियों तेजी से चहकती हल्ला करती, नाटकीय ढंग से घूमती हुई कहती जाती है, "आई- आई रे बिलारी दाई, मुंगरी चलाई, आई- आई रे बिलारी दाई, मुंगरी चलाई.....आई आई रे। यहाँ तक कि कुछ घुमरी खाकर गिर जाती है। जो गिर जाती है, वे उठा-उठाकर धूल दूसरों पर फेंकती है, क्षणभर की धूल की लड़ाई शांत हो जाती है और कब एक नया खेल निर्माण का खेल शुरू हो जाता है, पता नही चलता है।"13
सम्प्रति ग्राम-जीवन से जुड़ी कथात्मक अभिव्यक्तियाँ में यह अनुभूति और घनी होती जा रही है कि त्योहार टूट रहे है। ग्रामीण समाज में त्यौहार एक उत्सव के रूप में मनाया जाता है, चाहे कितने भी मनमुटाव हो, भेद हो पर त्यौहार के दिन सारे लोग एकत्रित होकर हर्षोल्लास से इसका आनन्द उठाते है, परन्तु अब उखड़े उदासीन और मृतवत् ग्रामीण येनकेन प्रकारेण परम्पराओं का बोझ ढोते प्रतीत होते है। त्यौहार फीके पड़ते चले जा रहे है! होली पर भी इसका प्रभाव पड़ा है। होली गई तो गांव गया।

'कहाँ बचकर जाओगी?' कहानी में सिरपत जब वर्षों बाद होली में गांव लौटता है तो ये देखकर एकदम दंग रह जाता है।

" लेकिन हाय, गांव में प्रवेश करते ही सिरपत को एक जबरदस्त धक्का लगता है। होली जलने के अब चंद दिन शेष रह गए और जहाँ खरपतवार, उपले,

लकड़ियों और पुआल आदि के ढेर लग जाने चाहिए थे, वहाँ होली जलने वाले स्थान पर एक तिनका भी नहीं दिखाई पड़ता है। वसंत पंचमी को गाड़ी जाने वाली झण्डी भी नहीं है। क्या हो गया है गांव को?"14

मेले ग्रामीणों के सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग है ग्रामीण जन बड़े उत्साह से मेलो में भाग लेते हैं। मेला गांवो में जीवन का स्पंदन लेकर आता है।'मेले की तैयारी' कहानी में लेखक लिखता है कि 'जिस मेले की तैयारी ऐसी है, वह मेला कैसा होगा?'

"दूसरे दिन शीशी - डिब्बे धो मलकर साफ किये जाने लगे हर चीज को साफ कर काकी अंतिम बार अपने आंचल से पोछती हैं। मानो काकी का आंचल स्वच्छता और पवित्रता की मुहर है। रुई की बहुत सी बत्तियाँ बनाई गई। उन्हें घी में लपेटा गया और एक डिब्बे में बंद किया गया।"15

विवेक राय की कहानियो में हमें पारम्परिक गांव के दर्शन होते हैं, जहां गोबर, गौहरोर, कोदो, लाठी, कृषि कार्य, आदि का चित्रण मिलता है।

'गोबर भवन में एक दिन' कहानी में लेखक लिखता है-

"गौहरोर अर्थात् गौहरो यानी उपलो की बनी लघु पिरेमिड यह गांव का प्रतीक है। जहाँ गांव वहां बैल, जहाँ बैल वहाँ गोबर, जहाँ गोबर वहाँ गोहरे, जहां गोहरे वहाँ गौहरोर।"16

'कोदो, लाठी और किसान' कहानी में तीनो मिलकर किसान एवं गांव की संस्कृति का निर्माण करते हैं।कोदों और लाठी में एक होड़ है यह बतलाने में कि किसानों का सच्चा साथी कौन है?

'लाठी' का वक्तव्य है - "मैं ग्रामीण जीवन की विभूति हूँ। मेरा स्थान यहाँ एटम व हाइड्रोजन बम से बेशी है। मैं आला हथियार हूँ। किसानों का सच्चा दोस्त हूँ । मैं किसान की सुबह-शाम की मित्र हूँ।

'कोदों'- दुख को सुख बनाकर जीने वाले गरीब ग्रामीणों के विचित्र मुल्क का मैं शीतकालीन रक्षक हूं.... गर्मी में पेड़ की छाया है और जाड़े में आग और मैं पुवाल हूँ। हम लोग मिलाकर किसान की संस्कृति और उसका व्यक्तित्व बनाते है।"17

खेतों में फसल की कटाई किसी भी त्यौहार से कम नही है, ग्रामीण जन के लिए जो उत्साह मेला, त्यौहार या किसी उत्सव के लिए होता है. वही उल्लास कटिया में भी है। 'रावण' कहानी में- "मैंने देखा, यह सनीचरी है, जो यहां ताबड़तोड़ हंसिया चला रही है और मैंनें जाना कि यह पोशाक (एकरंगा लाल साड़ी,आँखो में भरपूर काजर,गले में पड़ी मोटी हंसुली और हाथ के मोटे बाजूबन्द) कटियावाली भी है।और लोगो के लिए जो मेले का आनंद है, युवती बनिहारिन के लिए कटिया में भी वही उल्लास है।"18

लोकगीत ग्रामीण जनता की भावना, उसके संवेगो, अनुभूतियों एवं उनकी सौन्दर्य भावना का प्रतिनिधित्व करती है, विभिन्न प्रकार के अवसरों पर विभिन्न प्रकार के लोक गीत गाये जाते है, शादी, फेरे आदि विभिन्न अवसरों पर।

कहानी 'छछलोल राय का तिलकोत्सव' में विवाह सम्बन्धी लोकगीत का चित्रण है -

"आरे सगुनी सगुनवा
लेई रे आउ।
तोहरा सगुनवा ए सगुनी
हो खेला रे वियाह।।"
'गायी का गोवरे महादेव
आँगन लिपाई
गजमोती आहो महादेव
चउक पुराई।"19

तिला मूँगा, बाप मोरे भइले कठबपवा कहानियां लोककथा पर आधारित है। लोककथा की भूमिका ग्राम जीवन के जिस सांस्कृतिक आयाम का उद्घाटन करती है वह एक उपलब्धि है।

विवेकी राय की कहानियों में ग्रामीण संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का चित्रण है। वे ग्रामीण जीवन के कठिनाइयों और संघर्षों के साथ-साथ उसकी सुंदरता और समृद्धि को भी उजागर करते हैं। उनकी कहानियों में ग्रामीण लोग अपने जीवन के प्रति गहरी निष्ठा और समर्पण रखते हैं। वे अपनी संस्कृति और परम्पराओं को संरक्षित करने के लिए संघर्ष करते हैं। विवेकी राय की कहानियों में ग्रामीण जीवन के विभिन्न पहलुओं को चित्रित करने के लिए उन्होंने विभिन्न साहित्यिक तकनीकों का प्रयोग किया है। उन्होंने ग्रामीण भाषा और बोली का प्रयोग किया है। उन्होंने ग्रामीण जीवन के पहलुओं को चित्रित करने के लिए विभिन्न पात्रों का निर्माण और प्रसंगों का प्रयोग किया है। विवेकी राय की कहानियां ग्रामीण जीवन के विभिन्न पहलुओं को चित्रित करने में सफल हैं। वे ग्रामीण जीवन की कठिनाइयों और संघर्षों के साथ-साथ उसकी सुंदरता और समृद्धि को भी उजागर करती हैं। उनकी कहानियां ग्रामीण लोगों के जीवन के प्रति गहरी निष्ठा और समर्पण को भी दर्शाती हैं।

सन्दर्भ सूची

1. आधुनिक हिन्दी कविता में कृषि संस्कृति - डॉ गायत्री सिंह पृष्ठ –280
2. हिन्दी कहानी का इतिहास (1951-1975) - गोपाल राय पृष्ठ 15
3. वही, पृष्ठ 25
4. माटी की महक (संपादक - डॉ. सत्यकाम) पृ. 179
5. विवेकी राय की लोकप्रिय कहानियाँ, प्रभात प्रकाशन पृष्ठ-15
6. वही, पृष्ठ 18
7. वही, पृष्ठ 49-50
8. सामलगमला (कहानी समग्र) - विवेकी राय पृष्ठ 513
9. वही पृष्ठ 51

10. वही, पृष्ठ 165
11. वही पृष्ठ 148
12. वही पृष्ठ - 88
13. वहीं, पृष्ठ 434
14. विवेकी राय की लोकप्रिय कहानियाँ पृष्ठ 115
15. वही पृष्ठ 27
16. वही पृष्ठ 124
17. सामलगमला (कहानी समग्र) - विवेकी राय पृष्ठ 145
18. विवेकी राय की लोकप्रिय कहानियां - पृष्ठ 21
19. वही पृष्ठ 127

भारतीय समाज के जीवन में श्रीराम

प्रियंका सौरभ
रिसर्च स्कॉलर इन पोलिटिकल साइंस,
कवयित्री, स्वतंत्र पत्रकार एवं स्तंभकार
उब्बा भवन, आर्यनगर, हिसार(हरियाणा)-125001
मो.- 7015375570
ईमेल- priyankasaurabh9416@gmail.com

सारांश

*भगवान श्रीराम भारतीय संस्कृति के ऐसे वटवृक्ष हैं, जिनकी पावन छाया में मानव युग-युग तक जीवन की प्रेरणा और उपदेश लेता रहेगा। जब तक श्रीराम जन-जन के हृदय में जीवित हैं, तब तक भारतीय संस्कृति के मूल तत्व अजर-अमर रहेंगे। श्रीराम भारतीय जन-जीवन में धर्म भावना के प्रतीक हैं, श्रीराम धर्म के साक्षात् स्वरूप हैं, धर्म के किसी अंग को देखना है, तो राम का जीवन देखिये, आपको धर्म की असली पहचान हो जायेगी। वास्तव में हमें जब भी कोई काम करना हो तो हम भगवान राम की ओर देखते हैं। भगवान राम की जय बोलते हैं। राम हमारे मन में बसे हैं। राम हमारी संस्कृति के आधार हैं। देश के लब्धप्रसिद्ध युवा दोहाकार डॉ. सत्यवान सौरभ ने अपने दोहा संग्रह 'तितली है खामोश' में श्री राम के बारे बड़ी गहराई से लिखा है -*राम नाम है हर जगह, राम जाप चहुंओर। चाहे जाकर देख लो, नभ तल के हर छोर।। राम हमारे मन में बसे, श्रीराम हमारी संस्कृति है, हमारी बोलचाल, प्यार, उलाहनों और कहावतों में सदियों से रचे बसे है श्रीराम।*

बीज शब्द: *राम, संस्कृति, मर्यादा, लोकजीवन, कहावतें, लोकगीत*

शोध आलेख

राम-राम जी। हरियाणा में किसी राह चलते अनजान को भी ये 'देसी नमस्ते' करने का चलन है। यह दिखाता है कि गीता और महाभारत की धरती माने जाने वाले हरियाणा के जनमानस में श्रीकृष्ण से ज्यादा श्रीराम रचे-बसे हैं।

हरियाणवियों में रामफल, रामभज, रामप्यारी, रामभतेरी जैसे कितने ही नाम सुनने को मिल जाएंगे। लोकजीवन में, साहित्य में, इतिहास में, भूगोल में, हमारी प्रदर्शनकलाओं में उनकी उपस्थिति बताती है; राम किस तरह इस देश का जीवन हैं। राम का होना मर्यादाओं का होना है, रिश्तों का होना है, संवेदना का होना है, सामाजिक न्याय का होना है, करुणा का होना है। वे सही मायनों में भारतीयता के उच्चादर्शों को स्थापित करने वाले नायक हैं। लोकमन में व्याप्त इस नायक को सबने अपना आदर्श माना। राम सबके हैं। वे कबीर के भी हैं, रहीम के भी हैं, वे गांधी के भी हैं, लोहिया के भी हैं। राम का चरित्र सबको बांधता है। अनेक रामायण और रामचरित पर लिखे गए महाकाव्य इसके उदाहरण हैं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त स्वयं लिखते हैं- राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है, कोई कवि बन जाए, सहज संभाव्य है।

हरियाणा के कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर डॉ हिम्मत सिंह के अनुसार हरियाणा के आम जनमानस में बरसात होने पर रामजी खूब बरस्या या बरसात न होने पर रामजी बरस्या कोनी का उलाहना सुनने को मिलेगा। किसी से अच्छा प्यार-पहचान जताने के लिए उस गेल्यो बढ़िया राम-राम है या अनजानापन जताने के लिए उसतै तो मेरी राम-राम बी कौना, कहवात का इस्तेमाल करते हैं। यहां सांग में राम के प्रसंग जुड़े हैं तो भजनों में भी राम का जिक्र मिलता है। 'लाड्डू राम नाम का खाले नै हो ज्यागा कल्याण'.. या 'मनै इब कै पिलशन मिल जा मैं तो ल्याऊ राम की माला'... जैसे हरियाणवी भजन हिट रहे हैं।

किसी को सांत्वना देने के लिए 'राम भली करैगा या आंधे की माक्खी राम उड़ावै' जैसी कहावतें हैं। परसां चढ़ता मेरा बाबुल बुझ्या, कहो तो कातिक नाल्हू हो राम। कार्तिक न्हाणा बड़ा दुहेला, खुशी तैं कार्तिक न्हाले बेटी कहै सै योह राम। यह हरियाणा का एक लोकगीत है। इसमें नवबाला अपने परिवार से कार्तिक नहाने की अनुमति मांगने के लिए अनुनय विनय कर रही है। जवाब में उनके परिजन राम के नाम पर कार्तिक नहाने की अनुमति दे रहे हैं। यह लोकगीत अपने आप में बताने के लिए पर्याप्त है कि हरि की धरती हरियाणा के लोकगीत, लोक

रागनी और लोक भजन में भी प्रभु राम रचे-बसे हैं। यहां राम के बिना कहीं भी सार्थकता दिखाई नहीं देती। कार्तिक मास के लोकगीत व लोक भजन तो राम की स्तुति में ही गाए जाते हैं। हरियाणा में राम के नाम पर कई गीत गाए जाते हैं। हरियाणा का लोकगायन राम से शुरू होता है और राम के जयकारे के बाद ही खत्म होता आया है।

हरियाणा का लोक गायन राम संस्कृति से ओत-प्रोत है। राम को हरियाणा में गीत संगीत का प्रणेता माना जाता है। एक अन्य कार्तिक गीत में राम, सीता और लक्ष्मण की आराधना इस प्रकार की जाती है- राम और लक्ष्मण दशरथ के बेटे, दोनों बण खंड जाए, ऐजी कोए राम मिले भगवान। एक बण चाले दो बण चाले, तीजे में लग आई प्यास, एजी कोए राम मिले भगवान। कातिक नहाण के समय सुबह सवेरे जोहड़ के कंठारे पर गाया जाने वाला कार्तिक गीत इस प्रकार है- आई छोरियां की डार, सुत्या जल जागियो हो राम। उर्लै पर्लै घाट खड़ी, तेरी लाडली हो राम। इनकी भी सुनिए हो राम। इसी तरह एक अन्य कार्तिक मास का राम भजन इस प्रकार है- राम को बुलाओ, मेरे लक्ष्मण को बुलाओ, दोनों को ढूंढ के लाओ, कहां गए लछमण और राम। एक अन्य भजन में कार्तिक न्हाण का वर्णन इस प्रकार है- चलो सखी नहाण चलां, कार्तिक आई हो राम। इस प्रकार पूरे लोकगीत में राम की आराधना की जाती है। हरियाणवी लोकगीत में कैकेयी को इस प्रकार कोसा जाता है- कैकेयी तैनै जुल्म गुजारे, वन में भेज दिए राम। राम कड़ी बेल का कड़ा तूंबड़ा, सब तीरथ कर आई। घाट घाट का जल भरले फिर भी ना मिले राम। आगे राम चलत है, पीछे लक्ष्मण भाई, राम बीच बिचालै चलै जानकी, देखो जनक की जाई। वहीं सावन के महीने में राम नाम की टेर से इस प्रकार मल्हार गाया जाता है- कड़वी कचरी है मां मेरी बाग में, क्यूं कर खाल्यूं हो राम।

हरियाणा के भजनी व सांगी जब गांव में आते थे तो वह भजनों की शुरुआत राम को समर के इस प्रकार करते थे। राम नाम सबतैं बड़ा, इससे बड़ा न कोये। जो सुमिरन करें राम का, तो बंदे शुद्ध आत्मा होये। पंडित लख्मीचंद, मांगेराम,

दयाचंद, जगन्नाथ समचानिया, मास्टर सतबीर सिंह, हरदेवा अली बख्स भी राम से अपने कार्यक्रम की शुरुआत करते थे। जाट मेहर सिंह ने अपनी शहादत के समय जो चिट्ठी लिखी थी तो उसकी शुरुआत भी राम के नाम से की थी। लिखा था साथ रहणिये संग के साथी, दया मेरे पै फेर दियो। देश कै ऊपर जान झोकदी, लिख चिट्ठी में गेर दियो। पहले तो मेरे मात-पिता के चरणों में प्रणाम लिखूं। काका ताऊ बड़े-बड़ों को मेरी राम राम लिखूं। एक रागिनी में कीचक और सुदेशना के महाभारत किस्से में राम का इस प्रकार उद्धरण किया गया है। वो हे उसका राम, जिसमें मन बस ज्या। घाल दे दासी ने, मेरा घर बसज्या। एक अन्य रागिनी में राम का वर्णन अपनी पत्नी को समझाते हुए दूल्हा इस प्रकार करता है। जहाज कै में बैठ, गोरी राम रट कै। ओढना संगवाले, तेरा पल्ला लटके।

रामायण पर चार पीएचडी करवा चुके 90 वर्षीय डॉ. हिम्मत सिंह सिन्हा कहते हैं कि सन् 1999 तक हिंदी भाषी क्षेत्रों में राम व रामायण पर 150 से ज्यादा शोध थे। अब इनकी संख्या 250 से ज्यादा होगी। गैर हिंदी प्रदेशों में भी काफी शोध हुए हैं। हरियाणा व हिंदी भाषी क्षेत्र में राम के लोकजीवन में रचने बसने का श्रेय कई संतों व कवियों और आर्य समाज को जाता है। कबीर को निम्न जाति का मानते हुए उस काल में मंदिरों में नहीं जाने देते थे। तब कबीर ने राम को निर्गुण मानते हुए प्रचार किया। पहले आदि कवि वाल्मीकि, संत रविदास, नामदेव ने निर्गुण रूप का प्रचार किया। हरियाणा में आर्य समाज का काफी प्रभाव रहा है और आर्य समाज ने राम को आदर्श पुरुष माना है। प्रदेश में कबीरपंथ का प्रचार करने के लिए डेरे भी हैं। कबीर के दोहों में रा को छत्र और म को माथे की बिंदी माना है। यानी सभी को रक्षा व सम्मान का प्रतीक माना है। हरियाणा के पुराने सांगों में राम के प्रसंगों का खूब जिक्र होता रहा है, इस वजह भी पीढ़ी दर पीढ़ी राम की असर जनमानस है, जबकि कुरुक्षेत्र जैसी धर्मनगरी समेत प्रदेश में कहीं भी श्रीराम के प्राचीन मंदिर नहीं हैं। रामराज्य की कल्पना में ही नैतिक मूल्य व राजनीतिक दर्शन है। राजनीति में सबसे ज्यादा इस्तेमाल होने वाली आया

राम-गया राम की कहावत भी हरियाणवी राजनीति से निकली है। जब 1967 में एक विधायक ने एक ही दिन में 3 बार में दल-बदल किया था।

हरियाणा के गांव मुंदडी में लव-कुश ने रामायण कंठस्थ की थी और सीवन गांव में माता सीता समाई थी। कैथल दडी में भगवान राम व सीता के पुत्रों लव-कुश ने महर्षि वाल्मीकि से इसी तीर्थ पर रामायण को कंठस्थ कर दिया था, जिसके बाद महर्षि वाल्मीकि ने मौन धारण कर दिया था। इससे ही गांव का नाम मुंदडी हो गया। इस तीर्थ पर शिव, हनुमान व लव-कुश के मंदिर हैं। मंदिर के गर्भगृह की भित्तियों पर राम, लक्ष्मण को कंधे पर बैठाए हुए हनुमान, गोपियों के साथ कृष्ण, रासलीला व गणेश इत्यादि के चित्र बने हुए हैं। नारद पुराण के अनुसार चैत्र मास की चतुर्दशी को इस तीर्थ में स्नान करने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है।मंदिर के सरोवर की खुदाई से कुषाणकाल (प्रथम-द्वितीय शती ई.) से लेकर मध्यकाल 9-10वी शती ई. के मृदपात्र एवं अन्य पुरावशेष मिले थे। जिससे इस तीर्थ की प्राचीनता सिद्ध होती है। यहां महर्षि वाल्मीकि संस्कृत यूनिवर्सिटी भी बनाई जा रही है। वहीं, कैथल के गांव सीवन या शीतवन को जनमानसे जनकनंदिनी सीता जी से संबंधित मानती है। प्रचलित विश्वास के अनुसार सीता इसी स्थान पर धरती में समा गई थीं। इसीलिए इस तीर्थ को स्वर्गद्वार के नाम से भी जाना जाता है। इस तीर्थ का उल्लेख महाभारत एवं वामन पुराण के अतिरिक्त पद्म पुराण, ब्रह्म पुराण, कूर्म पराण, नारद पुराण तथा अग्नि पुराण में भी पाया जाता है। ऐसा भी माना जाता है कि यही शीतवन अपभ्रंश हो कर परवर्ती काल में सीतवन के नाम से विख्यात हो गया। वामन पुराण में इस तीर्थ को मातृतीर्थ के पश्चात् रखा गया है।

वास्तव में हमें जब भी कोई काम करना हो तो हम भगवान राम की ओर देखते हैं। भगवान राम की जय बोलते हैं। राम हमारे मन में बसे हैं। राम हमारी संस्कृति के आधार हैं। वनवास से लेकर रामराज्य की स्थापना तक का श्री राम का संघर्षमय जीवन भारतवर्ष को बहुत कुछ सिखाता है। वे समाज में लोकप्रिय हैं ही, साथ ही एक कुशल योजक, संगठक के रूप में दिखाई देते हैं। श्री राम का हृदय करुणा सागर है। धीर-गम्भीर और वीरता से युक्त उनका तेजस्वी व्यक्तित्व

है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के जीवन के अनेक पहलू हैं। श्री राम ने जहाँ एक ओर केवट, शबरी और जटायु को आत्मीयता से स्वीकार किया, उनपर स्नेह की वर्षा की; वहीं दूसरी ओर उन्होंने वानरों, भालुओं तथा वनवासियों को एकत्रित किया। उन्होंने वानर सेना को अधर्म के विनाश के लिए तैयार किया। उन्होंने रावण सहित समस्त असुरों को समाप्त कर धर्म की पताका को अभ्रस्पर्शी बनाया। इतना ही नहीं तो श्री राम का जीवन तप, क्षमा,शील, नीति, मान, सेवा, भक्ति, मर्यादा, वीरता और न जाने कितने महान गुणों से युक्त था। इसलिए वे भारतीय समाज के जीवन में बड़ी गहराई से बस गए हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने "गोस्वामी तुलसी दास" नामक अपनी पुस्तक में कहा है, "राम के बिना हिन्दू जीवन नीरस है; फीका है। यही रामरस उसका स्वाद बनाए रहा और बनाए रहेगा। राम ही का मुख देख हिन्दू जनता का इतना बड़ा भाग अपने धर्म और जाति के घेरे में पड़ा रहा। न उसे तलवार काट सकी, न धनमान का लोभ, न उपदेशों की तड़क-भड़क।" स्वामी विवेकानन्द ने 31 जनवरी, सन 1900 को, अमेरिका के पैसाडेना (कैलिफोर्निया) में 'रामायण' विषय पर बोलते हुए अपने व्याख्यान में कहा था, "राम ईश्वर के अवतार थे, अन्यथा वे ये सब दुष्कर कार्य कैसे कर सकते थे? हिन्दू उन्हें भगवान अवतार मानकर पूजते हैं। भारतीयों के मतानुसार वे ईश्वर के सातवे अवतार हैं। राम भारतीय राष्ट्र के आदर्श हैं।" स्वामी जी इसी व्याख्यान में रामायण को भारत का आदि काव्य कहकर उसकी प्रशंसा करते हैं।

निष्कर्ष

श्री राम भारतीय जनमानस में आराध्य देव के रूप में स्थापित हैं और भारत के प्रत्येक जाति, मत, सम्प्रदाय के लोग श्री राम की पूजा-आराधना करते हैं। कोई भी घर ऐसा नहीं होगा, जिसमें रामकथा से सम्बन्धित किसी न किसी प्रकार का साहित्य न हो क्योंकि भारत की प्रत्येक भाषा में रामकथा पर आधारित साहित्य उपलब्ध है। भारत के बाहर, विश्व के अनेक देश ऐसे हैं जहाँ के लोक-जीवन और संस्कृति में श्री राम इस तरह समाहित हो गए हैं कि वे अपनी मातृभूमि को

श्रीराम की लीला भूमि एवं अपने को उनका वंशज मानने लगे हैं। हम श्री राम को पढ़ते हैं, पूजते हैं। उनके जीवन, विचार, संवाद और प्रसंगों को पढ़ते-पढ़ते भाव विभोर हो जाते हैं। उनका नाम लेते ही हमारा हृदय श्रद्धा और भक्ति भाव से सराबोर हो जाता है। यहाँ तक कि भारत के करोड़ों लोग अपने नाम के आगे अथवा पीछे 'राम' शब्द का प्रयोग बड़े गर्व से करते हैं; जैसे –रामलाल, रामप्रकाश, सीता राम, रामप्रसाद, गंगा राम, संतराम, सुखराम आदि। विवाह-गीत, सो हर, लोकगीत, होली गीत, लोकोक्तियां आदि सभी लोक संस्कृति में श्री राम और माता जानकी का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। इस तरह लोकजीवन में राम दिखाई देते हैं। सबके राम, सबमें राम, जय जय श्रीराम।

सन्दर्भ सूची

1. जन -जन में बसे हमारे राम, डॉ. सत्यवान सौरभ, हस्तक्षेप, दैनिक राष्ट्रीय सहारा 6 जनवरी, 2024
2. "गोस्वामी तुलसीदास" पुस्तक, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, अध्याय 4
3. https://www.amarujala.com/haryana/rohtak/ram-is-present-in-the-folk-raginis-and-bhajans-of-haryana-rohtak-news-c-17-1-rtk1042-337654-2024-01-14
4. राम नाम है हर जगह डॉ. सत्यवान सौरभ, दैनिक पाठकपक्ष, 5 जनवरी, 2024
5. "साकेत" में मैथिलीशरण गुप्त, https://wr.indianrailways.gov.in/cris/uploads/files/1485247768692-43-48%20Vividha-LOW.pdf
6. सदियों से रचे बसे है श्रीराम, डॉ. सत्यवान सौरभ, सत्यचक्र, साप्ताहिक, ग़ाज़ियाबाद, 15 जनवरी, 2024
7. श्रीराम हमारे मन में बसे, डॉ. सत्यवान सौरभ, दैनिक संस्कार, न्यूज़ अजमेर, 3 जनवरी, 2024

साहित्यिक रचनाएँ: कविता

सैयद दाऊद रिज़वी की कविताएँ

व्यथा

(1)
क्या सुनाऊं तुमको, व्यथा,
जो है आदि से अनंत तक,
जो जन्म से लेकर मृत्यु तक,
जो गर्भ से लेकर कब्र तक,
यही है मेरी व्यथा
कि मैं स्त्री हूं।

(2)
युगों-युगों में व्याप्त है, मेरी व्यथा,
सतयुग में बनाया, देवदासी
त्रेतायुग में बनाया, सीता
द्वापर में बनाया, द्रौपदी
कलयुग में बनाया रखैल, वेश्या, बद-चलन
न जाने तुमने क्या-क्या बना डाला,
यही है मेरी व्यथा
कि मैं स्त्री हूं।

(3)
सुन्नत के नाम पर तुमने,
न जाने कितने अत्याचार किए,
कभी तो छीना, मेरा बचपन
तो कभी ले आए, मेरी सौतन

तो कभी किया हलाला रूपी रेप,
धर्म के नाम पर खिलवाड़ किए,
यही है मेरी व्यथा
कि मैं स्त्री हूं।

(4)
नहीं समझी कभी, मेरी पीड़ा
पीरियड में, करवटें बदलने की पीड़ा
जीवन देते हुए, प्रसव-पीड़ा
स्त्री होकर, स्त्री जनने की पीड़ा
तो कभी दहेज की आग में,
झुलसने, जलने और मरने की पीड़ा
नहीं भूली हूं मैं, आदि से
यही है मेरी व्यथा
कि मैं स्त्री हूं।

संपर्क: अँग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद
ईमेल: daudrizvi05@gmail.com

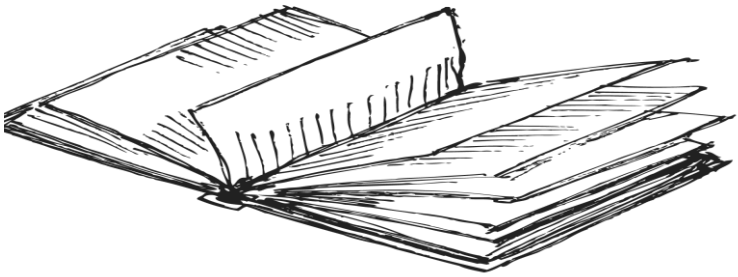

साहित्यिक रचनाएँ: कहानी

धार्मिकता की शिकार

रामेश्वर महादेव वाढेकर

सुबहसुबह मैं घूमने निकली। हर दिन निकलती हूं, शरीर और मन अच्छा रहे इसलिए। आज का मौसम प्रसन्न था बहुत। वेसे देखा जाए तो यहां का माहौल हर समय प्रसन्न ही रहता है, क्योंकि यह मणिपुर है प्राकृतिक सौंदर्य का महासागर। जीवित प्रकृति का स्वर्ग। प्राकृतिक सौंदर्य जैसी सुंदर स्त्री है यहां की, चेहरे और मन से। साथ ही प्राचीन सांस्कृतिक वारस भी है यहां के प्रदेश को। मैं सोच में डूबी अवस्था में चल रही थी। उतने में सामने दिखाई दी 'एके जानकी लीमा'। जो 'मीरा पैबी संगठन' की प्रमुख नेता है वर्तमान की। वह मूल रूप से स्त्री शोषण करने वाले के खिलाफ़ संघर्ष करती रही है। मैंने उनसे कहा,“ मणिपुर का समृद्ध एवं प्राचीन इतिहास है,इसे कोई भूल नहीं सकता।”

“ हां,मैंने पढ़ा है थोड़ा। और विस्तार से बता सकती है आप? एके जानकी लीमा ने जिज्ञासा भाव से पूछा।”

“जानने की जिज्ञासा है आपकी। मन ही मन मुस्कुराते हुए इरोम चानू शर्मिला ने कहा।”

“ जी,हां।”

“ बोधचंद्र नाम सुना है आपने।”

“नहीं।”

“ वे मणिपुर रियासत के महत्वपूर्ण राजा के रूप में ख्यात रहे हैं। उनके कार्य की पहचान थी मणिपुर रियासत। स्वतंत्रता पूर्व अनेक राजा अंग्रेज सरकार के खिलाफ़ लड़ते रहे,जिनमें बोधचंद्र महाराज एक थे। कालांतर से भारत स्वतंत्र

हुआ,परन्तु मणिपुर स्वतंत्र रियासत के रूप में अलग रहा। रियासत होने के बावजूद भी अस्तित्व में लोकतंत्र था वहा।"

"मणिपुर भारत में विलीन कब हुआ?"

" विलीन नहीं हुआ ,जबरन करवाया गया सितंबर,1949 में। साथ ही मणिपुर को राज्य का दर्जा नहीं दिया तत्कालीन समय। परिणाम स्वरूप मणिपुर में पीपल्स लिबरेशन आर्मी, पीपल्स रिवोल्यूशनरी पार्टी ऑफ कांगलीपाक, कम्युनिस्ट पार्टी आदि उग्रवादी संगठन निर्माण हुए।"

"उग्रवादी मतलब?"

" न्याय,हक्क के लिए सरकार प्रति विद्रोह करने वाले।"

" वे विद्रोह क्यों करते हैं?"

"इसके अनेक कारण हैं,जिनमें प्रमुख है सशस्त्र बल विशेषाधिकार कानून। इसके माध्यम से अनेक निष्पाप व्यक्तियों का शोषण होता हैं।अधिकार का हनन भी! इसी कारणवश मैंने 5 नवंबर,2000 को यह कानून मणिपुर राज्य से हटाने हेतु भूख हड़ताल की थी। यह विश्व जानता है। यह संघर्ष भारतवासियों ने देखा है आंखों से"

"इतना संघर्ष होने के बाद भी बदलाव क्यों नहीं हुआ?"

"गंदी राजनीति के कारण। लेकिन उन कानून का गलत इस्तमाल करके सरकार चाहे वह किसी भी पक्ष की हो, आम लोगों को त्रस्त करती है। यह भारतवासियों को ही नहीं,बल्कि विश्व को पता चला है।"

" मुझे याद है 1958 का वर्ष। मणिपुर के कुछ हिस्सों में सशस्त्र बल विशेषाधिकार कानून लागू किया था। बहुत से निष्पाप लोगों को शिक्षा हुई थी,शक के कारण। इतना ही नहीं,1980 का दशक अशांत क्षेत्र घोषित किया

था केंद्र सरकार ने मणिपुर में। साथ ही 'ऑपरेशन ऑल क्लियर' नाम से मोहिम शुरू की थी उग्रवादी संगठन खत्म करने हेतु।"

"किसी को खत्म करना यह समस्या पर उपाय नहीं। उनके विचार में परिवर्तन लाना जरूरी है।"

"2008 में उग्रवादी संगठन के साथ त्रिपक्षीय समझौता हुआ था ना।"

"सिर्फ़ नाम के लिए।"

" मैं नहीं समझी।"

" समझौता में जिन मुद्दों पर चर्चा हुई,उसपर अमल नहीं हुआ। परिणाम स्वरूप कालांतर से संघर्ष बढ़ता गया। वर्तमान में भीषण रूप झलक रहा है।किसी भी पार्टी की सरकार विशिष्ट समुदाय को अधिकार से वंचित रखेगी,तो उग्रवादी संगठन निर्माण होते रहेंगे "

हां,बिल्कुल सही। आपसे वार्तालाप करने से बहुत सी जानकारी मिली।अब मैं चलती हूं इरोम चानू शर्मिला। मिलते रहेंगे बीचबीच में, इसी तरह।

"हां,जरूर।"

कुछ वर्ष पुरानी बात है। मैं अकेली थी रास्ते पर। सड़क पर संन्नाटा था।सभी तरफ अंधार भी। मैं अकेली जा रही थी रास्ते से। घर पहुंची, तो ख़बर मिली कि दो स्री को निर्वस्त्र करके रास्ते से घुमाया। उसके साथ दुष्कर्म किए।यह प्रसंग सुनकर मैं बैचेन हुई। जैसे कि जीवित होकर भी मैं मर गई। इतने में जोर से आवाज सुनाई दी कि हमारे गांव 'मीरा पैबी संगठन' की कुछ महिलाएं प्रबोधन करने हेतु आई हैं। यह सुनकर मैं घर से बाहर निकली। तो मुझे दिखाई पड़ी 'एके जानकी लीमा'। देखते ही मैंने ख़ुश होकर कहा, "आप यहां। मुझे कुछ भी बताया नहीं।"

“आप इस गांव में रहती है,मुझे सच में पता नहीं था। आपसे बहुत वर्ष हुए मुलाकात नहीं हुई।आपसे संपर्क करने की बहुत कोशिश की इसके पहले अनेक बार। किन्तु संपर्क नहीं हो पाया। उत्साह रूप में एके जानकी लीमा कहने लगी।”

“आईए घर में,चाय लेते है। इरोम चानू शर्मिला ने कहा।”

चाय लेते समय वार्तालाप शुरू हुआ दोनों में। सामाजिक कार्य पर बहुत चर्चा हुई। किन्तु इरोम चानू शर्मिला के चेहरे पर गंभीर भाव दिखाई दे रहे थे। वह चिंता में दिख रही थी। इतने में अचानक एके जानकी लीमा ने पूछा,“आप ठीक तो है ना। कुछ दिक्कत तो नहीं।”

“अच्छी हूं शरीर से।मन से कब की टूट गई हूं।”

“क्या हुआ? मुझे बताईए जल्द।”

“ दो महिलाओं को निर्वस्त्र करके भीड़ ने घुमाया। उनके साथ दुष्कर्म भी किए दरिंदों ने। सिर्फ़ यह दो महिलाएं निर्वस्त्र नहीं हुई, ऐसी अनेक महिलाएं निर्वस्त्र हुई हैं। कहीं स्त्री ने अत्याचार सहे हैं। लेकिन वह सब चित्र अभी तक सामने नहीं आया।वास्तव में वर्तमान की न्यायपालिका, संसद,पत्रकारिता ही निर्वस्त्र हुई है। वह कुछ भी कर नहीं पा रही।”

“ यह घटना कहां हुई? और कब?”

“ मणिपुर के थोबल जिला में 4 मई,2023 को घटना घटित हुई।वातावरण हिंसाग्रस्त होने के कारण 150 लोग मारे गए। 400 लोग गंभीर रूप से घायल अवस्था में हैं। 60000 से अधिक लोग बेघर हुए। यह मीडिया ने बताया,असल में क्या परिस्थिति है वह मणिपुर के लोगों को पता हैं। पीड़ित महिलाओं में से एक के पति इंडियन आर्मी में थे। यह खबर सुनकर वे हैरान हुए। उन्होंने अफसोस जताते हुए कहा कि मैंने कारगिल युद्ध में देश के लिए लड़ाई लड़ी। और भारतीय शांति सेना के हिस्से के रूप में श्रीलंका में था। मैंने देश की रक्षा की, लेकिन मुझे दुख है कि मैं अपनी पत्नी और ग्रामीणों की रक्षा नहीं कर सका।”

"यह घटना घटित होने के पीछे क्या कारण थे? पता चले।"

"घटना घटित होने के पीछे अनेक कारण हैं। परन्तु मूल कारण है मैतेई समाज को पहाड़ी क्षेत्र में जमीन खरीद ने का अधिकार न होना।साथ ही गौण कारण है नीच धार्मिक विचार और गंदी राजनीति। कोई भी समस्या निर्माण होती है तो शिकार महिला ही बनती है।यहां भी वही हुआ।"

"मैं नहीं समझी।"

" आपको जल्द समझ में भी नहीं आएगा। इसीलिए आपको मणिपुर के शैक्षिक,सामाजिक,राजनीतिक,सांस्कृतिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों का अध्ययन करना होगा।"

"हां,वह तो है। मैं करुंगी अध्ययन।"

" वैसे देखा जाए तो मणिपुर की आबादी लगभग पैंतीस लाख मानी जाती हैं। जिनमें मैतेई,नागा,कुकी आदि प्रमुख समुदाय है। मैतेई ज़्यादा मात्रा में हिंदू है।नागा,कुकी इसाई। नागा,कुकी समुदाय मणिपुर में अनुसूचित जनजाति में शामिल हैं। मणिपुर भूमि सुधार के तहद मैतेई समाज को पहाड़ी इलाकों में जमीन खरीद ने का अधिकार नहीं है। इसीलिए मैतेई समुदाय भूमि सुधार कानून का विरोध करते आया है निरंतर।"

" भूमि सुधार कानून हटाना आसान नहीं है।"

"अप्रत्यक्ष रूप से हटाने की कोशिश की है मैतेई समाज के राजनीतिक नेताओं ने।"

"कैसे? मैं नहीं समझी।"

"मणिपुर की राजनीतिक पृष्ठभूमि का इतिहास देखने से समझ आता है मैतेई समाज का वर्चस्व। मणिपुर के तक्करीबन मुख्यमंत्री मैतेई समाज से ही हुए है

अभी तक। वर्तमान में भी मैतेई समाज के मुख्यमंत्री है। वे उच्च न्यायालय के मत पर खड़े उतरने वाले थे।"

"उच्च न्यायालय का क्या था? "

" मैतेई समाज के एक व्यक्ति ने उच्च न्यायालय में याचिका दायर की थी कि हम मूल मणिपुर के रहने वाले हैं। हम अनुसूचित जनजाति में शामिल थे प्राचीन समय। वर्तमान में नहीं है। कहीं वर्ष उन विषय पर विचार विनिमय हुआ। हाली में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश ने कहा कि मैतेई समाज को अनुसूचित जनजाति में विलीन करने पर सरकार विचार जल्द करें।"

"न्यायाधीश ऐसा कैसे कह सकते है। यह तो आदिवासी समाज पर अन्याय होगा।"

"न्यायाधीश सिर्फ़ नामधारी है। कठपुतली के रूप में वे बैठे है पद पर। निर्णय सत्ता धारी सरकार ही देती हैं। मैतई समुदाय का सामावेश अनुसूचित जनजाति में न हो,इसलिए मणिपुर के 'आल ट्राइबल स्टूडेंट युनियन' ने 3 मई,2023 को पर्वतीय क्षेत्रों में रैली का आयोजन किया। सरकार पर दबाव डालने हेतु। रैली का समापन होने से पहले इम्फाल घाटी से सटे हुए चूड़ाचांदपुर जिला में मैतेई और कुकी समुदाय में झड़प हुई। दोनों समुदाय ने एकदूसरे के मंदिर,चर्च जलाए। सत्ताधारी सरकार ने मैतेई समुदाय में धर्म के नाम पर विष फैलाने का कार्य किया। इसी का परिणाम 4 मई,2023 को दो महिलाओं को निर्वस्त्र करके घुमाया गया, यह पीड़ादायक घटना घटी। जो देश के लिए कलंक थी।"

" जब यह घटना घटित हुई,तब वहां का पुलिस प्रशासन क्या कर रहा था। सिर्फ़ तमाशा देख रहा था क्या?"

" कुछ लोग कह रहे हैं कि पुलिस ने ही भीड़ के पास महिलाओं को दिया।"

"ऐसा क्यों किया उन्होंने।"

"डर के कारण या राजनीतिक दबाव के कारण। पीड़ित स्त्री की जान बचाने हेतु पिता और भाई ने खुद की जान गंवाई,किन्तु सफलता नहीं मिली उन्हें। स्त्री बहुत चिल्लाई,किन्तु उसकी वेदना किसे ने नहीं समझी। जानवरों जैसा शरीर नोचा हैवानों ने। आज वह जी तो रही है परन्तु मरमर के। वह सिर्फ़ शरीर से जिंदा है,मन तो कबका मर गया। इतना ही नहीं यह घटित घटना सभी भारतवासियों को सतहत्तर दिन के पश्चात व्हिडिओ के माध्यम से पता चली।"

"इतने दिन क्यों लगे?"

" शायद मणिपुर सरकार साझा नहीं करना चाहती थी।किन्तु आप यह मत समझो कि मैं विपक्ष की बाजू ले रही हूं। या उसने मेरा राजनीतिक कोई संबंध है। मैंने जो आंखों से देखा, उसके आधार पर बात कर रही हूं।"

"दोषी व्यक्तियों पर कार्रवाई हुई क्या?"

" दोषी व्यक्तियों के नाम का अभी तक पता नहीं। कार्रवाई तो बहुत दूर।"

" व्हिडिओ में मूल दोषी दिखते होंगे ना।"

"दिखते हैं, किन्तु दोषी आदमी मैतेई समाज से है ना । सरकार भी तो उनकी है। अभी तक छह आदमी को मूल दोषी ठहराया। जिनमें से हुहिरेम हेरोदास मैतेई नाम सिर्फ़ सामने आया। कार्रवाई कुछ नहीं हुई।वह खुलेआम घूम रहा है समाज में।"

"यानी सरकार भेदभाव कर रही है कुकी समुदाय के साथ। यह मामला केंद्र सरकार को सोपना चाहिए।"

" तब भी कुछ नहीं होनेवाला। क्योंकि वहां उनके विचार की सरकार है। उनकी जगह विपक्ष की सरकार होती तो भी वह वहीं करते जो सत्ताधारी कर रहे हैं। सत्ता के लिए कुछ भी करती हैं भारत की सभी राजनीतिक पार्टियां। उन्हें जनता के प्रगति से कुछ मतलब नहीं है। सोप दिया है मामला, देखते हैं क्या होता है।"

“मणिपुर में इतनी दर्दनाक घटना घटित हुई,यह भारत के इतिहास में पहली बार हुआ। यानी मणिपुर सरकार नाकाम हुई शांतता रखने में। मणिपुर के मुख्यमंत्री ने इस्तीफा देना चाहिए।”

“इतना सब कुछ होने के बावजूद उन्हें कुछ नहीं लग रहा।वे मीडिया पर कह रहे है कि ज़्यादा कुछ नहीं हुआ,सिर्फ दो समाज में मतभेद है,बाकी कुछ नहीं।”

“ और क्या होना अपेक्षित है उन्हें। सब मणिपुर तो जल रहा है हिंसा के आग में। मूल रूप में वह जल नहीं रहा,जानबूझकर जलाया जा रहा है। विपक्ष क्यों कुछ बोल नहीं रहा।”

“ विपक्ष कहां अस्तित्व में रहां है वर्तमान में। विपक्ष के सदस्य सच बोलने की कोशिश करते हैं तो उनपर इडी जैसे हत्यार का प्रयोग किया जाता है जानबूझकर। साथ ही निलंबन।यह दो हत्यार प्रसिद्ध है किसी भी सत्ताधारी पार्टी के।”

“ लोकसभा में हिंसा पर बहुत बहस हुई। हिंसा के पीछे कौन है? इसपर दोनों यानी सत्ता धारी और विपक्ष में आरोपप्रत्यारोप हुए।”

“परन्तु केंद्र सरकार ने विपक्ष का आवाज दबाने की कोशिश की। आखिरकार दबाया ही। क्योंकि मणिपुर की सरकार उनके पार्टी है। साथ ही उनके पास बहुमत हैं। कुछ सांसद को निलंबित भी किया। सच में हिंसा भड़काने में दोषी कौन है,यह भारतवासियों को समझ आया।”

“ स्री हिंसा पर अंतराष्ट्रीय स्तर पर चर्चा हुई। दोषियों का निषेध किया गया। लेकिन भारत में दोषियों की बाजू लेने की कोशिश अप्रत्यक्ष रूप से की गई सत्ता धारी सरकार की ओर से। यह निंदनीय है भारत के लिए।“

“ सत्ता धारी सरकार ऐसा क्यों कर रही है?”

"क्योंकि लोकसभा चुनाव है सामने। कुछ कार्रवाई की तो सांसद, विधायक कम चूनकर आने की संभावना है।"

"गलत है यह सरासर।"

"सत्ता पाने हेतु राजनेता कुछ भी करते हैं। परन्तु उन पीड़ित महिला के मन के बारे में किसी ने नहीं सोचा। यह घातक है भारत के भविष्य के लिए।"

"गुन्हेगार के विरुद्ध केस दायर की पीड़ित महिलाओं ने। एके जानकी लीमा ने चिंता के रूप में पूछा।"

"इतना कुछ होने के बावजूद भी गुन्हेगार के विरुद्ध केस दायर करने हेतु डर रही है पीड़ित महिलाएं। इरोम चानू शर्मिला ने गंभीर स्वर में कहा।"

" आखिर क्यों?"

"परिवार सुरक्षित रहे,इसलिए।"

"लेकिन कुछ दिनों के पश्चात पीड़ित महिलाओं में से एक स्त्री ने शिकायत दर्ज की।सब कुछ साझा किया।"

"न्याय मिला उसे।"

" नहीं।वह जीकर भी मरी हुई है। सिर्फ़ परिवार खातिर जिंदा है,बस्स! लेकिन उसने हार नहीं मानी। न्याय के लिए लड़ रही है वह व्यवस्था के विरुद्ध।"

"लड़ना ही होगा। उसने हार मानी तो हिंसाचार बढ़ता ही जाएगा स्त्री पर।"

"उसने मन में तय किया है कि मैं गुन्हेगार को फांसी की सजा दिलाकर रहूंगी।"

"हां,सही में मिलनी भी चाहिएं। ऐसा नहीं हुआ तो उसका न्याय व्यवस्था से विश्वास उठ जाएगा।"

"वह न्याय मांगने हेतु दिनरात भटक रही है। इतने माह हुए लेकिन कुछ नहीं हुआ। न्याय व्यवस्था से विश्वास उठा है उसका।"

इरोम चानू शर्मिला,उनको न्याय दिलाने हेतु कार्य करते रहेंगे हम निरंतर। उसके साथ खड़े रहेंगे डटकर।जब तक उन्हें न्याय नहीं मिलता, संघर्ष करते रहेंगे। जिस दिन उन दरिंदों को फांसी की सजा मिलेगी,तभी हम समझ लेंगे भारत में लोकतंत्र है। नहीं तो हम समस्त महिला समझ लेगी,यहां सिर्फ़ हुकूमशाही है...! सिर्फ़ हुकूमशाही...!

बहुत समय हुआ,अब में चलती हूं। गांव के महिलाओं से चर्चा करनी हैं समस्या के संदर्भ में। खुद का ख्याल रखना इरोम चानू शर्मिला, क्योंकि वर्तमान समय बहुत खराब है स्त्री के लिए...

संपर्क: सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, श्री आसारामजी भांडवलदार कला,वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय,देवगांव रंगारी,तहसील कन्नड, जिलाछत्रपति संभाजी नगर,महाराष्ट्र,पिन 431115
चलभाष्: 9022561824
ईमेल:rvadhekar@gmail.com

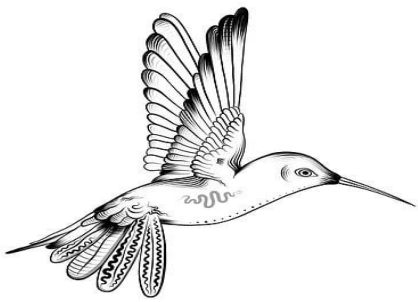

साहित्यिक रचनाएँ: लघुकथा

पीपल की पुकार

- विकास बिश्नोई

'दादी मां दादी मां, आपके लिए गांव से चिट्ठी आई है', 10 साल के पोते राहुल ने अपनी दादी को पुकारते हुए कहा। मेरे लिए चिट्ठी, भला किसने लिख दी, दादी ने अचंभित होकर कहा। 'पता नहीं, अभी एक भैया चिट्ठी देकर गए', राहुल ने उत्तर दिया।

दादी मां ने चिट्ठी देखी तो गांव के सबसे पुराने पीपल के पेड़ की चिट्ठी थी। अपनी व्यथा सुनाते हुए पीपल के पेड़ ने लिखा था, मेरी बहन, तुमने मुझे राखी बांधी थी ना, आज मुझे तुम्हारी जरूरत है। तुम्हारा बेटा तुम्हें शहर ले गया, हो सके तो गांव वापस आकर मुझे बचा लो। आज यहां कुछ लोग पास के एक शहर से आए। मेरी छांव में बैठकर हाईवे बनाने के लिए मुझे काटने की बात कर रहे थे। बहुत से पेड़ों को तो काट भी दिया है। मैं फिर भी अपनी जिंदगी लगभग जी चुका। मुझे मुझसे ज्यादा चिंता मुझपर रहने वाले छोटे बड़े पक्षियों की है, उनका क्या होगा। वो सब बेघर हो जाएंगे। इसलिए हो सके तो गांव लौटकर इन लोगों को रोक लेना मेरी बहन। पत्र पढ़कर दादी मां की आंखें आंसू से भर गई और वह गाँव की ओर रवाना हो गई।

युवा लेखक एवं कहानीकार, हिसार (हरियाणा)
सम्पर्क: +91-70151-84834

पुस्तक समीक्षा

कविता संग्रह 'तुम तब आना

समीक्षक: विरेश 'श्रीराजे'
शोधार्थी (पीएच.डी.) दिल्ली विश्वविद्यालय

लेखक: राकेश कबीर
प्रकाशन: लोकभारती प्रकाशन
आवरण : डॉ. लाल रत्नाकर
मूल्य ₹ 495

राकेश कबीर का कविता संग्रह 'तुम तब आना' चार विभागों में है। यह संग्रह लोकभारती प्रकाशन से प्रकाशित है। इस काव्य संग्रह में लगभग 97 कविताएं लिखी हैं जिसमें पहले विभाग में '**कुछ अपनी बात कहूं' , 'प्रकृति के रंग' , 'नीति, अनीति, कुनीति' और कोविड: दूसरी लहर, मौत का मंजर** है। इस संग्रह की कविताओं में रचनाकार ने कई बिंदुओं पर साहित्य के माध्यम से अपनी बात बड़े सरल तरीके से कही है जिसमें कोई लाग लपेट नहीं मिलती। इस संग्रह के रचनाकार का क्षेत्र बृहत् बड़ा है, जिसमें वे कई तरह के समाज से जुड़ते हैं और वही जुड़ना लेखक को चारों दिशाओं में देखने के लिए तैयार करता है। काव्य शास्त्र में विद्वानों ने माना है कि 'काव्य के मूल प्रेरक तत्व को काव्यहेतु कहते हैं। अर्थात सही मायनों में कहे तो काव्य का अनिवार्य एवं एकमात्र हेतु है – प्रतिभा, और व्युत्पत्ति तथा अभ्यास प्रतिभा के ही परिष्कारक, पोषक एवं संवर्धक हेतु हैं।'(भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र का संक्षिप्त विवेचन, अशोक प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 17) अत: कवि की प्रतिभा, व्युत्पत्ति तथा अभ्यास इस काव्य संग्रह में हैं। इस संग्रह को जब पाठक पढ़ेंगे तो, वे तमाम बिंदुओं से टकराएंगे और वही बात सिद्ध होगी कि 'सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर। देखन में छोटे लगै, घाव करें गंभीर' कवि अपनी बात इतनी सपाट बयानी से कर देंगे कि इसका आभास पाठक वर्ग पर पड़ेगा। कविता संग्रह का शीर्षक 'तुम तब आना' अपने आप में कौतूहल पैदा करता है। 'तुम तब आना' यह किस के

लिए कहा जा रहा है? कवि किसे कह रहा है कि 'तुम तब आना' अगर देखें तो हम जब किसी को इस वाक्य से कहते है तो विशेष समय और परिस्थिति को भांप कर ही कहते हैं। हम विशेष का ध्यान रखते हैं। और आने वाला हमारा कोई प्रिय हो तो हम नहीं चाहेंगे कि उसके आने में कोई बाधा या उसे हानि हो। दरअसल कवि प्रकृति प्रेमी हैं वसंत के खुशनुमा रंग बीत गए हैं और सूखे खुश्क मौसम की रुखाईयों के बाद कवि को वसंत आने का इंतजार है। इसी संदर्भ में जब पाठक इस संग्रह की कविताओं से गुजरेंगे तो पाठक ध्यान देंगे कि कवि का एक उद्देश्य है। प्रकृति, नदियां, समाज, संस्कृति आदि इस संग्रह में रोचकता, गंभीरता, और जिज्ञासा पैदा करते हैं जिसमें प्रकृति से जुड़ीं कविताएं आज के समय को प्रासंगिक बनाती है।

कवि बसंत के लिए कहते हैं कि –**'बसंत तो कब का बीत गया/जो फूल खिले थे खेतों में/सब पीले दाने बन गए/खेत उजाड़ और नीरस हो चुके/तुम अभी मत आना/कि इस सफेद धूप के जले–भुने मौसम को/मैं जरा अकेले निपट लूं/X X X X X/जब खेतों में धान की हरियाली/पसर जाए दूर तक/ इनके बीच/सारस के जोड़े /संग – संग विचरने लगें/तुम तभी आना'** (वही पृष्ठ सं.18,20)

कवि प्रकृति के सुखद समय के आने की कामना कर रहे हैं। कवि की बारीक दृष्टि में बसंत का समय समाया हुआ है। जब खेत हरियाली से लहरा उठे, नए फूल खिल जाए, धूप गुनगुनी होने लगे, ग्रीष्म काल चला जाए और जब धान के खेतों में हरियाली पसर जाए दूर तक तब तुम आना। ये आना क्या है? यह कहना मानवीय सरोकार का है कि सद्भाव सभी प्राणी इस धरा पर खुश रहें। लोग मन से झूमे , किसान लहलहाती फसल को देख कर बाग – बाग हो जाएं, नव जोड़े खिले रहें । पशु पक्षी प्रकृति के इस अनुपम सौंदर्य से झूमे। इसलिए 'तुम तब आना' कविता मानवीय संवेदना को लेकर चल रही है।

कवि अपनी बात में 'कविता मेरी सहयात्री' में कहते हैं कि "इस खानाबदोश जिदंगी में जाने कहाँ-कहाँ जाना है, किन अनजाने वीराने रास्तों से गुजरना है, कुछ पता नहीं। चौदह साल की उम्र में गाँव छोड़ गोरखपुर गए पढ़ाई करने, बहुत कष्ट हुआ। दीवार में लगे कैलेंडर में पंद्रहवें दिन घर वापस लौटने के लिए गोल घेरा लगा देता था और हर रोज एक दिन कम होने और गाँव वापस जाने की ख़ुशी बढ़ती जाती। दो- तीन दिन बाद वापस आता, माँ गाँव के बाहर तक छोड़ने आती, हम दोनों रोते और फिर पन्द्रह दिनों का इंतजार।" इस कविता संग्रह के पहले विभाग 'कुछ अपनी तो कहूँ' में अठारह कविताएँ हैं। जिसमें कवि के अपने चारों ओर चक्कर लगाता जीवन है, मां परिवार, गाँव, समाज आदि हैं। कवि ने कविताओं के माध्यम से इन सब विषयों को कविता के माध्यम से उकेरा है। जैसे कि

इस संग्रह की पहली कविता 'लिट्टियाँ' है। पूर्वांचल में लिट्टी एक पारंपरिक व्यंजन है जिसे आज विश्व स्तरीय पहचान मिल गई है। दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, व उत्तर भारत में लिट्टी मशहूर व्यंजनों में शामिल है। वहीं जब कवि अपने गाँव और अपनी माँ से दूर हैं तो उन्हें उनके द्वारा बनाई लिट्टियां याद आती हैं और साथ ही माँ का स्नेह याद करते हुए कवि व्यष्टि से समष्टि की ओर जाते हैं आज लाखों युवा अपने घर परिवार से दूर हैं उन्हें अपने परिवार की याद स्वतः ही आती है उस याद में माँ की स्मृतियों में जाना अपने में ही पीछे जाना है इस पर वे कहते हैं कि-

'अपनी पसंद की चीजें
कब पकाती थी माँ
चूल्हे की जलती आग में
उसे तो हमने हमारी फरमाइशों को ही
बघारते देखा हरदम कड़ाही में
× × × × ×
कचूर के पत्तों से लिट्टी की पीठ पर

छप जाती थी एक छापी
जैसे उसकी साड़ी पर
छपे होते थे कुछ डिजाइन
और गाती थी गीत समूह में
चूल्हे की आग, लिट्टी और संग साथ की ख़ुशी में।' (वही पृष्ठ सं. 15)

कवि राकेश कबीर की कविताओं में विविधता है और यह विविधता पाठक वर्ग को अपनी तरफ आकर्षित करती है। प्रकृति से होते हुए वे अपने जीवन साथी के लिए भी समर्पित हैं। उनके काव्य में एक जिजीविषा है जो मुस्कुराहटें पैदा करती है। आज समाज में सम्मान और सद्भाव है तो खुशी और संतोष है। स्त्री को पुरुष समाज ने अपने से कमतर आंका है उसके लिए दोहरे मापदंड रखे। बराबरी का ढंग दिया ही नहीं जिस कारण स्त्री को समझा ही नहीं। कविता 'तुम्हारी मुस्कुराहटें' में वे कहते हैं-

'तुम्हारी मुस्कुराहटें देखता हूं
तो लगता है
ये धरती रहेगी
फूल भी खिलेंगे
पंछी उड़ेंगे आसमान में
मुझसे बराबरी से टक्कर लेती
उम्मीद हो मेरी तुम साथी
हमराह, संगिनी
बधाइयाँ तुम्हें
मेरी जिंदगी की फिजा में
तुम्हारी मुस्कुराहटों के लिए' (वही पृष्ठ सं.17)

इस विषय में कहे तो प्रेम एक बेजोड़ संबंध है, जो अविरल धारा प्रवाह होता है। प्रेम में जीवन अमृत रूपी लगता है जो जीवन की सार्थकता सिद्ध करता है। प्रेम से जुड़े साथी के साथ जीवन जीना और उसके अनुभव से होकर गुजरना ही जीवन की असल सार्थकता है। आगे वे अपनी एक कविता में कहते हैं-

'तुम साथ नहीं हो तो ये
अजनबी शहर कितना उजड़ा सा लगता है
कितना पराया सा लगता है
मन के एक कोने में
एक कसक सी रहती है
क्यों न जिम्मेदारियों के
परों को काट फेंक दूं
और कह दूं जमाने से
हम अलग नहीं रहेंगे
तुम्हारी बकवास बंदिशों के डर से।' (वही पृष्ठ सं.21)

उपर्युक्त कविता को पढ़ कर कबीरदास की पक्तियां याद आती हैं कि-'सांझ पड़े, बीतबै, चकवी दीन्ही रोय। चल चकवा व देश को जहां रैन नहिं **होय।**' अर्थात् कबीरदास ने कहा है कि शाम होते ही चकवी रोने लगती, कबीर दास आगे कहते हैं कि चकवा ऐसी जगह चलो कि जहां रात नहीं होती हो। यही दशा इस कविता में देखने को मिलती है।

राकेश कबीर पेशे से एक प्रशासनिक अधिकारी हैं समय पर घर न पहुंचना और नन्ने बच्चे को यह कहना कि 'यहीं तो बैठा रहता हूं मैं, तुम्हारे लौटने तक।' पिता का पुत्र से स्नेह मार्मिकता भर देता है। कविता की पंक्तियां इस प्रकार हैं –

'मेरे कंधों पर सवार होकर
आसमान को छू लेने की
उसकी मासूम ख्वाहिश
कितनी भली लगती है
× × × ×
और अब दूर कहीं रहने को बेबस मेरे पास
नहीं होता कोई जवाब
× × × ×
मैं हर रोज बोलता हूं एक झूठ

× × × ×

बिताते हैं एक – एक दिन

एक – दूसरे के इंतजार में।'(वही पृष्ठ सं.27,28)

प्रकृति प्रेमी होना प्रत्येक मनुष्य को पसंद है लेकिन समय-समय पर उसका आभास होना अत्यन्त आवश्यक है। आज ऋतुएं बीत भी जाती हैं और नई युवा पीढ़ी के लोग उनसे अनभिज्ञ रहते हैं। लेकिन कवि की निगाहें ऋतुओं के प्रत्येक क्षण पर हैं। पूरब की अपेक्षा पश्चिम थोड़ा शुष्क क्षेत्रों में भी आता है । पूरब की आवो हवा में पलकर बड़े हुए व्यक्ति के लिए यह एक दम भिन्न ही लगेगा कि मौसम के मिजाज में इतनी तलखी है, थोड़ी फुआर हों। कवि जब पश्चिम में अपने तबादले के बाद आते हैं तो कम वर्षा वाले क्षेत्र की उमस भरी गर्मी व्याकुलता पैदा करती है। कवि बादलों को अपना साथी कहते है। पंक्तियों के माध्यम से देखा जा सकता है –

'एक गुजारिश की थी हमने

बादलों से

जब बीत गया था

आधा सावन सूखे- सूखे

कि आना इस ओर भी

पूरब से पश्चिम आ गया हूं मैं

छाए रहना देर तक' (वही पृष्ठ सं.36)

कवि बादलों से आधे सूखे सावन बीत जाने की बात कर रहे हैं उनका आवाह्न बादलों के लिए है । वे आगे कहते हैं कि बरसना भले ही कम लेकिन मेरे साथ बने रहना। यह साथ बने रहना कवि का बादलों के प्रति मित्रवत व्यवहार को दर्शाता है। कवि का तपती गर्मी में इन बदलों के बिना मन नहीं लग रहा। यहां कवि अपने गांव के मूल वातावरण को याद कर रहें हैं। कवि आगे कहते है कि एक अभी तक कोई घर नहीं है जिसे मैं अपना कह सकूं, ईंट पत्थर की दीवार व छत कितनी ही बदल गईं लेकिन जब तक तुम मेरे ऊपर नहीं मचलते तब तक यह खानाबदोश जीवन सब बर्बाद हो लगता है। अतः कवि की दृष्टि व्यापक

और मानवीय संवेदना से पूर्ण है। एक किसान जिस तरह से बादलों को देख प्रसन्न चित रहता है उसी प्रकार कवि बादलों को देख प्रसन्न चित हैं, वे कहते हैं-

'जब तक तुम नहीं मचलते
काले दूधिया रंग में सर ऊपर
ये खानाबदोश सफ़र
और हरा- भरा शहर
सब बर्बाद लगते हैं'(वही पृष्ठ सं.37)

कविता संग्रह के पहले विभाग की आखिरी कविता 'मोहल्ले गरीबों के'में गरीब बस्तियों का प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया गया है । कवि की दृष्टि पैनी है जिसमें नजरें उन बस्तियों पर पड़ जाती है जिनके नाम पर शासन द्वारा करोड़ों का धन आता है। लेकिन यह विकास कागजी ज्यादा और जमीनी कम ही होता है। गरीबों के मौहल्लों को देख कवि मन विचलित होता है वह पहचान लेता है कि उखड़े हुए रास्ते उन्हें पता बता देते हैं कि अमीरों के घर और गरीबों के घर किधर हैं जैसे –

'उखड़े हुए रास्ते
पता देते हैं कि
अमीरों के मुहल्ले में
किधर बसी हैं
गरीबों की बस्तियाँ ' (वही पृष्ठ सं.41)

मानव जीवन प्रकृति से जुड़ा है। यह जुड़ाव ही जीवन पनपाता है। जीवन अर्थात् जी और वन का मिला हुआ संयुक्त रूप है। 'जी' अर्थात् प्राण और 'वन' अर्थात् प्रकृति। अतः जब प्राण और वन का संयोग होता है तो जीवन शुरू होता है। कवि राकेश कबीर ने कविताओं में पर्यावरण के बदलते परिदृश्य पर बात कही है। आज वैश्वीकरण के बड़ते प्रभाव से अचानक मौसम में बदलते मिजाज को न समझना आम धारणा बन गई है। यह बात 'अलीगढ़ में बारिश' कविता के माध्यम से समझी जा सकती है-

'सावन के महीने में
करते हैं तलाश बादलों की
× × × ×
ये अपने शहर वाले
गर बरस गईं कुछ बूंदें
घंटे भर जमीन पर
गालियां देते हैं उफनाई नालियों को
यही अपने शहर वाले।'(वही पृष्ठ सं.45)

इसी प्रकार की अन्य कविताएं हैं जो बादलों के झमाझम बरसने की पुकार कर रही हैं जैसे 'बरसों बादल प्यारे' कविता में कवि कहते हैं कि बादलों वाला आसमान और बारिशों वाला आँगन देखने को तरस गई थी आँखें। अर्थात् कवि कहना चाहते हैं कि ये आँखें तरस गई है झमाझम बारिश को देखे हुए। सूखे मौसम को देख कर कवि मन झुलस गया है। कवि बादलों को आवाह्न करते हैं कि 'बरसों भले ही कम , लेकिन कुछ दिन ये तम्बू लगाकर बैठे रहना इधर' कवि का बादलों के प्रति यह आग्रह मानवीय सरोकार से ओतप्रोत है। जिसमें पृथ्वी के सभी जीव सुख से रह पाएंगे। मानवीय सरोकार इस कविता में विद्यमान हैं जैसे-

'बादलों वाला आसमान
बारिशों वाला आँगन देखने को
तरस गईं थीं आँखें
× × × ×
अब सुनो भाई बादल
बरसों भले ही कम
लेकिन कुछ दिन ये तम्बू
लगाकर बैठे रहना इधर' (वही पृष्ठ सं.49)

राकेश कबीर की 'बादलों से तकरीर ' कविता में एक व्यंग है जिसमें वे बादलों से तकरीर करते हैं। कविता में कवि का बादलों से तकरीर करना और बड़ते

प्रदूषण का स्तर इंगित करना और समस्या की जड़ की ओर इशारा करना यह बात महत्तवपूर्ण हो जाती है कविता में कवि कहते हैं –

'और बादलों के टुकड़ों को सुनाई मैंने
एक डाँट भरी तकरीर
× × × ×
माना नादान है आदमी
दिन – रात धुआँ घुसेड़ता रहता है
ऊपर आसमान की नाक में चिमनियों से
और नीचे कतारें उसके मोटरों की
कालिख पोतती है हरियाली के मुँह पर'(वही पृष्ठ सं.52, 53)

कवि कहते हैं कि माना कि आदमी नादान है जो दिन रात धुंआँ फैलाए जा रहा है और ऊपर आसमान में भूरे बादलों को काला स्याह कर उसका रंग रूप ही बदल रहा है। लेकिन फिर भी धरती तो जल रही है, और तपती हुई हवा, बच्चे, झुलसते हुए पेड़, गाय, भैंस, आदि प्राणी सब की जान आफत में पड़ी है। वे आगे कहते हैं-

'प्यास बुझाने, जान बचाने के लिए
अब बरस जाओ इधर के सुखाड़ **में'** (वही पृष्ठ सं.53)

इस प्रकार राकेश कबीर की कविताओं में मानवीय सरोकारों को देखा जा रखता है। कवि भली भांति जानता है कि आज प्रदूषण किन कारणों से फैल रहा है लेकिन फिर भी वह प्रकृति को क्षम्य होने और मानव जीवन को हर्ष करने के लिए कविता के माध्यम से बादलों तक अपनी बात पहुंचा रहे हैं।

राकेश कबीर ने नदियों को बचाने के लिए अनेक अथक परिश्रम किए हैं जिसमें उनके साथ प्रशासन ने भी काम किया है। लेकिन अपने स्तर पर नदियों को सूखने से बचाना और उन्हें लवा-लव बहते देखना यह सुखद अनुभूति है,मानव जीवन के लिए। नदियों पर केंद्रित उनकी पुस्तक **'नदियों की तलाश में'**(वाणी प्रकाशन) जो एक आत्मकथात्मक ढंग से लिखा संग्रह है। छोटी नदियों के

विषय में राकेश कबीर कहते हैं कि "नदियों के बारे में प्राय: कम चर्चा होती है, परन्तु मेरी चिंता सदैव से प्रकृति के लोकतांत्रिक स्वरुप को प्रदर्शित करती छोटी नदियों के पक्ष में रही है, जो हमारे खेतों और गाँवों तक पानी लेकर आती हैं। जिससे हमें पेयजल और अतिक्रमण का शिकार होकर अपना अस्तित्व खो रही हैं इन्हें बचाना मानव जीवन के साथ-साथ समस्त जीव-जन्तु एवम् वनस्पतियों को बचाना है।" कविता 'लावारिस नदी का दर्द' में कवि वहां के आम लोगों से इस सूखती 'सोत नदी' के विषय में जानने की कोशिश करते हैं लेकिन कोई मुनासिब जबाव कवि को नहीं मिलता वे कहते हैं-

'सो गई सोत नदी
चिर निद्रा में
जिनको आई थी तू बसाने
लगे वही तुझे सुखाने
किनारों को मिलाने
तेरे बाँकपन को मिटाने' (वही पृष्ठ सं.57)

कवि कहते हैं कि तू गहरी नींद में सो गई है सोत। जिन्हें आई थी तू बसाने वही अब तुझे मिटाने में लगे हैं अर्थात् कवि ने भू-माफिया और अतिक्रमण करते लालची किसानों की और संकेत किया है! नदी से सटे खेतों की सीमाएं अब नदी में जा मिली हैं नदी खेतों में धीरे – धीरे विलीन हो गई है। वे आगे कहते हैं अब तुझ से दुर्गन्ध उठती है कीड़े बजबजा रहे हैं तू जिन्हें आई थी जिन्हें अमृत पिलाने वही अब तुझे मिटाने में लगे हैं । कवि कहते हैं कि जिन लोगों से भी पूछा तुम्हारे बारे में कुछ चुप रहे कुछ अनजान किसी ने तुम्हें लावारिस बताया। अर्थात् 'तू आई जिन्हें बसाने वही लगे हैं तुझे मिटाने।' सोत नदी के विषय में अमर उजाला ऑनलाईन 6 सितम्बर 2019 में प्रकाशित खबर के अनुसार 'सोत नदी की कुल लंबाई कहने को तो 220 किलोमीटर है मगर कुछ ही हिस्से में यह नदी लगती है। ज्यादातर हिस्सा तो नाले में बदल चुका है या फिर सूखा नजर आता है…नतीजा यह हुआ कि नदी के सूखे हिस्सों पर लोगों ने कब्जा कर

लिया…. सोत नदी मुरादाबाद के जौधा से निकलती है और शाहजहांपुर जिले की सीमा में प्रवेश कर जाती है। बदायूं में नदी का 105 किलोमीटर हिस्सा।' शाहजहांपुर जिले से होते हुए 'सोत नदी' **गंगा नदी** में शामिल हो जाती है।

'दरख़्त' कविता में कवि कहते हैं कि यह जलती चिलकती तेज धूप मुरझा देती है छांव दार बड़े-बड़े दरख़्तों को लेकिन यह अपनी छांव कहां छोड़ते हैं। कवि आगे कहते हैं कि ये बेचारे बेहाल हैं अभी तो बसंत में तो आईं थीं नई-नई ललाई हुए कोंपलें। फिर भी इनकी छाँव है इस धूप और गर्मी में इनके नरम पत्तों से। कवि ने कविता के माध्यम से संकेत किया है कि इस वैश्वीकरण के दौर में तापवृद्धि बढ़ रही है जिससे मानसून समय पर नहीं आ रहा। वर्षा कम हो रही है और शहरीकरण के दौर में पेड़ों की कटाई की जा रही है। कविता की पक्तियां कुछ इस प्रकार हैं-

'जलती हुई सफेद धूप में
मुरझा जाते हैं रोज ही
× × × ×
ये खड़े दरख़्त
बेचारे बेहाल हैं
अभी बसंत में ही तो आई थीं
नई- नई ललाई हुए कोंपलें
लो अब मुकाबिल हैं
गरम धूप और नरम पत्ते' (वही पृष्ठ सं.67)

संवेदनशील व्यक्ति हमेशा 'पर हित सरिस धर्म नहिं भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधमाई' तुलसीदास जी की यह पंक्ति को चरितार्थ करता है। 'सर्द रातें' और 'सर्द मौसम के पिल्ले' कविता में संवेदनशील मन अभिव्यक्त होता है। कवि मन उन बेजुबान जानवरों की पीड़ा से दुखी है कि सर्द रात में बेसहारा बेजुबान जानवरों को समाज इतनी अमानवीय दृष्टि से क्यों देखता है। कवि इनके लिए शहरों से अधिक गाँवों को सुरक्षित मानते हैं गांव इन बेजुबानों के लिए दुर्घटना

से रहित, वाहनों की रफ़्तार दूर हैं। कवि ने बंदरों को लुटेरा और पैदाइशी मुफ्तखोर इंगित किया है। कविता के माध्यम से कवि ने वंचित समाज के जीवन को उकेरते हैं। कविता की पंक्तियां इस प्रकार हैं-

'रोते रहे कुत्ते रात–भर
मोहल्ले के
गर्म लिहाफों में लिपटे हुए
कोसते रहे लोग कुत्तों को रात- भर
× × × ×× ×
परन्तु सच ये है कि
घनघोर ठंड में आज की रात
फिर एक पिल्ला मर गया।' (वही पृष्ठ सं.74)

निष्कर्ष – अंततः कवि राकेश कबीर आरम्भ से गांव से जुड़ा महसूस करते हैं। प्रकृति से जुड़े रहना कवि के सहज ही स्वभाव में है, जिसमें उनके कवि मन पर प्रकृति और टटके गंवईपन की सौंध्यता की छाप रहती है। कवि का यह गंवईपन उन्हें प्रकृति के नज़दीक ले जाता है। आज वैश्वीकरण के दौड़ में अनेकों युवा पीढ़ी शामिल है वह अपना भौतिक विकास करके अपने प्रकृति मन को कहीं गहरी खाई में दफनाते जा रहे हैं। इस बीच अपने को जिंदा रखाना और पुरजोर से यह कहना कि'कविता मेरी सहयात्री' बड़ा ही जीवंत है। इस काव्य संग्रह में कई जोड़ मिलेंगे जो अपने को एक दूसरे से जोड़ें हुए हैं और असल बात यह है कि यह संग्रह एक गुलदस्ता है। पाठक वर्ग को इस गुलदस्ते में तरह-तरह रंग देखने को मिलेंगे अर्थात् कविताएं बहुत कुछ बयां करती चलेंगी। स्वयं रचनाकार इस संग्रह के लिए कहते हैं " इस संग्रह की कविताओं में वर्तमान परिस्थितियों से संवाद, बचपन की स्मृतियां, बार – बार उजड़ते – बसने का दर्द और धूर्त प्रवृति के जातिवादियों, सत्तालोभियों और उनकी पद – लोलुपता से क्षोभ की भी अभिव्यक्ति हुई है।" (वही पृष्ठ सं.9) संग्रह में कवि के साथ का वातावरण, वर्तमान समय की परिस्थितियां और प्रासंगिकता विद्यमान हैं। कवि मन पेशेगत

से होते हुए समाज के समक्ष बड़ी बारीकी से सृजन कर कविता के माध्यम से इस संग्रह में ला पाए है।